ॐ

श्रीरामकृष्णलीलाप्रसंग

प्रथम खण्ड

पूर्ववृत्तान्त तथा बाल्यजीवन
एवं
साधकभाव

स्वामी सारदानन्द

अनुवादक—श्री नृसिंहवल्लभ गोस्वामी,
वेदान्तशास्त्री

श्रीरामकृष्ण आश्रम,
धन्तोली, नागपुर–१.

आत्मसात् करने में मानवता को कितना समय लगेगा, अनुमान करना कठिन है ।

भगवान् श्रीरामकृष्णदेव की महासमाधि के पश्चात् उनकी जीवनी का वर्णनात्मक विवेचन उनके अनेक शिष्यों तथा उपासकों ने समय-समय पर विभिन्न भाषाओं में प्रस्तुत किया है, परन्तु इनमें से ऐसा वर्णन शायद कोई नहीं है जो यथासम्भव पूर्ण या विस्तृत होता और जो इस दिव्य अवतार के अद्वितीय व्यक्तित्व को निखार पाता । निदान श्रीमत् स्वामी सारदानन्दजी महाराज ने इस महान् कार्य को स्वयं अपने हाथ में लिया । स्वामी सारदानन्दजी भगवान् श्रीराम-कृष्णदेव के अन्तरंग संन्यासी शिष्य थे और सम्पूर्ण श्रीरामकृष्ण मठ एवं मिशन के प्रारम्भ काल से लेकर अपनी चिर विदा पर्यन्त सन् १९२७ ई. तक 'मुख्य मंत्री' रहे । उन्होंने यह जीवनी 'श्रीरामकृष्णलीला-प्रसंग' बंगला भाषा में पाँच खण्डों में लिखी है । इसमें श्रीरामकृष्णदेव की जीवनी के ऐसे कितने ही अप्रकाशित अंशों का समावेश है जो अन्यथा शायद हमें न मिल पाते । अतः प्रस्तुत ग्रन्थ केवल विस्तृत ही नहीं, प्रामाणिक तथा अधिकृत भी है ।

मौलिक बंगला ग्रन्थ 'श्रीरामकृष्णलीलाप्रसंग' का स्थान धार्मिक साहित्य में बहुत ऊँचा है । ईश्वरावतार एक दैवी व्यक्ति की जीवनी, जो लाखों करोड़ों लोगों का उपास्य हो, स्वयं उन्हीं के किसी शिष्य द्वारा इस ढंग से शायद कहीं भी लिखी नहीं गई है । पाठकों को इस ग्रन्थ में एक विशेषता यह भी प्रतीत होगी कि ओजपूर्ण तथा हृदयग्राही होने के साथ ही इसकी शैली आधुनिक तथा इसका सम्पूर्ण कलेवर वैज्ञानिक रूप से संजोया हुआ है ।

प्रस्तुत पुस्तक विश्व के नवीनतम ईश्वरावतार भगवान् श्रीराम-कृष्णदेव की केवल जीवन-आख्यायिका ही नहीं वरन् संसार के विभिन्न धर्मसम्प्रदाय तथा मतमतान्तरों का एक अध्ययन भी है जो केवल

भारत में ही नहीं, संसार के अन्य देशों में भी प्रागैतिहासिक काल से लेकर आज के युग तक प्रचलित रहे हैं। फलतः भगवान् श्रीरामकृष्णदेव की यह जीवनी धर्म एवं दर्शन का एक विशाल कोष है।

हम श्री नृसिंहवल्लभ गोस्वामी, वेदान्तशास्त्री, वृन्दावन के बड़े आभारी हैं जिन्होंने मूल बंगला ग्रन्थ से प्रस्तुत खण्ड का अनुवाद मौलिक भावों एवं विशेषताओं को पूर्णतः सुरक्षित रखते हुए बड़ी सफलतापूर्वक किया है। उनके इस लगन तथा श्रद्धापूर्ण कार्य के लिए हम उन्हें हार्दिक धन्यवाद देते हैं।

हमें पूर्ण विश्वास है कि इस प्रकाशन से पाठकों का विशेष हित तथा कल्याण होगा।

स्वामी विवेकानन्द
शतवार्षिक जयन्ती,
१७ जनवरी १९६३

—प्रकाशक

चित्र-सूची

अनुक्रमणिका

पूर्ववृत्तान्त तथा बाल्यजीवन

द्वितीय अध्याय

तृतीय अध्याय

चतुर्थ अध्याय

पंचम अध्याय

षष्ठ अध्याय

सप्तम अध्याय

अष्टम अध्याय

साधकभाव

प्रथम अध्याय

द्वितीय अध्याय

तृतीय अध्याय

चतुर्थ अध्याय

पंचम अध्याय

षष्ठ अध्याय

सप्तम अध्याय

अष्टम अध्याय

नवम अध्याय

दशम अध्याय

एकादश अध्याय

द्वादश अध्याय

त्रयोदश अध्याय

चतुर्दश अध्याय

पंचदश अध्याय

षोड़श अध्याय

सप्तदश अध्याय

अष्टादश अध्याय

ऊनविंश अध्याय

विंश अध्याय

एकविंश अध्याय

परिशिष्ट

श्रीरामकृष्णलीलाप्रसंग

पूर्ववृत्तान्त तथा बाल्यजीवन

भूमिका

ईश्वरकृपा से भगवान् श्रीरामकृष्णदेव के बाल्यजीवन तथा उनके आविर्भाव के प्रयोजन का विस्तृत वर्णन प्रकाशित करने का हमें सौभाग्य प्राप्त हुआ है। विभिन्न व्यक्तियों से असम्बद्ध रूप में श्रीरामकृष्णदेव की बाल्यकालीन घटनाओं को सुनकर तदनुरूप जो चित्र हमारे मस्तिष्क पर अंकित हुए हैं, उनसे पाठकों को परिचित कराने का यहाँ प्रयास किया गया है। श्रीरामकृष्णदेव के भानजे श्री हृदयराम मुखोपाध्याय तथा भतीजे श्री रामलाल चट्टोपाध्याय प्रभृति प्रमुख महानुभावों ने इन घटनाओं के कालनिर्धारण में यद्यपि हमारी बहुत-कुछ सहायता की है, फिर भी कहीं-कहीं व्यतिक्रम होने की सम्भावना रह गई है। इसका कारण यह है कि इन सज्जनों से हमें श्रीरामकृष्णदेव के पिता तथा अग्रज आदि की जन्मपत्रिकाएँ प्राप्त नहीं हो सकीं। 'श्रीरामकृष्णदेव के जन्म के समय उनके पिताजी की आयु ६१-६२ वर्ष की थी', 'श्रीरामकृष्णदेव के अग्रज श्री रामकुमारजी उनसे ३१-३२ वर्ष बड़े थे'—इतना ही कहकर उन्होंने समय का निर्देश किया है। अस्तु।

श्रीरामकृष्णदेव के जन्मवर्ष तथा तिथि में, जो इस ग्रन्थ में लिपिबद्ध हैं, किसी प्रकार के व्यतिक्रम की सम्भावना नहीं है। यह बात प्रस्तुत ग्रन्थ के पंचम अध्याय 'महापुरुष का जन्मवृत्तान्त' से स्पष्ट हो जायेगी। श्रीरामकृष्णदेव की निजी उक्ति से ही उसका निरूपण किया गया है, तदर्थ हम सब उनके विशेष कृतज्ञ हैं। इस ग्रन्थ में वर्णित बहुत-सी घटनाओं को उनसे ही हमें सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। वास्तव में श्रीरामकृष्णदेव की जीवनलीलाओं को प्रारम्भ में लिपिबद्ध करते समय हमें यह आशा नहीं थी कि उनके बाल्य एवं यौवनकालीन घटनाओं का हम

इस प्रकार विशद तथा क्रमबद्ध दर्शन करा सकेंगे। जो मूक को वाग्मी तथा पंगु को विशाल गिरि-लंघन-शक्ति प्रदान करने में समर्थ हैं, केवल उन्हीं की कृपा से यह सम्भव हुआ है, यह हृदयंगम कर हम उन्हें बारम्बार प्रणाम करते हैं। अन्त में निवेदन है कि इस ग्रन्थ को पढ़ने के पश्चात् 'साधकभाव' एवं 'गुरुभाव' (पूर्वार्ध एवं उत्तरार्ध) नामक ग्रन्थों को पढ़ने से पाठक को श्रीरामकृष्णदेव के जन्मकाल से सन् १८८१ ई. (बंगला सन् १२८७) तक उनके जीवन-इतिहास का पूर्ण धारावाहिक परिचय प्राप्त हो सकेगा। *

विनीत
ग्रन्थकार

* बाद में स्वामी सारदानन्दजी ने 'श्रीरामकृष्णदेव का दिव्यभाव और नरेन्द्रनाथ' नामक ग्रन्थ भी लिखा, जिसमें श्रीरामकृष्णदेव के जीवन की सन् १८८६ ई. तक की घटनाओं का वर्णन है।—प्रकाशक

ग्रन्थपरिचय

ईश्वरकृपा से श्रीरामकृष्णदेव के अलौकिक साधकभाव का समालोचन पूर्ण हुआ। इसमें उनके अदृष्टपूर्व साधनानुराग तथा साधनतत्त्व का केवल दार्शनिक आलोचन ही नहीं किया गया है, अपितु सत्रह वर्ष की आयु से चालीस वर्ष की आयु तक की उनके जीवन की प्रधान प्रधान घटनाओं का समय निर्धारित कर उनका धारावाहिक वर्णन करने का प्रयास किया गया है। अतः इस साधकभाव को श्रीरामकृष्णदेव के साधक-जीवन का तथा स्वामी विवेकानन्द प्रमुख उनके शिष्यवर्ग का उनके श्रीचरणों के समीप उपस्थित होने के पूर्व तक का इतिहास कहा जा सकता है।

वर्तमान ग्रन्थ को लिखते समय श्रीरामकृष्णदेव के जीवन की समस्त घटनाओं का समय निरूपण करने में कहाँ तक सफल हो सकेंगे, इस विषय में हमें विशेष सन्देह था। यद्यपि श्रीरामकृष्णदेव ने अपने साधक-जीवन सम्बन्धी बातें हममें से अनेक व्यक्तियों के समीप स्वयं व्यक्त की थीं, फिर भी उन घटनाओं का समय निरूपण कर उन्होंने किसी से कोई क्रमबद्ध वर्णन नहीं किया था। इसलिए उनके जीवन के उक्त काल की बातें उनके भक्तों के लिए दुर्बोध्य तथा जटिल बनी हुई हैं। किन्तु अनुसन्धान के फलस्वरूप उनकी कृपा से अब हम उस समय की अनेक घटनाओं का यथार्थ समय निरूपण करने में समर्थ हुए हैं।

श्रीरामकृष्णदेव के जन्म-सन् के सम्बन्ध में अब तक सन्देह चला आ रहा था; क्योंकि उन्होंने स्वयं हमसे यह कहा था कि उनकी असली जन्मपत्री खो गई है तथा बाद में जो जन्मपत्री बनायी गई, वह भ्रमपूर्ण है। सौ वर्ष से भी अधिक काल के पंचांगों को देखकर अब हम उस विरोध की मीमांसा कर पाए हैं, एवं उसी के आधार पर उनके जीवन की घटनाओं का समय निरूपण करना हमारे लिए सहजसाध्य हुआ है। श्रीरामकृष्णदेव की षोड़शी पूजा सम्बन्धी यथार्थ घटना अब तक किसी

को विदित नहीं थी। इस ग्रन्थ को पढ़ने से पाठकों को उस घटना के बारे में भी सहज ही में ज्ञान प्राप्त हो सकेगा।

श्रीरामकृष्णदेव के शुभाशीर्वाद से इस ग्रन्थ द्वारा लोककल्याण साधित हो, यही उनके श्रीचरणों में विनम्र प्रार्थना है।

विनीत

ग्रन्थकार

श्रीरामकृष्णलीलाप्रसंग

पूर्ववृत्तान्त तथा बाल्यजीवन

अवतरणिका

भारत तथा अन्यान्य देशों में प्रचलित आध्यात्मिक भाव तथा विश्वासों की तुलनात्मक आलोचना करने पर उनमें विशेष रूप से विद्यमान भिन्नता की उपलब्धि की जा सकती है। यह देखा जाता है कि ईश्वर, आत्मा, परलोक इत्यादि इन्द्रियातीत वस्तुओं को ध्रुवसत्य मानकर उन्हें प्रत्यक्षगोचरीभूत करने के निमित्त भारत ने अति प्राचीन काल से अपना सर्वस्व नियोजित किया है एवं उक्त साक्षात्कार व उपलब्धि को ही उसने अपना व्यक्तिगत तथा जातिगत वैशिष्ट्य की चरम सीमा माना है। उसका समग्र प्रयास एक अपूर्व आध्यात्मिकता से चिररंजित है।

धर्म ही भारत का सर्वस्व है।

इन्द्रियातीत विषयों के प्रति इस प्रकार का तीव्र अनुराग उसे कहाँ से प्राप्त हुआ, जब हम इसके मूल कारण के अन्वेषण में प्रवृत्त होते हैं, तब यह पता चलता है कि दिव्य गुण तथा प्रत्यक्षानुभूतिसम्पन्न पुरुषों का निरन्तर भारत में जन्म लेना ही इसका एकमात्र कारण है। उनके अलौकिक दर्शन तथा उनकी असाधारण शक्ति का सर्वदा साक्षात्कार एवं आलोचना करने के फलस्वरूप ही उसमें उक्त विषयों के प्रति दृढ़ विश्वास तथा अनुराग का उदय हुआ। इस प्रकार अत्यन्त प्राचीन काल से आध्यात्मिकता की सुदृढ़ आधार-शिला पर अवस्थित होकर, प्रत्यक्ष धर्मलाभरूप लक्ष्य की ओर अपनी दृष्टि को निबद्ध रखते हुए भारत के राष्ट्रीय जीवन ने एक अदृष्टपूर्व अभिनव समाज का तथा सामाजिक प्रथाओं का सृजन किया था। राष्ट्र एवं समाज का प्रत्येक व्यक्ति अपने स्वभावगत गुणों को अवलम्बन कर

भारत में महापुरुषों का सर्वदा आविर्भाव ही इसका कारण है।

दैनिक कर्मों का अनुष्ठान करते हुए क्रमशः उन्नत होकर अन्त में धर्मलाभ व ईश्वर का साक्षात्कार कर सके, इसकी ओर परिपूर्ण ध्यान रखकर ही भारतीय समाज ने नियम एवं प्रथाओं को निबद्ध किया था। बहुत दिनों तक वंशपरम्परानुगत उक्त नियम प्रचलित रहने के कारण भारत में धर्म-भाव अभी तक इतना सजीव है एवं तपस्या, संयम तथा तीव्र व्याकुलता का उदय होने पर प्रत्येक व्यक्ति जगत्कारण ईश्वर का साक्षात्कार कर सकता है तथा उनके साथ नित्य-युक्त हो सकता है, इस बात पर आज भी भारत में सभी का दृढ़ विश्वास है।

ईश्वर-साक्षात्कार पर भारतीय धर्म अवलम्बित है—इस बात का प्रमाण।

भगवद्दर्शन पर ही भारतीय धर्म अवलम्बित है, यह बात सहज ही में अनुमान की जा सकती है। वैदिक युग से धर्मसंस्थापक आचार्यों को जिन पर्यायों से हमने निर्देश किया है, उन शब्दों के अर्थों पर दृष्टि डालने से यह बात स्पष्ट हो जाती है, जैसे—ऋषि, आप्त, अधिकारी या प्रकृति-लीन पुरुष इत्यादि। अतीन्द्रिय पदार्थ का साक्षात्कार कर असाधारण शक्ति का परिचय प्रदान करने के फलस्वरूप ही उन नामों से आचार्यों का निर्देश किया गया है, यह बात निःसन्दिग्ध है। वैदिक युग के ऋषियों से लेकर पौराणिक युग में अवतार नाम से प्रसिद्ध सभी पुरुषों के लिये यह बात समानरूप से कही जा सकती है।

भारत में अवतार-सम्बन्धी विश्वास उत्पन्न होने का कारण एवं क्रम। सांख्यदर्शनवर्णित 'कल्पनियामक ईश्वर'।

वैदिक युग के ऋषि ही, कालक्रम से पौराणिक युग में ईश्वरावतार-रूप से प्रख्यात हुए, यह बात स्पष्ट है। वैदिक युग के लोग यह जानकर कि कुछ पुरुष इन्द्रियातीत पदार्थ-समूहों का दर्शन करने में समर्थ हैं, किन्तु उनके पारस्परिक शक्ति के तारतम्य की उपलब्धि उन्हें न होने के कारण उनमें से प्रत्येक व्यक्ति को एकमात्र 'ऋषि'-पर्याय से निर्देश कर ही वे सन्तुष्ट हुए। क्रमशः मानवों की बुद्धि और तुलना करने की शक्ति ज्यों-ज्यों बढ़ने लगी, उनका अनुभव भी तदनुरूप होने लगा और उन्हें यह ज्ञान हुआ कि ऋषियों में सभी समान नहीं हैं; आध्यात्मिक जगत् में कोई सूर्य सदृश हैं, कोई चन्द्र जैसे, कोई

उज्ज्वल नक्षत्र की तरह और कोई सामान्य खद्योत की भाँति दीप्ति प्रदान कर प्रकाशशील हैं। जब उन्हें यह अनुभव हुआ, तब ऋषियों को श्रेणीबद्ध करने की चेष्टा उनमें जाग्रत हुई एवं उसी के आधार पर उनमें से कुछ ऋषियों को उन्होंने विशेष आध्यात्मिक शक्ति-सम्पन्न अथवा उक्त शक्ति के विशेष अधिकारी रूप से स्वीकार किया। इस प्रकार दार्शनिक युग में कुछ ऋषि 'अधिकारी-पुरुष' रूप से अभिहित हुए। ईश्वर के अस्तित्व के विषय में सन्देह पोषण करनेवाले सांख्यकार आचार्य कपिल तक को ऐसे पुरुषों के अस्तित्व के सम्बन्ध में किसी प्रकार का सन्देह उपस्थित नहीं हुआ, क्योंकि साक्षात् प्रत्यक्ष के बारे में सन्देह हो ही कैसे सकता है ? इसलिए भगवान् कपिल तथा उनके चरणानुगामी सांख्याचार्यों के ग्रन्थों में 'अधिकारी पुरुषों' को 'प्रकृति-लीन' रूप से अभिहित होते हुए देखा जाता है। ऐसे असाधारण शक्तिशाली पुरुषों की उत्पत्ति के कारणों का निर्णय करते हुए वे कहते हैं—

पवित्रता, संयमादि गुणों से विभूषित होकर पूर्ण ज्ञान को प्राप्त करने में समर्थ होते हुए भी ऐसे पुरुषों के हृदय में लोक-कल्याण की वासना तीव्र रूप से जाग्रत रहती है, इसलिए वे अनन्त महिमामण्डित स्व-स्वरूप में कुछ काल तक लीन नहीं हो पाते हैं; किन्तु उक्त वासना के फलस्वरूप सर्वशक्तिसम्पन्ना प्रकृति में लीन होकर उसकी शक्तियों को वे अपनी शक्तिरूप से प्रत्यक्ष करते रहते हैं एवं इस प्रकार षडैश्वर्यसम्पन्न हो एक कल्पपर्यन्त अशेष रूप से जनकल्याणसाधन करने के पश्चात् अन्त में वे अपने स्वरूप में अवस्थित होते हैं।

'प्रकृति-लीन' पुरुषों की शक्ति के तारतम्यानुसार सांख्याचार्यों ने उन्हें 'कल्पनियामक ईश्वर' तथा 'ईश्वर-कोटि' का नाम देकर उन्हें दो श्रेणियों में विभक्त किया है।

दार्शनिक युग के अन्त में भक्ति-भाव का विशेष रूप से आविर्भाव हुआ। वेदान्त के उदात्त उद्‌घोष के फलस्वरूप उस समय समस्त व्यक्तियों के समष्टीभूत एक महान् व्यक्तित्वशाली ईश्वर में विश्वास स्थापन कर केवल अनन्य भक्ति के द्वारा उनकी उपासना से ज्ञान एवं योगसम्बन्धी पूर्णता प्राप्त करने के विषय में भारत-भारती की श्रद्धा उत्पन्न

भक्ति-युग के महान् व्यक्तित्वशाली ईश्वर।

होने लगी थी। इसलिए सांख्यदर्शनोक्त 'कल्पनियामक ईश्वर' को उस समय नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव ऐसे एक महान् व्यक्तित्वशाली ईश्वर के आंशिक या पूर्ण प्रकाश रूप में परिणत होने में विलम्ब न लगा। इसी प्रकार पौराणिक युग में अवतार-विश्वास का उदय हुआ एवं यह अनुमान किया जाता है कि वैदिक युग के विशिष्ट गुणशाली ऋषि ही ईश्वरावतारस्वरूप में परिणत हुए। अतः यह स्पष्ट है कि असाधारण आध्यात्मिक शक्तिसम्पन्न पुरुषों के आविर्भाव को देखकर ही ईश्वरावतार के सम्बन्ध में भारत का क्रमशः विश्वास उत्पन्न हुआ एवं ऐसे महापुरुषों के अतीन्द्रिय दर्शन तथा अनुभव आदि पर अवलम्बित भारतीय धर्म का सुदृढ़ प्रासाद धीरे-धीरे वर्धित होकर तुषारमण्डित हिमाचल की भाँति गगनस्पर्शी बना। ऐसे पुरुष मानवजीवन के सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त कर कृतार्थ हुए हैं, यह मानकर भारत ने उनको 'आप्त' संज्ञा से विभूषित किया तथा उनकी वाणियों में ज्ञान की पराकाष्ठा को देखकर उक्त वाणियों को 'वेद' शब्द से अभिहित किया।

अवतार में विश्वास होने का दूसरा कारण— गुरु-उपासना।

विशिष्ट ऋषियों के ईश्वरावतार रूप में परिणत होने का अन्यतम प्रधान कारण है—भारत की गुरु-उपासना। वेदोपनिषद् युग से ही भारत-भारती अत्यन्त श्रद्धा के साथ ज्ञान-प्रदाता आचार्य गुरु की उपासना में तत्पर थे। उसी के फलस्वरूप उसमें यह बोध जाग्रत हुआ कि अतीन्द्रिय ईश्वरीय शक्ति का आविर्भाव हुए बिना कोई गुरु नहीं बन सकता। साधारण मानवजीवन की स्वार्थपरता तथा वास्तविक गुरुवर्ग का अहेतुक करुणापूर्ण और लोकहितार्थ आचरण, इन दोनों की तुलनात्मक आलोचना कर लोग सर्व-प्रथम उन्हें एक उच्च श्रेणी के मानव मानकर उनकी पूजा करने लगे। बाद में आस्तिकता, श्रद्धा एवं भक्ति का अधिकाधिक विकास होने पर जो वास्तव में गुरुपद के योग्य हैं, उनकी अलौकिक शक्तियों का साक्षात्कार कर उनके बारे में लोगों के हृदय में देवत्वभावना उत्पन्न होने लगी। उन्होंने यह अनुभव किया कि संसार-व्याधि से मुक्त होने के लिए अब तक जो उन्होंने श्रीभगवान् की करुणापूर्ण दक्षिणामूर्ति से यह कहकर कि "रुद्र यत्ते दक्षिणं मुखं तेन मां पाहि नित्यं"—उनकी सहायता की प्रार्थना की

है, गुरुवर्ग के द्वारा वही करुणा अब उनके समीप समुपस्थित हुई है, श्रीभगवान् की करुणा ही गुरुशक्ति के रूप में मूर्त होकर उनके समक्ष अभिव्यक्त हुई है।

क्रमशः गुरु-उपासना में मानव-मन जब इस प्रकार अग्रसर हुआ, तब जिन्हें आश्रय कर उक्त शक्ति की विशेष लीलाएँ प्रकट होने लगीं, उन्हें श्रीभगवान् की ज्ञानप्रदायिनी दक्षिणामूर्ति के साथ अभिन्न रूप से देखने में उसे विलम्ब न लगा। ऐसा प्रतीत होता है कि इसी तरह आचार्य-उपासना अवतारवाद के विकास एवं उसकी परिपुष्टि में सहायक हुई। अतः अवतार-वाद की स्पष्ट अभिव्यक्ति पौराणिक युग में होने पर भी उसका मूल वैदिक युग तक अभिव्याप्त है, यह विशेष रूप से बतलाने की आवश्यकता नहीं है। वेद, उपनिषद् एवं दर्शन-युग में मानव को ईश्वर के गुण, कर्म एवं स्वभाव के बारे में जो विशेष ज्ञान प्राप्त हुआ था, वही पौराणिक युग में स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त होकर अवतारसम्बन्धी विश्वास के रूप में परिणत हुआ। अथवा संयम, तपस्या आदि की सहायता से उपनिषद् युग में 'नेति नेति' मार्ग पर अग्रसर हो निर्गुण ब्रह्मोपासना में सफलता को प्राप्त करते हुए समाधि-राज्य से विलोममार्ग का आश्रय लेकर उतरने पर मानव जब समग्र जगत् को ब्रह्म के प्रकाशरूप से देखने में समर्थ हुआ, तभी सगुण विराट् ब्रह्म या ईश्वर के प्रति प्रेमभक्ति का उदय होने से उनकी उपासना में वह प्रवृत्त हुआ एवं तभी से वह उनके गुण, कर्म, स्वभावादि के बारे में दृढ़ निश्चय कर उनके विशेषरूप से अवतीर्ण होने के सम्बन्ध में विश्वासी बना।

वेद एवं समाधिलब्ध दर्शन ही अवतारवाद की आधार-शिला हैं।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि पौराणिक युग में अवतार-विश्वास का स्पष्ट रूप से विकास हुआ। उस युग के आध्यात्मिक विकास में नाना प्रकार के दोष उपलब्ध होने पर भी, केवल अवतार-महिमाप्रकाश में ही उसकी विशेषता तथा महत्ता पायी जाती है; क्योंकि अवतार-विश्वास को आश्रय कर ही लोग सगुण ब्रह्म के नित्य लीला-विलास को समझने में समर्थ

ईश्वरकरुणा की उपलब्धि से ही पौराणिक युग में अवतारवाद का प्रचार।

हुए। उसी के आधार पर उन्हें यह विदित हुआ कि जगत्कारण ईश्वर ही आध्यात्मिक जगत् में उनका एकमात्र पथप्रदर्शक है; एवं उसी के आधार पर उनको यह पता चला कि मनुष्य चाहे जब तक जितना भी दुर्नीतिपरायण क्यों न हो, श्रीभगवान् की अपार करुणा के फलस्वरूप वह कभी भी इस प्रकार चिरकाल तक विनाश की ओर अग्रसर न हो सकेगा, उनकी करुणा मूर्त होकर युग-युग में आविर्भूत हो उसके स्वभाव के अनुरूप ऐसे नवीन-नवीन आध्यात्मिक मार्गों का आविष्कार करेगी, जिससे कि वह अनायास धर्मलाभ कर सके।

अवतार-पुरुषों के दिव्य स्वभाव के संबंध में शास्त्रोक्तियों का संक्षिप्त सार।

असीम शक्तिसम्पन्न अवतार पुरुषों के दिव्य जन्मकर्मादि के बारे में स्मृति एवं पुराणों में जो कुछ लिपिबद्ध है, उसके संक्षिप्त सार का उल्लेख करना संभवतः यहाँ अप्रासंगिक न होगा। उनके वर्णनानुसार अवतार पुरुष ईश्वर की भाँति नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वभाव होते हैं। जीव की तरह वे कभी कर्म के बन्धन में आबद्ध नहीं होते; क्योंकि जन्म से ही आत्माराम होने के कारण पार्थिव भोग-सुख के लिए जीव की तरह उनमें स्वार्थमय प्रयास कभी भी उपस्थित नहीं होता। शरीर धारण कर उनकी सारी चेष्टाएँ दूसरों के कल्याण के निमित्त होती रहती हैं। साथ ही माया के अज्ञान-बन्धन में कभी भी आबद्ध न होने के कारण पूर्व-पूर्व जन्मों में उनके द्वारा जो-जो कर्म अनुष्ठित हुए हैं, उन समस्त कर्मों की स्मृति सदा उनमें बनी रहती है।

अवतार-पुरुषों को अखण्ड स्मृति-शक्ति।

प्रश्न हो सकता है कि क्या वह अखण्ड स्मृति बाल्यकाल से ही उनमें विद्यमान रहती है? इसके उत्तर में पुराणकारों का कहना है कि उनके अन्दर वह स्मृति सदा विद्यमान रहने पर भी शैशव काल में उसका विकास नहीं होता; किन्तु शरीर एवं मन-रूप यंत्रों की सर्वांग सम्पन्नता के साथ ही साथ स्वल्प प्रयास से अथवा अनायास ही उसका उदय उनमें होने लगता है; उनकी प्रत्येक चेष्टा के बारे में भी यही समझना चाहिए; क्योंकि मनुष्यशरीर धारण करने के कारण उनकी समस्त चेष्टाएँ सदा मनुष्य की भाँति ही होती रहती हैं।

इस प्रकार शरीर एवं मन की परिपूर्णता प्राप्त होते ही अवतार पुरुषों को उनके वर्तमान जीवन का उद्देश्य पूर्णरूप से विदित हो जाता है। उन्हें यह पता चल जाता है कि धर्मसंस्थापन के लिए ही उनका आगमन हुआ है। साथ ही उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए जो कुछ आवश्यक है वह भी अचिन्त्य रूप से अपने आप कहीं से उनके समीप आकर उपस्थित हो जाता है। साधारण मानवों को जो मार्ग सदा अंधकारपूर्ण प्रतीत होता है, अवतारी पुरुष उसी मार्ग में उज्ज्वल प्रकाश को देख निर्भीक हृदय से उस ओर अग्रसर होते हैं एवं अपने उद्देश्य में सफल हो मानवों को उस मार्ग में प्रवृत्त करते हैं। इस प्रकार अवतारी पुरुषों के द्वारा मायातीत ब्रह्मस्वरूप तथा जगत्कारण ईश्वर की उपलब्धि के लिए युग-युग में अदृष्टपूर्व नवीन मार्गों का पुनः पुनः आविष्कार होता रहता है।

अवतार-पुरुषों द्वारा नवीन धर्म का स्थापन।

अवतार पुरुषों के गुण, कर्म, स्वभावादि का इस प्रकार निर्णय करके ही पुराणकर्ताओं ने अपने वक्तव्य को समाप्त नहीं कर दिया है, किन्तु उनके आविर्भावकाल तक का उन्होंने स्पष्ट रूप से निरूपण किया है। उनका कथन है कि जब सनातन सार्वजनिक धर्म काल के प्रभाव से ग्लानियुक्त होता है, जब मायाजनित अज्ञान के अनिर्वचनीय प्रभाव से मुग्ध होकर मानव इहलोक एवं पार्थिव भोग-सुख की प्राप्ति को ही सब कुछ मानकर जीवन व्यतीत करता रहता है तथा आत्मा, ईश्वर, मुक्ति आदि इन्द्रियातीत नित्य पदार्थों को किसी एक भ्रमान्ध युग के स्वप्नराज्य की कविकल्पना मानकर छल, बल तथा चतुराई से सब प्रकार की पार्थिव संपत्ति तथा इन्द्रियसुख को प्राप्त कर भी अपने वास्तविक अभाव को दूर करने में समर्थ न हो अशान्ति के गाढ़ अन्धकारपूर्ण असीम प्रवाह में निपतित होकर यातनाओं से हाहाकार करता रहता है—उस समय श्रीभगवान् अपनी महिमा के द्वारा सनातन धर्म को राहुकवल से मुक्त शशांक की भाँति उज्ज्वल रूप प्रदान करते हैं तथा दुर्बल मानवों के लिए कृपापूर्वक शरीर धारण कर उनका हाथ पकड़कर उन्हें पुनः धर्ममार्ग में प्रतिष्ठित करते हैं। जैसे

अवतार-पुरुषों के आविर्भाव-काल के संबंध में शास्त्रोक्ति।

कारण के बिना कार्य की उत्पत्ति नहीं होती, उसी प्रकार सार्वजनिक अभाव को दूर करना यदि आवश्यक न होता तो ईश्वर भी कभी लीला-शरीर का अवलम्बन कर संसार में न आते। किन्तु उस प्रकार का कोई अभाव जब समाज के प्रत्येक अंग को विवश कर डालता है, तब श्रीभगवान् की असीम करुणा भी घनीभूत होकर उन्हें जगद्गुरुरूप से आविर्भूत होने के लिए प्रेरित करती है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि उक्त प्रकार के अभाव को मिटाने के लिए लीलाविग्रह के बारम्बार आविर्भाव को देखकर ही पुराणकारों ने इस सिद्धान्त को स्वीकार किया है।

अतः यह स्पष्ट है कि नवीन धर्मों के आविष्कारक, जगद्गुरु, सर्वज्ञ अवतार-पुरुष युग की आवश्यकता की पूर्ति के लिए ही आविर्भूत होते हैं। धर्म-भूमि भारत विभिन्न युगों में अनेक बार उनके पदांकों को अपने हृदय पर धारण कर पवित्र हुआ है। युग की आवश्यकता उपस्थित होने पर असीम गुणसम्पन्न अवतार-पुरुषों के शुभ आविर्भाव अभी तक भारत में दृष्टिगोचर होते हैं।

वर्तमान काल में अवतार-पुरुषों का पुनः आविर्भाव।

अभी चार सौ वर्षों से कुछ ही काल पूर्व उसी प्रकार श्रीभगवान् श्रीकृष्णचैतन्य का अदृष्टपूर्व महिमा से युक्त होकर श्रीहरिनाम-संकीर्तन में भावोन्मत्त होने की बात लोकप्रसिद्ध है। क्या पुनः वह काल उपस्थित हुआ है? विदेशियों की दृष्टि में घृणास्पद, नष्टगौरव, दरिद्र भारत के लिए युग की आवश्यकता पुनः उपस्थित होकर श्रीभगवान् की करुणा में प्रबल प्रेरणा जाग्रत कर क्या उसने वर्तमान समय में भी उन्हें शरीर धारण कराया है? अशेष-कल्याणगुणसम्पन्न जिस महापुरुष के दिव्य चरित्र के वर्णन में हम प्रवृत्त हुए हैं, उनके जीवन की विस्तृत आलोचना से यह स्पष्ट रूप से जाना जा सकेगा कि वास्तव में वही स्थिति उत्पन्न हुई है—श्रीरामचन्द्र एवं श्रीकृष्णादि रूप से पूर्व-पूर्व युगों में आविर्भूत होकर जिन्होंने सनातन धर्म को संस्थापित किया था, वर्तमान काल में भी युग की आवश्यकता को पूर्ण करने के हेतु उनके शुभागमन को प्रत्यक्ष कर भारत पुनः धन्य हुआ है।

प्रथम अध्याय

युग की आवश्यकता

विद्या, सम्पद् तथा पुरुषकार की सहायता से मानव-जीवन का विकास वर्तमान समय में पृथ्वी में सर्वत्र किस प्रकार हो रहा है, यह सभी सहज ही में भलीभाँति अनुभव कर सकते हैं। अब मानो मनुष्य किसी भी क्षेत्र में सीमाबद्ध होकर रहना नहीं चाहता। जल और स्थल पर यथेच्छ विचरण के बाद भी सुखी न होकर अभिनव यन्त्रों का आविष्कार कर मानव अब आकाश में उड़ने लगा है; तमसाच्छन्न समुद्रतल तथा ज्वालामय आग्नेय गिरि के गर्भ में उतर कर उसने अपना कुतूहल चरितार्थ किया है; चिर-तुषारावृत पर्वत तथा समुद्र को लाँघकर वह उन प्रदेशों के यथार्थ रहस्य को देखने में समर्थ हुआ है; पृथ्वी के क्षुद्र तथा महान् वृक्ष, लता एवं औषधियों में उसे अपनी तरह प्राणस्पन्दन का परिचय मिला है एवं प्राणीजगत् को प्रत्यक्ष तथा विचारदृष्टि के अन्तर्भुक्त करने के पश्चात् वह अब ज्ञानसिद्धिरूप अपने लक्ष्य की ओर बढ़ा चला जा रहा है। इस प्रकार पृथ्वी-जल-तेज आदि पंचभूतों पर आधिपत्य स्थापन करके अचेतन पृथ्वी की प्रायः सभी बातों को वह जान गया है और इससे भी सन्तुष्ट न होकर अत्यन्त दूरवर्ती ग्रह-नक्षत्रादि का पूर्ण परिचय प्राप्त करने के लिए उत्सुक हो क्रमशः उसमें भी सफलता प्राप्त कर रहा है। अन्तर्जगत् के पर्यालोचन में भी उसके उत्साह की कमी नहीं है। विशेष अनुभव तथा खोज के सहारे उस क्षेत्र में भी वह अब नित्य नवीन तत्वों का आविष्कार कर रहा है। जीवन-रहस्य के अनुशीलन में प्रवृत्त हो एक जातीय जीव का दूसरी जाति में परिणत होने का या उसके क्रम-विकास का परिचय उसे प्राप्त हुआ है; शरीर एवं मन के स्वभाव की आलोचना कर विनाशशील सूक्ष्म अचेतन

वर्तमान समय में मनुष्य कहाँ तक उन्नत तथा शक्तिशाली बना है।

जड़-जगत् की भाँति अन्तर्जगत् की प्रत्येक घटना अलंघनीय नियम में संग्रथित है, इस बात को भी उसने सम्यक् रूप से जान लिया है एवं असम्बद्ध मानसिक स्थिति के फलस्वरूप होने वाले आत्महत्यादि कार्यों में भी उसे सूक्ष्म नियम-श्रृंखला का परिचय प्राप्त हुआ है। साथ ही व्यक्तिगत जीवन के चिर अस्तित्व के सम्बन्ध में कोई निश्चयात्मक प्रमाण न मिलने पर भी इतिहास की आलोचना के द्वारा मानव को उसके जातिगत जीवन की क्रमोन्नति का प्रत्यक्ष अनुभव हुआ है। इस प्रकार जातिगत जीवन में व्यक्तिगत जीवन की सार्थकता को देखकर अब वह उसकी सफलता के लिए विज्ञान तथा सम्बद्ध चेष्टा की सहायता से अज्ञान के विरुद्ध चिर-संग्राम में नियुक्त हुआ है एवं अनन्त संग्राम में अनन्त उन्नति की कल्पना कर बाह्य तथा आन्तर राज्य के दुर्लक्ष्य प्रदेशों में पहुँचने के लिए अनन्त वासनास्रोत में उसने अपनी जीवन-नौका को प्रवाहित किया है।

पाश्चात्य मानवों में इस प्रकार जीवन का विस्तार विशेष रूप से दिखाई देने पर भी भारतप्रमुख प्राच्य देशों में भी उसका प्रभाव कम नहीं है। विज्ञान की अजेय शक्ति के कारण प्राच्य एवं पाश्चात्य प्रदेश का प्रतिदिन जितना घनिष्ट सम्पर्क होता जा रहा है, प्राच्य मानवों के प्राचीन जीवन-संस्कार उतने ही परिवर्तित होकर पाश्चात्य देशवासियों के अनुरूप बनते चले जा रहे हैं। फारस, चीन, जापान, भारतादि देशों की वर्तमान स्थिति को देखकर यह बात कही जा सकती है। भविष्य में परिणाम चाहे कुछ भी क्यों न हो, प्राच्य पर पाश्चात्य के उक्त प्रकार के भाव-विस्तार में कोई सन्देह नहीं किया जा सकता एवं ऐसा प्रतीत होता है कि आगे चलकर समग्र पृथ्वी में पाश्चात्य भाव का विस्तार अवश्यम्भावी है।

उक्त उन्नति व शक्ति के केन्द्र पाश्चात्य देश से प्राच्य में भाव-विस्तार।

पूर्वोक्त विस्तार के फल का निर्णय करने के लिए हमें प्रधान रूप से पाश्चात्य का आश्रय लेना होगा। विचारपूर्वक पाश्चात्य जीवन का विश्लेषण कर यह देखना होगा कि उक्त विस्तृति का मूल कहाँ है एवं उसका स्वभाव किस प्रकार का है; उसके प्रभाव से पाश्चात्य जीवन के पूर्वतम श्रेष्ठ अथवा निकृष्ट भावों का कहाँ तक विकास तथा विनाश

पाश्चात्य मानव-जीवन ...कर ही उक्त ...की उन्नति के

भावी परिणाम का निर्णय करना होगा।

हुआ है एवं उसके फलस्वरूप वहाँ व्यक्तिगत मानव-मन में सुख और दुःख पहले से कितने अधिक अथवा स्वल्प मात्रा में उदित हुए हैं। इस प्रकार व्यष्टि तथा समष्टि रूप से पाश्चात्य-जीवन में उसका परिणाम एक बार निर्णीत हो जाने पर अन्यत्र देशकालभेद से उस बारे में निश्चय करना कठिन न होगा।

पाश्चात्य-मानवों की उन्नति के कारण एवं इतिहास।

इतिहास से यह स्पष्ट निर्देश मिलता है कि असहनीय ठण्ड के कारण अत्यन्त प्राचीन काल से पाश्चात्य मानवों के मन में देहबुद्धि की दृढ़ता उत्पन्न होकर उसने उन्हें एक ओर जिस प्रकार स्वार्थी बनाया था, ठीक उसी प्रकार दूसरी ओर सम्मिलित चेष्टा से ही स्वार्थ-सिद्धि होती है—इस बात का सहज बोध जाग्रत होने से उनमें स्वजाति-प्रेम का आविर्भाव हुआ था। उक्त स्वार्थपरायणता तथा स्वजाति-प्रेम के कारण ही आगे चलकर उनमें अजेय उत्साह का संचार हुआ जिससे दूसरी जातियों को पराजित कर उनकी धन-सम्पत्ति से अपने जीवन को विभूषित करने की उन्हें प्रेरणा मिली। इसके फलस्वरूप जब वे अपनी जीवन-यात्रा में कुछ सफल हुए, तभी उनमें धीरे-धीरे अन्तर्दृष्टि उदित हुई और उसने क्रमशः विद्या एवं सद्‌गुणसम्पन्न होने के लिए उन्हें प्रवृत्त किया। इस प्रकार जीवन-संग्राम के अतिरिक्त उच्च विषयों के प्रति उनकी दृष्टि आकृष्ट होते ही उन्होंने यह अनुभव किया कि उस लक्ष्य की ओर अग्रसर होने के मार्ग में धर्मविश्वास तथा पुरोहितों का प्राधान्य बाधास्वरूप विद्यमान हैं। उन्होंने देखा कि पुरोहितवर्ग केवल इतना कहकर ही मौन नहीं धारण करते कि विद्यार्जन से श्रीभगवान् की अप्रसन्नता के कारण उन्हें अनन्त काल के लिए नरक में जाना पड़ेगा, अपितु छल, बल तथा चतुराई से वे उनके उस ओर अग्रसर होने में निरन्तर बाधा उत्पन्न करने के लिए कटिबद्ध रहते हैं। तब स्वार्थ-साधन में तत्पर पाश्चात्य मानवों के लिए अपना कर्तव्य निर्धारण करने में विलम्ब न लगा। पूर्ण शक्ति के साथ पुरोहितों को दूर हटाकर वे अपने गन्तव्य पथ पर अग्रसर हुए। इस प्रकार धर्मयाजकों के साथ ही साथ शास्त्र तथा धर्म-विश्वास को भी त्यागकर पाश्चात्य लोगों ने

नवीन मार्ग में अपने जीवन को परिचालित किया; एवं पंचेन्द्रियग्राह्य प्रत्यक्षरूप निश्चित प्रमाण-प्रयोग किये बिना कभी किसी विषय में विश्वास अथवा स्वीकार न करना ही उनका मूलमन्त्र बना।

इन्द्रियग्राह्य प्रत्यक्ष पर अवस्थित होकर विचार तथा अनुमान आदि के सहारे सत्यासत्य के निर्णय करने का निश्चय कर पाश्चात्य लोग 'युष्मत् प्रत्ययगोचर' विषयों के उपासक बने एवं 'अस्मत् प्रत्ययगोचर' विषयी तक को, एक अन्यतम विषय मानकर उसके स्वभावादि को भी पूर्वोक्त प्रमाण-प्रयोग के द्वारा जानने के लिए वे तत्पर हुए। विगत चार सौ वर्षों से वहाँ के लोग इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति तथा विषय को पंचेन्द्रियों की सहायता से परीक्षण कर ही स्वीकार करने लगे हैं और उक्त समय के अन्दर ही वर्तमान युग के जड़ विज्ञान का शैशवकालीन जड़ता तथा असहायता का भाव दूर होकर उसमें युवावस्था के उत्साह, आशा, आनन्द एवं शक्ति आदि का संचार हुआ है।

किन्तु जड़ विज्ञान की विशेष उन्नति होने पर भी पूर्वोक्त नीति के द्वारा पाश्चात्यों के लिए आत्मविज्ञान के सम्बन्ध में मार्गदर्शन सम्भव नहीं हो सका है। क्योंकि संयम, निःस्वार्थभाव तथा अन्तर्मुख होना ही उक्त विज्ञान को प्राप्त करने का एकमात्र मार्ग है एवं मन की समस्त वृत्तियों का निरोध ही आत्मोपलब्धि का एकमात्र यंत्र है। अतः बहिर्मुख पाश्चात्यों के लिए मार्गभ्रष्ट हो दिनोंदिन देहात्मवादी नास्तिक बनना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। इसीलिए इहलोक के भोगसुख को ही अब पाश्चात्य लोग सर्वस्व मान बैठे हैं एवं उसको प्राप्त करने के लिए ही वे विशेष रूप से यत्नशील हैं। उनका विज्ञानलब्ध पदार्थज्ञान उक्त विषय में ही मुख्य रूप से प्रयुक्त होकर उन्हें क्रमशः अभिमानी तथा स्वार्थपरायण बना रहा है। अतः पाश्चात्य देशों में धन पर आधारित जातिविभाग, प्रलयङ्कर गर्जनशील कराल तोप, बन्दूक, आदि अस्त्र-शस्त्र, अपरिमित धन-सम्पत्ति के साथ ही साथ दारिद्र्यजनित असीम असन्तोष एवं तीव्र धनाकांक्षा, दूसरे देशों पर आधिपत्य स्थापन, दूसरी जातियों पर भीषण अत्याचार आदि बातें देखने को मिलती हैं।

आत्मविज्ञान के सम्बन्ध में पाश्चात्य मानवों की अनभिज्ञता ही उसका कारण है एवं इस अनभिज्ञता से ही उनकी मानसिक अशान्ति प्रसूत हुई है।

इसलिए यह स्पष्ट है कि भोगसुख की चरम दशा में उपस्थित होकर भी पाश्चात्य नरनारियों का आत्मिक अभाव दूर नहीं हो रहा है एवं मृत्यु के पश्चात् जातिगत अस्तित्व में केवल विश्वास स्थापन कर वे किसी भी प्रकार से सुखी नहीं हो पा रहे हैं। विशेष अनुसन्धान करने के बाद अब उन्हें यह पता चला है कि पंचेन्द्रियजनित ज्ञान का अवलम्बन कर देशकालातीत वस्तु के आविष्कार में वे कभी भी सफल नहीं हो सकेंगे। विज्ञान उन्हें उस वस्तु का क्षणिक आभास मात्र देकर उसका पूर्ण बोध कराने में स्वयं असमर्थ होने के कारण विरत हो जाता है। अतः जिस देवता के बल पर पाश्चात्यों ने अपने को अब तक बलशाली समझा था, जिसकी कृपा से उसे समग्र भोग तथा सम्पद् की प्राप्ति हुई, उस देवता की पराजय से पाश्चात्य मानवों में अब आन्तरिक हाहाकार दिनोंदिन बढ़ रहा है और वे अपने को नितान्त असहाय समझ रहे हैं।

पाश्चात्य जीवन के पूर्वोक्त इतिहास के आलोचन से हम यह देख रहे हैं कि उसके विस्तार के मूल में विषयासक्ति, स्वार्थपरायणता तथा धर्मविश्वास का अभाव विद्यमान है। अतः व्यक्तिगत या जातिगत जीवन में पाश्चात्यों के अनुरूप फल प्राप्त करने के लिए दूसरों को भी स्वेच्छापूर्वक अथवा अनिच्छा से उसी आधार पर अपने जीवन को प्रतिष्ठित करना पड़ेगा। इसलिए यह देखा जाता है कि जापान जैसी प्राच्य जातियाँ जो पाश्चात्यों के अनुरूप जीवन निर्माण में तत्पर हुई हैं, उनमें स्वदेश एवं स्वजाति-प्रेम के साथ ही साथ पूर्वोक्त दोषों का भी आविर्भाव हुआ है। पाश्चात्य भावों के ग्रहण करने में यही एक महान् दोष है। पाश्चात्यों के संसर्ग से भारत के जातीय जीवन में जो दशा उत्पन्न हुई है, उसके अनुशीलन से इस बात को और भी अधिक स्पष्ट रूप से हम समझ सकेंगे।

पाश्चात्यों की तरह उन्नति लाभ करने के लिए स्वार्थपरायण तथा भोगलोलुप बनना पड़ेगा।

यहाँ पर सर्वप्रथम यह प्रश्न उपस्थित होगा कि पाश्चात्यों के सम्पर्क में आने के पहिले 'जातीय जीवन' नामक किसी शब्द का अस्तित्व भारत में विद्यमान था अथवा नहीं। इसके उत्तर में यह कहना पड़ेगा कि उक्त प्रकार का शब्द प्रचलित

भारत के प्राचीन

जातीय जीवन के आधार।

न रहने पर भी उसका जो लक्ष्य है, वह किसी न किसी रूप में भारत में विद्यमान था, इसमें कोई सन्देह नहीं है। प्राचीन काल में समग्र भारत श्रीगुरु, गंगा, गायत्री तथा गीता में श्रद्धासम्पन्न था; तब गोमाता का पूजन भी भारत में सर्वत्र होता हुआ देखा जाता था, और आबाल-वृद्ध नर-नारी रामायण एवं महाभारतादि धर्मग्रन्थों से प्राप्त एक ही भावतरंग को हृदय में धारण कर जीवन यापन करते थे और भारत के विभिन्न विभागों के पण्डित वर्ग अपने-अपने हृद्गत भावों को संस्कृत भाषा में एक दूसरे के निकट व्यक्त करने में समर्थ थे। इस प्रकार के और भी अनेक एकतासम्बन्धी विषयों का उल्लेख किया जा सकता है। एवं धर्मभाव तथा धर्मानुष्ठान ही उस एकता के श्रेष्ठ अवलम्बन थे, यह बात निर्विवाद सिद्ध है।

भारत का जातीय जीवन धर्म पर प्रतिष्ठित रहने के कारण भारतीय समाज में भोग-साधनों को लेकर कभी विवाद उपस्थित नहीं हुआ।

भारत का जातीय जीवन इस प्रकार धर्म को अवलम्बन कर प्रतिष्ठित रहने के कारण भारत की सभ्यता का निर्माण विभिन्न प्रकार के अपूर्व उपादानों से हुआ था। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि संयम ही उस सभ्यता का प्राण-स्वरूप था। भारत व्यक्ति एवं जाति दोनों को ही संयम की सहायता से अपने जीवन को नियन्त्रित करने की शिक्षा प्रदान करता था। त्याग के लिए ही भोग है तथा वर्तमान जीवन की शिक्षा का तात्पर्य है भावी जीवन का निर्माण—इस बात का सभी को निरन्तर स्मरण दिलाता हुआ व्यक्ति तथा जाति के व्यावहारिक जीवन को वह सर्वदा उच्चतम लक्ष्य की ओर परिचालित करता था। इसीलिए भारतीय वर्ण या जातिविभाग अब तक किसी श्रेणी के स्वार्थ पर चोट पहुँचाने का तथा उनके उत्कट असन्तोष का कारण नहीं बना। समाज की जिस श्रेणी व वर्ग में जिस व्यक्ति का जन्म हुआ है, उस वर्ग के लिए निर्धारित कर्तव्यों का निष्काम भाव से पालन करने से ही वह जब दूसरों के साथ बिना किसी भेदभाव के मानव जीवन के मुख्य उद्देश्य ज्ञान व मुक्ति का अधिकारी बन सकता है, तब उसके लिए असन्तोष

का कारण ही क्या रह जाता है? वर्गविशेष के भोग-सुख सम्बन्धी तारतम्य को लेकर पाश्चात्य समाज की तरह प्राचीन भारतीय समाज में जो विरोध उपस्थित नहीं हुआ, उसका भी यही कारण है कि जीवन के उच्चतम लक्ष्य में समाज के प्रत्येक व्यक्ति का समानाधिकार था। प्राचीन भारतीय जातीय जीवन के सम्बन्ध में पूर्वोक्त विषयों की ओर ध्यान रखकर, अब हमें यह देखना है कि पाश्चात्यों के संसर्ग से उसमें किस प्रकार के परिवर्तन हुए।

पाश्चात्यों का भारताधिकार एवं उसके परिणाम।

पाश्चात्यों द्वारा भारत पर अधिकार स्थापन करने के उपरान्त भारत के जातीय धन-विभाग-व्यवस्था में विशेष परिवर्तन होना स्वाभाविक तथा अवश्यम्भावी था। किन्तु भारतीय जातीय जीवन के उस विभागमात्र को परिवर्तित कर पाश्चात्य प्रभाव विरत नहीं हुआ। प्राचीन काल से जिन मूल संस्कारों को लेकर भारत-भारती द्वारा व्यक्ति एवं जातिगत जीवन परिचालित होता था, उनमें भी उस प्रभाव से एक अपूर्व भावसम्बन्धी परिवर्तन होने लगा। पाश्चात्यों ने समझाया कि यह जो त्याग के लिए भोग की बात कही जाती है, इसके पीछे पुरोहितों की स्वार्थसिद्धि है; परलोक व आत्मा का अस्तित्व मानना एक प्रकाण्ड कविकल्पना है; समाज के जिस वर्ग में मनुष्य का जन्म हुआ है, आमरण उस वर्ग में ही उसे आबद्ध रहना पड़ेगा, इससे बढ़कर युक्तिहीन अनीतिपूर्ण नियम और हो ही क्या सकता है? भारत ने भी क्रमशः इन बातों को स्वीकार किया और अपने त्याग तथा संयम-प्रधान प्राचीन लक्ष्य को त्यागकर भोग की प्राप्ति के लिए वह अधिक व्यग्र हो उठा। इस प्रकार भारत में प्राचीन शिक्षा-दीक्षाएँ लुप्त होने लगीं और नास्तिकता, अनुकरणप्रियता तथा आत्मविश्वासराहित्य आदि का उदय हुआ। इन्होंने उसे मेरुदण्डहीन प्राणी की भाँति नितान्त निर्बल बना डाला। भारत ने यह अनुभव किया कि अब तक उसने जिन विषयों को श्रद्धा के साथ स्वीकार कर यत्नपूर्वक उनका अनुष्ठान किया है, वे अत्यन्त भ्रमपूर्ण हैं—वैज्ञानिक शक्तिसम्पन्न पाश्चात्यों का यह कहना कि भारत के संस्कार त्रुटियुक्त तथा अर्ध-बर्बरतापूर्ण हैं, सम्भवतः सत्य है। भोगलालसा-मुग्ध भारत अपने पूर्व इतिहास तथा प्राचीन गौरव को भूल बैठा। स्मृतिभ्रष्ट

होने के कारण उसका बुद्धिनाश उपस्थित हुआ एवं उससे उसका जातीय अस्तित्व भी विलुप्त होने लगा। साथ ही ऐहिक भोग की प्राप्ति के निमित्त अब उसे दूसरों पर निर्भर बनना पड़ा, जिसके फलस्वरूप वह भोग भी उसके लिए दुष्प्राप्य हो बैठा। इस प्रकार योग और भोग इन दोनों मार्गों से च्युत होकर कर्णधाररहित तरणी की तरह वह दूसरों का अनुकरण करता हुआ वासनारूप वायु से परिचालित हो निरुद्देश्य भ्रमण करने लगा।

पाश्चात्य-भाव की सहायता से भारत को सजीव करने का प्रयास तथा उसका परिणाम।

तब सब ओर यह कोलाहल मचाया गया कि भारत में जातीय जीवन का अस्तित्व कभी भी नहीं था। पाश्चात्यों की कृपा से ही अब उसका उन्मेष हो रहा है, किन्तु उसके पूर्ण आविर्भाव में अब भी अनेक बाधाएँ विद्यमान हैं। भारत के दुर्निवार्य धार्मिक संस्कार से ही उसका सर्वनाश हुआ है। असंख्य देव-देवियों के पूजन—अर्थात् मूर्तिपूजा के कारण ही वह अब तक उन्नत नहीं हो सका है। अतः उन्हें त्याग दो, विनष्ट कर डालो, तभी भारत-भारती सजीव हो उठेगी। इस प्रकार ईसाई धर्म एवं उसके अनुकरण के फलस्वरूप एकेश्वरवाद का प्रचार होने लगा। पाश्चात्य का अनुकरण कर सभा-समितियाँ स्थापित होने लगीं एवं उनके द्वारा प्राणहीन भारत को राजनीति, समाजतत्व, विधवा-विवाह तथा स्त्री-स्वाधीनता की उपयोगिता के बारे में नाना प्रकार के उपदेश दिए जाने लगे—किन्तु उससे उसका अभाव तथा हाहाकार दूर न होकर दिन प्रतिदिन बढ़ने ही लगा। रेल्वे, टेलिग्राफ आदि पाश्चात्य सभ्यता की सारी वस्तुएँ धीरे-धीरे भारत में उपस्थित की गईं, किन्तु सभी प्रयास व्यर्थ सिद्ध हुए; जिस भावमय प्रेरणा से भारत सजीव था, उसकी खोज तथा पुनः प्रवर्तन की चेष्टा उनके द्वारा कुछ भी न हो सकी। दवा का प्रयोग यथास्थान न होने के कारण रोग ज्यों का त्यों बना रहा। धर्मप्राण भारत में धर्म की सजीवता के बिना वह कैसे सजीव हो सकता है? पाश्चात्य भाव के विस्तार से जो धर्मग्लानि हुई, नास्तिक पाश्चात्य में उसे दूर करने का सामर्थ्य ही कहाँ है? पाश्चात्य स्वयं असफल होकर दूसरों को कैसे सफल बना सकता है?

पाश्चात्यों द्वारा अधिकार किये जाने से पूर्व भारत के जातीय

जीवन में कुछ भी दोष नहीं था, यह नहीं कहा जा सकता। किन्तु जातीय शरीर सजीव रहने के कारण उस दोष को दूर करने की स्वतःप्रवृत्त चेष्टा उसमें सदा परिलक्षित होती थी। जाति एवं समाज के अन्दर इस समय उस चेष्टा की विलुप्ति को देखकर यह समझना चाहिए कि पाश्चात्य भाव के विस्ताररूप दवा के प्रयोग से रोग के साथ-साथ रोगी भी समाप्त होने जा रहा है।

भारत के प्राचीन जातीय जीवन के दोष-गुणों का विचार।

अतः यह स्पष्ट है कि पाश्चात्य की धर्मग्लानि भारत में भी यथेष्ट रूप से विस्तृत हुई है। वास्तव में पृथ्वी में इस समय उसका प्राबल्य देखकर आश्चर्यचकित होना पड़ता है। धर्म नामक यदि किसी वस्तु की वास्तव सत्ता हो एवं विधाता के निर्देश से उसकी प्राप्ति यदि मानवों के सामर्थ्याधीन मानी जाय तो यह बात निश्चित है कि वर्तमान युग का भोगपरायण मानवजीवन उससे च्युत होकर बहुत दूर जा पड़ा है। विज्ञान की सहायता से अपने वर्तमान जीवन-विस्तार के द्वारा विचित्र भोगसाधनों को प्राप्त करने में समर्थ होकर भी आधुनिक मानव जो शान्ति का अधिकारी नहीं हो पा रहा है, उसका भी यही कारण है। कौन इसका प्रतिकार करेगा? पृथ्वी की यह अशान्ति तथा हाहाकार किसके हृदय में निरन्तर ध्वनित हो समस्त भोगसाधनों को त्यागकर युगानुकूल नवीन धर्मपथ के आविष्कार के लिए उसे प्रवृत्त करेगा? प्राच्य एवं पाश्चात्य की धर्मग्लानि को दूर कर शान्तिपूर्ण नवीन मार्ग में जीवन को परिचालित करने की शिक्षा मानव को किससे प्राप्त होगी?

पाश्चात्य भाव के विस्तार से भारत में वर्तमान धर्मग्लानि।

गीता में श्रीभगवान् ने यह प्रतिज्ञा की है कि जगत् में धर्मग्लानि उपस्थित होते ही वे अपनी मायाशक्ति का अवलम्बन कर शरीर धारण करके प्रकट होंगे और उस ग्लानि को दूर कर पुनः मानव को शान्ति का अधिकारी बनायेंगे। वर्तमान युग की आवश्यकता क्या उनकी करुणा में उत्कट प्रेरणा का संचार न करेगी? वर्तमान अभावबोध तथा अशान्तभाव क्या उन्हें शरीर धारण करने के लिए प्रेरित न करेंगे?

उस ग्लानि के निवारण के लिए ईश्वर का पुनः अवतीर्ण होना।

युग की आवश्यकता के अनुसार वह कार्य सम्पन्न हुआ है—वास्तव में श्रीभगवान् जगद्‌गुरु के रूप में पुनः आविर्भूत हुए हैं ! धैर्य के साथ श्रवण करो उनकी इन आशीर्वादपूर्ण पवित्र उक्तियों को—"जितने मत उतने पथ" "पूर्ण आन्तरिकता के साथ जिस किसी पथ का तुम अनुष्ठान करोगे, उसीसे तुम्हें भगवत्प्राप्ति होगी !" मुग्ध होकर मनन करो—पराविद्या को पुनः स्थापित करने के लिए उनके अलौकिक त्याग एवं तपस्याओं को !—और उनके कामगंधहीन पुनीत चरित्र का यथासाध्य आलोचन तथा ध्यान कर आओ, हम सब पवित्र बनें !

द्वितीय अध्याय

कामारपुकुर तथा पितृपरिचय

यह देखा जाता है कि ईश्वरावतार रूप से जिन महापुरुषों की जगत् में आज भी पूजा हो रही है, श्रीभगवान् रामचन्द्र तथा बुद्धदेव को छोड़कर, बाकी सभी के पार्थिव जीवन का आरम्भ दुःख-दारिद्रय, सांसारिक स्वच्छन्दता के अभाव, यहाँ तक कि कठोर परिस्थिति में ही हुआ। जैसे, क्षत्रिय राजकुल को अलंकृत करने पर भी श्रीभगवान् श्रीकृष्ण का जन्म कारागार में हुआ एवं आत्मीय वर्ग से दूर गोपकुल में उनका बाल्यकाल व्यतीत हुआ; श्रीभगवान् ईसा ने सराय की पशुशाला में अपने पिता-माता की गोद को अलंकृत किया; श्रीभगवान् शंकर धनहीन विधवा के पुत्ररूप से अवतीर्ण हुए; श्रीभगवान् चैतन्य महाप्रभु ने साधारण व्यक्ति के घर में जन्म लिया; इस्लाम धर्म के प्रवर्तक श्रीमुहम्मद के जीवन में भी इस बात का परिचय मिलता है। ऐसा होने पर भी जिस दुःख-दारिद्रय के अन्दर सन्तोष की सरसता नहीं है, जिस घर में निःस्वार्थ भाव तथा प्रेम नहीं हैं, जिन दरिद्र पिता-माताओं के हृदय में त्याग, पवित्रता तथा कठोर मनुष्यत्व के साथ ही साथ कोमल दयादाक्षिण्यादि भावों का मधुर सामंजस्य नहीं है, ऐसे स्थलों में अवतार पुरुषों का कभी भी जन्म नहीं हुआ है।

दरिद्र के घर पर ईश्वर के अवतीर्ण होने का कारण।

विचारने पर पता चलता है कि पूर्वोक्त नियमों के साथ उनके भावी जीवन का एक निगूढ़ सम्बन्ध विद्यमान है। क्योंकि यौवन एवं प्रौढ़ावस्था में जिन्हें समाज के दुर्दशाग्रस्त, दरिद्र तथा अत्याचारपीड़ित जनता के आँसुओं को पोंछकर उसे शान्ति प्रदान करना है, उस जनता की वास्तविक स्थिति से पहले ही परिचित तथा उसके प्रति सहानुभूति-सम्पन्न हुए बिना, वह कार्य कैसे सम्भव हो सकता है? इतना ही नहीं, इससे पूर्व हम यह देख चुके हैं कि संसार में धर्म-ग्लानि को दूर करने के

लिए ही अवतारपुरुषों का अभ्युदय होता है। उस कार्य को सम्पन्न करने के लिए उन्हें पूर्वप्रचारित धर्म-विधानों की यथार्थ अवस्थाओं से सर्वप्रथम परिचित होना पड़ता है तथा उन प्राचीन विधानों में ग्लानि कैसे उपस्थित हुई, इसका विवेचन कर उनकी पूर्णता तथा सफलता के लिए उपयोगी नवीन विधानों का उन्हें आविष्कार करना पड़ता है। उक्त परिचय को प्राप्त करने की सुविधा दरिद्र की कुटिया को छोड़कर धनी के प्रासाद में कभी भी सम्भव नहीं है। कारण, सांसारिक सुख-भोग से वंचित निर्धन व्यक्ति ही ईश्वर तथा उनके विधानों को जीवन के प्रधान अवलम्बनरूप से सदा धारण किए रहता है। अतः सर्वत्र धर्मग्लानि उपस्थित होने पर भी पूर्व-पूर्व विधानों का यथायोग्य किंचित् आभास दरिद्र के कुटीर को उस समय भी उज्ज्वल बनाए रखता है; एवं सम्भवतः इसीलिए जगद्गुरु महापुरुष जन्म लेते समय दरिद्र परिवार के प्रति ही आकृष्ट होते हैं।

जिस महापुरुष की हम चर्चा करने बैठे हैं, उनके जीवनारम्भ में भी पूर्वोक्त नियम का व्यतिक्रम नहीं हुआ है।

हुगली जिले के वायव्य दिशा की ओर बाँकुड़ा तथा मेदिनीपुर इन दोनों जिलों का जहाँ संयोग हुआ है, उससे कुछ ही दूर त्रिभुजा के रूप में तीन गाँव परस्पर अति सन्निकट विद्यमान हैं।

श्रीरामकृष्णदेव की जन्म-भूमि कामारपुकुर।

ग्रामवासियों के निकट उक्त तीन गाँव श्रीपुर, कामारपुकुर तथा मुकुन्दपुर नाम से परिचित होने पर भी परस्पर घनिष्ठ रूप से मिले रहने के कारण पर्यटक के समीप वे एक ही गाँव के विभिन्न मोहल्ले जैसे प्रतीत होते हैं। इसलिए आसपास के ग्रामों में इन तीनों ग्रामों का एक ही नाम 'कामारपुकुर' प्रसिद्ध है। दीर्घकाल तक वहाँ स्थानीय जमींदारवर्ग का निवास रहने के कारण ही सम्भवतः कामारपुकुर को यह सौभाग्य प्राप्त हुआ था। हम जिस समय की बात कह रहे हैं उस समय कामारपुकुर श्री बर्दवान महाराजा के गुरुवंशियों की निष्कर जमींदारी के अन्तर्गत था तथा उनके वंशधर श्री गोपीलाल, सुखलाल आदि गोस्वामी वर्ग * उस ग्राम में रहते थे।

* स्व. हृदयराम मुखोपाध्याय ने हमें सुखलालजी के स्थान पर अनूप गोस्वामीजीका नाम बतलाया था; किन्तु सम्भवतः उनका कथन ठीक नहीं। है गाँव के वर्तमान जमींदार लाहा बाबुओं से हमने यह सुना है कि उक्त

कामारपुकुर से बर्दवान शहर प्रायः बत्तीस मील उत्तर में है। वहाँ से कामारपुकुर आने के लिए एक पक्की सड़क है। कामारपुकुर आकर ही वह सड़क समाप्त नहीं हो गई है; उस गाँव के आधे हिस्से की परिक्रमा कर नैऋत्य की ओर होती हुई वह पुरीधाम तक चली गई है। पैदल चलनेवाले गरीब यात्री तथा वैराग्यवान् साधु-महात्माओं में से अधिकांश श्रीजगन्नाथदर्शन के लिए उस मार्ग से आते-जाते रहते हैं।

कामारपुकुर से प्रायः ९-१० कोस पूर्व में श्रीतारकेश्वर महादेवजी का प्रसिद्ध मन्दिर है। वहाँ से श्रीदारकेश्वर नद के तटवर्ती जहानाबाद या आरामबाग के बीच में होकर कामारपुकुर आने का एक रास्ता है। इसके अतिरिक्त उक्त गाँव के प्रायः नौ कोस दक्षिण में अवस्थित घाटाल नामक स्थान से तथा तेरह कोस पश्चिम स्थित वन-विष्णुपुर से भी कामारपुकुर आने के प्रशस्त मार्ग हैं।

१८६७ ई. की मलेरिया महामारी से पूर्व कृषिप्रधान बंग भूमि के ग्रामों में जो अपूर्व शान्ति विराजमान थी, वह वर्णनातीत है। खास कर हुगली विभाग स्थित ग्रामों के विस्तीर्ण धान्य-क्षेत्रों के मध्यवर्ती छोटे-छोटे गाँव विशाल हरित् सागर में तैरते हुए द्वीपपुंज की भाँति प्रतीत होते थे। भूमि उर्वरा होने के कारण खाद्य पदार्थों का अभाव नहीं था, निर्मल वायु में नित्य परिश्रम करने के फलस्वरूप ग्रामवासियों के शरीर हृष्टपुष्ट तथा सबल थे एवं उनके हृदय प्रेम तथा सन्तोष से सर्वदा पूर्ण दिखाई देते थे।

कामारपुकुर आदि ग्रामों की पूर्व-समृद्धि तथा वर्तमान अवस्था।

जनपरिपूर्ण ग्रामों में कृषि के सिवाय छोटे-मोटे नाना प्रकार के शिल्पोद्योगों में भी लोग लगे रहते थे। साथ ही सुन्दर जलेबी, मिठाई आदि तैयार करने में कामारपुकुर की उस अंचल में चिर प्रसिद्धि थी तथा

गोस्वामीजी का नाम सुखलाल था एवं उनके पुत्र कृष्णलाल गोस्वामी से प्रायः ५५ वर्ष पूर्व उन लोगों ने कामारपुकुर की अधिकांश ज़मीन खरीदी थी। साथ ही यह किम्वदन्ती है कि गोपीलाल गोस्वामीजी ने वहाँ श्रीगोपेश्वर नामक बृहत् शिवलिंग की प्रतिष्ठा की थी। अतः उक्त गोपीलाल गोस्वामी सुखलालजी के कोई पूर्वज रहे होंगे—ऐसा हमारा अनुमान है, अथवा यह भी हो सकता है कि सुखलालजी का ही दूसरा नाम गोपीलालजी रहा हो।

'आबनूस' लकड़ी की बनी हुई हुक्के की नलियाँ तैयार करके कलकत्ते के साथ व्यापार कर वहाँ के लोग अभी तक अच्छी मात्रा में पैसा कमा रहे हैं। सूत, अंगोछा तथा वस्त्र तैयार करने में एवं अन्य नाना प्रकार के शिल्प कार्यों में भी किसी समय कामारपुकुर की ख्याति थी। विष्णु चापड़ी प्रमुख कुछ विख्यात वस्त्रव्यवसायी वहाँ रहकर कलकत्ते के साथ पर्याप्त रुपयों का व्यापार करते थे। प्रति शनिवार एवं मंगलवार के दिन गाँवों में अब भी हाट बैठती है। ताराहाट, बदनगंज, सीहर, देशरा आदि चारों ओर के गाँवों से लोग सूत, वस्त्र, अंगोछा, हंडी, कलसी, सूप, टोकरी, चटाई इत्यादि प्रतिदिन घर के काम में आनेवाली वस्तुएँ तथा खेत में होने वाले अनाज आदि हाट के दिन कामारपुकुर लाकर आपस में बेचते-खरीदते हैं। गाँव में आनन्दोत्सवों की अब भी कमी नहीं है। चैत्र के महीने में मनसापूजन तथा शिवजी का उत्सव एवं वैशाख अथवा ज्येष्ठ में चौबीस पहर तक होने वाले श्रीहरिनामसंकीर्तन से कामारपुकुर गूंज उठता है। इसके सिवाय जमींदार के घर पर बारहों महीने विभिन्न प्रकार के उत्सव-आयोजन तथा प्रतिष्ठित देवालयों में नित्य पूजनादि होते रहते हैं, यद्यपि दारिद्र्यजनित अभाव के कारण इस समय उनमें से अधिकांश आयोजन विलुप्त हो चुके हैं।

उस अंचल में श्रीधर्मठाकुर का पूजन।

श्रीधर्मठाकुर का पूजन भी किसी समय वहाँ पर अत्यन्त आडम्बर के साथ होता था, किन्तु अब वह समय नहीं रहा; बौद्ध त्रिरत्न (बुद्ध, धर्म, संघ) के अन्यतम श्रीधर्म अब कूर्ममूर्ति में परिणत हो चुके हैं, वहाँ तथा आसपास के गाँवों में अब उनका सामान्यतया पूजन ही होता है। ब्राह्मणों को भी कभी कभी उक्त मूर्ति की पूजा करते हुए देखा जाता है। विभिन्न ग्रामों में श्रीधर्मठाकुर अलग-अलग नाम से प्रसिद्ध हैं। जैसे कामारपुकुर में धर्मठाकुर का नाम 'राजाधिराज धर्म' है, श्रीपुर में प्रतिष्ठित उक्त ठाकुर का नाम 'यात्रासिद्धिराय धर्म' है तथा मुकुन्दपुर के निकट मधुबाटी नामक गाँव में प्रतिष्ठित धर्म का नाम है 'संन्यासीराय धर्म'। कामारपुकुर में प्रतिष्ठित धर्म की रथयात्रा का उत्सव किसी समय अत्यन्त समारोह के साथ होता था। नौ चूड़ाओं से युक्त उनका विशाल रथ उस समय उनके मन्दिर के समीप नित्य देखने को मिलता था। टूट

जाने के बाद पुनः उसका निर्माण नहीं हुआ। मरम्मत के बिना धर्ममन्दिर को विनष्ट होते हुए देखकर धर्मपण्डित यज्ञेश्वरजी धर्मठाकुर को अपने घर उठा ले गए हैं।

हालदारपुकुर, भूती की पोखरी, आम का बगीचा इत्यादि का विवरण।

ब्राह्मण, कायस्थ, जुलाहा, सद्गोप, लुहार, कुम्हार, धीवर, डोम इत्यादि उच्च नीच सभी जाति के लोग कामारपुकुर में रहते हैं। गाँव में तीन चार बड़े तालाब हैं, उनमें हालदारपुकुर ही सबसे बड़ा है। इसके अतिरिक्त छोटे-छोटे अनेक पोखर हैं। उनमें से किसी-किसी में लाल कमल, कुमुद तथा श्वेतकमलादि विकसित होकर अपूर्व शोभा विस्तार करते रहते हैं। गाँव में ईंट के बने हुए मकान तथा समाधिस्थानों का अभाव नहीं है। पहिले उनकी संख्या अधिक थी। रामानन्द शांखारी के भग्न देवमन्दिर, फकीरदत्त का जीर्ण रासचबूतरा, जंगल से भरे हुए ईंटों के स्तूप तथा परित्यक्त देवालय गाँव के विभिन्न स्थलों में अवशिष्ट रहकर वहाँ की पूर्वसमृद्धि का परिचय दे रहे हैं। गाँव के ईशान तथा वायव्य में 'बुधुई मोड़ल' तथा 'भूती की पोखरी' नामक दो श्मशान हैं। उक्त स्थान के पश्चिम की ओर गोचर भूमि, माणिकराजा द्वारा सर्वसाधारण के लिए स्थापित आम का बगीचा तथा आमोदर नद विद्यमान हैं। 'भूती की पोखरी' दक्षिण की ओर प्रवाहित हो आगे चलकर गाँव से कुछ ही दूर उक्त नद से जा मिली है।

'भूरसुबो' ग्राम के माणिकराजा।

कामारपुकुर से एक मील उत्तर में 'भूरसुबो' नामक ग्राम है। श्री माणिकचन्द्र वन्द्योपाध्याय नामक एक विशेष धनशाली व्यक्ति वहाँ रहते थे। चारों ओर के ग्रामों में वे 'माणिकराजा' के नाम से विख्यात थे। पूर्वोक्त आमबाग के अतिरिक्त 'सुख सायेर,' 'हाथी सायेर' इत्यादि बृहत् सरोवर अभी तक उनकी कीर्ति घोषित कर रहे हैं। ऐसा सुना जाता है कि उनके घर पर कई बार लक्ष ब्राह्मणों को आमन्त्रित कर भोजन कराया गया था।

कामारपुकुर की आग्नेय दिशा में 'मान्दारण' नामक ग्राम है। चारों ओर के गाँवों की शत्रु के आक्रमण से रक्षा करने के निमित्त पहले किसी समय वहाँ पर एक दुर्भेद्य दुर्ग प्रतिष्ठित था। उसके समीपवर्ती क्षुद्र

मान्दारण गढ़ ।

आमोदर नद की गति को अत्यन्त कुशलता के साथ परिवर्तित कर उक्त गढ़ को खाई के रूप में परिणत किया गया था ।

मान्दारण दुर्ग के भग्न द्वार, बुर्ज तथा खाई एवं उससे कुछ ही दूर पर अवस्थित श्रीशैलेश्वर महादेव का मन्दिर अभी तक विद्यमान होकर पठान राज्य में उन स्थानों की प्रसिद्धि का परिचय प्रदान कर रहे हैं ।

उचानल का तालाब तथा मुगलमारी का युद्धक्षेत्र ।

मान्दारण गढ़ की बगल में होकर ही बर्दवान यातायात की पूर्वोक्त सड़क है । उस सड़क की दोनों ओर अनेक तालाब हैं । उक्त गढ़ से प्रायः नौ कोस उत्तर में 'उचानल' नामक स्थान में जो तालाब है, वही सबसे बड़ा है । उस सड़क में एक जगह एक टूटा हुआ पीलखाना भी देखने को मिलता है । इन स्थानों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि युद्धादि की सुविधा के लिए ही इस सड़क का निर्माण हुआ था । 'मुगलमारी' के प्रसिद्ध युद्धक्षेत्र का उस मार्ग में विद्यमान होना इस बात का साक्षी है ।

कामारपुकुर से प्रायः एक कोस दूर पश्चिम की ओर 'सातबेड़े', 'नारायणपुर' तथा 'देरे' नामक तीन गाँव परस्पर अति सन्निकट विद्यमान हैं । ये गाँव किसी समय अत्यन्त उन्नत थे । 'देरे' का तालाब तथा उसके समीपवर्ती देवालय एवं अन्यान्य स्थलों को देखकर ऐसा अनुमान किया जाता है । हम जिस समय की चर्चा कर रहे हैं, उस समय ये तीनों गाँव एक अन्य जमींदारी के अन्तर्गत थे तथा उसके जमींदार रामानन्द राय 'सातबेड़' नामक ग्राम में रहते थे । ये जमींदार विशेष धनशाली न होने पर भी प्रजा पर बहुत अत्याचार करते थे । किसी कारण से किसी पर क्रोधित होते ही, उसका सर्वनाश करने में वे किंचिन्मात्र भी नहीं हिचकिचाते थे । इनकी सन्तानों में से कोई भी जीवित न रहा । लोगों का कहना है कि प्रजा पर अत्याचार करने के फलस्वरूप उनका वंश नष्ट हो गया एवं उनकी मृत्यु के बाद उनकी सारी सम्पत्ति दूसरों के हाथ में चली गई ।

देरे ग्राम के जमींदार रामानन्द राय का विवरण ।

प्रायः डेढ़ सौ वर्ष पूर्व मध्यस्थिति वाला एक धर्मनिष्ठ ब्राह्मण

परिवार 'देरे' ग्राम में रहता था। उक्त परिवार के लोग सदाचारी, कुलीन तथा श्रीरामचन्द्रजी के उपासक थे। शिवालय के साथ उनके द्वारा निर्मित सरोवर अभी तक 'चाटुज्ये पुकुर' (चट्टोपाध्याय का तालाब) के नाम से उनका परिचय प्रदान कर रहा है। उक्त वंश में श्री माणिकराम चट्टोपाध्याय के तीन पुत्र और एक कन्या हुई। उनमें से ज्येष्ठ क्षुदिराम का जन्म लगभग सन् १७७५ में हुआ। तदनन्तर कन्या रामशीला एवं निधिराम तथा कानाईराम नामक दोनों पुत्रों का जन्म हुआ।

देरेग्राम के माणिकराम चट्टोपाध्याय।

श्री क्षुदिरामजी युवावस्था में किसी अर्थकरी विद्या में पारदर्शी हुए थे या नहीं, इसका ठीक ठीक पता नहीं चलता, किन्तु सत्यनिष्ठा, सन्तोष, क्षमा तथा त्याग आदि जो गुण शास्त्रानुसार सद्ब्राह्मणों के लिए स्वभावसिद्ध होना आवश्यक माना जाता है, विधाता ने पर्याप्त रूप से वे गुण उन्हें प्रदान किये थे। वे कद में लम्बे तथा बलशाली थे, किन्तु उनका शरीर स्थूल नहीं था; गौर वर्ण तथा देखने में भी वे सुडौल थे। श्रीरामचन्द्रजी के प्रति वंशानुगत भक्ति उनमें विशेष रूप से विद्यमान थी। प्रतिदिन नित्यकर्म सन्ध्यावन्दनादि के पश्चात् स्वयं पुष्प चयन कर श्रीरघुवीर की पूजा करने के अनन्तर वे जल ग्रहण करते थे। शूद्रों से दान लेना तो दूर रहा, शूद्रयाजक ब्राह्मणों का निमन्त्रण तक उन्होंने कभी स्वीकार नहीं किया। जो ब्राह्मण धन लेकर कन्यादान करते थे, उनके हाथ का जल तक वे ग्रहण नहीं करते थे। इस प्रकार की निष्ठा तथा सदाचार को देखकर ग्राम के लोग उनके प्रति विशेष भक्ति तथा सम्मान का भाव रखते थे।

उनके पुत्र क्षुदिराम चट्टोपाध्याय का विवरण।

पिता की मृत्यु के बाद घर-द्वार तथा सम्पत्ति आदि की देखभाल का उत्तरदायित्व श्री क्षुदिरामजी के कन्धों पर आ पड़ा। धर्म में अविचलित रहकर वे उन कार्यों को यथोचित रूप से सम्पन्न करते रहे। इससे पूर्व उनका विवाह-संस्कार हो जाने पर भी उनकी धर्मपत्नी की अत्यन्त अल्प आयु में ही मृत्यु हो गई। अतः प्रायः पचीस वर्ष

क्षुदिरामजी की सहधर्मिणी श्रीमती चन्द्रादेवी।

की आयु में उन्होंने पुनः दूसरा विवाह किया। उनकी दूसरी धर्मपत्नी का नाम श्रीमती चन्द्रमणि था; किन्तु घर पर उन्हें सब कोई 'चन्द्रा' कहकर पुकारते थे। श्रीमती चन्द्रादेवी का नैहर 'सराठीमायापुर' नामक ग्राम में था। वे सुस्वरूपा, सरलहृदया तथा देव-ब्राह्मणों के प्रति भक्तिपरायणा थीं। किन्तु हृदय में असीम श्रद्धा, स्नेह और प्रेम ही उनके विशेष उल्लेखनीय गुण थे एवं तदर्थ ही वे सबकी अत्यन्त प्रिय बन चुकी थीं। सम्भवतः सन् १७९१ में श्रीमती चन्द्रमणि का जन्म हुआ था। अतः सन् १७९९ में विवाह के समय उनकी आयु ८ वर्ष की थी। सम्भवतः सन् १८०५–६ में उनके प्रथम पुत्र रामकुमार का जन्म हुआ। उसके प्रायः पाँच वर्ष बाद कात्यायनी नाम की कन्या तथा सन् १८२६–२७ में द्वितीय पुत्र रामेश्वर को प्राप्त कर वे आनन्दित हुई थीं।

धर्ममार्ग पर अवस्थित रहकर संसार-यात्रा का निर्वाह कितना कठिन है, यह अनुभव करने में श्री क्षुदिरामजी को विलम्ब न लगा। सम्भवतः उनकी कन्या कात्यायनी के जन्म के कुछ दिन बाद ही उन्हें घोर विपत्तियों का सामना करना पड़ा। ग्राम के जमींदार रामानन्द राय के प्रजा के प्रति अत्याचार की चर्चा हम पहले ही कर चुके हैं। गाँव के किसी व्यक्ति पर असन्तुष्ट होकर उन्होंने अदालत में एक झूठा मुकदमा दायर किया और उसमें विश्वासी गवाह की आवश्यकता होने के कारण श्री क्षुदिरामजी को अपनी ओर से गवाही देने के लिए उन्होंने अनुरोध किया। धर्मपरायण क्षुदिरामजी कानून अदालत आदि को सदा भय की दृष्टि से देखते थे और सत्य घटना के लिए भी इससे पूर्व उन्होंने कभी किसी के विरुद्ध कानून आदि का आश्रय नहीं लिया था। इसलिए जमींदार के अनुरोध से उन्हें बहुत धक्का लगा। झूठी गवाही न देने पर उन्हें जमींदार का विशेष कोपभाजन बनना पड़ेगा यह निश्चित रूप से जानकर भी वे उस कार्य में किसी प्रकार से सम्मत नहीं हो सके। अतः इस प्रकार के कार्यों का जो स्वाभाविक परिणाम होता है, वही हुआ; जमींदार ने उनके भी विरुद्ध झूठा आरोप लगाकर नालिश की एवं मुकदमा जीतकर उनकी सारी पैतृक सम्पत्ति नीलाम कर दी। श्री क्षुदिरामजी के रहने तक के लिए उस गाँव

जमींदार के साथ विवाद होने के कारण क्षुदिराम का सर्वस्वनाश।

में रत्ती भर जमीन न बची। गाँव के लोग उनके दुःख से अत्यन्त व्यथित हुए, किन्तु जमींदार के विरुद्ध उनकी कुछ भी सहायता न कर सके।

क्षुदिरामजी का 'देरे' ग्राम परित्याग।

इस प्रकार प्रायः चालीस वर्ष की आयु में श्री क्षुदिरामजी एक साथ सब कुछ खो बैठे। पितृपुरुषों के अधिकारी रूप से तथा अपने उपार्जन के फलस्वरूप जो सम्पत्ति* उन्होंने इतने दिनों में एकत्रित की थीं वह, वायु जिस प्रकार मेघ को छिन्न-भिन्न कर देती है, ठीक उसी प्रकार एक साथ सब कुछ विनष्ट हो गई। किन्तु यह घटना उन्हें धर्ममार्ग से विचलित न कर सकी। श्रीरघुवीर के श्रीचरणों में एकान्त रूप से शरणागत हो अविचल हृदय से अपना कर्तव्य निर्धारण कर दुर्जन व्यक्ति से दूर रहने के निमित्त उन्होंने अपनी पैतृक भूमि तथा उस गाँव को सदा के लिए त्याग दिया।

सुखलाल गोस्वामी के आमन्त्रण से क्षुदिरामजी का कामारपुकुर आगमन तथा वहाँ निवास।

कामारपुकुर के श्रीसुखलाल गोस्वामी का उल्लेख हम इससे पूर्व ही कर चुके हैं। समान स्वभावविशिष्ट होने के कारण श्री क्षुदिरामजी के साथ पहले से ही उनका विशेष सौहार्द था। मित्र की उस विपद्-वार्ता को सुनकर वे अत्यन्त विचलित हुए तथा अपने मकान के एक अंशस्थित कुछ झोपड़ियों को सदा के लिए उन्हें देने का निश्चय कर, उनको कामारपुकुर आकर रहने का उन्होंने अनुरोध किया। सम्पूर्ण असहाय श्री क्षुदिरामजी को इससे सहारा मिला। श्रीभगवान् की अचिन्त्य लीला से ही यह अनुरोध उपस्थित हुआ है—ऐसा अनुभव कर, कृतज्ञतापूर्ण हृदय से कामारपुकुर आकर वे तब से वहीं निवास करने लगे। बन्धुगतहृदय सुखलालजी इससे अति प्रसन्न हुए तथा क्षुदिरामजी के संसारयात्रा-निर्वाह के लिए उन्होंने १॥ बीघा धान का खेत भी उनको सदा के लिए प्रदान किया।

---

* हृदयराम मुखोपाध्याय से हमें विदित हुआ है कि 'देरे' गाँव में श्री क्षुदिरामजी की प्रायः डेढ़ सौ बीघे जमीन थी।

तृतीय अध्याय

कामारपुकुर में धार्मिक परिवार

दस वर्ष के पुत्र रामकुमार तथा चार वर्ष की कन्या कात्यायनी को लेकर धर्मपत्नीसहित श्री क्षुदिरामजी जिस दिन कामारपुकुर की पर्णकुटी में आकर उपस्थित हुए, उस दिन का उनका मनोभाव वर्णनातीत है। छल-कपट से भरा हुआ संसार उस दिन उन्हें अन्धतमसावृत भयंकर श्मशान-सदृश प्रतीत होने लगा; यद्यपि इस संसार में स्नेह, प्रेम, दया, न्यायपरायणता आदि सद्गुण बीच-बीच में अपना क्षीण प्रकाश विस्तार कर मानव-हृदय में सुख की आशा का संचार करते हैं, फिर भी दूसरे ही क्षण न जाने वह कहाँ विलीन हो जाता है एवं पहले का अन्धकार ही ज्यों का त्यों वहाँ बना रहता है। यह स्पष्ट है कि अपनी पूर्वावस्था के साथ वर्तमान अवस्था की तुलना कर ऐसी नाना प्रकार की बातें उस दिन उनके मन में उदित होने लगीं। क्योंकि दुःख-दुर्दशा में ही लोगों को संसार की असारता तथा अनित्यता की वास्तविक उपलब्धि होती है।

कामारपुकुर आकर क्षुदिरामजी के वानप्रस्थ की तरह जीवन-यापन करने का कारण।

अतः श्री क्षुदिरामजी के हृदय में इस प्रकार के वैराग्य का उदय होना विचित्र नहीं है। साथ ही अयाचित तथा आशातीत रूप से आश्रय लाभ करने की बात को स्मरण कर उस समय उनके धर्मप्राणहृदय में ईश्वर के प्रति भक्ति तथा निर्भरता का भाव भी पूर्ण रूप से उदित हुआ था, यह कहने की आवश्यकता नहीं है। इसलिए श्रीरघुवीर के चरणों में पूर्ण रूप से आत्मसमर्पण कर संसार की पुनः उन्नति साधन में उदासीन हो श्रीभगवान् की सेवा-पूजा में वे अपना जीवन व्यतीत करने को प्रवृत्त हुए, इसमें आश्चर्य ही क्या है? संसार में रहते हुए भी वास्तव में असंसारी बनकर प्राचीन काल के वानप्रस्थावलम्बियों की तरह वे अपने दिन बिताने लगे।
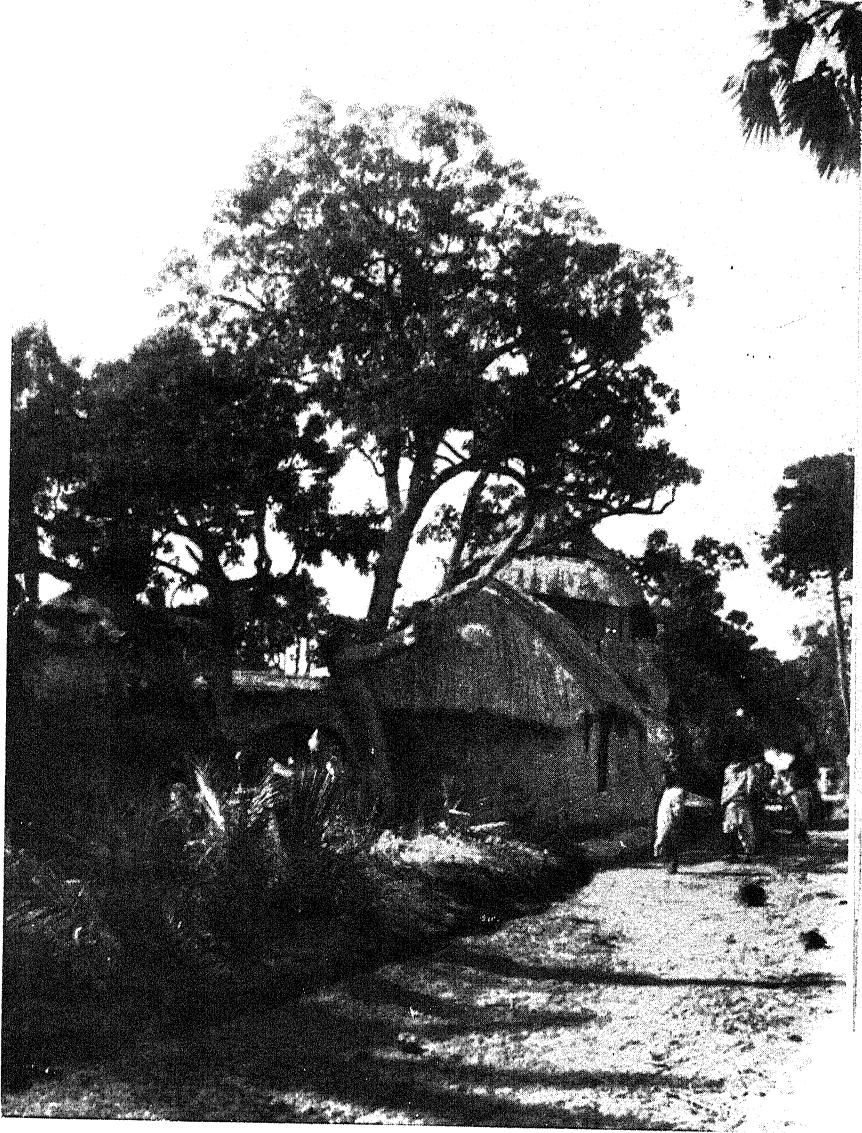
श्रीरामकृष्णदेव की पैत्रिक पर्णकुटी, कामारपुकुर

उस समय की एक घटना से श्री क्षुदिरामजी का धर्मविश्वास और भी अधिक गहरा हुआ। कार्यवश एक दिन उन्हें किसी दूसरे गाँव में जाना पड़ा। वहाँ से लौटते समय परिश्रान्त होकर वे एक वृक्ष के नीचे विश्राम करने लगे। जनशून्य विस्तीर्ण क्षेत्र को देखकर उनके चिन्तातुर चित्त को शान्ति मिली, साथ ही मन्दगति से प्रवाहित निर्मल वायु से उनका शरीर स्निग्ध हुआ। उनको वहाँ पर शयन करने की प्रबल इच्छा हुई और लेटते ही वे निद्रित हो गए। कुछ ही क्षण बाद स्वप्न में वे देखने लगे कि उनके अभीष्टदेव नवदुर्वादलश्यामल भगवान् श्रीरामचन्द्रजी मानो दिव्य बालक के वेश में उनके सम्मुख उपस्थित होकर किसी स्थानविशेष का निर्देश करते हुए कह रहे हैं, "मैं बहुत दिनों से यहाँ पर बिना भोजन किए वैसे ही पड़ा हुआ हूँ, तुम मुझे अपने घर ले चलो, तुम्हारी सेवा ग्रहण करने की मेरी बड़ी इच्छा है।" यह सुनकर क्षुदिरामजी अत्यन्त विह्वल हो उठे और उन्हें बारंबार प्रणाम करते हुए कहने लगे, "प्रभो, मैं भक्तिहीन तथा नितान्त दरिद्र हूँ, मेरे घर पर आपकी योग्य सेवा कभी भी सम्भव नहीं है, प्रत्युत् सेवापराधी बनकर मुझे नरक जाना पड़ेगा, अतः ऐसी आज्ञा क्यों कर रहे हैं?" यह सुनकर बालक वेष धारण किए हुए श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्नता के साथ उन्हें अभय देते हुए बोले, "डरने की कोई बात नहीं है, मैं कभी भी तुम्हारी त्रुटियों को नहीं देखूँगा, निर्भय होकर तुम मुझे ले चलो।" श्रीभगवान् की इस प्रकार अयाचित करुणा को देखकर क्षुदिरामजी आत्मविस्मृत हो गए और उनके नेत्रों से आनन्दाश्रु बहने लगे। तत्काल ही उनकी निद्रा भंग हो गई।

अद्भुत रूप से क्षुदिरामजी को श्रीरघुवीर-शिला की प्राप्ति।

श्री क्षुदिरामजी जगकर सोचने लगे कि यह क्या अद्भुत स्वप्न है? हाय, क्या कभी उन्हें वास्तव में इस प्रकार का सौभाग्य प्राप्त होगा? जब वे इस प्रकार विचारमग्न थे, उस समय सहसा उनकी दृष्टि समीपवर्ती एक धान के खेत पर पड़ी और वे उसी क्षण समझ गए कि स्वप्न में इसी स्थान को उन्होंने देखा था। उत्सुकता के साथ वे खड़े हो गए और उस ओर चल पड़े; वहाँ पहुँचते ही उन्होंने देखा कि एक सुन्दर शालग्राम शिला पर एक भुजंग अपना फन फैलाये हुए है! उस समय उनके

मन में शिला को लेने की प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई। अतः शीघ्रता के साथ उसके समीप पहुँचकर उन्होंने देखा कि साँप वहाँ से अदृश्य हो चुका है और उस बिल के ऊपर शालग्राम रखा हुआ है। अपना देखा हुआ स्वप्न असत्य नहीं है—यह सोचकर श्री क्षुदिरामजी के हृदय में असीम उत्साह का संचार हुआ तथा वे देवता का आदेश प्राप्त कर चुके हैं, इस विश्वास से प्रेरित हो सर्पदंश से न डरकर जोर से 'जय रघुवीर' कहते हुए उन्होंने उस शिला को उठा लिया। अनन्तर शास्त्रज्ञ क्षुदिरामजी शिला के लक्षणों को देखकर समझ गए कि वास्तव में वह 'रघुवीर' नामक शिला ही है। तब आनन्द और विस्मय से अधीर होकर वे घर लौटे एवं यथाशास्त्र उसकी प्राण-प्रतिष्ठा कर गृहदेवता के रूप से उक्त शिला की नित्य पूजा करने लगे। श्रीरघुवीर को इस प्रकार अद्भुत रूप से प्राप्त करने से पूर्व श्री क्षुदिरामजी अपने अभीष्टदेव श्रीरामचन्द्रजी की पूजा के अतिरिक्त घट स्थापन कर श्रीशीतला देवी की भी प्रतिदिन पूजा किया करते थे।

सांसारिक कष्टों में भी क्षुदिरामजी की दृढ़ता तथा ईश्वर-निर्भरता।

क्रमशः उनके दुर्दिन समाप्त होने लगे, श्री क्षुदिरामजी भी सब प्रकार के दुःख-कष्टों में उदासीन रहकर केवल धर्म को ही दृढ़तापूर्वक अवलम्बन कर आनन्द से दिन बिताने लगे। जब कभी घर में अन्नाभाव होता था तथा उनकी पतिपरायणा धर्मपत्नी चन्द्रादेवी व्याकुल होकर अपने पतिदेव से उसके बारे में निवेदन करती थीं, तब उनकी बातों को सुनकर किंचिन्मात्र भी विचलित हुए बिना श्री क्षुदिरामजी उनको उत्साहित करते हुए कहते थे, "इसमें घबराने की क्या बात है, यदि श्रीरघुवीर को ही आज उपवास करना है तो हम लोग भी उनके साथ उपवास करेंगे।" सरलहृदया चन्द्रादेवी यह सुनकर अपने पतिदेव की तरह श्रीरघुवीर के ऊपर पूर्ण निर्भर हो घर के काम-काज करने लग जातीं—भोजन की व्यवस्था भी उस दिन किसी न किसी प्रकार से हो जाती थी।

इस प्रकार अत्यन्त अन्नाभाव के कारण श्री क्षुदिरामजी को दीर्घकाल तक कष्ट नहीं उठाना पड़ा। उनके मित्र श्री सुखलाल गोस्वामी ने 'लक्ष्मीजला' नामक स्थान में डेढ़ बीघा जमीन, जिसमें धान की

लक्ष्मीजला का धान्यक्षेत्र ।

खेती होती थी, उन्हें प्रदान की थी । श्रीरघुवीर की कृपा से उसमें तब इतना धान होने लगा कि उससे उनके छोटे-से संसार का साल भर तक का पूर्ण निर्वाह होने के बाद भी कुछ न कुछ बच जाता था, जिससे अतिथि अभ्यागतों की सेवा भी चल जाती थी । मज़दूरी देकर किसानों से श्री क्षुदिरामजी उसमें खेती कराते थे, खेत जुत जाने के बाद बोने का समय उपस्थित होने पर श्रीरघुवीर का नामोच्चारण कर वे दो-चार गुच्छे धान के पौधे स्वयं अपने हाथों से बोते थे, तदनन्तर किसानों द्वारा बाकी कार्य सम्पन्न कराते थे ।

इस प्रकार क्रमशः दो-तीन वर्ष बीत गए; श्रीरघुवीर पर निर्भर रहकर प्रायः आकाशवृत्ति का अवलम्बन करते हुए भी श्री क्षुदिरामजी के संसार में किसी प्रकार अन्नवस्त्र का अभाव नहीं हुआ । किन्तु उक्त दो-तीन वर्षों के कठोर शिक्षा-प्रभाव से उनके हृदय में जो शान्ति, सन्तोष तथा ईश्वरनिर्भरता के भाव निरन्तर प्रवाहित होने लगे, बहुत कम लोगों को उसे प्राप्त करने का सौभाग्य मिलता है । सदा अन्तर्मुख रहना उनका स्वभाव बन गया तथा उसके प्रभाव से उनके जीवन में समय समय पर नाना प्रकार के दिव्य दर्शन होने लगे ।

क्षुदिरामजी की ईश्वर-भक्ति में तीव्रता तथा दिव्य दर्शनलाभ । पड़ोसियों की उनके प्रति श्रद्धा ।

प्रतिदिन प्रातः तथा सायंकाल सन्ध्या करते समय जब वे श्रीगायत्री देवी का ध्यान करते करते तन्मय हो जाते थे, तब उनका वक्षस्थल आरक्त हो जाता था एवं उनके मुद्रित नयनों से अविरल प्रेमाश्रुधारा बहने लग जाती थी । प्रातःकाल जब वे फूल की डलिया लेकर पुष्प चयन करने जाते थे, तब उन्हें ऐसा प्रतीत होता था कि उनकी आराध्या श्रीशीतला देवी मानो आठ वर्ष की कन्या का रूप धारण कर उनके साथ हँसती हुई जा रही हैं और पुष्पित वृक्षों की शाखाओं को नीचे की ओर झुकाकर उन्हें फूल तोड़ने में सहायता कर रही हैं । उन दिव्य दर्शनों से उस समय उनका हृदय सर्वदा उल्लसित रहता था एवं उनके हृदय का दृढ़विश्वास तथा भक्तिभाव मुखमण्डल पर प्रकाशित होकर उन्हें एक अपूर्व दिव्य-आवेश में निरन्तर निमज्जित कर रखता था । उनका सौम्य तथा शान्त

तीस तथा पचीस वर्ष की रही होगी। वे सभी विवाह कर संसारी बन चुके थे। कामारपुकुर के प्रायः छः कोस पश्चिम में अवस्थित 'छिलिमपुर' नामक ग्राम में स्वर्गीय भागवत वन्द्योपाध्याय के साथ श्रीमती रामशीला का विवाह हुआ था और रामचांद नामक एक पुत्र तथा हेमांगिनी नामक एक कन्या उनके हुई थी। उक्त विपत्ति के समय रामचांद की आयु प्रायः इक्कीस वर्ष की तथा हेमांगिनी की सोलह वर्ष की थी। रामचांदजी उस समय मिदनापुर में मुख्तारी करने लगे थे। श्रीमती हेमांगिनी का जन्म 'देरे' गाँव में अपने ननिहाल में हुआ था एवं भाई की अपेक्षा उन्हें मामाओं का अधिक स्नेह प्राप्त हुआ था। श्री क्षुदिरामजी ने कन्या की तरह उनका पालन-पोषण कर विवाहयोग्य समय उपस्थित होने पर उन्हें कामारपुकुर से प्रायः ढाई कोस वायव्य दिशा में स्थित 'सीहड़' ग्राम के श्रीकृष्णचन्द्र मुखोपाध्याय को स्वयं सम्प्रदान किया था। यौवन में पदार्पण करने के बाद वे राघव, रामरतन, हृदयराम तथा राजाराम नामक चार पुत्रों की जननी बनी थीं।

क्षुदिरामजी के दोनों भाइयों का विवरण।

श्री क्षुदिरामजी के निधिराम नामक भाई की कोई सन्तान हुई थी अथवा नहीं, यह हमें विदित नहीं हो सका है; किन्तु सबसे छोटे कानाई-राम के रामतारक उर्फ हलधारी तथा कालिदास नामक दो पुत्र हुए थे। कानाईराम भक्तिमान् तथा भावुक थे। किसी समय वे कहीं रामलीला देखने गये थे। श्रीरामचन्द्रजी के वनगमन का अभिनय हो रहा था। उसे देखते-देखते वे इतने तन्मय हो उठे कि श्रीरामचन्द्रजी को वन में भेजने की कैकेयी द्वारा दी गई मंत्रणा तथा चेष्टादि को सत्य मानकर अभिनेता को मारने के लिए वे प्रस्तुत हो गए! अस्तु, पैतृक सम्पत्ति के नष्ट हो जाने के बाद 'देरे' ग्राम को त्याग कर जिन ग्रामों में उनकी ससुराल थी सम्भवतः वे वहीं जा बसे थे।

क्षुदिरामजी के भानजे रामचांदजी।

श्रीमती रामशीला के पुत्र श्रीरामचांद वन्द्योपाध्याय का मिदनापुर में मुख्तारी करने का उल्लेख हम इससे पूर्व कर चुके हैं। उक्त पेशे के द्वारा मिदनापुर में रहकर वे दो-चार पैसे कमाने लगे। उस समय अपने मामाओं की दुरवस्था की बात सुनकर वे श्री क्षुदिरामजी को मासिक पन्द्रह रुपये एवं निधिराम तथा कानाईराम को प्रतिमास दस-दस रुपये भेजकर उनकी

सहायता करने लगे। श्री क्षुदिरामजी को अपने भानजे का समाचार कुछ दिन तक न मिलने पर वे अत्यन्त चिन्तित हो मिदनापुर पहुँच जाते थे तथा दो-चार दिन वहाँ रहकर कामारपुकुर लौट आते थे। एक बार इस प्रकार मिदनापुर जाते समय उनसे सम्बन्धित एक विशेष घटना का विवरण हमें ज्ञात हुआ है। वह घटना श्री क्षुदिरामजी के हार्दिक देवभक्ति की परिचायक होने के कारण यहाँ पर हम उसका उल्लेख करना चाहते हैं।

कामारपुकुर से प्रायः चालीस मील नैऋत्य दिशा की ओर मिदनापुर अवस्थित है। रामचांदजी तथा उनके परिवारवर्ग का कुशल समाचार बहुत दिनों तक प्राप्त न होने के कारण चिन्तित होकर वहाँ जाने के लिए श्री क्षुदिरामजी घर से रवाना हुए। यह माघ या फाल्गुन महीने की बात है। उस समय बिल्वपत्र झड़ने लगते हैं और जब तक नयी पत्तियाँ नहीं निकलती हैं, तब तक लोगों को श्रीशिवजी का पूजन करने में विशेष कष्ट उठाना पड़ता है। श्री क्षुदिरामजी को कुछ दिन से उस कष्ट का विशेष रूप से अनुभव हो रहा था।

क्षुदिरामजी की देवभक्ति को परिचायक विशेष घटना।

सूर्योदय से पहिले ही रवाना होकर प्रायः दस बजे तक अविश्रान्त रूप से चलने के पश्चात् वे एक गाँव के समीप पहुँचे और वहाँ के बिल्ववृक्षों को नवीन पत्तियों से सुशोभित देखकर उनका हृदय उल्लसित हो उठा। तब वे मिदनापुर जा रहे हैं, इस बात को सम्पूर्णतया भूल गये और उस गाँव से एक नवीन डलिया तथा अंगोछा खरीदकर उन्होंने समीप के तालाब में उन्हें अच्छी तरह धो डाला, तदनन्तर नवीन बेल-पत्तियों से उस डलिया को भर लेने के बाद उस पर भीगा अंगोछा डालकर वे अपराह्न के करीब तीन बजे कामारपुकुर आकर उपस्थित हुए। घर पहुँचते ही श्री क्षुदिरामजी ने स्नान किया तथा उन पत्तियों से आनन्दपूर्वक श्रीमहादेवजी तथा श्रीशीतला माँ का बहुत देर तक पूजन किया, तत्पश्चात् वे भोजन करने बैठे। श्रीमती चन्द्रादेवी को उस समय अवसर मिलने पर उन्होंने उनसे मिदनापुर न जाने का कारण पूछा और आद्योपान्त घटना सुनकर जब उन्हें यह विदित हुआ कि नवीन बिल्वपत्रों से देवार्चन करने की इच्छा से ही वे इतनी दूर से लौट आए तो वे आश्चर्यचकित

हो गईं। दूसरे दिन सुबह श्री क्षुदिरामजी पुनः मिदनापुर के लिए रवाना हुए।

इस प्रकार कामारपुकुर में श्री क्षुदिरामजी के छः वर्ष बीत गए। उनके पुत्र रामकुमारजी की आयु उस समय सोलह वर्ष की तथा कन्या कात्यायनी की ग्यारह वर्ष की थी। कन्या विवाह योग्य हो गई है यह देखकर श्री क्षुदिरामजी वर खोजने लगे। कामारपुकुर के वायव्य दिशा की ओर एक कोस की दूरी पर अवस्थित 'आनुर' ग्राम के श्री केनाराम वन्द्योपाध्याय को कन्या सम्प्रदान कर केनारामजी की बहिन के साथ अपने पुत्र रामकुमार का उन्होंने विवाह किया। निकटवर्ती ग्राम की संस्कृत पाठशाला में व्याकरण तथा साहित्य का पाठ समाप्त कर उस समय रामकुमारजी स्मृतिशास्त्र का अध्ययन कर रहे थे।

रामकुमारजी और कात्यायनी का विवाह।

क्रमशः चार वर्ष और बीत गए। श्रीरघुवीर की कृपा से श्री क्षुदि-रामजी का संसार उस समय पहले की अपेक्षा अधिक सुचारु रूप से चल रहा था तथा वे भी निश्चिन्त हृदय से श्रीभगवान् की आराधना में निरत हुए थे। उक्त चार वर्षों की घटनाओं में से एक तो यह है कि रामकुमारजी स्मृतिशास्त्र का अध्ययन समाप्त कर घर की आर्थिक उन्नति के लिए यथासाध्य सहायता करने में प्रवृत्त हुए और दूसरी घटना यह कि श्री क्षुदिरामजी के परम मित्र सुखलाल गोस्वामी का उसी बीच किसी समय देहान्त हो गया। यह कहना ही पर्याप्त है कि हितैषी मित्र सुखलालजी की मृत्यु से श्री क्षुदिरामजी अत्यन्त व्यथित हुए।

सुखलाल गोस्वामी की मृत्यु इत्यादि।

योग्य बनकर रामकुमार ने घर का भार अपने ऊपर ले लिया है यह देखकर श्री क्षुदिरामजी को, उस समय निश्चिन्त हो, दूसरी ओर ध्यान देने का अवसर मिला। तीर्थदर्शन के लिए उस समय उनका हृदय व्याकुल हो उठा। सम्भवतः सन् १८२४ में श्रीसेतुबन्ध रामेश्वर के दर्शन के लिए वे पैदल रवाना हुए तथा दक्षिण के अन्यान्य तीर्थों का पर्यटन कर एक वर्ष बाद वे घर लौटे। उस समय श्रीसेतुबन्ध से एक बाणलिंग

क्षुदिरामजी का श्रीसेतु-बन्ध तीर्थ-दर्शन तथा रामेश्वर नामक पुत्र का जन्म।

कामारपुकुर लाकर वे उसका नित्य पूजन करने लगे। अभी तक कामारपुकुर में श्रीरघुवीर शिला तथा श्रीशीतलादेवी के घट के समीप श्रीरामेश्वर नामक उक्त बाणलिंग विद्यमान है। अस्तु, श्रीमती चन्द्रादेवी बहुत दिनों के बाद उस समय पुनः गर्भवती हुईं तथा सन् १८२६ में उनकी कोख से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। श्रीरामेश्वर से लौटने के बाद इस पुत्र का जन्म होने के कारण श्री क्षुदिरामजी ने उसका नाम रामेश्वर रखा।

उस घटना के अनन्तर प्रायः आठ वर्ष तक कामारपुकुर के इस दरिद्र परिवार का जीवन-प्रवाह प्रायः पूर्ववत् चलता रहा। श्री रामकुमारजी स्मृतिशास्त्रानुसार व्यवस्था तथा शान्ति-स्वस्त्ययन आदि क्रियाकर्मों द्वारा धनार्जन करने लगे। इसलिए उस घर में पहले जैसा कष्ट नहीं रहा। शान्ति-स्वस्त्ययन आदि क्रियाओं में रामकुमारजी विशेष पटुता प्राप्त कर चुके थे। ऐसा सुना जाता है कि उक्त विषय में उन्होंने दैवीशक्ति प्राप्त की थी। शास्त्र अध्ययन करने के फलस्वरूप इससे पूर्व ही आद्याशक्ति की उपासना के प्रति उनके मन में विशेष श्रद्धा उत्पन्न हुई थी एवं उपयुक्त गुरु के समीप वे देवीमन्त्र की दीक्षा भी ले चुके थे। अभीष्ट देवी का नित्य पूजन करने के समय एक दिन उन्हें एक अपूर्व दर्शन मिला और ऐसा अनुभव होने लगा कि मानो देवी अपनी अंगुलियों द्वारा उनकी जीभ पर ज्योतिषशास्त्र में सिद्धिलाभ करने के निमित्त कोई मंत्र लिख रही हैं। तब से रोगियों को देखते ही उसका रोग ठीक होगा या नहीं, यह वे समझ जाते थे और उस क्षमता के प्रभाव से उस समय जिस रोगी के सम्बन्ध में जो कुछ वे कहते थे, वही ठीक होता था। इस प्रकार उस अंचल में भविष्यद्वक्ता के रूप में उनकी साधारणतया प्रसिद्धि हुई। ऐसा सुना जाता है कि किसी कठिन रोगी की रोगमुक्ति के लिए स्वस्त्ययन-कर्म में प्रवृत्त हो अत्यन्त दृढ़तापूर्वक जब वे यह कहते थे कि यह जो स्वस्त्ययन-वेदी पर शस्य फैलाया जा रहा है, उसमें अंकुर उद्गम होते ही रोगी ठीक हो जावेगा तब वास्तव में उनका कहना सत्य प्रमाणित होता था। उनकी इस क्षमता के उदाहरणस्वरूप उनके भतीजे श्री शिवराम चट्टोपाध्याय ने हमसे निम्नलिखित घटना का उल्लेख किया है—

रामकुमारजी की दैवी शक्ति।

एक बार कार्यवश रामकुमारजी कलकत्ते जाकर गंगाजी में स्नान

कर रहे थे। कोई धनी व्यक्ति उस समय सपरिवार गंगास्नान करने आए एवं उक्त व्यक्ति की धर्मपत्नी के नहाने के लिए पालकी गंगाजल में उतारी गई, उसमें बैठकर ही वह युवती स्नान करने लगी। ग्रामवासी रामकुमारजी ने पहले कभी इस प्रकार स्त्रियों की मर्यादारक्षा का दृश्य नहीं देखा था। अतः विस्मित होकर उस ओर वे देखने लगे, उनकी दृष्टि क्षणमात्र के लिए पालकी में अवस्थित उस युवती पर जा पड़ी। पूर्वोक्त दैवीशक्ति के प्रभाव से उसकी मृत्यु की बात उन्हें विदित होते ही आक्षेप के साथ वे कह उठे, "हाय, आज जिसे इतने समारोह के साथ नहलाया जा रहा है, कल उसे सबके सम्मुख गंगाजी में प्रवाहित करना पड़ेगा!" उस धनी व्यक्ति ने इस बात को सुना और उनका यह कहना कहाँ तक सत्य है इसकी परीक्षा करने के लिए श्री रामकुमारजी को अत्यन्त आग्रहपूर्वक बुलाकर वे अपने साथ घर ले गए। घटना असत्य साबित होने पर रामकुमारजी को विशेष रूप से अपमानित करने का ही उनका इरादा था। युवती पूर्ण स्वस्थ होने के कारण उस प्रकार की घटना की कोई सम्भावना उस समय वास्तव में दिखाई नहीं दे रही थी। किन्तु रामकुमारजी ने जो कहा था, अन्त में वही हुआ और अत्यन्त सम्मान के साथ उन्हें दक्षिणादि देने को वे बाध्य हुए।

उस शक्ति की परिचायक विशेष घटना।

अपनी धर्मपत्नी के भाग्य को देखकर भी किसी समय रामकुमारजी ने एक अशुभ भविष्यवाणी की थी, कुछ काल बाद वह घटना भी यथार्थ प्रमाणित हुई। हमने सुना है कि उनकी सहधर्मिणी सुलक्षणा थीं। सम्भवतः सन् १८२० में रामकुमारजी पाणिग्रहण कर जिस दिन अपनी सप्तम वर्षीया धर्मपत्नी को कामारपुकुर लाए, उस दिन से उनकी भाग्योन्नति होने लगी। उनके पिताजी के दारिद्र्यपूर्ण संसार में तभी से परिवर्तन होना प्रारम्भ हुआ, क्योंकि उसी समय से ही श्री क्षुदिरामजी के मिदनापुरनिवासी भानजे श्री रामचांदजी वन्द्योपाध्याय उन्हें मासिक सहायता देने लगे। जब किसी स्त्री अथवा पुरुष का किसी घर में प्रथम आगमन

उक्त शक्ति की परिचायक रामकुमारजी की धर्मपत्नी सम्बन्धी घटना।

कामारपुकुर लाकर वे उसका नित्य पूजन करने लगे। अभी तक कामारपुकुर में श्रीरघुवीर शिला तथा श्रीशीतलादेवी के घट के समीप श्रीरामेश्वर नामक उक्त बाणलिंग विद्यमान है। अस्तु, श्रीमती चन्द्रादेवी बहुत दिनों के बाद उस समय पुनः गर्भवती हुईं तथा सन् १८२६ में उनकी कोख से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। श्रीरामेश्वर से लौटने के बाद इस पुत्र का जन्म होने के कारण श्री क्षुदिरामजी ने उसका नाम रामेश्वर रखा।

उस घटना के अनन्तर प्रायः आठ वर्ष तक कामारपुकुर के इस दरिद्र परिवार का जीवन-प्रवाह प्रायः पूर्ववत् चलता रहा। श्री रामकुमारजी स्मृतिशास्त्रानुसार व्यवस्था तथा शान्ति-स्वस्त्ययन आदि क्रियाकर्मों द्वारा धनार्जन करने लगे। इसलिए उस घर में पहले जैसा कष्ट नहीं रहा। शान्ति-स्वस्त्ययन आदि क्रियाओं में रामकुमारजी विशेष पटुता प्राप्त कर चुके थे। ऐसा सुना जाता है कि उक्त विषय में उन्होंने दैवीशक्ति प्राप्त की थी। शास्त्र अध्ययन करने के फलस्वरूप इससे पूर्व ही आद्याशक्ति की उपासना के प्रति उनके मन में विशेष श्रद्धा उत्पन्न हुई थी एवं उपयुक्त गुरु के समीप वे देवीमन्त्र की दीक्षा भी ले चुके थे। अभीष्ट देवी का नित्य पूजन करने के समय एक दिन उन्हें एक अपूर्व दर्शन मिला और ऐसा अनुभव होने लगा कि मानो देवी अपनी अंगुलियों द्वारा उनकी जीभ पर ज्योतिषशास्त्र में सिद्धिलाभ करने के निमित्त कोई मंत्र लिख रही हैं। तब से रोगियों को देखते ही उसका रोग ठीक होगा या नहीं, यह वे समझ जाते थे और उस क्षमता के प्रभाव से उस समय जिस रोगी के सम्बन्ध में जो कुछ वे कहते थे, वही ठीक होता था। इस प्रकार उस अंचल में भविष्यद्वक्ता के रूप में उनकी साधारणतया प्रसिद्धि हुई। ऐसा सुना जाता है कि किसी कठिन रोगी की रोगमुक्ति के लिए स्वस्त्ययन-कर्म में प्रवृत्त हो अत्यन्त दृढ़तापूर्वक जब वे यह कहते थे कि यह जो स्वस्त्ययन-वेदी पर शस्य फैलाया जा रहा है, उसमें अंकुर उद्गम होते ही रोगी ठीक हो जावेगा तब वास्तव में उनका कहना सत्य प्रमाणित होता था। उनकी इस क्षमता के उदाहरणस्वरूप उनके भतीजे श्री शिवराम चट्टोपाध्याय ने हमसे निम्नलिखित घटना का उल्लेख किया है—

रामकुमारजी की दैवी शक्ति।

एक बार कार्यवश रामकुमारजी कलकत्ते जाकर गंगाजी में स्नान

कर रहे थे। कोई धनी व्यक्ति उस समय सपरिवार गंगास्नान करने आए एवं उक्त व्यक्ति की धर्मपत्नी के नहाने के लिए पालकी गंगाजल में उतारी गई, उसमें बैठकर ही वह युवती स्नान करने लगी। ग्रामवासी रामकुमारजी ने पहले कभी इस प्रकार स्त्रियों की मर्यादारक्षा का दृश्य नहीं देखा था। अतः विस्मित होकर उस ओर वे देखने लगे, उनकी दृष्टि क्षणमात्र के लिए पालकी में अवस्थित उस युवती पर जा पड़ी। पूर्वोक्त दैवीशक्ति के प्रभाव से उसकी मृत्यु की बात उन्हें विदित होते ही आक्षेप के साथ वे कह उठे, "हाय, आज जिसे इतने समारोह के साथ नहलाया जा रहा है, कल उसे सबके सम्मुख गंगाजी में प्रवाहित करना पड़ेगा!" उस धनी व्यक्ति ने इस बात को सुना और उनका यह कहना कहाँ तक सत्य है इसकी परीक्षा करने के लिए श्री रामकुमारजी को अत्यन्त आग्रहपूर्वक बुलाकर वे अपने साथ घर ले गए। घटना असत्य साबित होने पर रामकुमारजी को विशेष रूप से अपमानित करने का ही उनका इरादा था। युवती पूर्ण स्वस्थ होने के कारण उस प्रकार की घटना की कोई सम्भावना उस समय वास्तव में दिखाई नहीं दे रही थी। किन्तु रामकुमारजी ने जो कहा था, अन्त में वही हुआ और अत्यन्त सम्मान के साथ उन्हें दक्षिणादि देने को वे बाध्य हुए।

उस शक्ति की परिचायक विशेष घटना।

अपनी धर्मपत्नी के भाग्य को देखकर भी किसी समय रामकुमारजी ने एक अशुभ भविष्यवाणी की थी, कुछ काल बाद वह घटना भी यथार्थ प्रमाणित हुई। हमने सुना है कि उनकी सहधर्मिणी सुलक्षणा थीं। सम्भवतः सन् १८२० में रामकुमारजी पाणिग्रहण कर जिस दिन अपनी सप्तम वर्षीया धर्मपत्नी को कामारपुकुर लाए, उस दिन से उनकी भाग्योन्नति होने लगी। उनके पिताजी के दारिद्र्यपूर्ण संसार में तभी से परिवर्तन होना प्रारम्भ हुआ, क्योंकि उसी समय से ही श्री क्षुदिरामजी के मिदनापुरनिवासी भानजे श्री रामचांदजी वन्द्योपाध्याय उन्हें मासिक सहायता देने लगे। जब किसी स्त्री अथवा पुरुष का किसी घर में प्रथम आगमन

उक्त शक्ति की परिचायक रामकुमारजी की धर्मपत्नी सम्बन्धी घटना।

होता है, उस समय वहाँ शुभ फल दिखाई देने पर हिन्दू परिवार के सभी लोग उन्हें विशेष श्रद्धा तथा प्यार की दृष्टि से देखने लगते हैं, इस बात को सभी जानते हैं। खासकर रामकुमारजी की बालिका पत्नी उस दरिद्र-संसार की एकमात्र पुत्रवधू थीं, इसलिए उस बालिका का सभी की विशेष स्नेह-पात्री बनना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। हमने सुना है कि इस प्रकार अत्यधिक स्नेह के फलस्वरूप उनमें विभिन्न सद्गुणों के साथ ही साथ अहंकार तथा आज्ञापालन न करने की भावना भी जाग्रत हुई थी। किन्तु इन दोषों को देखकर भी कोई कुछ कहने या उनके संशोधन के लिए प्रयास करने का साहस नहीं करते थे। इसका कारण यह था कि सब कोई यह सोचते थे कि उनमें इन सामान्य दोषों के रहते हुए भी उनके आने के कारण ही घर की उन्नति हुई है। अस्तु, कुछ दिन बाद रामकुमारजी ने अपनी युवती पत्नी को देखकर कहा था, "यह यद्यपि सुलक्षणा है, किन्तु गर्भसंचार होते ही इसकी मृत्यु अनिवार्य है!" इसके बाद दीर्घ काल तक जब उनकी पत्नी गर्भवती न हुई, तब उनको वन्ध्या मानकर वे निश्चिन्त रहे। किन्तु पैंतीस वर्ष की आयु में उनकी पत्नी का प्रथम तथा अन्तिम बार के लिए गर्भसंचार हुआ तथा सन् १८४९ में छत्तीस वर्ष की अवस्था में एक अत्यन्त रूपवान् पुत्र प्रसव करने के पश्चात् उनकी मृत्यु हुई। उस पुत्र का नाम अक्षय रखा गया। यद्यपि यह बहुत बाद की घटना है, फिर भी सुविधा के लिए यहीं इसका उल्लेख किया गया है।

क्षुदिरामजी के परिवार-स्थित सभी लोगों की विशेषता।

श्री क्षुदिरामजी के धार्मिक परिवार में स्त्री-पुरुष सभी के अन्दर एक विशेषता विद्यमान थी। पर्यालोचना करने पर पता चलता है कि आध्यात्मिक सूक्ष्म शक्तियों पर अधिकार होने के फलस्वरूप उनमें से प्रत्येक में उक्त विशेषता का उद्भव हुआ था। श्री क्षुदिरामजी तथा उनकी धर्मपत्नी में उस प्रकार की विशेषता असाधारण रूप से प्रकटित होने के कारण ही सम्भवतः उनकी सन्तान-सन्ततियों में भी उसका संचार हुआ था। श्री क्षुदिरामजी से सम्बन्धित उक्त विषयक बहुत-सी बातें हम इससे पहले ही कह चुके हैं। अब यहाँ पर श्रीमती चन्द्रमणि के सम्बन्ध में उस प्रकार की एक

घटना का उल्लेख करना सम्भवतः अनुचित न होगा। उससे यह स्पष्ट होगा कि अपने पतिदेव की तरह श्रीमती चन्द्रादेवी में भी समय-समय पर दिव्य-दर्शन शक्ति का विकास होता था। यह घटना रामकुमारजी के विवाह से कुछ काल पूर्व की है। उस समय रामकुमारजी की आयु पन्द्रह वर्ष की थी और वे संस्कृत पाठशाला में अध्ययन करने के साथ ही साथ पुरोहिती-वृत्ति के द्वारा घर के लिए यथासाध्य सहायता भी करते थे।

चन्द्रादेवी के दिव्यदर्शन सम्बन्धी घटना।

आश्विन के महीने में शरत् पूर्णिमा के दिन, जिस दिन बंगाल में 'कोजागरी' लक्ष्मीपूजन होता है, रामकुमारजी 'भूरसुबो' नामक ग्राम में यजमान के घर लक्ष्मीपूजन करने गए थे। आधी रात बीत जाने पर भी पुत्र को घर लौटते हुए न देखकर श्रीमती चन्द्रादेवी अत्यन्त चिन्तित हो उठीं और घर से बाहर निकलकर उनकी राह देखने लगीं। कुछ समय इस प्रकार बीत जाने पर उनको ऐसा दिखाई दिया कि मैदान को पार कर 'भूरसुबो' की ओर से कोई कामारपुकुर आ रहा है। अपना पुत्र आ रहा होगा यह समझकर अत्यन्त उत्साह के साथ दो-चार पग आगे बढ़कर वे प्रतीक्षा करने लगीं। किन्तु आगन्तुक व्यक्ति के निकट आने पर उन्होंने देखा कि वह रामकुमार नहीं, अपितु एक परम सुन्दरी रमणी विविध आभूषणों से भूषित होकर अकेली चली आ रही है। पुत्र की अमंगल-आशंका से श्रीमती चन्द्रादेवी अत्यधिक व्याकुल हो उठी थीं, इसलिए एक अच्छे घर की युवती रमणी को गहरी रात में इस प्रकार अकेली आती हुई देखकर भी वे विस्मित न हुईं। उनके समीप जाकर सरल भाव से उन्होंने पूछा, "माँ, तुम कहाँ से आ रही हो?" रमणी ने जवाब दिया, "भूरसुबो से।" श्रीमती चन्द्रादेवी ने तब अत्यन्त व्यग्रता के साथ पूछा, "मेरे पुत्र रामकुमार के साथ क्या तुम्हारी भेंट हुई? क्या वह लौट रहा है?" एक अपरिचित रमणी के लिए उनके पुत्र को पहचानना कैसे सम्भव हो सकता है, यह बात उनके मन में एक बार भी उदित न हुई। सान्त्वना देती हुई वह रमणी बोली, "हाँ, तुम्हारा पुत्र जहाँ पूजन करने गया है, मैं उसी घर से आ रही हूँ। चिन्ता की कोई बात नहीं है, तुम्हारा पुत्र भी आने ही वाला है।" श्रीमती चन्द्रादेवी तब कुछ शान्त हुईं तथा दूसरी ओर ध्यान देने का

उन्हें अवसर मिला। उक्त रमणी के असामान्य रूप, बहुमूल्य वस्त्र तथा नवीन-नवीन आभूषणों को देखकर और उनके मधुर वचनों को सुनकर वे बोलीं, "माँ, तुम्हारी उम्र भी अधिक नहीं है, इतने गहने पहनकर इस गहरी रात में तुम कहाँ जा रही हो? तुम्हारे कान में यह क्या गहना है?" रमणी ने मुसकराहट के साथ जवाब दिया, "इसका नाम कुण्डल है, मुझे अभी बहुत दूर जाना है।" श्रीमती चन्द्रादेवी उन्हें संकट में देखकर स्नेहपूर्वक बोलीं, "माँ, आज रात में हमारे घर चलकर विश्राम करो, फिर कल तुम्हें जहाँ जाना है, वहाँ चली जाना।" रमणी ने कहा, "माँ, मैं विवश हूँ, मुझे अभी जाना है; फिर कभी मैं तुम्हारे घर आऊँगी।" यह कहकर रमणी ने उनसे विदा ली और श्रीमती चन्द्रादेवी के घर के समीप, जहाँ लाहा बाबुओं के धान रखने के लिए अनेक गोलाकार घर थे, उधर चली गईं। मार्ग को छोड़ उन्हें उस ओर जाती हुई देखकर चन्द्रादेवी विस्मित हुईं। रास्ता भूलकर सम्भवतः वे उधर गई हैं यह समझकर वहाँ उपस्थित हो वे उन्हें चारों ओर अच्छी तरह से ढूँढ़ने लगीं, किन्तु उनका कुछ भी पता नहीं चला। तब उक्त रमणी की बातों को स्मरण कर उनके मन में सहसा यह भाव उदित हुआ कि उन्हें साक्षात् श्रीलक्ष्मीदेवी का दर्शन तो नहीं हुआ? तत्काल ही घबराती हुईं अपने पतिदेव के समीप पहुँचकर उन्होंने सारा वृत्तान्त उनसे कहा। श्री क्षुदिरामजी सब कुछ सुनने के पश्चात् उनको साहस प्रदान करते हुए बोले, "श्रीलक्ष्मीदेवी ने ही कृपापूर्वक तुम्हें दर्शन दिया है।" रामकुमारजी भी कुछ देर बाद घर आकर जननी से उस वृत्तान्त को सुनकर अत्यन्त विस्मित हुए।

क्रमशः सन् १८३५ आकर उपस्थित हुआ। श्री क्षुदिरामजी के जीवन में उस समय एक विशेष घटना घटी थी। तीर्थदर्शन की अभिलाषा पुनः उनमें प्रबल रूप से जाग्रत हुई, पितरों के उद्धारार्थ उन्होंने श्रीगयाजी जाने का संकल्प किया। साठ वर्ष की आयु होने पर भी वहाँ की यात्रा पैदल करने में उन्हें किसी प्रकार का भय या संकोच नहीं हुआ। उनकी भानजी श्रीमती हेमांगिनी देवी के पुत्र श्री हृदयराम मुखोपाध्याय ने उनके गयाधाम जाने के कारण के सम्बन्ध में एक अद्भुत घटना का हमसे उल्लेख किया है।

क्षुदिरामजी का श्रीगया तीर्थगमन।

अपनी पुत्री श्रीमती कात्यायनीदेवी की अत्यन्त अस्वस्थता का समाचार पाकर श्री क्षुदिरामजी उस समय एक दिन 'आनुर' ग्राम में उन्हें देखने गए। श्रीमती कात्यायनी की आयु उस समय प्राय: पचीस वर्ष की थी। बीमार कन्या की चेष्टा तथा बातों से उन्हें यह निश्चय हो गया कि उनमें किसी भूत-प्रेत का आवेश हुआ है। तब एकाग्र चित्त से श्रीभगवान् का स्मरण करते हुए कन्या के शरीर में आविष्ट जीव को लक्ष्य कर वे कहने लगे 'तुम चाहे देवता हो अथवा और कोई, मेरी कन्या को इस प्रकार कष्ट क्यों दे रहे हो? तुरन्त ही इसे छोड़कर अन्यत्र चले जाओ।' उनकी उस बात को सुनकर अत्यन्त भयभीत हो उस जीव ने श्रीमती कात्यायनी के शरीर को अवलम्बन कर उत्तर दिया, 'गयाधाम में पिण्ड देकर यदि आप मुझे इस कष्ट से मुक्त करने का वचन दें, तो मैं अभी आपकी कन्या को छोड़ने के लिए प्रस्तुत हूँ। आप जिस समय उक्त कार्य के लिए घर से चलेंगे, तत्काल ही यह सम्पूर्ण नीरोग हो जावेगी, यह मैं आपको वचन देता हूँ।' श्री क्षुदिरामजी उस जीव के दुःख से दुःखित होकर बोले, 'शीघ्रातिशीघ्र ही मैं गयाधाम जाकर तुम्हारी अभिलाषा को पूर्ण करूँगा; किन्तु पिण्डदान के बाद ऐसा कोई निदर्शन मैं देखना चाहता हूँ कि जिससे मुझे यह विदित हो सके कि इस योनि से वास्तव में तुम्हारा उद्धार हो चुका है।' तब उस प्रेत ने कहा, 'इस बात के निश्चित प्रमाणस्वरूप मैं इस नीम की सबसे बड़ी शाखा को तोड़कर चला जाऊँगा।' हृदयरामजी कहते थे कि उक्त घटना ने ही श्री क्षुदिरामजी को गयाधाम जाने के लिए प्रोत्साहित किया था एवं उसके कुछ काल बाद उक्त वृक्ष की सबसे बड़ी शाखा के टूटने से उस प्रेत के उद्धार की बात सभी को निश्चित रूप से विदित हुई थी। श्रीमती कात्यायनीदेवी भी तभी से सम्पूर्ण रोगमुक्त हो गईं। हृदयरामजी-कथित पूर्वोक्त घटना कहाँ तक सत्य है, यह हम नहीं जानते, किन्तु श्री क्षुदिरामजी उस समय गयाधाम गए थे, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

क्षुदिरामजी के गयाधाम जाने के सम्बन्ध में हृदयरामजी कथित अद्भुत घटना।

सन् १८३५ के शीत ऋतु में किसी समय श्री क्षुदिरामजी

वाराणसी * तथा गया धाम के दर्शन करने के लिए गए थे। वाराणसी में श्रीविश्वनाथजी के दर्शन करने के बाद जब वे गयाधाम पहुँचे, उस समय चैत्र का महीना प्रारम्भ हो चुका था। उस महीने में वहाँ पिण्ड-दान करने से पितरों की अत्यन्त तृप्ति होती है,

गयाधाम में क्षुदिरामजी को देव-स्वप्न।

यह जानकर ही सम्भवतः उस महीने में वे गयाधाम गए थे। प्रायः एक महीने तक वहाँ रहकर तीर्थ के समस्त कार्यों को सम्पन्न करने के पश्चात् उन्होंने श्रीगदाधरदेव के श्रीपादपद्मों में पिण्डदान किया। इस प्रकार शास्त्रानुसार पितृकृत्य को सम्पन्न करने से श्री क्षुदिरामजी के विश्वासपूर्ण हृदय में जो तृप्ति तथा शान्ति उदित हुई, वह वर्णनातीत है। पितृऋण का यथासाध्य परिशोध करने का अवसर पाकर वे अब निश्चिन्त हो गये और अपने जैसे अयोग्य व्यक्ति को भगवत्कृपा से ही उक्त कार्यों को सम्पादन करने की शक्ति प्राप्त हुई है, ऐसा मानकर उनका कृतज्ञतापूर्ण हृदय अभूतपूर्ण दीनता तथा प्रेम से परिपूर्ण हो उठा। दिन का तो कहना ही क्या है, रात में सोते समय भी वह सन्तोष तथा उल्लास उनमें बना रहा। निद्रित होते ही उन्होंने स्वप्न में देखा कि मन्दिर में श्रीगदाधर के श्रीपादपद्मों के सम्मुख पितरों के लिए पुनः वे पिण्डदान कर रहे हैं तथा उनके पितृवर्ग दिव्य ज्योतिर्मय शरीर से पिण्डों को आनन्द-पूर्वक ग्रहण कर उन्हें आशीर्वाद दे रहे हैं। दीर्घकाल पश्चात् उनका दर्शन पाकर वे अत्यन्त विह्वल हो उठे एवं भक्तिभाव से गद्गद् रोते हुए उनके चरण स्पर्श कर उन्हें प्रणाम करने लगे! उसके बाद पुनः उन्होंने देखा कि एक अदृष्टपूर्व दिव्य ज्योति से मन्दिर पूर्ण हो गया है तथा पितृवर्ग सम्भ्रम के साथ दोनों ओर हाथ जोड़कर संयत रूप से खड़े हो मन्दिर के अन्दर अति सुन्दर सिंहासन पर सुखपूर्वक विराजमान एक अद्भुत दिव्य

* कुछ लोगों का कहना है कि श्री क्षुदिरामजी बहुत पहले ही किसी समय 'देरे' गाँव से तीर्थयात्रा करते हुए श्रीवृन्दावन, अयोध्या तथा वाराणसी के दर्शन कर आए थे एवं उसके कुछ समय बाद उनके पुत्र तथा कन्या का जन्म होने पर तीर्थयात्रा की बात को स्मरण कर उन्होंने उनका नाम रामकुमार तथा कात्यायनी रखा था। अन्तिम बार वे केवल गयाधाम दर्शन के लिए गए और वहीं से घर लौट आए।

पुरुष की उपासना कर रहे हैं! फिर उन्होंने देखा कि नवदुर्वादल के सदृश श्यामवर्ण, ज्योतिर्मय तनु वह पुरुष स्निग्ध तथा प्रसन्न दृष्टि से उनकी ओर देखकर अपने समीप आने के लिए हँसते हुए उन्हें संकेत कर रहे हैं! उस समय यंत्र की तरह परिचालित होकर वे उनके समीप उपस्थित हुए और भक्तिविह्वल हृदय से उन्हें दण्डवत् प्रणाम कर आवेग के साथ विविध रूप से उनकी स्तुति तथा वन्दना करने लगे। तदनन्तर उन्होंने देखा कि वह दिव्य पुरुष उनकी स्तुतियों से संतुष्ट होकर वीणा जैसे मधुर स्वर से उनको कहने लगे, 'क्षुदिराम, तुम्हारी भक्ति से मैं परम प्रसन्न हूँ, पुत्ररूप से तुम्हारे घर पर अवतीर्ण होकर मैं तुम्हारी सेवा ग्रहण करूँगा!' स्वप्न में जिनकी कल्पना नहीं की जा सकती, ऐसे इन शब्दों को सुनकर उनका हृदय आनन्द से अधीर हो उठा, किन्तु चिर दरिद्र वे उन्हें कहाँ रखेंगे, क्या भोजन करने देंगे, इत्यादि बातें सोचकर तत्काल ही अत्यन्त विषाद-ग्रस्त हो रोते हुए श्री क्षुदिरामजी उनसे कहने लगे, 'नहीं, नहीं प्रभो, मैं इस सौभाग्य के योग्य नहीं हूँ; आपने कृपापूर्वक मुझे दर्शन देकर कृतार्थ किया तथा उक्त अभिप्राय को व्यक्त किया है, यही मेरे लिए यथेष्ट है; वास्तव में मेरे पुत्र होकर जन्म लेने पर मुझ दरिद्र से आपकी क्या कभी सेवा हो सकती है?' उनके इस प्रकार के करुण वचनों को सुनकर वे अमानव पुरुष अत्यधिक प्रसन्न हुए तथा बोले, 'क्षुदिराम, डरने की कोई बात नहीं है, तुम जो कुछ प्रदान करोगे, सन्तोष के साथ मैं उसे ही ग्रहण करूँगा; मेरी इच्छा को पूर्ण करने में तुम बाधक न बनो।' उनकी इस बात को सुनकर श्री क्षुदिरामजी और कुछ न कह सके; आनन्द, दुःख आदि परस्परविपरीत भावों का उनके हृदय में एक साथ उदय होने के कारण वे स्तम्भित तथा चेतनारहित हो गए। उसी समय उनकी नींद खुल गई।

जागने के पश्चात् बहुत देर तक श्री क्षुदिरामजी यह अनुभव न कर सके कि वे कहाँ हैं। पूर्वोक्त स्वप्न की सत्यता ने मानो उनके हृदय को अभिभूत कर दिया। पूर्वोक्त स्वप्न की यथार्थता से वे विकलित रहे। बाद में धीरे-धीरे जब उन्हें स्थूल जगत् का ज्ञान हुआ तब शय्या से उठकर वे उस अद्भुत स्वप्न को स्मरण करते हुए नाना

क्षुदिरामजी का कामारपुकुर प्रत्यावर्तन।

प्रकार की बातें सोचने लगे। अन्त में उनके विश्वासपूर्ण हृदय में यह दृढ़ निश्चय हुआ कि देवसम्बन्धी स्वप्न कभी व्यर्थ नहीं होता, अतः निश्चय ही शीघ्र उनके घर में किसी महापुरुष का जन्म होगा, वृद्धावस्था में उन्हें पुनः पुत्रमुख दर्शन करना पड़ेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं। तदनन्तर उक्त स्वप्न के साफल्य की परीक्षा किए बिना किसी से उसका उल्लेख न करने का उन्होंने निश्चय किया एवं दो-चार दिन के बाद गयाधाम से रवाना होकर सन् १८३५ के वैशाख में वे कामारपुकुर पहुँचे।

चतुर्थ अध्याय

चन्द्रादेवी के विचित्र अनुभव

जगत्पावन महापुरुषों के आविर्भाव के समय मातापिताओं के जीवन में होने वाले असाधारण आध्यात्मिक अनुभव तथा दिव्य दर्शनों की बातें पृथ्वी की समस्त जातियों के धर्मग्रन्थों में लिपिबद्ध हैं। भगवान् श्रीरामचन्द्र तथा श्रीकृष्ण, मायादेवी के पुत्र भगवान् बुद्ध, मेरीनन्दन ईसा, श्रीभगवान् शंकर, महाप्रभु चैतन्यदेव आदि जिन महामहिम पुरुषप्रवरों को जनमानसों का भक्ति-श्रद्धापूर्ण परमपुनीत पूजार्घ्य आज तक निरन्तर प्राप्त हो रहा है उनमें से प्रत्येक के जनक-जननियों के सम्बन्ध में उक्त प्रकार की घटनाएँ शास्त्रों में देखने को मिलती हैं। इसके प्रमाणस्वरूप निम्नलिखित विवरणों का संस्मरण ही यहाँ पर पर्याप्त होगा—

अवतार पुरुषों के आविर्भाव के समय उनके मातापिताओं के दिव्य अनुभवादि के सम्बन्ध में शास्त्र वर्णित विवरण।

यज्ञ के बाद बचा हुआ पात्रावशेष या चरु सेवन कर भगवान् श्रीरामचन्द्रप्रमुख चारों भाईयों की जननियों के गर्भधारण की बात ही रामायण-प्रसिद्ध हो, इतना ही नहीं—अपितु उनके जन्म लेने से पूर्व तथा बाद में भी अनेक बार उक्त चारों भाईयों के सम्बन्ध में उनकी माताओं को यह विदित हुआ था कि उनके पुत्र जगत्पालक श्री भगवान् विष्णु के अंशसम्भूत तथा दिव्यशक्तिसम्पन्न हैं, इसका भी उल्लेख रामायण में विद्यमान है।

श्रीभगवान् श्रीकृष्ण के जनक-जननी को उनके गर्भप्रवेशकाल में तथा जन्म लेने के बाद तत्काल ही यह अनुभव हुआ था कि वे षडैश्वर्यसम्पन्न मूर्तिमान ईश्वर हैं; केवल इतना ही नहीं किन्तु उनके जन्म के अनन्तर प्रतिदिन उनके जीवन में होनेवाली नाना प्रकार की अद्भुत उपलब्धियों की बातें भी श्रीमद्भागवत आदि पुराणों में लिपिबद्ध हैं।

श्रीभगवान् बुद्धदेव की जननी श्रीमती मायादेवी ने गर्भसंचार के

समय यह देखा था कि कोई पुरुषप्रवर ज्योतिर्मय श्वेत हस्ती का आकार धारण कर उनके उदर में प्रविष्ट हो रहे हैं तथा उनके सौभाग्य को देखकर इन्द्रादि देववृन्द उनकी स्तुति कर रहे हैं।

श्रीभगवान् ईसा के जन्मग्रहण के समय उनकी माता श्रीमती मेरी को ऐसा अनुभव हुआ था कि अपने पतिदेव श्री जोसेफ के साथ बिना किसी सम्पर्क के ही उनका गर्भसंचार हुआ—अननुभूत दिव्य आवेश में आविष्ट तथा तन्मय होकर ही उनमें गर्भलक्षण का प्रकाश हुआ है।

श्रीभगवान् शंकर की जननी ने यह अनुभव किया था कि देवादिदेव श्रीमहादेव के दिव्य दर्शन तथा वरदान से ही वे गर्भवती हुई हैं।

श्रीभगवान् श्रीकृष्ण चैतन्यदेव की जननी श्रीमती शचीदेवी के जीवन में भी पूर्वोक्त नाना प्रकार के दिव्य अनुभवों के उपस्थित होने की बातें श्रीचैतन्यचरितामृत आदि ग्रन्थों में लिपिबद्ध हैं।

हिन्दू, बौद्ध, ईसाई आदि सभी धर्मों से मानवों को यह निर्देश प्राप्त हुआ है कि प्रेम के साथ ईश्वर की उपासना ही मुक्ति लाभ करने का सुगम मार्ग है; वे सभी इस प्रकार उक्त विषय में एकमत होने के कारण उसके अन्दर वास्तव में कोई सत्य प्रच्छन्न रूप से विद्यमान है अथवा नहीं, यह प्रश्न पक्षपातरहित विचारकों के मन में स्वतः ही उदित होता है; साथ ही महापुरुषों के जीवन-इतिहास में वर्णित इन सब आख्यायिकाओं के कितने अंश ग्रहणीय तथा कितने त्याज्य हैं—यह प्रश्न भी उनके समक्ष उपस्थित होता है।

उक्त शास्त्रीय कथन में युक्ति का निर्देश।

दूसरी ओर युक्ति की सहायता से विचारने पर ऐसा प्रतीत होता है है कि उक्त कथन में कुछ अंश सत्य भी हो सकते हैं, क्योंकि वर्तमान युग में विज्ञान भी जब इस बात को स्वीकार करता है कि उन्नत स्वभाव के माता-पिताओं में उदार तथा सच्चरित्र पुत्रों को जन्म देने का सामर्थ्य विद्यमान है, तब यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि श्रीकृष्ण, बुद्ध तथा ईसा जैसे महापुरुषों के माता-पिता भी विशेष सद्गुणसम्पन्न थे। साथ ही यह भी स्वीकार करना पड़ता है कि उन महान् पुरुषों को जन्म देते समय उनके मन साधारण मानवों की अपेक्षा बहुत उच्च स्तर पर अवस्थित थे और इसीलिए वे उस समय असाधारण दर्शन तथा अनुभव आदि प्राप्त करने में समर्थ हुए थे।

किन्तु पुराण-इतिहासों में उक्त विषयक विभिन्न दृष्टान्त विद्यमान रहने तथा युक्तियों द्वारा उस विषय का इस प्रकार समर्थन किए जाने पर भी मानवहृदय सम्पूर्ण रूप से उसे मानने के लिए तैयार नहीं होता ।

इसका कारण यह है कि स्वयं प्रत्यक्ष किए हुए विषयों पर ही मनुष्य का सर्वोपरि विश्वास है, इसीलिए आत्मा, ईश्वर, मुक्ति, परलोकादि विषयों में अपरोक्षानुभूति से पूर्व निश्चित रूप से विश्वास करने में मानव असमर्थ है । यद्यपि यह स्वाभाविक है फिर भी निरपेक्ष विचार-बुद्धिसम्पन्न व्यक्ति असाधारण अथवा अलौकिक होने के कारण ही किसी विषय को त्याज्य नहीं मानते हैं, किन्तु अपनी बुद्धि को साक्षी बनाकर धैर्य के साथ उन विषयों के पक्ष तथा विपक्ष के प्रमाणों को एकत्रित करने में वे प्रवृत्त होते हैं तथा उपयुक्त रूप से विचार करने के पश्चात् मिथ्या प्रमाणित होने पर उनका परित्याग अथवा सत्य होने पर स्वीकार करते हैं ।

सहज में विश्वास उत्पन्न न होने पर भी उक्त बातें मिथ्या मानकर त्याज्य नहीं हैं ।

अस्तु, जिस महापुरुष के जीवन का इतिहास हम लिखने बैठे हैं, उनके जन्म समय में भी उनके जनक-जननी के जीवन में नाना प्रकार के दिव्य दर्शन तथा अनुभव उपस्थित हुए थे, यह हमें विश्वस्त सूत्र से विदित हुआ है । अतः उन विषयों को लिपिबद्ध किए बिना हमारे लिए कोई दूसरा उपाय नहीं है । इसके पूर्व अध्याय में श्री क्षुदिरामजी से सम्बन्धित उक्त प्रकार की कुछ घटनाओं का हम उल्लेख कर चुके हैं, अब इस अध्याय में श्रीमती चन्द्रमणि से सम्बन्धित उक्त विषयक विवरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं ।

इससे पहले ही यह कहा जा चुका है कि श्री क्षुदिरामजी को गया-धाम में जो स्वप्न दर्शन हुआ था, वहाँ से घर लौटने के बाद उस सम्बन्ध में किसी से कुछ न कहकर चुपचाप वे उसका परिणाम देख रहे थे । उस विषय के अनुसन्धान में प्रवृत्त होने पर श्रीमती चन्द्रादेवी के स्वभाव का अद्भुत परिवर्तन सर्वप्रथम उन्हें दिखाई दिया । उन्होंने देखा कि मानवी चन्द्रा मानो अब सचमुच देवी की पदवी पर आरूढ़ हो चुकी हैं । न जाने

गयाधाम से लौटने के बाद क्षुदिरामजी को चन्द्रादेवी के भाव-परिवर्तन का दर्शन ।

कहाँ से एक सार्वजनीन प्रेम उनके हृदय पर अपना आधिपत्य जमाकर सांसारिक वासनामय कोलाहल से उन्हें बहुत उच्च भूमिका में स्थापित किए हुए है। अपने घर की चिन्ता की अपेक्षा दुर्दशाग्रस्त पड़ोसियों के घर की चिन्ता अब श्री चन्द्रादेवी के मन में अधिक प्रबल हो उठी है। घर के कार्य करती हुई बीच-बीच में कई बार उन लोगों के घर जाकर वे उनकी खोज लेती रहती हैं और भोजनसामग्री तथा प्रतिदिन की आवश्यक वस्तुओं में से जहाँ जिस वस्तु का अभाव है, अपने घर से छिपाकर उन चीजों को ले जाकर तत्काल ही वे उन्हें दे आती हैं। श्रीरघुवीर की सेवा से निवृत्त होने के उपरान्त तथा पति-पुत्रादि को भोजन कराने के बाद तीसरे पहर स्वयं भोजन करने से पूर्व श्रीमती चन्द्रादेवी पुनः पड़ोसी के घर जाकर उन लोगों का भोजन हुआ है या नहीं, यह समाचार लेती रहती हैं। किसी दिन उन्हें यह विदित होने पर कि किसी कारणवश अमुक व्यक्ति को भोजन नहीं मिला है, वे तत्काल ही आदरपूर्वक उसे अपने घर ले जाकर अपने लिए रखा हुआ अन्न उसको दे देती हैं और स्वयं सामान्य कुछ जलपान करके आनन्द के साथ दिन व्यतीत करती हैं।

चन्द्रादेवी के अपत्य-स्नेह का विस्तार।

श्रीमती चन्द्रादेवी पड़ोस के बच्चों को सदा अपनी सन्तान जैसी प्यार करती थीं। क्षुदिरामजी ने देखा कि उनका वह अपत्य-स्नेह अब मानो कुलदेवताओं तक विस्तृत हो चुका है। कुलदेवता श्रीरघुवीर को वास्तव में अब वे अपने पुत्र जैसे देखने लगी हैं; एवं श्रीशीतलादेवी तथा श्रीरामेश्वर बाण-लिंग भी उनके हृदय में उसी भाव से अधिष्ठित हैं। इससे पहले उनकी सेवा-पूजा करते समय उनका हृदय श्रद्धायुक्त भय से सर्वदा पूर्ण रहता था; प्रेम के आविर्भाव से अब वह भय न जाने कहाँ अन्तर्हित हो चुका। देवताओं के प्रति अब उनके मन में भय-संकोचादि का नाम तक नहीं है और न उनसे किसी विषय को छिपाने तथा माँगने की ही कोई आवश्यकता है! अब तो केवल उन्हें अपने से अपना समझकर उनके सुख के लिए सर्वस्व प्रदान करने की अभिलाषा के साथ ही साथ उनसे चिर-सम्बद्ध होने का अनन्त उल्लास विद्यमान है।

क्षुदिरामजी ने यह अनुभव किया कि उक्त प्रकार की संकोचरहित देवभक्ति तथा निर्भरतापूर्ण उल्लास के कारण ही सरलहृदय चन्द्रा अब

इन विषयों को देखकर क्षुदिरामजी की चिन्ता तथा संकल्प।

अधिक उदार बन चुकी हैं। उनके ही प्रभाव से न तो अब उनका किसी पर अविश्वास है और न वे किसी को अपने से अलग ही समझती हैं। किन्तु स्वार्थपरायण संसार के लोगों के लिए इस अपूर्व उदारता को यथार्थ रूप से स्वीकार करना क्या कभी सम्भव हो सकता है?—कदापि नहीं। उनके आचरण देखकर सांसारिक व्यक्ति उन्हें अल्पबुद्धि या 'पागल' कहेंगे अथवा अत्यन्त कठोर भाषा में उनकी समालोचना करेंगे—ऐसा सोचकर श्री क्षुदिरामजी उन्हें सतर्क कर देने के लिए अवसर की प्रतीक्षा करने लगे।

चन्द्रादेवी का देवस्वप्न।

वह अवसर भी शीघ्र ही उपस्थित हुआ। सरलहृदय चन्द्रादेवी पतिदेव के निकट अपनी चिन्ता तक को नहीं छिपा पाती थीं। सहेलियों के समीप ही प्रायः वे अपने मन की सारी बातें जब कह देती थीं, तब इस संसार में उनका सबसे अधिक निकट सम्बन्ध ईश्वर ने जिनके साथ स्थापित कर दिया है, उनसे उन बातों को छिपाना कैसे सम्भव हो सकता है? अतः गयाधाम से श्री क्षुदिरामजी के लौटने पर कुछ दिन तक चन्द्रादेवी उनकी अनुपस्थिति में जो कुछ हुआ था एवं उन्होंने जो देखा अथवा अनुभव किया था, उन समस्त बातों को अवकाश मिलते ही जब-तब उनसे कहने लगीं। अवसर पाकर एक दिन वे बोलीं, "देखो, जब तुम गयाधाम गए थे, उस समय एक रात्रि में मैंने एक अद्भुत स्वप्न देखा था। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मानो कोई ज्योतिर्मय देवता मेरी शय्या पर लेटे हुए हैं। पहले मैंने यह समझा कि सम्भवतः तुम होगे, किन्तु बाद में मुझे यह ज्ञात हुआ कि किसी मानव के लिए वैसा रूप कदापि सम्भव नहीं है। अस्तु, यह देखने के बाद मेरी नींद खुल गई, फिर भी मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा कि मानो वे शय्या पर ही हैं। दूसरे ही क्षण सोचने लगी कि मनुष्य के निकट इस प्रकार देवता का आगमन कैसे सम्भव हो सकता है? तब मेरे मन में आया कि कदाचित् कोई दुष्ट व्यक्ति किसी खराब उद्देश्य से घर में घुस आया होगा और उसके पैर की आवाज आदि को सुनकर ही मैंने ऐसा स्वप्न देखा है। झटपट उठकर मैंने दीया जलाया; किन्तु मुझे कोई कहीं दिखाई न पड़ा, घर का दरवाजा पहले

जैसे बन्द था, ठीक वैसे ही बन्द मिला। फिर भी डर जाने के कारण रात में मुझे नींद न आई। मैंने सोचा कि शायद कोई चतुरता से दरवाजे की संकल खोलकर भीतर आया होगा और मेरे जगते ही भागकर पुनः उसी प्रकार उसे बन्द कर गया होगा। सुबह होते न होते ही मैंने धनी लुहारिन तथा धर्मदास लाहा की बहिन को बुलवाया और उनसे सारी बात कहकर पूछा, 'तुम लोगों को क्या जँचता है, सचमुच क्या किसी व्यक्ति ने मेरे घर में प्रवेश किया था? मेरे साथ गाँव में किसी का भी विरोध नहीं है—केवल मधु युगी से उस दिन एक साधारण बात को लेकर कुछ कहा-सुनी हो गई थी—क्या वही छिपकर इस प्रकार मेरे घर में आया था?'—तब वे हँसती हुई मुझसे बहुत कुछ कहने लगीं और बोलीं, 'अरी बुढ़ापे में तू क्या पागल हो गई है, सपना देखकर व्यर्थ में क्यों यह ढोंग रच रही है! तू ही बता कि दूसरे लोगों के कानों तक यह बात पहुँचने पर वे क्या कहेंगे? क्या वे चारों ओर तुझे बदनाम करते नहीं फिरेंगे? अगर इस बात की फिर किसी से चर्चा करेगी तो अच्छा नहीं होगा।' उनकी इस बात को सुनकर मैं सोचने लगी कि तब तो मैंने स्वप्न ही देखा था। साथ ही मैंने निश्चय किया कि और किसी से यह बात न कहूँगी, किन्तु तुम्हारे लौटने पर तुमसे कहूँगी।''

"और एक दिन युगियों के शिव-मन्दिर के सम्मुख खड़ी होकर मैं धनी से बातें कर रही थी, उस समय मैंने देखा कि श्रीमहादेवजी के अंग से निकलकर दिव्य ज्योति ने मन्दिर को पूर्ण कर दिया है और वायु की तरह हिलोर लेती हुई वह मेरी ओर चली आ रही है! आश्चर्यचकित हो मैं धनी से यह कहने ही जा रही थी कि अकस्मात् मेरे निकट आकर मानो मुझे सम्पूर्ण रूप से आच्छादित करती हुई तीव्र वेग से वह मेरे अन्दर प्रविष्ट होने लगी। भय और विस्मय से स्तम्भित हो मैं एकदम मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। बाद में धनी की परिचर्या से मुझे होश आने पर मैंने उससे सारा वृत्तान्त कह सुनाया। सुनकर वह आश्चर्यचकित हो गई, फिर बोली, 'तुम्हें वायुरोग हो गया है।' किन्तु तब से मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि वह ज्योति मेरे उदर में अभी तक विद्यमान है और मेरे गर्भ-

शिवमन्दिर में चन्द्रादेवी को दिव्य-दर्शन तथा अनुभव।

योगियों का शिवमन्दिर कामारपुकुर

संचार होने का लक्षण-सा मुझे दिखाई दे रहा है। धनी तथा प्रसन्न से इस बात का जिक्र करने पर उन लोगों ने मुझे 'मूर्ख', 'पागल' आदि कहकर फटकारा और मानसिक भ्रम अथवा 'वायुगुल्म' रोग से मुझे ऐसा अनुभव हो रहा है इस प्रकार की बहुत-सी बातें बतलाकर किसी से इस बात की चर्चा करने को मना कर दिया है! तुम्हारे सिवाय और किसी से कुछ न कहने का निश्चय कर तभी से मैं चुप हूँ। अच्छा, बताओ तुम्हें क्या मालूम होता है? क्या देवता की कृपा से मुझे उस प्रकार का दर्शन मिला था या वायुरोग से? किन्तु अभी तक मुझे ऐसा मालूम पड़ता है कि मानो मेरा गर्भसंचार हो चुका है।"

इन बातों को किसी से न कहने के लिए चन्द्रादेवी को क्षुदिरामजी का सतर्क करना।

गया के स्वप्न को स्मरण करते हुए श्री क्षुदिरामजी ने श्रीमती चन्द्रादेवी की बातों को सुना और उन्हें जो दर्शन मिले हैं, उसका कारण रोग नहीं भी हो सकता है ऐसा कहकर वे उनको नाना प्रकार से समझाते हुए बोले, 'अब से इस प्रकार के दर्शन तथा अनुभवों की बातों को मुझे छोड़कर और किसी से न कहना; श्रीरघुवीर कृपा कर जो कुछ दिखायें वह कल्याण के निमित्त ही है ऐसा मानकर निश्चिन्त रहना; गयाधाम में रहते समय मुझे भी श्रीगदाधर ने अलौकिक रूप से यह इंगित किया है कि हमें पुनः पुत्रमुख देखना पड़ेगा।" श्रीमती चन्द्रादेवी देवतुल्य पतिदेव की इस बात को सुनकर आश्वस्त हुईं और उनकी आज्ञाकारिणी बनकर उस समय पूर्ण रूप से श्रीरघुवीर पर भरोसा रखकर घर के काम-काज करने लगीं। इस प्रकार ब्राह्मण दम्पति के परस्पर वार्तालाप के बाद क्रमशः एक एक दिन करके तीन-चार महीने बीत गए। तब सभी को निश्चित रूप से यह विदित हुआ कि पैंतालिस वर्ष की आयु में क्षुदिराम की पत्नी श्रीमती चन्द्रादेवी वास्तव में पुनः गर्भवती हुई हैं। सर्वत्र ही यह देखने में आता है कि गर्भदशा में सभी रमणियों का रूप-लावण्य विशेष रूप से निखरता है। चन्द्रादेवी का भी वैसा ही हुआ। धनी आदि उनकी पड़ोसिनें यह कहने लगीं कि अब की बार गर्भधारण कर उनका रूप-लावण्य पहले की अपेक्षा अधिक निखरा है। उनमें से कोई-कोई उन्हें देखकर यह भी जल्पना करने लगीं कि बुढ़ापे में गर्भवती होकर जब

इतना रूप बढ़ा है, तो सम्भवतः प्रसव के समय ब्राह्मणी की मृत्यु भी हो सकती है।

अस्तु, गर्भवती होने के बाद दिनोंदिन श्रीमती चन्द्रादेवी को अधिकाधिक दिव्यदर्शन तथा अनुभव प्राप्त होने लगे। ऐसा सुना जाता है कि उस समय उन्हें प्रायः प्रतिदिन देव-देवियों का दर्शन होता था; उनके श्रीअंग की पवित्र सुगन्ध से घर भरपूर हो उठा है ऐसा भी कभी-कभी उन्हें अनुभव होता था। यह भी सुना जाता है कि समस्त देव-देवियों पर उनका मातृस्नेह उस समय प्रबलरूप से वर्धित हुआ था। तब प्रायः वे प्रतिदिन उन दर्शनों तथा अनुभवों की बातों को अपने पतिदेव से कहकर उनके कारणों के विषय में पूछा करती थीं। श्री क्षुदिरामजी उन्हें तरह तरह से समझाते थे और उनसे कहा करते थे कि शंका की कोई बात नहीं है। उस समय की एक घटना के बारे में हमने जो सुना है, यहाँ पर उसका उल्लेख कर रहे हैं। श्रीमती चन्द्रादेवी एक दिन अपने पतिदेव के समीप भयभीत होकर पहुँचीं तथा उनसे कहने लगीं, "देव, शिवमन्दिर के सम्मुख ज्योतिदर्शन के दिन से बीच-बीच में मुझे इतने देवी-देवताओं के दर्शन हो रहे हैं कि जिसकी कोई सीमा-संख्या नहीं है। उनमें से कुछ तो ऐसे हैं कि जिनकी मूर्ति तक को कभी मैंने चित्र में भी नहीं देखा है। आज मैंने देखा कि हंस के ऊपर चढ़कर एक देवता का आगमन हुआ; देखकर मैं डर गई; धूप से उसका मुँह लाल हुआ देखकर मुझे कष्ट होने लगा! मैंने उसे बुलाकर कहा, 'अरे हंस पर बैठनेवाले देव, धूप से तेरा मुँह सूख गया है; मेरे घर में कल रात का भीगा हुआ भात रखा है, उसे खाकर कुछ सुस्ता जा!' इस बात को सुनकर हँसते हुए वह न जाने कहाँ हवा में अदृश्य हो गया, मुझे फिर दिखाई न दिया। ऐसी कितनी ही मूर्तियों को मैं देखती रहती हूँ। पूजन या ध्यान के समय ही उनका दर्शन मिलता हो यह बात नहीं है, किन्तु सहज हालत में जब तब उनका दर्शन होता रहता है। कभी-कभी मैं देखती हूँ कि वे मनुष्याकार से मेरे समक्ष आते हुए हवा में लीन हो जाते हैं। तुम्हीं बताओ कि मुझे ऐसे दर्शन क्यों हो रहे हैं? क्या मुझे कोई रोग हो गया है? कभी-कभी मैं यह सोचती हूँ

चन्द्रादेवी का पुनः गर्भसंचार तथा उनके तत्कालीन दिव्य दर्शन।

कि क्या मेरे ऊपर गोसाईं* का आवेश हुआ है ?" तब श्री क्षुदिरामजी, गयाधाम में देखे हुए स्वप्न का वर्णन कर उन्हें समझाने लगे कि अब की बार पुरुषोत्तम को गर्भ में धारण करने का उन्हें परम सौभाग्य प्राप्त हुआ है एवं उनके पुण्य स्पर्श के प्रताप से ही उन्हें ये दिव्य दर्शन मिल रहे हैं। इन बातों को सुनकर पति पर असीम विश्वास रखनेवाली चन्द्रादेवी का हृदय दिव्य भक्ति से पूर्ण हो गया एवं नवीन शक्ति से शक्तिशालिनी हो वे निश्चिन्त हो गईं।

इस प्रकार दिन-पर-दिन बीतने लगे एवं श्री क्षुदिरामजी तथा उनकी पवित्रस्वभावसम्पन्ना गृहिणी दोनों ही श्रीरघुवीर के चरणों में पूर्ण रूप से शरणागत हो, जिनके शुभागमन से उनका जीवन दैवी भक्ति से पूर्ण हो उठा था, उस भगवान् को पुत्ररूप में देखने की आशा से समय बिताने लगे।

---

* श्री सुखलाल गोस्वामी की मृत्यु के बाद विभिन्न प्रकार के आकस्मिक उत्पात उपस्थित होने के कारण ग्रामवासियों की यह धारणा हुई थी कि उक्त गोस्वामी अथवा उनके वंश के कोई व्यक्ति मरने के पश्चात् 'भूत' बनकर गोस्वामियों के घर के सामने जो विशाल बकुल वृक्ष था, उस पर रहते थे। इसलिए उस समय किसी को कोई दिव्य दर्शन मिलने पर लोग उक्त विश्वास के प्रभाव से यह कहा करते थे कि अमुक व्यक्ति पर 'गुसाईं का आवेश' हुआ है। अतः सरलहृदय चन्द्रादेवी ने भी उस समय ऐसा कहा था।

पंचम अध्याय

महापुरुष का जन्मवृत्तान्त

शरत्, हेमन्त तथा शीतकाल व्यतीत होकर क्रमशः ऋतुराज वसन्त का आगमन हुआ। शीत तथा ग्रीष्म के सुख-सम्मेलन से स्थावरजंगमों में नवीन प्राणसंचार कर संसार में समागत मधुमय फाल्गुन का आज छठवाँ दिवस है। जीव-जगत् में एक विशेष उत्साह, आनन्द तथा प्रेम की प्रेरणा सर्वत्र दिखाई दे रही है। शास्त्रों में कहा गया है कि ब्रह्मानन्द का एक कण सबके अन्दर विद्यमान रहकर उसने उन्हें सरस बना रखा है—क्या उस दिव्य-उज्ज्वल आनन्दकण के कुछ अधिक अंश को पाकर ही यह वसन्त ऋतु संसार में सर्वत्र इतना उल्लास का संचार करती है?

चन्द्रादेवी की शंका तथा पतिदेव के कल्पनानुसार आश्वासनप्राप्ति।

श्रीरघुवीर के भोग के लिए रसोई बनाती हुई श्रीमती चन्द्रादेवी उस दिन अपने हृदय में एक दिव्य आनन्द का अनुभव कर रही थीं; किन्तु उन्हें अपना शरीर अत्यन्त अवसन्न प्रतीत होने लगा। सहसा उनको यह ख्याल हुआ कि शरीर की दशा को देखकर कुछ भी नहीं कहा जा सकता है; यदि अभी प्रसवकाल उपस्थित हो तो घर पर ऐसा कोई दूसरा व्यक्ति नहीं है, जिसके द्वारा श्री रघुवीर की सेवा की व्यवस्था की जा सके। किन्तु दूसरा उपाय ही क्या है? घबड़ाकर उन्होंने अपने पतिदेव से यह बात कही। श्री क्षुदिरामजी उन्हें आश्वासन देते हुए बोले, 'घबड़ाने की कोई बात नहीं है, तुम्हारे गर्भ में जिनका शुभागमन हुआ है, वे कभी भी श्रीरघुवीर की सेवा में विघ्न उत्पादन कर संसार में प्रविष्ट नहीं होंगे—मुझे यह दृढ़ विश्वास है; अतः चिन्तित न हो, श्रीठाकुरजी की सेवा आज तुम अवश्य ही कर सकोगी; कल से उसके लिए मैंने दूसरी व्यवस्था कर रखी है तथा धनी को आज रात से ही यहाँ सोने के लिए कह दिया गया है।' पतिदेव की बात को सुनकर श्रीमती चन्द्रादेवी में मानो नवीन बल का संचार हुआ और वे आनन्दित होकर घर

के काम-काज करने लगीं। वास्तव में उनका कहना ठीक निकला। उस दिन श्रीरघुवीर के मध्याह्न भोग तथा सायंकालीन सेवाकार्य आदि निर्विघ्न रूप से सम्पन्न हो गए। रात में भोजनादि करने के पश्चात् श्री क्षुदिरामजी तथा रामकुमारजी अपने शयनकक्ष में प्रविष्ट हुए तथा धनी आकर चन्द्रादेवी के साथ एक ही कमरे में सो गई। जिस कमरे में श्रीरघुवीर विराजमान थे, उसके सिवाय उस मकान में रहने के लिए दो झोपड़ियाँ और एक रसोईघर था तथा अन्य एक छोटी-सी कुटिया में एक ओर धान कूटने की एक ढेंकला और धान सिझाने के लिए एक चूल्हा था। स्थानाभाव के कारण इसी कुटिया को सूतिकागार बनाने का निश्चय पहले से ही किया जा चुका था।

गदाधर का जन्म।

रात्रि व्यतीत होने में प्रायः अर्ध घटिका अवशिष्ट थी, उस समय श्रीमती चन्द्रादेवी को प्रसव पीड़ा होने लगी। धनी की सहायता से वे पूर्वोक्त कुटिया में (जहाँ धान कूटने की ढेंकली थी) जाकर लेट गईं और तत्काल ही उन्होंने एक पुत्र प्रसव किया। श्रीमती चन्द्रादेवी की तात्कालिक व्यवस्थादि करने के पश्चात् नवजात शिशु की सहायता के लिए अग्रसर होकर धनी ने देखा कि पहले जहाँ उसे रखा गया था, वहाँ से वह कहीं अन्तर्हित हो चुका है। भयभीत होकर उसने दीपक को तेज किया तथा चारों ओर ढूँढ़ने लगी। अन्त में देखा कि रुधिरादि से भीगी हुई जमीन पर क्रमशः फिसलता हुआ धान सिझाने के चूल्हे के अन्दर प्रविष्ट हो वह राख में लिपट कर चुपचाप पड़ा हुआ है। तब धनी ने धीरे से उसे उठा लिया तथा उसके शरीर को साफ कर दीपक के प्रकाश में ले जाकर देखा कि अद्भुत सुन्दर बालक है तथा देखने में छः महीने के बच्चे जैसा हृष्टपुष्ट है। पड़ोसी लाहा बाबुओं के घर से तब तक प्रसन्न इत्यादि चन्द्रादेवी की तीन-चार सहेलियाँ समाचार पाकर वहाँ उपस्थित हुईं—धनी ने उनसे पुत्र जन्म की घोषणा की, एवं पवित्र गम्भीर ब्राह्ममुहूर्त में श्री क्षुदिरामजी की तपःपुनीत दरिद्र कुटी शंखध्वनि से पूर्ण हो उठी और वहाँ से महापुरुष की शुभागमनवार्ता संसार में प्रचारित हुई।

अनन्तर नवजात शिशु के जन्मलग्न विचारने में प्रवृत्त हो शास्त्रकुशल क्षुदिरामजी ने देखा कि विशेष शुभमुहूर्त में बालक इस संसारक्षेत्र में प्रविष्ट हुआ है। बंगला फाल्गुन ६, सन १२४२, शकाब्द १७५७, दिनांक १७

गदाधर के शुभजन्म मुहूर्त के सम्बन्ध में ज्योतिषशास्त्रानुसार विचार।

फरवरी १८३६ ई., शुक्लपक्ष बुधवार रात की ३१ घड़ी अतीत होने के बाद अर्धघटिका मात्र अवशिष्ट काल में बालक का जन्म हुआ है। शुभ द्वितीया तिथि उस समय पूर्व भाद्रपद नक्षत्र के साथ संयुक्त रहने के कारण सिद्धियोग का उदय हुआ था। बालक के जन्मलग्न में सूर्य, चन्द्र तथा बुध एक ही स्थान में विद्यमान हैं और शुक्र, मंगल तथा शनि तुंग दशा को प्राप्त कर उसके जीवन की विशेषता का परिचय दे रहे हैं। महामुनि पराशरजी के मतानुसार राहु तथा केतु ये दोनों ग्रह जन्म के समय तुंगस्थ थे। साथ ही बृहस्पति तुंगाभिलाषी होकर अवस्थित रहने के कारण बालक के भाग्य पर विशेष शुभ-प्रभाव विस्तार कर रहा है।

राशि के अनुसार गदाधर का नाम।

तदनन्तर नवजात बालक के जन्मनक्षत्र का विचार कर विशिष्ट ज्योतिषियों ने उनसे कहा कि जिस प्रकार उच्चलग्न में बालक ने जन्म लिया है, उसके बारे में ज्योतिषशास्त्र का यह स्पष्ट निर्देश है कि ऐसे लग्न में जन्म लेने वाले व्यक्ति धर्मवेत्ता तथा सन्माननीय होंगे और सर्वदा पुण्यकर्म के अनुष्ठान में रत रहेंगे। अनेक शिष्य-परिवृत होकर वे किसी देवमन्दिर में निवास करेंगे तथा नवीन धर्म-सम्प्रदाय का प्रवर्तन कर श्रीनारायण के अंशसम्भूत महापुरुष के रूप में संसार में सर्वत्र प्रसिद्धि लाभ करके सभी लोगों के पूज्य बनेंगे।* श्री

---

* धर्मस्थानाधिपे तुङ्गे धर्मस्थे तुङ्गखेचरे।
गुरुणा दृष्टिसंयोगे लग्नेशे धर्मसंस्थिते॥
केन्द्रस्थानगते सौम्ये गुरौ चैव तु कोणभे।
स्थिरलग्ने यदा जन्म सम्प्रदायप्रभुःहि सः॥
धर्मविन्माननीयस्तु पुण्यकर्मरतः सदा।
देवमन्दिरवासी च बहुशिष्यसमन्वितः॥
महापुरुषसंज्ञोऽयं नारायणांशसम्भवः।
सर्वत्र जनपूज्यश्च भविष्यति न संशयः॥

इति भृगुसंहितायां सम्प्रदायप्रभुयोगः तत्फलञ्च।

श्रीनारायणचन्द्र ज्योतिर्भूषणकृत श्रीरामकृष्णदेव की जन्मपत्री से ये वचन उद्धृत किए गए हैं।

क्षुदिरामजी यह सुनकर विस्मित हो उठे। कृतज्ञ हृदय से वे सोचने लगे कि गयाधाम में उन्होंने जो स्वप्न देखा था, वह सचमुच सत्य प्रमाणित हुआ। तदनन्तर जातकर्मादि सम्पन्न करने के पश्चात् राशि के अनुसार बालक का नाम श्री शम्भुचन्द्र रखना उन्होंने निश्चय किया तथा गयाधाम के विचित्र स्वप्न की बात को स्मरण कर सबके समक्ष बालक को श्री गदाधर नाम से अभिहित करने का निर्णय किया।

श्रीरामकृष्णदेव की अद्भुत जन्मकुण्डली* के साथ उनकी जन्मपत्री के

---

* श्रीरामकृष्णदेव के जन्मसमय के सम्बन्ध में कुछ बातों का उल्लेख करना यहाँ हम आवश्यक समझते हैं। दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्णदेव के समीप आते जाते समय हममें से अनेक व्यक्तियों ने उनको यह कहते हुए सुना था कि उनकी "वास्तविक जन्मपत्री खो गई है और उसके बदले बहुत दिनों के बाद जो जन्मपत्री तैयार करायी गई है, उसमें अनेक भूल-त्रुटियाँ विद्यमान हैं।" उनसे हमने अनेक बार यह भी सुना है कि उनका जन्म "फाल्गुन की शुक्ला द्वितीया तिथि में हुआ था, उस दिन बुधवार था।" उनकी कुम्भराशि थी तथा उनके "जन्मलग्न में सूर्य, चन्द्र तथा बुध थे।" "लीलाप्रसंग" लिखते समय "उनके जीवन की घटनाओं का यथार्थ साल, तारीख निर्णय करने में अग्रसर हो हमने बाद की जन्मपत्री को मंगवाकर देखा, उसमें उनके जन्मसमय के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा हुआ है—"शक १७५६।१०।९।५९।१२ फाल्गुनस्य दशमदिवसे बुधवासरे गौरपक्षे द्वितीयायां तिथौ पूर्वभाद्रपद नक्षत्रे" उनका जन्म हुआ था। उक्त साल का पंचांग मंगवाकर देखने से पता चला कि उक्त जन्मपत्री में जिस साल का उल्लेख है, उसके अनुसार उस दिन कृष्णपक्ष की नवमी तिथि तथा शुक्रवार होता है। अतः उक्त जन्मपत्री को श्रीरामकृष्णदेव क्यों भूल-त्रुटिपूर्ण कहते थे यह हृदयंगम करके उसे छोड़कर पुराने पंचांगों में हम यह ढूँढ़ने लगे कि किस शकाब्द में फाल्गुन की शुक्ला द्वितीया के दिन बुधवार है और सूर्य, चन्द्र तथा बुध कुम्भ राशि में एक साथ विद्यमान हैं। अनुसंधान करने के फलस्वरूप १७५४ तथा १७५७ शकाब्द में हमें उस प्रकार के दो दिन उपलब्ध हुए। उनमें से प्रथम का हमने परित्याग किया। कारण यह है कि १७५४ शकाब्द में श्रीरामकृष्णदेव का जन्म मानने पर उन्होंने स्वयं हमसे अपनी आयु जो बतलायी थी, उससे ३ वर्ष २ मास उनकी आयु अधिक हो जाती है। दूसरी ओर १७५७ शकाब्द में उनका जन्म मानने से उनके जीवितकाल में भक्तमण्डली द्वारा दक्षिणेश्वर में अनुष्ठित उनके जन्मोत्सव के अवसर पर वे स्वयं अपनी आयु के सम्बन्ध में जैसा निर्देश देते थे, उससे ठीक मिल जाता है। इतना ही नहीं, विश्वस्त सूत्र से हमें यह ज्ञात हुआ है कि श्रीरामकृष्णदेव के विवाह के समय उनकी आयु

कुछ अंश पाठकों की सुविधा के लिए नीचे दिए जा रहे हैं। ज्योतिषशास्त्र का ज्ञान रखने वाले पाठकवर्ग उनको देखकर यह समझ सकेंगे कि उक्त विवरण भगवान् श्रीरामचन्द्र, श्रीकृष्ण, श्रीशंकर तथा श्रीकृष्णचैतन्यदेव आदि अवतार रूप से प्रसिद्ध पुरुषों की अपेक्षा किसी अंश में न्यून नहीं है।

गदाधर की जन्म-कुण्डली।

'शुभमस्तु। शकनरपतेरतीताब्दादयः १७५७।१०।५।५९।२८।२९, बङ्गीय सन १२४२ साल, ६ फाल्गुन, बुधवार, रात्रि-अवसाने (अर्धघटिका

२४ वर्ष तथा श्रीमाताजी की आयु केवल ५ वर्ष की थी—१७५७ शकाब्द के हिसाब से उसमें भी किसी प्रकार का हेर-फेर नहीं करना पड़ता है। साथ ही श्रीरामकृष्णदेव के देहावसान के अवसर पर काशीपुर श्मशान के मृत्युनिर्णायक सरकारी रजिस्टर में समवेत भक्तों ने उनकी आयु ५१ वर्ष की लिखायी थी, उसमें भी किसी प्रकार का परिवर्तन आवश्यक नहीं होता है। इन कारणों से उनका जन्मकाल हमने १७५७ शकाब्द में ही निर्धारित किया है।

इस प्रकार निश्चय करने के उपरान्त भी हम शान्त न हुए। हमने सुना था कि २ नं. लालबिहारी ठाकुर लेन, बहु बाजार, कलकत्तेनिवासी श्रीशशी-भूषण भट्टाचार्य महोदय खोई हुई जन्मपत्री को ठीक करने में विख्यात हैं। इसलिए हमने उनके पास श्रीमाताजी की जन्मपत्री को भेजा तथा उसके आधार पर विचार कर श्रीरामकृष्णदेव की जन्मकुण्डली का यथार्थ निर्णय करने के लिए उनसे अनुरोध किया। उन्होंने भी उस विषय में पूर्ण विचार करने के पश्चात् यह अभिमत व्यक्त किया कि १७५७ शकाब्द में ही श्रीरामकृष्णदेव का जन्म हुआ था।

इस प्रकार १७५७ शकाब्द (बंगला सन् १२४२) ही उनका जन्मकाल है, ऐसा दृढ़निश्चय कर हमने श्रद्धास्पद श्री नारायणचन्द्र ज्योतिर्भूषण महोदय से श्रीरामकृष्णदेव की जन्मपत्री तदनुसार तैयार कर देने की प्रार्थना की। उन्होंने अत्यन्त परिश्रमपूर्वक उस कार्य को सम्पन्न किया, जिसके लिए हम उनके चिर-कृतज्ञ हैं।

ब्राह्म मुहूर्त्त में श्रीरामकृष्णदेव के जन्म का निश्चय केवल जन्मपत्री के आधार पर ही नहीं किया गया है, अपितु उनके परिवार वर्ग से निम्नलिखित घटना को सुनकर भी हमने यह निर्णय किया है। उनका कहना है कि जन्म होते ही श्रीरामकृष्णदेव सूतिकागार में अवस्थित धान सिझाने के चूल्हे के अन्दर फिसलकर गिर जाने के कारण भस्माच्छादित हो गए थे। सद्योजात शिशु की उस दशा का परिज्ञान अन्धकार के कारण उस समय नहीं हो सका था। अनन्तर दीपक लाकर ढूंढ़ने के पश्चात् उनको उक्त चूल्हे के अन्दर से निकाला गया था।

अस्तु, १७५७ शकाब्द के फाल्गुन महीने की द्वितीया तिथि में श्रीरामकृष्ण-

रात्रि अवशिष्ट रहते समय) कुम्भलग्ने प्रथम नवांशे जन्म ॥ कुम्भराशि, पूर्वभाद्रपद नक्षत्र के प्रथम पाद में जन्म हुआ है ॥ रात्रिजात दण्डादिः ३१।०।१४, सूर्योदयादिष्ट दण्डादिः ५९।२८।२९, अक्षांश २२।३४, पलभा ५।१।५।१०॥
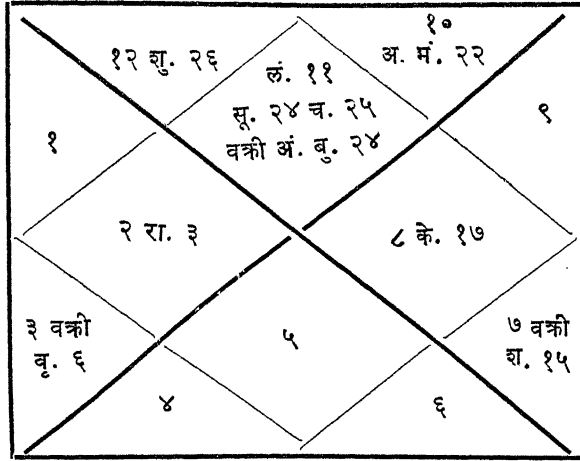
दिवा— २८।२८।१५		
४	२४	२०
१	५१	४९
४६	२६	५९
४४	किं	६
जाताहः		

दिवा—२८।३१		
५	२५	२१
२	५१	४१
४५	४१	४८
१६	२	७
पराहः		

देव का जन्म जिस अद्भुत लग्न में हुआ था, श्री नारायणचन्द्र ज्योतिर्भूषणकृत उनकी जन्मपत्री को देखने से उसकी यथार्थता की सम्यक् उपलब्धि होती है। साथ ही श्रीरामकृष्णदेव के जीवन की अलौकिक घटनाओं को जन्मपत्री के साथ मिलाकर देखने पर यह भी स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय ज्योतिषशास्त्र वास्तव में सत्य पर प्रतिष्ठित है।

अन्त में हमारा यह वक्तव्य है कि श्रीरामकृष्णदेव की भ्रमपूर्ण पुरानी जन्मपत्री, श्री नारायणचन्द्र ज्योतिर्भूषणकृत उनकी विशुद्ध जन्मपत्री तथा श्री शशीभूषण भट्टाचार्य महोदय ने श्रीमाताजी की जन्मकुण्डली को देखकर उसके आधार पर विचार करने के पश्चात् श्रीरामकृष्णदेव की जो जन्मकुण्डली बनाई थी, ये सब बेलूर मठ में यत्न के साथ सुरक्षित हैं।

चान्द्रफाल्गुनस्य शुक्लपक्षीय-द्वितीयाजन्मतिथिः ।
पूर्वभाद्रपद-नक्षत्रमानं ६०।१५।०
तस्य भोगदण्डादिः ५२।१२।३१
भुक्तदण्डादिः ८।२।२९

(शकाब्दा १७५७), एतच्छकीय-सौर-फाल्गुनस्य षष्ठदिवसे, बुधवासरे, शुक्लपक्षीय-द्वितीयायां तिथौ, पूर्वभाद्रपद-नक्षत्रस्य प्रथमचरणे, सिद्धियोगे, बालवकरणे, एवं पंचांगसंशुद्धौ, रात्रि चतुर्दश-विपलाधिकैकत्रिंशद्दण्ड-समये, अयनांशोद्भव-शुभ-कुम्भ-लग्ने (लग्नस्फुट-राश्यादि १०।३।१९'। ५३''।२०'''), शनैश्चरस्य क्षेत्रे, सूर्यस्य होरायां सूर्यसुतस्य द्रेक्काणे, शुक्रस्य नवांशे, बृहस्पतेर्द्वादशांशे, कुजस्य त्रिंशांशे, एवं षड्वर्गपरिशोधिते पूर्वभाद्रपदनक्षत्राश्रिकुम्भराशिस्थिते चन्द्रे, बुधस्य यामार्द्धे, जीवस्य दण्डे, कोणस्थे गुरौ केन्द्रस्थे बुधे चन्द्रे च, लग्नस्थे चन्द्रे, त्रिग्रहयोगे, धर्मकर्माधिपयोः शुक्रभौमयोः तुङ्गस्थितयोः, वर्गोत्तमस्थे लग्नाधिपे शनौ च तुङ्गे, पराशरमतेन तु राहुकेत्वोस्तुङ्गस्थयोः (यतः उक्तं, "राहोस्तु वृषभं केतोर्वृश्चिकं तुङ्गसंज्ञितम्" इत्यादिप्रमाणात्), अतएव उच्चस्थे ग्रहपंचके असाधारणपुण्यभाग्ययोगे, शुक्लपक्षे निशिजन्मतोः विंशोत्तरी दशाधिकारे जन्म, एतेन बृहस्पतेर्दशायां, तथा देशभेदेन दशाधि-कारनियमाच्च अष्टोत्तरीयराहोर्दशायाम्, अशेषगुणालकृंत-स्वधर्मनिष्ठ-क्षुदिराम चट्टोपाध्याय-महोदयस्य (सहधर्मिणी दयावती-चन्द्रमणिदेवी-महोदयायाः गर्भे) शुभः तृतीयपुत्रः समजनि । तस्य राश्याश्रितं नाम शम्भुराम देवशर्म्मा । प्रसिद्धनाम गदाधर चट्टोपाध्यायः । साधनासिद्धिप्राप्त-जगद्विख्यात नाम श्रीरामकृष्ण परमहंसदेव महोदयः ।*

गदाधर की जन्मपत्री के कुछ अंश ।

अनन्तर रूपवान् पुत्र का मुखदर्शन कर तथा उसके असाधारण सौभाग्य की बातों को सुनकर श्री क्षुदिरामजी तथा श्रीमती चन्द्रमणि अपने को परम कृतार्थ समझने लगे और यथासमय बालक के निष्क्रमण, नामकरणादि संस्कार सम्पन्न कर अत्यन्त यत्नपूर्वक उसका लालन-पालन करने लगे ।

---

* श्री नारायणचन्द्र ज्योतिर्भूषण-कृत श्रीरामकृष्णदेव की जन्मपत्री से पूर्वोक्त अंश उद्धृत किया गया है ।

षष्ठ अध्याय

बाल्यचरित तथा पितृवियोग

शास्त्रों में इस प्रकार का उल्लेख है कि श्रीराम, श्रीकृष्ण आदि अवतार पुरुषों के माता-पिताओं को, उनके जन्म से पूर्व तथा बाद में नाना प्रकार के दिव्य दर्शन मिलने के कारण वे अपने पुत्रों को देवताओं द्वारा सुरक्षित अनुभव करने के दूसरे ही क्षण अपत्यस्नेह के वशीभूत हो उस बात को भूल जाते थे और उनके पालन-पोषण तथा रक्षण के निमित्त सदा व्यग्र हो उठते थे। श्री क्षुदिरामजी तथा उनकी सहधर्मिणी श्रीमती चन्द्रादेवी के सम्बन्ध में भी यह बात कही जा सकती है, क्योंकि रूपवान् पुत्र के मुखकमल को देखकर वे भी गयाधाम के देव-स्वप्न तथा शिवमन्दिर के दिव्यदर्शन आदि अधिकांश बातें भूल गए और उनके यथार्थ पालन-पोषण के लिए चिन्तित हो नाना प्रकार की चेष्टाएँ करने लगे। श्री क्षुदिरामजी के उपार्जनशील भानजे रामचांदजी के निकट मिदनापुर में पुत्रजन्म का समाचार भेजा गया। निर्धन मामा के घर में दूध के अभाव की सम्भावना को अनुभव करते हुए उन्होंने एक दुधारु गाय वहाँ भेजकर श्री क्षुदिरामजी को उस चिन्ता से मुक्त किया। इस तरह नवजात शिशु के लिए जब जिस वस्तु की आवश्यकता होती थी, तभी कहीं न कहीं से अचिन्तनीय रूप में उसकी पूर्ति हो जाने पर भी श्री क्षुदिरामजी तथा चन्द्रादेवी की चिन्ता दूर न हुई। इस प्रकार क्रमशः दिन बीतने लगे।

रामचांदजी का गोदान।

इधर नवजात बालक में दूसरों के चित्त को आकृष्ट करने की शक्ति नित्यप्रति वर्धित होकर जनक-जननी पर अपना प्रभाव विस्तार कर ही वह शान्त न हुई, अपितु परिवारवर्ग तथा पड़ोस की रमणियों पर भी वह धीरे धीरे अपना आधिपत्य स्थापन करने लगी। पड़ोस की महिलाएँ

गदाधर की मोहिनी शक्ति।

अवसर मिलते ही प्रतिदिन श्रीमती चन्द्रादेवी को देखने आती थीं और कारण पूछने पर कहती थीं, 'तुम्हारे पुत्र को नित्य देखने की इच्छा होती है, इसलिए विवश होकर रोज आना पड़ता है !' समीप के गाँवों से आत्मीय महिलाएँ उसी कारणवश श्री क्षुदिरामजी के दरिद्र कुटीर में पहले की अपेक्षा बारम्बार आने लगीं। इस प्रकार सभी के प्रेम और यत्न से सुखपूर्वक प्रतिपालित होकर नवजात शिशु जब पाँच महीने का हो गया तब उसके 'अन्नप्राशन' का समय उपस्थित हुआ।

श्री क्षुदिरामजी ने अपने सामर्थ्यानुसार ही पुत्र का 'अन्नप्राशन' संस्कार करने का पहले निश्चय किया था। उन्होंने सोचा था कि शास्त्रविहित कर्म करने के पश्चात् श्रीरघुवीर का प्रसादी अन्न पुत्र को खिलाकर उस कार्य को सम्पन्न करेंगे तथा उस उपलक्ष्य में दो-चार घनिष्ट आत्मीयों को ही निमन्त्रण देंगे,—किन्तु घटना कुछ और ही हुई। उनके परम मित्र गाँव के जमींदार श्री धर्मदास लाहाजी की गुप्त प्रेरणा से गाँव के प्रवीण ब्राह्मणों ने आकर उनसे पुत्र के 'अन्नप्राशन' संस्कार के दिन उन्हें भोजन कराने के लिए विशेष आग्रह प्रकट किया। उन लोगों के इस प्रकार अनुरोध के फलस्वरूप श्री क्षुदिरामजी दुविधा में पड़ गए; क्योंकि गाँव के सभी लोग उनको विशेष श्रद्धा-भक्ति करते थे, अतः उनमें से किसे छोड़कर किसको आमन्त्रित किया जाय, यह वे निर्णय न कर सके। साथ ही सबको बुलाने का उनमें सामर्थ्य ही कहाँ था ? अतः 'श्री रघुवीर की जो इच्छा है, वही होगा' ऐसा निश्चय करके श्री धर्मदासजी के साथ परामर्श कर उस सम्बन्ध में निर्णय करने के लिए वे उनके समीप पहुँचे और अपने मित्र का अभिप्राय विदित हो जाने के कारण उस कार्य का भार उन्हीं पर सौंपकर वे घर लौटे। आनन्दित हो श्री धर्मदासजी ने अधिकांश खर्च का बोझ स्वयं अपने ऊपर लेकर उक्त कार्य की सम्पूर्ण व्यवस्था की तथा उसको सुसम्पन्न किया। हमने सुना है कि गदाधर के 'अन्नप्राशन' संस्कार के उपलक्ष्य में गाँव के सभी ब्राह्मण तथा अन्यान्य जाति के लोग श्री क्षुदिरामजी के घर पर उपस्थित हो श्रीरघुवीर का प्रसाद पाकर परितृप्त हुए

'अन्नप्राशन' संस्कार के समय धर्मदास लाहाजी की सहायता।

थे एवं उसी प्रकार परितृप्ति प्राप्तकर अनेक दरिद्र भिक्षुकों ने भी उनके पुत्र के लिए दीर्घजीवन तथा मंगलकामना की थी।

दिन बीतने के साथ ही साथ गदाधर की बाल्यकालीन चेष्टाएँ क्रमशः मधुरतर होने लगीं और उनसे चन्द्रादेवी का हृदय आनन्द तथा भय के पुण्य-प्रयाग में परिणत होने लगा। पुत्र के जन्म से पहले जो कभी देवताओं से किसी वस्तु की प्रार्थना कर उसे प्राप्त करने के लिए व्यग्र नहीं होती थीं, अब वे ही प्रतिदिन पुत्र के कल्याण के निमित्त सौ बार नहीं हजार बार, ज्ञात या अज्ञात रूप से उनके चरणों में मातृहृदय की दयापूर्ण प्रार्थना करके भी पूर्णतया निश्चिन्त न हो पाती थीं। इस प्रकार पुत्र के कल्याण तथा पालन-पोषण की भावना ही श्रीमती चन्द्रादेवी का ध्यान-ज्ञान का विषय बनकर उनकी पूर्वकालीन दिव्यदर्शन-शक्ति को आच्छादित करने लगी, यह बात सहज ही समझ में आ जाती है। किन्तु उस समय भी उक्त शक्ति का सामान्य प्रकाश उनमें कभी-कभी उपस्थित होकर उन्हें कभी विस्मित तथा कभी पुत्र की भावी अमंगल की आशंका से विचलित कर देता था। इस सम्बन्ध में अत्यन्त विश्वस्त रूप से हमने जो एक घटना सुनी है, यहाँ पर उसका उल्लेख करने से पाठक पूर्वोक्त बात को सहज ही में समझ सकेंगे। घटना इस प्रकार की है—

चन्द्रादेवी की दिव्य-दर्शन-शक्ति का वर्तमान प्रकाश।

गदाधर की आयु उस समय सात-आठ महीने की होगी। श्रीमती चन्द्रादेवी एक दिन प्रातःकाल उन्हें स्तनपान करा रही थीं। कुछ देर बाद पुत्र को निद्रित देखकर मच्छरों से उसकी रक्षा करने के निमित्त मच्छरदानी के अन्दर उसे सुलाकर वे घर के काम-काज करने लगीं। कुछ समय बीतने पर कार्यवश उस कमरे में सहसा प्रविष्ट हो उन्होंने देखा कि मच्छरदानी के अन्दर पुत्र नहीं है, उसके स्थान पर दीर्घाकार अपरिचित पुरुष सम्पूर्ण मच्छरदानी को घेरकर लेटा हुआ है। चन्द्रादेवी इस दृश्य को देखकर अत्यन्त भयभीत हो चिल्ला उठीं और तत्काल ही कमरे से बाहर निकलकर पतिदेव को पुकारने लगीं। उनके आते ही उनसे उस बात को कहती हुई दोनों समय

उक्त विषयक घटना— गदाधर को दीर्घाकार देखना।

उस कमरे में प्रविष्ट हुए तथा उन्होंने देखा कि कोई भी कहीं नहीं है, बालक जैसे पहले सो रहा था, वैसे ही सो रहा है। किन्तु श्रीमती चन्द्रादेवी का भय तब भी दूर न हुआ। बारम्बार वे कहने लगीं, 'निश्चय ही किसी भूत-प्रेत के द्वारा ऐसा हुआ होगा, क्योंकि मैंने स्पष्ट रूप से पुत्र की जगह एक लम्बे व्यक्ति को लेटा हुआ देखा है; मुझे कदापि भ्रम नहीं हुआ है और सहसा इस प्रकार का भ्रम होने का कोई कारण भी नहीं है; अतः तुम शीघ्र ही किसी अनुभवी ओझा को बुलवाकर पुत्र को दिखाओ, अन्यथा इस घटना से पुत्र का कोई अनिष्ट होगा अथवा नहीं, यह कौन कह सकता है?' यह सुनकर श्री क्षुदिरामजी उनको आश्वासन देते हुए बोले, 'जिस पुत्र के जन्म से पूर्व ही हम नाना प्रकार के दिव्य-दर्शन प्राप्त कर कृतार्थ हुए हैं, उस पुत्र के सम्बन्ध में अब भी उस प्रकार का कुछ देखना विचित्र नहीं है; अतः भूत-प्रेत के द्वारा ऐसा हुआ है, यह तुम कभी न सोचना; खासकर जहाँ स्वयं श्रीरघुवीर विराजमान हैं, वहाँ भूत-प्रेत क्या कभी सन्तान का कोई अनिष्ट कर सकता है? अतः चिन्ता की कोई बात नहीं है, किन्तु तुम इस बात की चर्चा और किसी से न करना और यह निश्चित जानना कि श्रीरघुवीर सदा तुम्हारे पुत्र की रक्षा कर रहे हैं।' श्रीमती चन्द्रादेवी पतिदेव की बातों को सुनकर शान्त हुईं, किन्तु पुत्र की अमंगल-आशंका का आभास उनके मन से पूर्णतया दूर न हुआ। उस दिन बहुत देर तक उन्होंने हाथ जोड़कर कुलदेवता श्रीरघुवीर से अपने हृदय की वेदना निवेदन की।

गदाधर की छोटी बहिन सर्वमंगला।

इस प्रकार आनन्द, आवेग, उत्साह तथा आशंका से श्री गदाधर के माता-पिता के दिन बीतने लगे और बालक ने प्रथम दिन से उनके तथा अन्य लोगों के हृदय पर जो मधुर आधिपत्य विस्तार किया था वह नित्यप्रति दृढ़ तथा घनीभूत होने लगा। क्रमशः चार-पाँच वर्ष बीत गए; इस काल में किसी समय श्री क्षुदिरामजी की कनिष्ठ कन्या सर्वमंगला का जन्म होना एक उल्लेखनीय घटना है।

वयोवृद्धि के साथ ही बालक गदाधर में अद्भुत मेधा तथा प्रतिभा के विकास को देखकर श्री क्षुदिरामजी विस्मित तथा आनन्दित हुए। चंचल [illegible] को गोद में लेकर जब वे अपने पूर्वजों के नाम एवं देव-देवियों के

छोटे स्तोत्र तथा प्रणामादि, अथवा रामायण, महाभारत के कोई विचित्र उपाख्यान उसे सुनाने बैठते, तब वे देखते थे कि सिर्फ एक बार सुनकर ही उनमें से अधिकांश को उसने कण्ठस्थ कर लिया है! बहुत दिनों के बाद भी पुनः उससे पूछने पर उन्हें यह दिखाई दिया कि वह हूबहू उन विषयों की आवृत्ति करने में समर्थ है। साथ ही उन्हें इस बात का भी परिचय मिला कि बालक कुछ विषयों को जिस प्रकार अत्यन्त आग्रह के साथ ग्रहण व धारण करता है, ठीक उसी प्रकार कुछ विषयों के प्रति वह पूर्ण उदासीन बना रहता है—हजारों चेष्टाएँ करने पर भी उनमें उसका अनुराग अंकुरित नहीं होता। गणित के पहाड़े आदि सिखाने में प्रवृत्त हो उस विषय का आभास पाकर उन्होंने यह सोचा था कि चपलमति बालक को इस अल्प आयु में उन विषयों को सिखाने के लिए कष्ट देने की कोई आवश्यकता नहीं है। किन्तु उसे अत्यधिक चंचल होता जा रहा देखकर पांचवें वर्ष में ही उन्होंने उसका यथाशास्त्र 'विद्यारम्भ' करा दिया तथा उसे पाठशाला भेजने लगे। इससे समवयस्क बालकों के साथ परिचित होने का अवसर पाकर बालक अत्यन्त प्रसन्न हुआ तथा अपने प्रेमपूर्ण व्यवहार के कारण वह शीघ्र ही उनका तथा शिक्षकों का अत्यन्त प्रेमपात्र बन गया।

गदाधर का विद्यारम्भ।

गाँव के जमींदार लाहा बाबुओं के घर के सम्मुखस्थित विशाल नाट्यमण्डप में पाठशाला लगती थी और मुख्य रूप से उनके ही खर्च पर नियुक्त एक शिक्षक के द्वारा उनके तथा समीपस्थ गृहस्थों के बालकों का अध्ययन कराया जाता था। तात्पर्य यह है कि लाहा बाबुओं ने ही गाँव के बालकों के कल्याणार्थ उक्त पाठशाला की प्रतिष्ठा की थी और वह स्थान श्री क्षुदिरामजी के घर से कुछ ही दूर पर था। प्रातःकाल तथा अपराह्न में प्रतिदिन दो बार पाठशाला लगती थी। छात्र-वर्ग प्रातःकाल पाठशाला आकर दो-तीन घण्टे तक पढ़ने के बाद नहाने-धोने तथा भोजन करने के लिए अपने-अपने घर चले जाते थे तथा अपराह्न में तीन-चार बजे पुनः एकत्रित हो शाम तक पढ़कर घर लौट जाते थे। गदाधर जैसे अल्पवयस्क छात्रों को यद्यपि इतने अधिक समय

लाहा बाबुओं की पाठशाला।

तक पढ़ना आवश्यक नहीं था, फिर भी उन्हें वहाँ उपस्थित रहना पड़ता था। अतः पढ़ने के समय पढ़कर वे वहीं बैठे रहते थे और कभी-कभी साथियों को लेकर पाठशाला के समीप ही खेलते रहते थे। पाठशाला के पुराने छात्र नवीन छात्रों को पाठ बताया करते थे तथा वे पुराने पाठों की नित्य आवृत्ति करते हैं या नहीं, इसकी भी देख-भाल किया करते थे।

इस प्रकार एक ही शिक्षक के द्वारा पाठशाला का कार्य सुचारु रूप से सम्पन्न हो जाता था। गदाधर जब प्रथम पाठशाला में प्रविष्ट हुआ उस समय श्री यदुनाथ सरकारजी वहाँ के शिक्षक थे। उसके कुछ दिन बाद नाना कारणों से उनके अवसर ग्रहण करने के पश्चात् श्री राजेन्द्रनाथ सरकार नामक एक व्यक्ति उनके स्थान पर आये तथा उन्होंने पाठशाला का कार्यभार संभाला।

बालक के विचित्र चरित्र के सम्बन्ध में क्षुदिरामजी का अनुभव।

बालक के जन्म से पूर्व उसके भावी महान् जीवन के सूचक जो अद्भुत स्वप्न तथा दर्शनादि श्री क्षुदिरामजी को हुए थे, वे सदा के लिए उनके हृदय पर सुदृढ़ रूप से अंकित हो चुके थे। इसलिए बाल्यचापल्य के कारण उसको किसी प्रकार का अशिष्टाचरण करते हुए देखकर भी साधारण रूप से निषेध करने के सिवाय वे कभी उसे कठोर दण्ड देने में समर्थ नहीं हुए। सबका प्रेमपात्र बनने के कारण अथवा अपने स्वभाववश ही बालक में समय-समय पर आज्ञा न मानने की प्रवृत्ति का उन्हें परिचय मिला था। किन्तु तदर्थ अन्य माता-पिताओं की तरह उसे डाँटना तो दूर रहा, प्रत्युत् वे यह सोचते थे कि उसी से बालक की भविष्य में विशेष उन्नति होगी। इस प्रकार सोचने के यथेष्ट कारण भी विद्यमान थे। वे देखते थे कि चंचल बालक कभी-कभी पाठशाला न जाकर साथियों को लेकर गाँव के बाहर खेलने में रत रहता था अथवा किसी से न कहकर समीप में कहीं भजन, नाटक इत्यादि में चला जाता था, फिर भी वह जब जो हठ करता था, उसे पूर्ण किए बिना कभी नहीं रहता था, मिथ्या का आश्रय लेकर कभी अपने किए हुए कर्म को छिपाने का वह प्रयास नहीं करता था तथा सबसे बड़ी बात यह थी कि उसका प्रेमपूर्ण हृदय उसे कभी भी दूसरों का अनिष्ट करने में प्रवृत्त नहीं करता था। ऐसा होने पर भी एक

नहीं देखना चाहिए ?' इस बात को सुनकर ऐसा कोई कारण निर्देश किए बिना कि जिससे वह समझ सके, उसे वे और जोर से फटकारने लगीं। ये स्त्रियाँ बहुत ही क्रुद्ध हो गई हैं और शायद घर जाकर हमारे माँ-बाप से बता देंगी, इस भय से सभी लड़के वहाँ से भाग गए। किन्तु गदाधर ने अपने मन में दूसरा ही संकल्प किया। वह दो तीन स्त्रियों के नहाते समय उस तालाब के किनारे वृक्ष की ओट में छिपकर उन्हें देखने लगा। अनन्तर पूर्वोक्त वृद्ध महिला के साथ भेंट होने पर उसने कहा 'परसों मैंने चार स्त्रियों की ओर उन्हें स्नान करते समय देखा, कल छः की ओर और आज तो आठ की ओर देखा, पर मुझे तो कुछ भी नहीं हुआ ?' तब श्रीमती चन्द्रादेवी के समीप आकर हँसती हुई उक्त वृद्धा महिला ने यह बात कह दी। यह सुनकर श्रीमती चन्द्रादेवी ने अवसर पा गदाधर को मधुर वचनों से समझाती हुई बोलीं, 'ऐसा करने से यद्यपि तुम्हें कुछ नहीं होता है, किन्तु महिलाएँ उसे अपने लिए विशेष अपमानजनक समझती हैं, वे मेरे ही सदृश हैं, इसलिए उनके अपमान से मेरा अपमान होता है। अतः फिर कभी ऐसा आचरण कर उनके सम्मान को ठेस न पहुँचाना, उन्हें तथा मुझे कष्ट देना क्या तुम्हारे लिए उचित है ?' इस बात को सुनने के पश्चात् बालक ने फिर कभी उस प्रकार का आचरण नहीं किया।

गदाधर की शिक्षा की उन्नति तथा विस्तार।

अस्तु, पाठशाला में जाने के बाद गदाधर की शिक्षा में भी अच्छी उन्नति होने लगी। स्वल्पकाल में ही वह सामान्य रूप से पढ़ने तथा लिखने लगा; किन्तु गणित से उसकी घृणा प्रायः एक-सी ही बनी रही। दूसरी ओर बालक में अनुकरण तथा उद्भाविनी शक्ति दिनोंदिन वृद्धिंगत होकर विभिन्न दिशाओं में प्रसारित होने लगी। गाँव के कुम्हारों को देव-देवियों की मूर्ति निर्माण करते हुए देखकर उनके समीप उपस्थित हो उनसे पूछताछ कर बालक अपने घर पर उस विद्या का अभ्यास करने लगा और वह उसके खेल के अन्यतम विषय के रूप में परिणत हुई। चित्रकारों से मिलकर वह उसी प्रकार चित्र तैयार करने लगा। गाँव में कहीं पुराणों की कथा अथवा नाटकादि होने का समाचार मिलते ही वहाँ जाकर शास्त्रीय उपाख्यानों को वह सीखने लगा एवं श्रोताओं के समीप उन्हें किस प्रकार से व्यक्त करने पर वे उनके

लिए विशेष रुचिकर हो सकते हैं, इस बात का वह पूर्ण रूप से ध्यान रखने लगा। बालक की अपूर्व स्मृतिशक्ति तथा मेधा उन विषयों में विशेष सहायक बनीं।

सदा आनन्द में निमग्न गदाधर की परिहासप्रियता ने उसकी अद्भुत अनुकरणशक्ति के साहचर्य से प्रबुद्ध होकर उसी आयु में एक ओर जिस प्रकार उसे नर-नारियों की विशेष-विशेष चेष्टाओं का अभिनय करने के लिए प्रवृत्त किया, दूसरी ओर ठीक उसी प्रकार अपने जनक-जननी के दैनिक आचरणों को देखकर उसके हृदय की सहज सरलता तथा देवभक्ति के भावों ने अत्यन्त शीघ्रता के साथ विकास किया। बड़े होकर बालक ने आजीवन इस बात को हृदय से स्मरण तथा स्वीकार किया है। दक्षिणेश्वर में हमसे कही हुई उनकी निम्नलिखित बातों से पाठक स्वयं इसकी यथार्थता का अनुभव कर सकेंगे—'मेरी माता सरलता की मूर्ति थीं। संसार की मामूली मामूली बातें वह नहीं समझती थीं। रुपये-पैसे गिनना तक नहीं जानती थीं। किससे क्या छिपाना चाहिए, यह विदित न होने के कारण अपने पेट की बातें सबसे कह बैठती थीं, इसलिए लोग उन्हें 'भोली' कहा करते थे। सबको भोजन कराना उनके लिए अत्यन्त प्रिय था। मेरे पिता ने शूद्रों से दान कभी नहीं लिया; दिन में अधिकांश समय वे पूजन, जप, ध्यानादि किया करते थे, प्रतिदिन सन्ध्या-वन्दन करते हुए जब वे 'आयाहि वरदे देवि' इत्यादि गायत्री के आवाहन मंत्रों का उच्चारण करते थे, उस समय उनका वक्षःस्थल आरक्त हो उठता था और नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती थी। और जब पूजनादि से निवृत्त होने के बाद उन्हें अवकाश मिलता था उस समय वे सूई-धागा तथा पुष्प लेकर श्रीरघुवीर के श्रृंगार के लिए माला बनाने में समय बिताया करते थे। झूठी गवाही देने के भय से उन्होंने अपनी पैतृक भूमि को त्याग दिया था। ग्रामवासी उन्हें ऋषि के समान सम्मान तथा भक्ति की दृष्टि से देखते थे।'

बालक के असीम साहस का परिचय भी क्रमशः मिलने लगा। वयोवृद्ध लोग जहाँ भूत-प्रेत के भय से शंकित होते थे, बालक निडर होकर वहाँ आया जाया करता था। उनकी बुआ श्रीमती रामशीला पर कभी-कभी श्रीशीतला देवी का

बालक का साहस।

भावावेश होता था। उस समय उनमें सम्पूर्ण परिवर्तन हो
था। उस समय कामारपुकुर में अपने भाई के समीप वे रहत
दिन अकस्मात् उनके उस प्रकार का भावावेश होने पर परि
लोग भयभीत हो उठे, साथ ही उनके मन में भक्ति का भी
गदाधर ने भी उनके उस आवेश को श्रद्धा के साथ देखा, किन्
किंचिन्मात्र भी न डरा, उनके समीप बैठकर उसने अत्यन्त ध्या
परिवर्तन को देखा और बाद में यह कहा, 'बुआजी के शरीर
आयी है, वैसी ही मेरे भी शरीर में आये तो बहुत अच्छा हो।'

कामारपुकुर से आधा कोस उत्तर में अवस्थित भूर
भूरशोभा नामक गाँव के दाता तथा भक्त ज़मींदार माणिकर
हम पहले ही कह चुके हैं। श्री क्षु
धर्मपरायणता से आकृष्ट होकर वे उ
घनिष्ट मित्र बन चुके थे। एक दिन
के साथ माणिकराज के घर पर जाकर

बालक की मिलन-शक्ति।

बालक गदाधर ने चिर परिचित व्यक्ति की तरह निस्संकोच
लोगों के साथ ऐसा मधुर आचरण किया कि उसी दि
उनका प्रिय बन गया। माणिकराज के भाई श्री रामजय
उस दिन बालक को देखकर मुग्ध हो श्री क्षुदिरामजी से
तुम्हारा यह पुत्र साधारण नहीं है, ऐसा प्रतीत होता है कि इ
विशेष रूप से विद्यमान है! जब कभी भी तुम इधर आओ, इसे
ले आना, इसे देखकर बड़ा आनन्द होता है।' इस घटना
कारणों से कुछ दिन तक श्री क्षुदिरामजी माणिकराज के घ
सके। इसलिए माणिकराज ने अपने परिवार की एक महिला
लेने तथा यदि स्वस्थ हो तो गदाधर को कुछ देर के लिए भूर
लाने के निमित्त भेजा। पिता के आदेशानुसार बालक अत्यन
पूर्वक उस रमणी के साथ जाकर दिन भर वहाँ रहने के पश्चा
से पूर्व विविध मिष्टान्न तथा उपहारस्वरूप कुछ आभूषण
कामारपुकुर लौटा। गदाधर क्रमशः उस ब्राह्मण परिवार का इ
बन गया कि उसे साथ लेकर श्री क्षुदिरामजी के भूरसुबो ज
दिन विलम्ब होने पर वे ही किसी को भेजकर उसे लिवा ले

इस प्रकार दिन, पक्ष तथा महीने बीतने लगे और बालक धीरे-धीरे सप्तम वर्ष में प्रविष्ट हुआ। शैशव का माधुर्य घनीभूत होने के फलस्वरूप दिनों दिन वह सबका अधिकाधिक प्रिय होने लगा। गाँव की महिलाएँ अपने घर पर कोई सुन्दर खाद्यवस्तु तैयार करते समय उसका कुछ अंश उसे कैसे खिलाया जाय, इस बात को पहले सोचा करती थीं, अपने घर के भोज्यपदार्थ गदाधर के साथ बाँटकर खाने से ही उसके समवयस्क बालक-बालिकाओं को परम तृप्ति का अनुभव होता था। पड़ोस के सब कोई उसके मधुर वचन, संगीत तथा आचरणों से मुग्ध होकर उसके बाल्य-चापल्य को आनन्द के साथ सहन करते थे। उस समय की एक घटना से उसके माता-पिता तथा बन्धुवर्ग उसके विषय में विशेष चिन्तित हो उठे। ईश्वर-कृपा से जन्म से ही गदाधर का शरीर स्वस्थ तथा मजबूत था और जन्म के बाद अब तक वह कभी विशेष बीमार नहीं हुआ था। इसलिए गगनचर पक्षी की तरह बालक अपूर्व स्वतंत्रता तथा मानसिक प्रसन्नता से दिन बिताया करता था। शरीर के बारे में किसी प्रकार का ध्यान न देना ही प्रसिद्ध चिकित्सक वर्ग के मतानुसार पूर्ण स्वस्थता का लक्षण माना जाता है। बालक जन्म से ही उस प्रकार का स्वास्थ्य-सुख अनुभव कर रहा था। इतना ही नहीं, जब उसका स्वाभाविक एकाग्र चित्त किसी विशेष विषय में निविष्ट होता था, तब वह शरीर की सुध-बुध भूलकर पूर्ण रूप से भावाविष्ट हो जाता था। शुद्ध पवन से लहराते हुए हरे-भरे खेत, नदियों के विरामहीन प्रवाह, पक्षियों का कलरव एवं सर्वाधिकरूप से सुनील गगन तथा उसके मध्यवर्ती प्रतिक्षण परिवर्तन-शील मेघपुंज के मायाराज्य आदि जब जो दृश्य अपनी रहस्यमय प्रतिमूर्ति की महिमा को उसके सम्मुख विस्तार कर उसे आकृष्ट करता था, तभी वह बालक आत्मविस्मृत होकर भावराज्य के किसी सुदूर प्रदेश में पहुँच जाता था। वर्तमान घटना भी उसी भावावेश से उपस्थित हुई थी।* एक दिन मैदान में अपनी इच्छानुसार भ्रमण करता हुआ बालक नवीन

गदाधर की चिन्ताशीलता का असाधारण परिणाम।

* इस घटना के सम्बन्ध में श्रीरामकृष्ण देव की अपनी उक्ति को "साधकभाव—द्वितीय अध्याय" में देखिए।

मेघ के अंक में बगुलों को अपने श्वेत पंखों का विस्तार कर सुन्दर तथा स्वतंत्र रूप से विचरण करते हुए देखकर इस प्रकार तन्मय हो उठा कि उसे अपने शरीर तथा सांसारिक विषयों का कुछ भी ज्ञान न रहा और वह बेहोश होकर वहीं गिर पड़ा। उसकी इस अवस्था को देख भयभीत हो साथियों ने उसके माता-पिता को समाचार दिया और उसे वहाँ से उसी हालत में उठाकर घर लाया गया। चेतना प्राप्त करने के कुछ देर बाद ही वह अपने को पूर्ववत् स्वस्थ अनुभव करने लगा। यह कहना ही अधिक है कि इस घटना से श्री क्षुदिरामजी तथा चन्द्रादेवी अत्यन्त चिन्तित हुए तथा भविष्य में इसकी पुनरावृत्ति न हो इसलिए वे विशेष सचेष्ट हुए। फलतः उस घटना से बालक में मूर्छारूप भयंकर रोग के प्रारम्भ को देखकर औषधादि का प्रयोग तथा शान्ति-स्वस्त्ययनादि शुभ कर्मों का वे अनुष्ठान करने लगे। किन्तु उक्त घटना के बारे में बालक गदाधर ने उनसे बारम्बार यही कहा कि एक अभिनव तथा अदृष्टपूर्व भाव में उसका मन लीन हो जाने के कारण ही उसकी ऐसी अवस्था हुई थी एवं बाहर अन्य रूप से प्रतीत होने पर भी उसके अन्दर चेतना तथा एक अपूर्व आनन्दानुभूति विद्यमान थी। अस्तु, उस समय पुनः उस प्रकार की घटना न होने के कारण तथा उसके स्वास्थ्य में भी कोई व्यतिक्रम न देखकर श्री क्षुदिरामजी ने यह सोचा कि वायु के प्रकोप से ही बालक अकस्मात् अचेत हो गया था और श्रीमती चन्द्रादेवी का यह दृढ़ निश्चय हुआ कि भूत-प्रेतों की दृष्टि पड़ने से ही उसको ऐसा हुआ था। किन्तु उस घटना के निमित्त उन्होंने कुछ दिन तक बालक को पाठशाला नहीं जाने दिया। फलस्वरूप पड़ोसियों के घर में तथा गाँव में सर्वत्र इच्छानुसार विचरण कर बालक पहले की अपेक्षा और अधिक खेल-कूद में तत्पर हो गया।

इस प्रकार बालक का सातवाँ वर्ष आधे से अधिक बीत गया। क्रमशः सन् १८४३ के शारदीय दुर्गापूजन का समय उपस्थित हुआ।

रामचांद के घर पर श्रीदुर्गापूजन।

श्री क्षुदिराम जी के सुयोग्य भांजे रामचांद वन्द्योपाध्याय की चर्चा हम इससे पहले ही कर चुके हैं। मेदिनीपुर में काम करते रहने के कारण यद्यपि वर्ष में अधिक समय उन्हें वहीं

रहना पड़ता था, किन्तु सेलामपुर नामक गाँव में उनका पैतृक निवास स्थान था; एवं उनका परिवारवर्ग वहीं रहा करता था। रामचांदजी उस गाँव में प्रति वर्ष शारदीय दुर्गापूजन का आयोजन कर बहुत रुपये खर्च किया करते थे; हृदयरामजी से हमने सुना है कि दुर्गापूजन के अवसर पर रामचांदजी का सेलामपुर का भवन आठ दिन तक संगीत तथा वाद्य-ध्वनि से गूँजता रहता था; एवं ब्राह्मण-भोजन, पंडितों की बिदाई, दरिद्र-सेवा तथा उन्हें वस्त्रदान इत्यादि कार्यों के अनुष्ठान से उस समय वहाँ एक अपूर्व आनन्दस्रोत प्रवाहित होता था। रामचांदजी उस उपलक्ष्य में अपने परम श्रद्धास्पद मामाजी को वहाँ ले जाकर कुछ दिन उनके साथ आनन्दपूर्वक रहा करते थे। उस वर्ष भी श्री क्षुदिरामजी तथा उनके परिवारवर्ग को रामचांदजी का सादर निमंत्रण यथासमय प्राप्त हुआ।

क्षुदिरामजी तथा रामकुमारजी का रामचांद के घर में आगमन।

श्री क्षुदिरामजी उस समय लगभग ६८ वर्ष की आयु का अतिक्रम कर रहे थे और कुछ दिन पहले से ही बीच-बीच में अजीर्ण तथा संग्रहणी रोग से आक्रांत होने के कारण उनका सुदृढ़ शरीर कमजोर हो चुका था। इसलिए प्रिय भानजे रामचांद का सादर आमंत्रण पाकर उसके यहाँ जाने की इच्छा होने पर भी वे कुछ संकोच अनुभव करने लगे; अपने दरिद्र कुटीर तथा परिवारवर्ग को, विशेषकर गदाधर को कुछ दिन के लिए छोड़कर वहाँ जाने में भी उन्हें अकारण प्रबल अनिच्छा महसूस हुई। साथ ही वे यह सोचने लगे कि मेरा शरीर जिस प्रकार दिनों दिन दुर्बल होता जा रहा है, उसे देखते हुए इस वर्ष वहाँ न जाने पर भविष्य में फिर कभी मेरे लिए वहाँ जाना सम्भव होगा अथवा नहीं, यह कौन कह सकता है। अतः उन्होंने गदाधर को साथ ले जाने का निश्चय किया। दूसरे ही क्षण वे सोचने लगे कि गदाधर को साथ ले जाने से श्रीमती चन्द्रा बहुत चिन्तित रहेगी। अतः बाध्य हो अपने ज्येष्ठ पुत्र रामकुमार के साथ वहाँ जाकर केवल पूजन के दिनों में वहाँ रहने का उन्होंने निश्चय किया एवं तदनुसार श्रीरघुवीर को प्रणाम कर सब से विदा ले तथा गदाधर का मुख चुम्बन करने के पश्चात् पूजा से कुछ दिन पूर्व वे सेलामपुर के लिए रवाना हुए। रामचांदजी भी अपने

पूज्य मामाजी तथा भाई रामकुमार को अपने यहाँ आये हुए देखकर आनन्दित हुए।

वहाँ पहुँचने के बाद ही श्री क्षुदिरामजी पुनः संग्रहणी रोग से पीड़ित हुए तथा उनकी चिकित्सा होने लगी। आश्विन शुक्ला षष्ठी, सप्तमी तथा अष्टमी पूजन के ये तीनों दिन अत्यन्त आनन्दपूर्वक बीत गए। किन्तु नवमी पूजन के दिन उस आनन्दधारा में बाधा उपस्थित हुई। श्री क्षुदिरामजी के रोग ने अत्यन्त प्रबल रूप धारण किया। रामचांदजी वैद्यों को बुलवाकर एवं अपनी बहिन हेमांगिनी तथा रामकुमार की सहायता से यत्नपूर्वक उनकी सेवा करने लगे। किन्तु पूर्व संचित रोग के उपशम होने का कोई लक्षण दिखाई नहीं दिया। नवमी का दिन तथा रात किसी प्रकार बीत गई तथा हिन्दुओं की परस्पर मिलन की विशेष पवित्र तिथि 'विजया-दशमी' का प्रभात हुआ। श्री क्षुदिरामजी इतने दुर्बल हो गए कि बोलना भी उनके लिए कष्टप्रद हो उठा।

श्री क्षुदिरामजी की बीमारी तथा देहावसान।

क्रमशः अपराह्न का समय उपस्थित होने पर दुर्गाप्रतिमा विसर्जन करने के पश्चात् तत्काल ही अपने मामाजी के समीप पहुँचकर रामचांदजी ने देखा कि उनका प्रायः अन्तिम काल समीप आ गया है। पूछने पर उन्हें विदित हुआ कि श्री क्षुदिरामजी बहुत देर से बिना बोले चुपचाप अचेत जैसे पड़े हुए हैं। तब रामचांदजी रोते हुए उनको पुकारकर कहने लगे, "मामाजी, आप तो सदैव ही 'रघुवीर रघुवीर' कहा करते थे, अब क्यों नहीं कह रहे हैं?" 'रघुवीर' नाम सुनते ही श्री क्षुदिरामजी होश में आ गए और धीमे कम्पित स्वर में उन्होंने कहा, "कौन? राम-चांद, प्रतिमा विसर्जित कर आए? अब एक बार मुझे उठाकर बिठा दो।' अनन्तर रामचांदजी, हेमांगिनी तथा रामकुमारजी इन तीनों ने मिलकर उन्हें धीरे से उठा शय्या पर बैठाते ही अत्यन्त गम्भीर स्वर से तीन बार 'रघुवीर' नामोच्चरण करके उन्होंने अपना शरीर त्याग दिया; बिन्दु सिन्धु में मिल गया—श्रीरघुवीर ने भक्त के पृथक् जीवन-बिन्दु को निज अनन्त जीवन में सम्मिलित कर उन्हें अमर तथा पूर्ण शान्ति का अधिकारी बना लिया। तदनन्तर गंभीर रात्रि में संकीर्तन की ध्वनि से

गाँव गूंज उठा एवं श्री क्षुदिरामजी की देह को नदी के तट पर लाकर उसका अग्निसंस्कार किया गया। दूसरे दिन वह समाचार फैल गया और उससे कामारपुकुर का आनन्दधाम विषाद में निमज्जित हो गया।

अशौच के अनन्तर श्री रामकुमारजी ने शास्त्रीय विधानानुसार 'वृषोत्सर्ग' तथा अनेक ब्राह्मणों को भोजन कराकर अपने पिताजी की अन्त्येष्टि क्रिया पूर्ण की। सुना जाता है कि अपने मामाजी की श्राद्ध-क्रिया में श्री रामचांदजी ने पांच सौ रुपये की सहायता की थी।

सप्तम अध्याय

गदाधर की किशोर अवस्था

श्री क्षुदिरामजी के देहावसान से उनके परिवारवर्ग के जीवन में विशेष परिवर्तन उपस्थित हुए। विधि के विधान से, दीर्घ ४४ वर्ष तक सुख-दुःख में श्रीमती चन्द्रादेवी के जो जीवन-सहचर थे, उनसे वियुक्त होकर अब संसार को शून्य देखना तथा अपने हृदय में चिरस्थायी रूप से एक अभाव का प्रतिक्षण अनुभव करना उनके लिए स्वाभाविक था, यह कहने की आवश्यकता नहीं। इसलिए श्रीरघुवीर के पादपद्मों की शरण लेने में सदा अभ्यस्त उनके मन की गति, अब संसार को त्यागकर उस ओर निरन्तर प्रवाहित होने लगी। किन्तु मन सब कुछ छोड़ने को प्रस्तुत होने पर भी जब तक समय पूर्ण नहीं होता, तब तक संसार उसे कैसे छोड़ सकता है? सात वर्ष के पुत्र गदाधर तथा चार वर्ष की कन्या सर्वमंगला की चिन्ता के सहारे पुनः संसार उनके अन्दर प्रविष्ट हो उनके चित्त को दैनिक जीवन के सुख-दुःख की ओर धीरे-धीरे आकृष्ट करने लगा। अतः श्रीरघुवीर की सेवा तथा कनिष्ठ पुत्र-कन्या के पालन में नियुक्त हो श्रीमती चन्द्रादेवी के दुःख के दिन किसी प्रकार बीतने लगे।

क्षुदिरामजी की मृत्यु से उनके परिवारवर्ग के जीवन में जो परिवर्तन उपस्थित हुए, उनका विवरण।

दूसरी ओर पितृवत्सल रामकुमारजी के कन्धों पर अब संसार का सारा बोझ आ जाने से उनके लिए वृथा शोक में कालक्षेप करने का अवसर न रहा। जिससे शोकसन्तप्ता जननी एवं अल्पवयस्क भाई तथा बहिन को अभावग्रस्त होने के कारण किसी प्रकार का कष्ट न हो, अठारह वर्ष के मध्यम भाई रामेश्वर स्मृति-शास्त्र तथा ज्योतिषादि का अध्ययन समाप्त करके जिससे घर में आर्थिक सहायता कर सके, स्वयं भी जिससे पहले की अपेक्षा अपनी आय को बढ़ाकर पारिवारिक स्थिति को उन्नत

बना सकें—इस प्रकार की विभिन्न चिन्ताओं तथा कार्यों में संलग्न रहते हुए अब उनके दिन बीतने लगे। उनकी कर्मकुशल गृहिणी ने भी चन्द्रादेवी की असमर्थता को देखकर परिवारवर्ग के भोजन तथा घर के अन्यान्य कार्यों की व्यवस्था का अधिकांश भार अपने ऊपर ले लिया।

उक्त घटना से गदाधर की मानसिक स्थिति।

विज्ञ व्यक्तियों का कहना है कि शैशवकाल में मातृवियोग, किशोर अवस्था में पितृवियोग तथा यौवन में पत्नीवियोग से जीवन में जो अभाव उपस्थित होता है, वैसा सम्भवतः और किसी घटना से नहीं देखा जाता है। माता का प्रेम ही शैशव का प्रधान अवलम्बन होने के कारण पिता का देहान्त हो जाने पर भी उनके अभाव को उस समय शिशु समझ नहीं पाता है। किन्तु बुद्धि के उन्मेष के साथ ही साथ किशोर अवस्था में उस शिशु को जब अपने पिता के अमूल्य प्यार का क्रमशः परिचय मिलता है, स्नेहमयी जननी उसके जिन अभावों को पूर्ण करने में असमर्थ हैं, पिता के द्वारा उन अभावों से मुक्त होने पर जब उसका हृदय अपने पिता की ओर आकृष्ट होने लगता है, उस समय पितृवियोग होने पर उसके जीवन में अभाव बोध की कोई सीमा नहीं रहती है। पितृवियोग से गदाधर की अवस्था भी वैसी ही हुई थी। प्रतिदिन की नाना प्रकार की सामान्य घटनाओं से पिताजी के वियोग की अनुभूति जाग्रत होने के कारण उसके हृदय के अन्तःस्तल में निरन्तर विषाद की प्रगाढ़ कालिमा छाई रहती थी। किन्तु उसका मन तथा बुद्धि उस छोटी आयु में ही दूसरों की अपेक्षा अधिक परिपक्व होने से माता की ओर देखकर वह अपने हृद्गत भावों को बाहर व्यक्त नहीं करता था। सब कोई यह देखते थे कि बालक पहले की तरह सदा आनन्द-पूर्वक हँसी-खुशी में दिन बिता रहा है। 'भूती की पोखरी' में अवस्थित श्मशान भूमि तथा माणिकराज की अमराई आदि गाँव के निर्जन स्थलों पर कभी-कभी एकाकी उसे घूमते हुए देखकर भी बाल्य-चापल्य के सिवाय वह और किसी कारण से वहाँ उपस्थित हुआ है, यह बात कभी भी किसी के मन में उदित नहीं होती थी। परन्तु बालक उस समय से ही चिन्ताशील तथा निर्जनप्रिय होने लगा तथा सांसारिक

व्यक्तियों को अपने चिन्तन का विषय बनाकर उनके आचरणों को विशेष ध्यानपूर्वक देखने लगा।

उस समय चन्द्रादेवी के प्रति गदाधर का आचरण।

संसार में एक-सा अभावबोध ही मानवों को परस्पर के प्रति आकृष्ट करता है। इसीलिए सम्भवतः बालक को उस समय अपनी माता के प्रति एक विशेष आकर्षण का अनुभव होने लगा। पहले की अपेक्षा वह अधिक समय उनके समीप रहने एवं देव-सेवा तथा घर के काम-काजों में उनकी यथासाध्य सहायता करने में विशेष आनन्दानुभव करने लगा। गदाधर के समीप रहने पर जननी अपने जीवन के अभाव को प्रायः भूली रहती थीं, इस बात को समझने में बालक को विलम्ब न लगा। किन्तु माता के प्रति उस समय उसका आचरण कुछ भिन्न प्रकार का होने लगा। पिता की मृत्यु के बाद अब बालक चन्द्रादेवी से किसी वस्तु को प्राप्त करने के लिए पहले की तरह कभी भी हठ नहीं करता था। उसे इस बात का ज्ञान था कि माँ उस वस्तु को देने में असमर्थ होने पर शोकाग्नि से पुनः पीड़ित होंगी तथा उससे उनको विशेष कष्ट का अनुभव होगा। तात्पर्य यह है कि पिता के वियोग में जननी की सर्वदा रक्षा करने की भावना उसके हृदय में जग उठी।

गदाधर की उस समय की चेष्टाएं तथा साधुओं से भेंट।

गदाधर पाठशाला में जाकर पहले की भाँति पढ़ने लगा। किन्तु पुराणों की कथा सुनना, नाटकादि देखना तथा देवी-देवताओं की मूर्तियों का निर्माण करना उस समय उसके लिए अत्यन्त प्रिय हो उठा। उन विषयों के सहारे पिता के अभाव को अनेकांश में भूला जा सकता है ऐसा समझकर ही सम्भवतः उसने उन विषयों का विशेष रूप से अवलम्बन किया था। बालक उस समय अपने असामान्य स्वभाव के कारण एक अभिनव विषय में प्रवृत्त हुआ था। कामारपुकुर की आग्नेय दिशा में पुरीधाम जाने के रास्ते पर यात्रियों की सुविधा के लिए जमींदार लाहा बाबुओं ने एक धर्मशाला स्थापित की थी। श्रीजगन्नाथदेव के दर्शन के लिए जाते तथा वहाँ से लौटते समय साधु-सन्त प्रायः वहाँ आश्रय ले गाँव में जाकर भिक्षा ग्रहण किया करते

थे। गदाधर ने संसार की अनित्यता की बात पहले ही सुन रखी थी तथा पिता की मृत्यु से उसका साक्षात् परिचय भी उसे प्राप्त हुआ था। साधु-सन्त अनित्य संसार को परित्यागपूर्वक श्रीभगवान् के दर्शनाकांक्षी होकर समय व्यतीत करते हैं एवं साधु-संग मानव को चरम शान्ति प्रदान कर कृतार्थ करता है, पुराणों की कथाओं से इन बातों को जानकर साधुओं से परिचित होने की आशा से बालक उस समय प्रायः उस धर्मशाला में आने-जाने लगा। प्रातः तथा सायंकाल धूनी की पवित्र अग्नि को उद्दीप्त कर वे जिस प्रकार ध्यानमग्न होते हैं, भिक्षालब्ध सामान्य भोजन सामग्री का अपने इष्टदेव को भोग लगाकर प्रसन्न चित्त से जैसे वे उस प्रसाद को ग्रहण करते हैं, अत्यन्त रोगग्रस्त होने पर जिस प्रकार वे श्रीभगवान् पर निर्भर हो बिना व्याकुलता के उस कष्ट को सहन करने का प्रयास करते हैं, अपने विशेष प्रयोजन की सिद्धि के निमित्त भी जिस प्रकार वे कभी किसी को कोई कष्ट नहीं देते हैं तथा इसके साथ ही साथ साधुओं की तरह वेशभूषा धारण कर कपटी लोग जिस प्रकार समस्त सदाचारों के विपरीत आचरण करते हुए अपने स्वार्थसाधन के निमित्त जीवन बिताते रहते हैं — इन विषयों को अवसर मिलने पर बालक उस समय विशेष ध्यानपूर्वक देखने लगा। यथार्थ साधुओं को देखकर उनकी रसोई के लिए लकड़ी एकत्रित करना तथा उनके पीने का जल लाना आदि छोटे-छोटे कार्यों में उनकी सहायता करता हुआ क्रमशः वह उनके साथ घनिष्ठ रूप से मिलने लगा। वे भी सुन्दर बालक के मधुर आचरणों से परितृप्त हो उसे भगवद्भजन की शिक्षा, नाना प्रकार से सदुपदेश तथा प्रसादी भिक्षान्न के कुछ अंश देकर उसके साथ बैठकर भोजन करने में आनन्दानुभव करने लगे। यह बात अवश्य है कि जो साधु-सन्त उक्त धर्मशाला में किसी कारणवश अधिक दिन तक रहते थे, उन्हीं के साथ बालक इस प्रकार मिलने-जुलने में समर्थ हुआ।

गदाधर की आयु जिस समय आठ वर्ष की थी, उस समय कुछ साधुओं को अत्यधिक मार्ग श्रम के निमित्त अथवा अन्य किसी कारण से लाहा बाबुओं की धर्मशाला में अधिक दिन तक रहना पड़ा था। बालक पूर्वोक्त रूप से उनके साथ मिलकर बहुत शीघ्र ही उनका प्रेमपात्र बन गया। उनसे उसकी इस प्रकार मिलने की खबर प्रारम्भ

में किसी को विदित न हुई, किन्तु बालक उनके साथ घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित होकर उनके समीप अधिक समय तक रहने लगा, तब किसी से वह बात छिपी न रही। किसी-किसी दिन उनके साथ अधिक भोजन करने के पश्चात् घर आकर वह कुछ भी नहीं खाया करता था। जब चन्द्रादेवी ने इसका कारण पूछा तब उसने सब कुछ उनसे निवेदन किया। श्रीमती चन्द्रादेवी यह सुनकर सर्वप्रथम तो उद्विग्न न हुईं; बालक के प्रति साधुओं की प्रसन्नता को आशीर्वाद स्वरूप मानकर वे उसके द्वारा अधिकाधिक भोजन सामग्री उनके समीप भेजने लगीं; किन्तु तदनन्तर बालक जब किसी दिन भस्मविभूषित होकर, किसी दिन तिलक लगाकर और किसी दिन अपने पहनने के वस्त्र को फाड़कर साधुओं की तरह कौपीन पहनकर या पंछा लपेटकर घर आकर 'माँ, देखो साधुओं ने मुझे कैसे सजाया है' यह कह उनके सम्मुख उपस्थित होने लगा, तब चन्द्रादेवी का मन अत्यन्त उद्विग्न हुआ। वे सोचने लगीं कि कहीं साधु लोग किसी दिन उनके पुत्र को भुलावा देकर अपने साथ तो नहीं ले जायेंगे? इस प्रकार की आशंका को गदाधर के समक्ष व्यक्त कर एक दिन वे आँसू बहाने लगीं। बालक नाना प्रकार से समझाकर भी उन्हें शान्त न कर सका। तब उसने अपने मन में साधुओं के समीप फिर कभी न जाने का संकल्प किया और जननी से यह बात कहकर उन्हें निश्चिन्त किया। अनन्तर पूर्वोक्त संकल्प को कार्य में परिणत करने से पूर्व गदाधर अन्तिम विदा लेने के लिए साधुओं के समीप पहुँचा। साधुओं के द्वारा इस बात का कारण पूछे जाने पर उसने जननी की आशंका की बात उनसे बतलाई। उसे सुनकर गदाधर के साथ वे श्रीमती चन्द्रादेवी के समीप उपस्थित होकर उन्हें विशेष समझाकर कहने लगे कि गदाधर को इस प्रकार अपने साथ ले जाने का संकल्प उनके मन में कभी भी उदित नहीं हुआ है तथा माता-पिता की अनुमति लिए बिना इस प्रकार अल्पवयस्क बालक को अपने साथ ले जाना उनकी दृष्टि में अपहरणरूप महान् अपराध है तथा किसी भी साधु के लिए यह अनुचित कार्य है। इस बात को सुनकर चन्द्रादेवी के

साधुओं से मिलने के कारण चन्द्रादेवी को आशंका तथा उसकी निवृत्ति।

मन में पूर्व आशंका का आभासमात्र न रहा तथा साधुओं की प्रार्थनानुसार उन्होंने बालक को उनके समीप पहले की तरह जाने की अनुमति दी।

दूसरी बार गदाधर को भाव-समाधि।

उस समय की अन्य एक घटना से भी श्रीमती चन्द्रादेवी गदाधर के लिए अत्यन्त चिन्तित हुई थीं। लोगों की इस प्रकार धारणा हुई थी कि वह घटना आकस्मिक है, किन्तु यह निश्चित है कि बालक की भावप्रवणता तथा चिन्ताशीलता की वृद्धि ही उसके घटित होने का मुख्य कारण था। कामारपुकुर से प्रायः एक कोस उत्तर में अवस्थित आनूर नामक ग्राम की सुप्रसिद्ध श्रीविशालाक्षी देवी के दर्शन के लिए जाते समय एक दिन मार्ग में वह मूर्च्छित हो गया था। धर्मदास लाहाजी की पवित्र चरित्रशालिनी पुत्री श्रीमती प्रसन्नमयी ने उस दिन यह अनुभव किया था कि भावुकता के कारण ही बालक को मूर्छा हुई है। किन्तु चन्द्रादेवी उस बात पर विश्वास न कर, वायुरोग अथवा अन्य किसी कारण से ऐसा हुआ है यह मानकर चिन्तित हुई थीं।* पर बालक ने इस बार भी पहले की भाँति यह कहा था कि देवी का चिन्तन करता हुआ उसका मन उनके श्रीपादपद्मों में लीन हो जाने के कारण ही उसकी वह अवस्था हुई थी।

गदाधर के मित्र गयाविष्णु।

इस प्रकार दो वर्ष से कुछ अधिक समय बीत जाने पर बालक क्रमशः पिता के अभाव को भूलकर दैनिक जीवन के सुख-दुःख में मग्न रहने लगा। गदाधर के पितृबन्धु श्री धर्मदास लाहाजी की चर्चा हम इससे पहले ही कर चुके हैं। उनके पुत्र गयाविष्णु के साथ बालक का उस समय सौहार्द स्थापित हो चुका था। एक साथ पढ़ने-लिखने तथा उठने-बैठने के कारण दोनों परस्पर के प्रति आकृष्ट होकर क्रमशः आपस में वे एक दूसरे को मित्र कहकर सम्बोधन करने तथा प्रतिदिन अधिकांश समय एक साथ रहने लगे। पड़ोस की महिलाएँ जब गदाधर को पहले की तरह स्नेहपूर्वक अपने घर बुलाती

---

* इस घटना का विस्तृत विवरण "साधक भाव" के दूसरे अध्याय में देखिए।

तथा भोजन कराती थीं। उस समय वह अपने मित्र को साथ लिए बिना कहीं न जाता था। बालक की धाय लुहारपुत्री धनी मिठाई, लड्डू आदि अत्यन्त यत्नपूर्वक तैयार कर जब उसे उपहार देती थी तब अपने मित्र को उसका अंश दिए बिना वह कभी भी भोजन नहीं करता था। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इन दोनों बालकों की इस प्रकार की मित्रता को देखकर श्री धर्मदासजी तथा गदाधर के अभिभावकवर्ग अत्यन्त आनन्दित हुए थे।

अस्तु, गदाधर का नवम वर्ष समाप्त होने जा रहा है यह देखकर श्री रामकुमारजी उसके यज्ञोपवीत का आयोजन करने लगे। लुहारपुत्री धनी ने कुछ काल पूर्व किसी समय बालक से यह प्रार्थना की थी कि यज्ञोपवीत के समय सर्वप्रथम वह उसकी भिक्षा को स्वीकार कर उसे मातृ-सम्बोधन से कृतार्थ करे। उसके अकृत्रिम स्नेह से मुग्ध होकर बालक ने भी उसकी अभिलाषा को पूर्ण करना स्वीकार किया था। बालक की बात पर विश्वास स्थापन कर दरिद्र धनी तभी से यथासाध्य धन संग्रह तथा संचय कर अत्यन्त आग्रह के साथ उस समय की प्रतीक्षा कर रही थी। उस समय को उपस्थित देखकर गदाधर ने अपने अग्रज से उस बात को निवेदन किया। किन्तु उनके वंश में कभी उक्त प्रकार की प्रथा प्रचलित न रहने के कारण श्री रामकुमारजी ने उसमें आपत्ति की। बालक भी अपने वचन को स्मरण कर उस विषय में जिद करने लगा। उसने कहा कि ऐसा न करने से उसे सत्यभंग के अपराध में अपराधी होना पड़ेगा तथा झूठ बोलनेवाले व्यक्ति ब्राह्मणोचित यज्ञसूत्र धारण करने के कभी भी अधिकारी नहीं हो सकते। यज्ञोपवीत का काल सन्निकट देखकर पहले ही से सब कुछ आयोजन किया जा चुका था, बालक की उस जिद से वह कार्य प्रायः स्थगित होने की स्थिति पर पहुँचा। क्रमशः यह बात श्री धर्मदास लाहाजी के कान में पहुँची। तब दोनों पक्ष के विवाद को मिटाने में प्रवृत्त हो उन्होंने श्री रामकुमारजी से कहा कि उनके वंश में इससे पहले उस प्रकार का कोई कार्य न होने पर भी अन्यत्र अनेक सद्ब्राह्मण परिवार में उक्त प्रथा देखी जाती है। अतः उससे जब उनकी निन्दा होने की कोई सम्भावना नहीं है, तब बालक के संतोष तथा

गदाधर के यज्ञोपवीत का वृत्तान्त।

शान्ति के लिए ऐसा करने में कोई दोष नहीं है। प्रवीण पितृसुहृद धर्मदासजी के कथनानुसार तब रामकुमारजी आदि किसी ने उस विषय में और कोई आपत्ति नहीं की तथा गदाधर अत्यन्त आनन्दित हो यथाविधि यज्ञोपवीत धारण कर ब्राह्मणोचित सन्ध्या-वन्दनादि कार्य करने लगा। लुहारपुत्री धनी भी उस समय बालक के साथ उक्त प्रकार का सम्बन्ध स्थापित कर अपने जीवन को धन्य समझने लगीं। इसके कुछ ही दिन बाद बालक ने दशम वर्ष में पदार्पण किया।

पण्डित-सभा में गदाधर के द्वारा प्रश्न का समाधान।

यज्ञोपवीत के कुछ दिन उपरान्त किसी घटना से गदाधर की असाधारण दिव्य प्रतिभा का परिचय पाकर गाँव के लोग अत्यन्त विस्मित हुए।* गाँव के जमींदार लाहा बाबुओं के घर में श्राद्ध के किसी विशेष अवसर पर पण्डित-सभा का एक महान् आयोजन किया गया था और पण्डित-वर्ग धर्मविषयक किसी जटिल प्रश्न के सम्बन्ध में शास्त्रार्थ कर कोई मीमांसा नहीं कर पा रहे थे। उस समय वहाँ उपस्थित होकर बालक गदाधर ने उस विषय की ऐसी सुन्दर मीमांसा की कि जिसे सुनकर पण्डितों ने उसकी अत्यन्त प्रशंसा की तथा उसे आशीर्वाद प्रदान किया।

गदाधर की धार्मिक प्रवृत्ति की परिणति तथा तीसरी बार भाव-समाधि।

अस्तु, यज्ञोपवीत के बाद गदाधर का भावुक हृदय अपने स्वभाव के अनुकूल अन्य एक विषय को अवलम्बन करने का अवसर पाकर आनन्दित हुआ। उनके पिताजी को स्वप्न में दर्शन देकर जागृत विग्रह श्रीरघुवीर कैसे कामारपुकुर के मकान में उपस्थित हुए थे, उनके शुभागमन के दिन से लक्ष्मीजला की छोटी-सी जमीन में पर्याप्तमात्रा में धान की उपज से किस प्रकार घर का अभाव दूर हुआ था तथा करुणामयी चन्द्रादेवी अतिथि-अभ्यागतों को भी नित्यप्रति अन्नदान करने में समर्थ हुई थीं, इन सब बातों को सुनकर बालक पहले से ही गृहदेवता को विशेष भक्ति तथा श्रद्धा की दृष्टि से देखता था। उस देवता का स्पर्श तथा पूजन करने का उस

---

* इस घटना के विस्तृत विवरण के लिए "गुरुभाव, पूर्वार्ध" का चतुर्थ अध्याय देखिए।

समय अधिकार मिलने से बालक का हृदय नवीन अनुराग से परिपूर्ण हो उठा। सन्ध्यावन्दनादि करने के पश्चात् वह उस समय प्रतिदिन उनके पूजन तथा ध्यान में पर्याप्त समय व्यतीत करने लगा और जिससे वे प्रसन्न हो उसके पिताजी की तरह उसे भी समय-समय पर दर्शन तथा आदेश प्रदान कर कृतार्थ करें, एतदर्थ अत्यन्त निष्ठा तथा भक्ति के साथ उनकी सेवा में वह संलग्न हुआ। इसके साथ ही साथ श्रीरामेश्वर शिव तथा श्रीशीतला माता की भी वह सेवा करने लगा। इस प्रकार की सेवा-पूजा का फल भी अविलम्ब उपस्थित हुआ; क्योंकि इस पूजा में एकाग्रता प्राप्तकर बालक के पवित्र हृदय को थोड़े ही समय में भाव-समाधि या सविकल्प समाधि का अधिकारी बनाया। इस समाधि के सहारे उसके जीवन में समय-समय पर नाना प्रकार के दिव्य दर्शन भी होने लगे। उक्त प्रकार की समाधि तथा दर्शन का प्रथम विकास उस वर्ष शिवरात्रि के अवसर पर उसके जीवन में उपस्थित हुआ था। बालक उस दिन यथारीति उपवासी रहकर विशेष निष्ठा के साथ देवादिदेव श्रीमहादेव का पूजन कर रहा था। उसके मित्र गयाविष्णु तथा और भी कई एक साथियों ने उस दिन उपवास किया था एवं पड़ोसी गृहस्थ सीतानाथ पाइन महोदय के घर पर शिवजी की महिमा-प्रदर्शक नाटक होगा यह सुनकर, उसे देख रात्रि-जागरण करने का उन लोगों ने निश्चय किया था। प्रथम प्रहर का पूजन समाप्त कर गदाधर जिस समय तन्मय होकर बैठा हुआ था, उस समय सहसा उसके साथियों ने आकर उसे यह समाचार दिया कि पाइन महोदय के घर पर होनेवाले नाटक में शिवजी बनकर उसे कुछ वाक्य कहने पड़ेंगे, क्योंकि उस नाटकमण्डली में जो शिवजी बना करता था, वह बीमार हो जाने के कारण उस भूमिका में अवतीर्ण होने में असमर्थ है। इससे पूजन में बाधा उपस्थित होगी। यह जानकर बालक ने आपत्ति की, किन्तु उसके साथियों ने नहीं माना। वे बोले कि शिवजी की भूमिका ग्रहण करने पर उसे रात भर शिव-चिन्ता ही करनी होगी, वह पूजन की अपेक्षा किसी अंश में न्यून नहीं है, प्रत्युत ऐसा न करने से कितने ही लोगों को आनन्द से वंचित होना पड़ेगा, यह भी विचारणीय है; साथ ही वे भी सब उपवासी हैं तथा इस प्रकार से रात्रि-जागरण कर अपने व्रत को पूर्ण करने का उन्होंने निश्चय किया है। बाध्य होकर

गदाधर ने सम्मति दे दी और तब शिवजी की भूमिका ग्रहण कर उसे अभिनय करना पड़ा। जटाजूट, रुद्राक्ष की माला आदि धारण कर भस्म-भूषित हो शिवजी का चिन्तन करता हुआ वह इतना तन्मय हो गया कि उसकी बाह्य चेतना विलुप्त हो गई। बहुत देर तक प्रतीक्षा करने पर भी उसमें चेतना न आने के कारण उस रात्रि के लिए नाटक को बन्द कर देना पड़ा।

गदाधर की बारम्बार भाव-समाधि।

तब से गदाधर को बीच-बीच में उस प्रकार की समाधि होने लगी। ध्यान करने के समय तथा देव-देवियों की स्तुति के संगीत आदि श्रवण करता हुआ वह प्रायः तन्मय हो जाता था और उसका चित्त स्वल्प अथवा अधिक काल के लिए अन्तर्लीन होकर बाह्य विषयों से पूर्णतया विरत हो जाया करता था। वह तन्मयता जिस दिन प्रगाढ़ होती थी उस दिन उसकी बाह्य चेतना एकदम विलुप्त हो जाने के कारण कुछ काल के लिए वह जड़ जैसा बन जाता था। किन्तु उस अवस्था की निवृत्ति हो जाने के बाद उससे प्रश्न करने पर वह कहता था कि जिन देव-देवियों के ध्यान अथवा संगीतादि का वह श्रवण कर रहा था, अपने अन्दर उनसे सम्बन्धित किसी दिव्य दर्शन को प्राप्तकर वह आनन्दित हुआ है। चन्द्रादेवी तथा उनके परिवार के सभी प्रमुख लोग उन घटनाओं से कुछ दिन तक अत्यन्त भयभीत रहे, किन्तु उससे बालक के स्वास्थ्य की कोई हानि नहीं हुई है, वह सब कार्यों को सम्पन्न करता हुआ अत्यन्त आनन्द के साथ समय व्यतीत कर रहा है—यह देखकर उनकी आशंका क्रमशः दूर हो गई। इस प्रकार की अवस्था बारम्बार उपस्थित होने के कारण बालक भी उससे अभ्यस्त हो गया और वह प्रायः उसकी इच्छाधीन हो गई। उसके प्रभाव से सूक्ष्म विषयों की ओर उसकी दृष्टि प्रसारित होती गई और देव-देवियों के विषय में उसे नाना प्रकार की उपलब्धि होने के कारण वह आनन्दित ही होता था, शंकित कभी भी नहीं होता था। अस्तु, बालक की धार्मिक प्रवृत्ति उस समय दिनोंदिन विशेष-रूप से बढ़ने लगी और अब गाँव में जहाँ कहीं भी श्रीहरि-संकीर्तन, शिवजी तथा मनसादेवी के उत्सव, धर्मठाकुर के पूजनादि धार्मिक अनुष्ठान होते थे, वहाँ उपस्थित होकर उनमें पूर्णरूप से वह सहयोग देने लगा।

बालक का महान् तथा उदार धार्मिक स्वभाव उसे विभिन्न देव-देवियों के उपासकों के प्रति विद्वेषरहित बनाकर उनके प्रति उसका आकर्षण बढ़ाने लगा। इसमें संदेह नहीं कि गाँव की प्रचलित प्रथा से उसे उक्त विषय में सहायता प्राप्त हुई; क्योंकि विष्णु के उपासक, शिवजी के भक्त, धर्मठाकुर के पूजकवर्ग ये सब विभिन्न सम्प्रदायों के लोग अन्यान्य गाँवों की तरह परस्पर विद्वेष न कर आपस में मिल-जुलकर अत्यन्त सद्भावना के साथ वहाँ निवास करते थे।

गदाधर की विद्यार्जन के प्रति उदासीनता का कारण।

परन्तु गदाधर के धार्मिक प्रवृत्ति की ऐसी परिणति होने पर भी पढ़ने-लिखने में उसका अनुराग न बढ़ा। पण्डित तथा भट्टाचार्य आदि उपाधि-भूषित व्यक्तियों के भौतिक भोग-सुख तथा धन-लिप्सा को देखकर वह उन लोगों की तरह विद्यार्जन के प्रति दिनोंदिन उदासीन बनने लगा। बालक उस समय अपनी सूक्ष्म दृष्टि से, प्रत्येक व्यक्ति के आचरणों का लक्ष्य क्या है, यह जानने के लिए सर्वप्रथम अग्रसर होता था, और अपने पिताजी के वैराग्य, ईश्वर-भक्ति एवं सत्य, सदाचार तथा धार्मिकता आदि गुणों को आदर्श के रूप में रखकर उनके आचरणों का मूल्यांकन करने में प्रवृत्त होता था। इस प्रकार विचार में प्रवृत्त हो संसार के प्रायः सभी व्यक्तियों के उद्देश्यों को अन्य प्रकार देखकर वह विस्मित हो उठा। साथ ही अनित्य संसार को नित्य मानकर वे सर्वदा दुःख में निमज्जित हैं, यह देखकर उससे भी कहीं अधिक उसे कष्ट होने लगा। इस प्रकार विचार-विमर्श करने के फलस्वरूप उसके मन में अपने जीवन को भिन्न रूप से परिचालित करने के संकल्प का उदय होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। इन बातों को सुनकर पाठकों के मन में सम्भवतः यह शंका उदित हो सकती है कि ग्यारह-बारह वर्ष के बालक में सूक्ष्मदृष्टि तथा विचारशक्ति का इतना विकास होना कैसे सम्भव है? इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि यद्यपि साधारण बालकों के लिए ऐसा होना सम्भव नहीं है किन्तु गदाधर उस श्रेणी का बालक नहीं था। असाधारण प्रतिभा, मेधा तथा मानसिक संस्कारों को लेकर उसका जन्म हुआ था। इसलिए अल्पवयस्क होने पर भी उसके लिए उक्त कार्य आश्चर्यजनक नहीं था। अतः उस सम्बन्ध में

हमें चाहे जैसी भी प्रतीति क्यों न हो, अनुसन्धान करने से हमको जो विदित हुआ है, सत्य-निष्ठा के कारण उसे वैसे ही वर्णन करने के लिए हम बाध्य हैं।

अस्तु, प्रचलित विद्याभ्यास के प्रति क्रमशः उदासीन होता हुआ भी गदाधर पहले की तरह नियमित रूप से पाठशाला जाता था और मातृभाषा में रचित मुद्रित पुस्तकों को पढ़ने तथा लिखने में वह विशेष दक्ष रहता था। विशेषकर रामायण, महाभारतादि ग्रन्थों का पाठ भक्ति के साथ वह इतने सुन्दर रूप से करता था कि लोग उसे सुनकर मुग्ध हो जाते थे। इसलिए गाँव के सरलहृदय अज्ञ व्यक्ति उसके मुख से उन ग्रन्थों को सुनने के लिए विशेष आग्रह प्रकट किया करते थे। बालक भी उनको परितृप्त करने में कभी पीछे नहीं हटता था। सीतानाथ पाइन, मधु युगी आदि अनेक व्यक्ति इसलिए उसे अपने घर बुलाकर ले जाते थे तथा स्त्री-पुरुष सब कोई एक साथ बैठकर उससे प्रह्लाद-चरित्र, ध्रुवजी का उपाख्यान अथवा रामायणमहाभारतादि के अन्य किसी आख्यान को भक्तिपूर्वक श्रवण किया करते थे।

गदाधर की शिक्षा की प्रगति का विवरण।

कामारपुकुर में रामायण-महाभारतादि के अतिरिक्त गाँव के कवियों द्वारा सरल पद्यों में निबद्ध उस अंचल के प्रसिद्ध देव-देवियों के प्रकट होने के वृत्तान्त प्रचलित हैं। श्रीतारकेश्वर महादेव के प्रकट होने की कथा, योगाद्या की गाथा, वन-विष्णुपुर के श्रीमदनमोहनजी का उपाख्यान आदि अनेक देव-देवियों के अलौकिक चरित्र तथा साधु-महात्माओं के समीप उनके वृत्तान्त समय-समय पर गदाधर के कानों तक पहुँचते थे। श्रुतिधर होने के कारण बालक उन विषयों को सुनकर कण्ठस्थ कर लेता था और उस प्रकार के उपाख्यानों के मुद्रित अथवा हस्तलिखित ग्रन्थ मिलने पर वह कभी-कभी उनको स्वयं अपने हाथों से लिख भी रखता था। कामारपुकुर के मकान में अनुसन्धान करते हुए गदाधर के स्वहस्त-लिखित 'रामकृष्णायन पोथी,' 'योगाद्या का गीत,' 'सुबाहु गीत' आदि प्राप्त होने के कारण हमें यह विदित हुआ। इसमें संदेह नहीं कि अनुरोध करने पर उस समय बालक उन उपाख्यानों को अनेक बार पाठ तथा आवृत्ति कर गाँव के सरलहृदय नर-नारियों को सुनाया करता था।

गणित-शास्त्र में बालक की उदासीनता की चर्चा हम इससे पूर्व ही कर चुके हैं। किन्तु पाठशाला जाने पर उस विषय में भी उसकी थोड़ी उन्नति हुई। हमने सुना है कि गणित में उसकी शिक्षा जोड़, बाकी, भाग और कुछ कोष्टक तक ही अग्रसर हुई थी। परन्तु दसवें वर्ष में प्रविष्ट हो ध्यान करने के फलस्वरूप जब उसे बीच बीच में पूर्वोक्त प्रकार की समाधि लगने लगी, तब उसके अग्रज रामकुमारजी प्रमुख घर के सभी लोगों ने उसे वायुरोग हो गया है समझकर उसकी इच्छानुसार पाठशाला जाने तथा शिक्षा प्राप्त करने की स्वतंत्रता दे दी, इसलिए किसी विषय में उसकी शिक्षा की प्रगति नहीं हो रही है यह देखकर भी शिक्षक उससे कभी कुछ नहीं कहते थे। सारांश यह कि गदाधर पाठशाला की शिक्षा में और अधिक अग्रसर न हो सका।

रामेश्वर तथा सर्वमंगला का विवाह।

इस प्रकार दो वर्ष बीत जाने पर क्रमशः गदाधर बारहवें वर्ष में प्रविष्ट हुआ। उस समय उसके मध्यम भाई रामेश्वरजी की आयु बाईस तथा छोटी बहिन सर्वमंगला की आयु नौ वर्ष की हुई। रामेश्वर को विवाहयोग्य देखकर श्री रामकुमारजी ने कामारपुकुर के समीपवर्ती गौरहाटी नामक गाँव के श्री रामसदय वन्द्योपाध्याय की बहिन के साथ उसका विवाह करना निश्चय किया तथा रामसदयजी का अपनी बहिन सर्वमंगला के साथ विवाह निश्चित किया। इस प्रकार एक ही घर में दोनों का सम्बन्ध होने के कारण कन्या पक्षवालों को धन देने के निमित्त श्री रामकुमारजी के पारिवारिक जीवन में उस समय एक और भी विशेष घटना उपस्थित हुई। युवावस्था व्यतीत हो जाने पर भी उनकी सहधर्मिणी को गर्भसंचार न होने के कारण सभी ने उन्हें अब तक बाँझ मान रखा था। उनको उस समय गर्भवती देखकर परिवारवर्ग के मन में आनन्द के साथ ही साथ शंका का भी उदय हुआ। क्योंकि गर्भधारण करने पर उनकी पत्नी की मृत्यु होगी, यह बात उनमें से किसी-किसी ने रामकुमारजी से इससे पूर्व ही सुन रखी थी।

अस्तु, पत्नी के गर्भधारण करते ही श्री रामकुमारजी के भाग्य में विशेष परिवर्तन उपस्थित हुए। जिन कार्यों को करते हुए उस समय तक वे अच्छी तरह धनार्जन कर रहे थे, उनसे अब उनकी कमाई घट गई तथा साथ

ही साथ उनका स्वास्थ्य क्रमशः खराब हो जाने कारण वे पहले जैसे कर्मठ भी न रहे। उनकी पत्नी का आचरण भी उस समय भिन्न प्रकार का होने लगा। उनके पूज्य पिताजी के समय से उस घर में यह नियम चला आ रहा था कि बीमार व्यक्ति तथा जिस बालक का यज्ञोपवीत संस्कार नहीं हुआ है, उन्हें छोड़कर और कोई भी श्रीरघुवीर के पूजन से पूर्व जल ग्रहण नहीं कर सकता। रामकुमारजी की पत्नी जब उस नियम को भंग करने लगीं तब अमंगल की आशंका से घर के लोगों द्वारा उसके प्रतिवाद किए जाने पर भी उन्होंने उनकी बातों पर कोई ध्यान नहीं दिया। छोटे-मोटे विषयों को लेकर परिवार के लोगों के साथ उनका संघर्ष होने लगा, यहाँ तक कि श्रीमती चन्द्रादेवी तथा अपने पतिदेव के कहने पर भी उन विपरीत आचरणों से वे निवृत्त न हुईं। गर्भावस्था में स्त्रियों के स्वभाव में परिवर्तन होता है, यह समझकर उन लोगों ने उनके आचरणों के विरुद्ध और कुछ न कहने पर भी कामारपुकुर के धार्मिक परिवार में उस समय प्रायः अशान्ति फैलने लगी।

गर्भवती होने के बाद रामकुमारजी की पत्नी के स्वभाव में परिवर्तन।

साथ ही श्री रामकुमारजी के मध्यम भाई रामेश्वरजी कृतविद्य होते हुए भी अर्थार्जन करने में विशेष दक्ष नहीं हुए। इसलिए परिवार की संख्यावृद्धि के साथ ही साथ आय कम हो जाने के कारण घर की आर्थिक अवस्था पहली जैसी न रही। इसलिए श्री रामकुमारजी चिन्तित होकर नाना प्रकार के प्रयत्न करते हुए भी घरेलू कठिनाइयों का प्रतिकार करने में समर्थ न हुए। मानो उन प्रयत्नों के विरुद्ध खड़े होकर किसी ने उनको सफल होने से रोक दिया हो। इस प्रकार एक के बाद दूसरी चिन्ता उपस्थित होकर रामकुमारजी के जीवन को उन्होंने विवश कर डाला। क्रमशः दिन, पक्ष, मास व्यतीत होकर पत्नी के प्रसव-काल को समीपवर्ती होते देख वे अपने पूर्वोक्त दर्शन की बात को स्मरण कर अत्यधिक विषादमग्न होने लगे।

रामकुमारजी की सांसारिक स्थिति में परिवर्तन।

धीरे-धीरे वह समय आ उपस्थित हुआ तथा श्री रामकुमारजी की

सहधर्मिणी सन् १८४९ के किसी समय एक परम सुन्दर पुत्र को प्रसव करने के पश्चात् उसके मुखमण्डल को निरीक्षण करती हुई प्रसूतिका-गृह में ही स्वर्गधाम सिधारीं। उस घटना से रामकुमारजी के दरिद्र कुटीर में पुनः गहरा शोक छा गया।

पुत्र प्रसव करने के बाद रामकुमारजी की पत्नी का देहान्त।

अष्टम अध्याय

यौवन के प्रारम्भ में

पत्नी परलोक सिधारीं, किन्तु रामकुमारजी के दुःख तथा दुर्दिन दूर न हुए। विभिन्न प्रकार से आय कम हो जाने के कारण अर्थाभाव से दिनोंदिन उनके सांसारिक अवस्था की अवनति होने लगी। लक्ष्मीजला के धान्यक्षेत्र में पर्याप्त रूप से धान होने पर भी वस्त्रादि तथा अन्य आवश्यकीय वस्तुओं का अभाव घर में नित्यप्रति बढ़ने लगा। इसके अतिरिक्त उनकी वृद्ध माताजी तथा मातृहीन शिशु अक्षय के लिए उस समय प्रतिदिन दूध की भी आवश्यकता थी। अतः कर्ज लेकर उन आवश्यकताओं की पूर्ति की जाने लगी, इसलिए ऋण प्रतिदिन बढ़ता गया। नाना प्रकार की चिन्ता से आक्रान्त हो विविध उपायों का अवलम्बन करने पर भी रामकुमारजी कठिनाइयों का प्रतिरोध करने में समर्थ न हुए। अतः बन्धुवर्ग के परामर्शानुसार अन्यत्र जाने से आय बढ़ सकती है, यह समझकर उसके लिए वे प्रस्तुत होने लगे। उनके शोक-सन्तप्त हृदय ने भी इसमें अपनी सानन्द सम्मति प्रदान की। प्रायः तीस वर्ष तक जिन्हें जीवन-संगिनी बनाकर वे संसारयात्रा निर्वाह कर रहे थे, उनकी स्मृति घर में सर्वत्र विद्यमान रहने के कारण उस घर से दूर जाने पर ही शान्ति मिलने की सम्भावना थी। इसलिए कलकत्ता या बर्दवान इन दोनों स्थानों में से कहाँ जाने पर अधिक अर्थागम हो सकता है, इस विषय में परामर्श होने लगा। अन्त में यह निश्चय हुआ कि कलकत्ता जाना ही उचित है। शिहर गाँव के महेशचन्द्र चट्टोपाध्याय तथा देशरा के रामधन घोष आदि उनके अनेक परिचित व्यक्तियों ने कलकत्ते जाकर अर्थार्जन की सुविधा प्राप्त करके अपनी-अपनी सांसारिक स्थिति की सन्तोषजनक उन्नति की है—यह बात उनके मित्रवर्ग उनसे कहने लगे। साथ ही वे लोग उनकी अपेक्षा विद्या, बुद्धि तथा चारित्रिक शक्ति में बहुत

रामकुमारजी का कलकत्ते में संस्कृत पाठशाला स्थापन।

कुछ हीन हैं, यह उनसे कहने में भी वे न चूके। अतः पत्नीवियोग के कुछ ही दिन बाद रामेश्वरजी पर घर का भार सौंपकर श्री रामकुमारजी कलकत्ते आ गए और झामापुकुर नामक मोहल्ले में संस्कृत पाठशाला खोलकर वे छात्रों को पढ़ाने लगे।

रामकुमारजी की पत्नी की मृत्यु से पारिवारिक परिवर्तन।

रामकुमारजी की पत्नी की मृत्यु से कामारपुकुर के पारिवारिक जीवन में अनेक परिवर्तन उपस्थित हुए। उस घटना से श्रीमती चन्द्रादेवी को बाध्य होकर घर के समस्त कामकाजों का भार पुनः सम्हालना पड़ा। रामकुमारजी के पुत्र अक्षय के लालन-पालन का दायित्व उसी दिन से उनके कन्धों पर आ पड़ा। उनके मध्यम पुत्र रामेश्वरजी की पत्नी उन कार्यों में यथासाध्य उनकी सहायता करने लगीं; किन्तु उस समय वह नितान्त बालिका थीं, अतः उससे विशेष सहायता मिलने की कोई सम्भावना नहीं थी। इसलिए श्रीरघुवीर की सेवा, अक्षय का लालन-पालन तथा घर की रसोई आदि सब कुछ उन्हें ही करना पड़ता था। इन कार्यों को करने में उनका सारा दिन बीत जाता था, क्षण भर के लिए भी विश्राम करने का उन्हें अवकाश नहीं मिलता था। ५८ वर्ष की आयु में घर का सारा भार इस प्रकार अपने ऊपर लेना सुखसाध्य न होने पर भी इसे श्रीरघुवीर की इच्छा मानकर चन्द्रादेवी बिना किसी प्रतिवाद के उन कार्यों को करने लगीं।

रामेश्वरजी का विवरण।

दूसरी ओर घर के आय-व्यय का भार श्री रामेश्वरजी पर पड़ने के कारण अर्थार्जन कर कैसे परिवार को सुखी कर सकें, इस चिन्ता में वे विमग्न हुए। किन्तु कृतविद्य होने पर भी वे कभी धनार्जन करने में विशेष सफल हुए थे—ऐसा हमने नहीं सुना है। परिव्राजक साधु तथा साधकों के दर्शन मिलने पर उनके साथ वे अधिक समय व्यतीत करते थे तथा उनका किसी प्रकार का अभाव दृष्टिगोचर होने पर उसे दूर करने के लिए बहुधा अधिक खर्च करने में वे कुण्ठित नहीं होते थे। इसलिए आय बढ़ने पर भी घर का कर्ज चुकाना अथवा घर की स्थिति को विशेष उन्नत बनाना उनके लिए सम्भव हो न सका। गृहस्थ होते हुए भी वे संचयी बन न सके और समय-समय पर आय से अधिक

खर्च कर "श्रीरघुवीर किसी प्रकार निभा लेंगे"—यह सोचकर दिन बिताने लगे।

छोटे भाई गदाधर को अपने प्राणों से अधिक प्यार करने पर भी उसकी शिक्षा आदि की उन्नति हो रही है या नहीं, इस विषय में श्री रामेश्वरजी ने कभी ध्यान नहीं दिया। इसका कारण यह था कि एक तो ऐसा करना उनके स्वभाव के विरुद्ध था, साथ ही आर्थिक चिन्ता के कारण उन्हें विभिन्न स्थानों में आना-जाना पड़ता था। इसलिए उधर ध्यान देने की उस समय न तो उन्हें इच्छा ही होती थी और न समय ही मिलता था। साथ ही इस छोटी आयु में ही उसकी धार्मिक प्रवृत्ति की अद्भुत परिणति देखकर उनकी यह दृढ़ धारणा बन गयी थी कि उसका स्वभाव कभी भी उसे सन्मार्ग के सिवाय कुमार्ग की ओर नहीं जाने देगा। पड़ोस के नर-नारियों का उस पर प्रगाढ़ विश्वास तथा उसे परम आत्मीय समझ उसे प्यार करना देखकर उनके मन में यह धारणा दृढ़ हो गई थी; क्योंकि वे यह समझते थे कि विशेष रूप से सत् स्वभाव तथा उदार हुए बिना कोई भी व्यक्ति संसार में सब लोगों के हृदय को आकर्षण कर उनकी प्रशंसा का पात्र नहीं बन सकता। इसलिए बालक के उज्ज्वल भविष्य की कल्पना कर उनका हृदय आनन्दित हो उठता था और वे सदा निश्चिन्त रहते थे। अतः रामकुमारजी के कलकत्ते जाते समय तेरहवें वर्ष में पदार्पण कर गदाधर एक प्रकार से अभिभावकशून्य हो गया तथा उस समय उसका उन्नत स्वभाव उसे जिस ओर प्रेरित करने लगा, उधर ही वह अबाध रूप से बढ़ने लगा।

गदाधर के सम्बन्ध में रामेश्वरजी की चिन्ता।

इससे पूर्व हम यह देख चुके हैं कि इस अल्पायु में ही गदाधर अपनी सूक्ष्म दृष्टि द्वारा प्रत्येक व्यक्ति तथा कार्य के अन्तर्निहित उद्देश्य को भलीभाँति देखने में अभ्यस्त हो गया था। इसलिए उसे यह समझने में विलम्ब न लगा कि धनार्जन को उद्देश्य मानकर ही लोग पाठशाला में पढ़ने तथा संस्कृत विद्यालयों में उपाधिभूषित होने के लिए सचेष्ट होते हैं। साथ ही नाना

उस समय की गदाधर की मानसिक अवस्था तथा उसका आचरण।

प्रकार के कष्ट उठाकर अर्थार्जन तथा उससे सांसारिक भोग-सुख को प्राप्त कर लोग उसके पिता की तरह सत्यनिष्ठा, चारित्रिक बल तथा धर्मलाभ करने में समर्थ नहीं हो पाते, यह भी दिनोंदिन उसको प्रतीत होने लगा। गाँव के किसी-किसी परिवार के लोग स्वार्थान्ध हो जमीन-जायदाद को लेकर परस्पर विवाद तथा मुकद्दमे में फँस जाने, घर तथा खेत के अपने-अपने हिस्सों को—"यह मेरा है, वह उसका है"—इस प्रकार रस्सी से नापकर तय करने के पश्चात् कुछ दिन उसका उपभोग करते न करते ही इस लोक से विदा हो जाते हैं—इस प्रकार के अनेक दृष्टान्तों को देखकर बालक ने अच्छी तरह से यह समझ लिया था कि धन तथा भोग-लालसा के कारण ही मानवजीवन में अनेक अनर्थ उपस्थित होते हैं। अतः उसके लिए अर्थकरी विद्या के प्रति दिनोंदिन उदासीन होना तथा अपने पिता की तरह साधारण रूप से जीवन निर्वाह में सन्तुष्ट रहकर ईश्वर-प्रेम को ही जीवन का सार उद्देश्य है, समझना विचित्र नहीं था। इसलिए साथियों के प्रेम से आकृष्ट होकर प्रायः प्रतिदिन किसी न किसी समय पाठशाला जाने पर भी श्रीरघुवीर की सेवा-पूजा तथा घर के कार्यों में सहायता देकर अपनी माता के परिश्रम को हल्का करने में गदाधर का अधिक समय बीतने लगा। उन कार्यों में संलग्न हो, उस समय तीसरे पहर तक प्रायः प्रतिदिन उसे घर पर रहना पड़ता था।

पड़ोस की रमणियों के समीप गदाधर का धर्मग्रन्थपाठ तथा संकीर्तनादि।

इस प्रकार घर पर अधिक समय तक रहने के कारण पड़ोस की रमणियों से मिलने का उसे अधिक सुयोग प्राप्त हुआ। घर के काम-काज समाप्त करने के पश्चात् अवकाश मिलने पर उनमें से अधिकांश स्त्रियाँ श्रीमती चन्द्रादेवी के समीप उपस्थित होती थीं और बालक को वहाँ देखकर कभी उससे गाने तथा कभी धार्मिक उपाख्यानों का पाठ करने के लिए अनुरोध करती थीं। बालक भी उनके अनुरोध को यथासाध्य पालन करने का प्रयत्न करता था। घर के कार्यों में चन्द्रादेवी की सहायता करने के कारण समयाभाव दिखाई देने पर वे परस्पर सम्मिलित हो श्रीमती चन्द्रादेवी के कार्यों को स्वयं कर देती थीं तथा उसके मुख से पुराणों की कथा तथा संगीतादि सुनने का समय निकाल लेती थीं।

इस प्रकार उनको कुछ देर तक धर्मग्रंथों का पाठ तथा संगीतादि सुनाना गदाधर के नित्यकर्म का एक अंग हो उठा। रमणियों को उसके पाठ से इतना अधिक आनन्दानुभव होता था कि वे अधिक समय तक उसको सुनने की आशा से अपने-अपने घर के काम-काज यथाशीघ्र समाप्त कर चन्द्रादेवी के समीप उपस्थित होने लगीं।

गदाधर उनके समीप केवल पुराण पढ़कर ही नहीं सुनाता था, किन्तु और भी नाना प्रकार से उन्हें आनन्दित किया करता था। गाँव में उस समय तीन अभिनय मण्डली, एक 'बाउल-संगीत' तथा एक-दो 'कविगान' के दल थे, इसके अतिरिक्त अधिक संख्या में वहाँ वैष्णवों का निवास होने के कारण प्रति दिन सायंकाल अनेक घरों में श्रीमद्भागवत की कथा तथा संकीर्तन आदि होते रहते थे। बचपन से उनको श्रवण करने के फलस्वरूप तथा अपनी स्वभावसिद्ध प्रतिभा से गदाधर को उक्त दलों के नाटक, संगीत तथा संकीर्तनों का अभ्यास हो चुका था। अतः रमणियों के आनन्दवर्धन के निमित्त वह किसी दिन नाटक, किसी दिन बाउलों के गीत, किसी दिन कविगान और किसी किसी दिन संकीर्तन किया करता था। नाटक की आवृत्ति के समय भिन्न-भिन्न स्वरों से विभिन्न भूमिकाओं के संलापों का उच्चारण कर वह अकेला ही समस्त चरित्रों का अभिनय किया करता था। और किसी दिन जब वह अपनी जननी अथवा रमणियों में से किसी को उद्विग्न देखता था, उस समय नाटकों के हास्यकौतुक अथवा गाँव के किसी परिचित व्यक्ति के विचित्र आचरण तथा उसकी चाल-चलन का ऐसा स्वाभाविक अनुकरण वह करता था कि वे हँसती हुई लोट-पोट हो जाती थीं।

अस्तु, गदाधर ने क्रमशः इस प्रकार से उनके हृदय पर अपना अपूर्व प्रभाव विस्तार कर लिया। बालक के जन्म के समय उसके

पड़ोस की रमणियों की गदाधर के प्रति भक्ति तथा विश्वास।

जनक-जननी को जो अद्भुत स्वप्न तथा दिव्य-दर्शन हुए थे, उनका विवरण पहले से ही इन रमणियों ने सुन रखा था तथा देवी-देवताओं का भावावेश होने से समय-समय पर बालक की जो विचित्र अवस्था होती थी, उसको भी

इन्होंने स्वयं अपनी आँखों से देखा था। इसलिए उसकी ज्वलन्त देव-भक्ति, तन्मय होकर पुराणपाठ, मधुरकण्ठ से गान तथा उनके प्रति आत्मीय सदृश सरल उदार आचरण इत्यादि के द्वारा उनके कोमल हृदय में अपूर्व भक्ति-प्रेम का उदय होना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। हमने सुना है कि वयोवृद्ध महिलाएँ विशेषकर धर्मदास लाहा की पुत्री प्रसन्नमयी बालक के अन्दर बालगोपाल के दिव्य प्रकाश का अनुभव कर उसे पुत्र से अधिक स्नेह करती थीं और उनसे कुछ कम आयु की महिलाएँ उसी प्रकार उसे भगवान् श्रीकृष्ण के अंशसम्भूत मानकर उसके साथ सख्यभाव से सम्बद्ध हुई थीं। उनमें से अधिकांश रमणियों का जन्म वैष्णव कुल में हुआ था तथा सरल काव्यमय विश्वास ही उनके धर्मजीवन का मुख्य अंग था, अतः अशेषगुणसम्पन्न उस सुन्दर बालक को देवता रूप से देखना उनके लिए विचित्र नहीं था। अस्तु, इस प्रकार विश्वास के कारण वे गदाधर के साथ मिलकर निःसंकोच हो अपने मन की बातें उससे कह देती थीं तथा अनेक विषयों में उसका परामर्श लेकर उसे कार्य में परिणत करने का प्रयास करती थीं। गदाधर भी उनके साथ इस प्रकार मिल जाता था कि बहुधा उन्हें ऐसा प्रतीत होता था कि मानो वह भी एक रमणी ही है।*

रमणी के वेश में गदाधर।

गदाधर कभी-कभी रमणियों की वेशभूषा धारण कर उनके समीप विशेष-विशेष नारीचरित्रों का अभिनय किया करता था। इस प्रकार श्रीराधिका अथवा उनकी प्रधान सखी वृन्दा की भूमिका ग्रहण कर अभिनय करते समय बहुधा वे उससे रमणियों की वेशभूषा धारण करने का अनुरोध करती थीं। बालक भी उनके अनुरोध को स्वीकार कर लेता था। उस समय उसके हाव-भाव, चाल-चलन तथा बातचीत आदि हूबहू नारियों के सदृश होते थे। वे उसे देखकर यह कहती थीं कि नारी की वेशभूषा धारण करने पर कोई भी यह पहचान नहीं सकता कि गदाधर पुरुष है। इससे यह स्पष्ट है कि

* सम्पूर्णतया रमणियों की भाँति जैसा बनने की आकांक्षा उस समय श्री गदाधर के हृदय में कितनी प्रबल हुई थी, इसे "साधकभाव" के चतुर्दश अध्याय में वर्णित विवरण को पढ़कर पाठक विशेष रूप से अवगत हो सकेंगे।

नारियों के प्रत्येक कार्य को उसने पहले से कितना ध्यानपूर्वक देख रखा था। कौतुकप्रिय बालक उस समय जब किसी-किसी दिन रमणियों की तरह वेशभूषा धारण कर काँख पर कलसी रख पुरुषों के सामने से होकर हालदारपुकुर से जल लाने जाता था तब उक्त वेश में उसे कोई भी पहचान नहीं पाता था।

सीतानाथ पाइन के परिवारवर्ग के साथ गदाधर का सौहार्द।

गाँव के धनवान गृहस्थ सीतानाथ पाइन का हम इससे पूर्व ही उल्लेख कर चुके हैं। सीतानाथजी के आठ कन्या तथा सात पुत्र थे, एवं विवाह के पश्चात् भी कन्याएँ सीतानाथजी के घर पर एक परिवारभुक्त होकर रहा करती थीं। ऐसा सुना जाता है कि सीतानाथजी के विशाल परिवार के लिए प्रतिदिन रसोई के निमित्त इतने अधिक मसाले की आवश्यकता होती थी कि दस सिलों पर मसाला पीसा जाता था। इसके अतिरिक्त सीतानाथजी के दूर सम्पर्क के आत्मीयवर्ग में से भी बहुत-से लोग उनके घर के समीप घर बनवाकर निवास करते थे। इसलिए कामारपुकुर का वह अंश 'वणिक पल्ली' के नाम से प्रसिद्ध था। वह स्थान क्षुदिरामजी के घर के समीप होने के कारण अवसर मिलने पर वणिक-रमणियों में से अधिकांश चन्द्रादेवी के समीप उपस्थित होती थीं; उनमें से विशेषकर सीतानाथजी की धर्मपत्नी तथा कन्याएँ मुख्य थीं। इसलिए गदाधर के साथ उनका विशेष सौहार्द स्थापित हुआ था। बालक को समय-समय पर वे अपने घर ले जाती थीं तथा रमणी का वेश धारणकर पूर्वोक्त रूप से अभिनय करने के लिए उससे अनुरोध करती थीं। अभिभावकों के निषेध के कारण उनके आत्मीयवर्ग की अनेक महिलाएँ उनके घर के सिवाय अन्यत्र नहीं जा पाती थीं, अतः गदाधर के धर्मग्रन्थों का पाठ तथा संगीत आदि सुनना उनके भाग्य में बदा न होने के कारण ही सम्भवतः बालक को वे इस प्रकार अपने घर आने को निमंत्रित करती थीं। इस प्रकार जो चन्द्रादेवी के घर नहीं जाती थीं, वणिक-पल्ली की ऐसी अनेक महिलाएँ भी गदाधर की भक्त बन चुकी थीं और सीतानाथजी के घर पर उसके उपस्थित होने का समाचार लोगों के द्वारा मिलते ही वहाँ जाकर उसकी कथा सुन तथा अभिनय आदि देखकर वे आनन्दानुभव

किया करती थीं। घर के मालिक सीतानाथजी का गदाधर पर विशेष स्नेह था तथा वणिक-पल्ली के अन्यान्य पुरुषों को भी उसके सद्‌गुणों का परिचय प्राप्त हुआ था। इसलिए यह जानकर भी कि उनके घर की महिलाएँ उससे संगीत तथा संकीर्तन आदि श्रवण करती हैं, वे कोई आपत्ति नहीं करते थे।

वणिक-पल्ली में केवल दुर्गादास पाइन नामक एक व्यक्ति की उक्त विषय में आपत्ति थी तथा वे स्वयं गदाधर की श्रद्धा भक्ति करने पर भी घर की कठोर पर्दाप्रथा को किसी लिए कभी भी शिथिल नहीं होने देते थे। कोई भी उनके अन्तःपुर की बातों को जानने में समर्थ नहीं है तथा किसी ने उनकी घर की स्त्रियों को कभी नहीं देखा है, यह कहकर वे सीतानाथजी प्रमुख आत्मीयवर्ग के समीप कभी-कभी अहंकार भी प्रकट करते थे। उनके आत्मीयवर्ग उनकी तरह कठोर पर्दाप्रथा के पक्षपाती न होने के कारण वे उन्हें हेय समझते थे।

दुर्गादास पाइन का अहंकारनाश।

दुर्गादासजी किसी दिन उनके एक आत्मीय के समीप इस प्रकार अहंकार प्रकट कर रहे थे, ठीक उसी समय गदाधर वहाँ उपस्थित हो उस विषय को सुनकर बोला, "पर्दाप्रथा के द्वारा क्या कभी स्त्रियों की सुरक्षा सम्भव है? अच्छी शिक्षा तथा देवभक्ति के प्रभाव से ही वे सुरक्षित रहती हैं; यदि मैं चाहूँ तो तुम्हारे घर के अन्दर की स्त्रियों को देख सकता हूँ तथा सारी बातों को भी जान सकता हूँ।" यह सुनकर दुर्गादासजी अत्यन्त गर्व से बोले, "मैं भी देखना चाहता हूँ कि कैसे तुम जान सकते हो?" 'अच्छा देखा जायगा'—यह कहकर गदाधर उस दिन चला आया। तदनन्तर एक दिन अपराह्न के समय किसी से कुछ न कहकर बालक एक मोटी तथा मैली साड़ी एवं चांदी के गहने पहनकर जुलाहिन की तरह वेश बना काँख पर एक टोकनी रखकर घूँघट से मुँह ढँककर सायंकाल से कुछ ही पूर्व बाजार की ओर से दुर्गादासजी के मकान के सामने आकर उपस्थित हुआ। दुर्गादासजी उस समय अपने मित्रों के साथ घर के बाहरी हिस्से में बैठे हुए थे। रमणी-वेशधारी गदाधर ने अपने को एक जुलाहिन बताया तथा सूत बेचने के निमित्त बाजार में आकर साथियों से बिछुड़ जाने के कारण अत्यन्त असहाय

कहकर अपना परिचय प्रदान किया और रात के लिए आश्रय की प्रार्थना की। यह सुनकर दुर्गादासजी ने उसका गाँव कहाँ है, इत्यादि दो-चार प्रश्न उससे किए तथा उनके उत्तर मिल जाने पर कहा, "ठीक है, भीतर जाकर स्त्रियों के समीप रहो।" तब उन्हें प्रणाम कर कृतज्ञता प्रकट करता हुआ गदाधर भीतर चला गया और वहाँ जाकर स्त्रि[illegible] भी उसने पहले की तरह अपना परिचय देकर उनसे नाना प्रकार की बातचीत कर उनको भी मुग्ध कर डाला। उसको अल्पायु देखकर तथा उसकी बातों से प्रसन्न हो दुर्गादासजी के अन्तःपुर में रहनेवाली रमणियों ने उसके वहाँ रहने में कोई आपत्ति नहीं की तथा उसके लिए रहने का स्थान बताकर जलपान के निमित्त उसे चबेना आदि प्रदान किया। गदाधर तब निर्धारित जगह पर बैठकर उन वस्तुओं को खाता हुआ भीतर के समस्त घर एवं वहाँ रहनेवाली प्रत्येक रमणी को ध्यान से देखने तथा उनके परस्पर के वार्तालाप को सुनने लगा। बीच-बीच में उनकी बातों में सम्मिलित हो उनसे प्रश्न आदि करने में भी वह न चूका। इस प्रकार एक प्रहर रात्रि बीत गई। इधर इतनी रात तक उसके घर न लौटने पर व्याकुल हो चन्द्रादेवी ने उसे ढूँढ़ने के लिए रामेश्वर को भेजा और वह प्रायः वणिक-पल्ली में जाता रहता है, यह सोचकर उसे वहाँ ढूँढ़ने के लिए कहा। इसलिए रामेश्वरजी सर्वप्रथम सीतानाथजी के घर पहुँचे, वहाँ जाने पर उन्हें पता लगा कि बालक वहाँ नही आया है। अनन्तर वे दुर्गादासजी के घर के समीप उपस्थित हो उसका नाम लेकर जोर से पुकारने लगे। उनकी आवाज सुनकर, रात अधिक हो गई है, यह सोचकर दुर्गादासजी के मकान के अन्दर से ही, 'दादा, अभी आ रहा हूँ' यह कहता हुआ गदाधर तत्काल ही उनके समीप आकर उपस्थित हुआ। तब दुर्गादासजी सब बात समझ गए एवं उन्हें तथा उनके परिवारवर्ग को धोखा देने में बालक की सफलता को देखकर सर्वप्रथम वे कुछ लज्जित हुए तथा रुष्ट हुए, किन्तु बाद में गरीब जुलाहिन की वेशभूषा तथा चाल-चलन के स्वाभाविक अनुकरण में उसकी दक्षता की बात को सोचकर वे हँसने लगे। दुर्गादासजी के आत्मीयवर्ग तथा विशेषकर सीतानाथजी को जब दूसरे दिन इस बात का पता चला कि गदाधर के समीप उनका अहंकार चूर्ण हुआ है, तब वे आनन्द मनाने लगे। तब

से सीतानाथजी के घर पर बालक के उपस्थित होने पर दुर्गादासजी के घर की महिलाएँ भी उसके समीप आने लगीं।

सीतानाथजी का परिवारवर्ग तथा वणिक-पल्ली की अन्यान्य महिलाएँ क्रमशः गदाधर के प्रति विशेष अनुरक्त हो उठीं। बालक उनके समीप कुछ दिन न जाने पर वे स्वयं उसे बुला लेती थीं। सीतानाथजी के घर पर धर्मग्रन्थों का पाठ तथा संगीत गान आदि करते समय कभी-कभी गदाधर को भावावेश हो जाता था। उसे देखकर उसके प्रति रमणियों की भक्ति विशेष रूप से वृद्धिगत हुई। हमने सुना है कि उक्त प्रकार की भावसमाधि के समय बालक को श्रीगौरांगदेव या श्रीकृष्ण की जीवित मूर्ति मानकर उनमें से अधिकांश रमणियों ने उसकी पूजा की थी एवं अभिनय के समय उसे सहायता मिलेगी यह समझकर उन लोगों ने उसको एक सोने की वंशी तथा स्त्री-पुरुषों के चरित्राभिनय के उपयोगी विविध परिच्छद बनवा दिये थे।

वणिक-पल्ली की रमणियों की गदाधर के प्रति श्रद्धा-भक्ति।

धर्मप्राण पवित्रस्वभाव गदाधर ने अपनी तीक्ष्ण बुद्धि एवं प्रेमपूर्ण सहज सरल स्वभाव द्वारा पडोस की रमणियों पर उस समय जो प्रभाव विस्तार किया था, उसका विवरण उन लोगों में से किसी-किसी के मुख से हमें सुनने का अवसर प्राप्त हुआ था। सन् १८९३ के वैशाख के प्रारम्भ में कामारपुकुर दर्शन के निमित्त स्वामी रामकृष्णानन्द प्रमुख हम कुछ व्यक्ति वहाँ गए थे तथा उस समय सीतानाथ पाइन की पुत्री श्रीमती रुक्मिणीदेवी से हमारा साक्षात्कार हुआ था। तब उनकी आयु लगभग ६० वर्ष की थी। श्रीगदाधर के पूर्वोक्त प्रभाव के बारे में उन्होंने हमसे जो कुछ कहा था, यहाँ उसका उल्लेख करने पर पाठक उस विषय को भली भाँति समझ सकेंगे। श्रीमती रुक्मिणीदेवी ने कहा था—

"हमारा घर यहाँ से कुछ उत्तर की ओर—वह दिखाई दे रहा है। इस समय हमारा घर टूट-फूट गया है, परिवारवर्ग भी प्रायः नहीं के बराबर है। किन्तु मेरी आयु जिस समय १७-१८ वर्ष की थी, उस समय इस घर को देखने से श्रीमानों का घर जैसा प्रतीत होता था। मेरे पिताजी का नाम स्व. सीतानाथ पाइन है।

गदाधर के सम्बन्ध में श्रीमती रुक्मिणी का वक्तव्य।

कुटुम्ब में चाचा-ताऊ की सन्तानों सहित हम सत्रह-अठारह भाई बहिनें थीं और उस समय आयु में हम दो-चार वर्ष के छोटे-बड़े रहने पर सभी यौवन में पदार्पण कर चुके थे। गदाधर बाल्यकाल से ही हम लोगों के साथ खेलते-कूदते थे। इसलिए हम लोगों के साथ उनकी अत्यन्त घनिष्ठता थी। हम लोगों के युवावस्था में प्रविष्ट होने पर भी वे हमारे घर जाते रहते थे एवं बड़े होकर भी वे उसी प्रकार हमारे अन्तःपुर में आया जाया करते थे। मेरे पिताजी का उन पर बहुत प्रेम था, उन्हें वे अपने इष्टदेव की तरह देखते तथा उन पर श्रद्धा-भक्ति रखते थे। पड़ोस के कोई-कोई लोग उनसे यह कहते थे कि 'तुम्हारे घर में इतनी युवती कन्याएँ हैं और गदाधर भी अब बालक नहीं है, उसे अब भी घर के अन्दर इस प्रकार क्यों जाने देते हो?' यह सुनकर मेरे पिताजी कहते थे, 'तुम लोग निश्चिन्त रहो, मैं गदाधर को खूब पहचानता हूँ।' तब वे साहसपूर्वक और कुछ नहीं कह पाते थे। गदाधरजी हमारे अन्तःपुर में आकर हमें पुराणों की कथाएँ सुनाते थे, कितने-ही हास्य-परिहास्य करते थे। प्रायः प्रतिदिन उन चर्चाओं को सुनती हुई हम आनन्द के साथ घर के कार्यों को करती थीं। जब वे हमारे समीप रहते थे, तब हमारा समय कितना आनन्दपूर्वक व्यतीत होता था, एक मुँह से मैं उसका कहाँ तक वर्णन करूँ! जिस दिन वे नहीं आते उस दिन यह सोचकर कि कहीं वे बीमार न हो गए हों, हमारा मन छटपटाया करता था। उस दिन हममें से कोई जल लाने अथवा अन्य किसी काम के बहाने से ब्राह्मणी माँ (चन्द्रादेवी) के समीप जाकर जब तक उनका समाचार नहीं लाती थी, तब तक हमें शान्ति नहीं मिलती थी। उनकी प्रत्येक बात हमें अमृत की तरह मधुर प्रतीत होती थी। इसलिए जिस दिन वे हमारे घर नहीं आते थे, उस दिन उन्हीं की बातों की चर्चा कर हम दिन बिताया करती थीं।"

गाँव के पुरुषों की गदाधर के प्रति अनुरक्ति।

इस प्रकार केवल रमणियों के साथ मिलकर ही गदाधर शान्त नहीं था, किन्तु उसकी व्यापक उद्भावनशक्ति तथा सबके साथ प्रेमपूर्ण आचरण से गाँव के छोटे-बड़े सभी के साथ उसका परिचय हुआ था। प्रतिदिन सायंकाल गाँव के वृद्ध तथा युवकवृन्द जिन स्थानों में एकत्रित हो

श्रीमद्भागवतादि पुराणों की कथा अथवा संगीत संकीर्तनादि का आनन्द लेते थे, उन सभी स्थानों में उसका आना जाना रहता था। बालक उन स्थलों में जहाँ जिस दिन उपस्थित होता था, वहाँ उस दिन आनन्द की लहर दौड़ जाती थी। उसके सदृश कथा बाँचने तथा धर्मग्रन्थों की भक्तिपूर्ण व्याख्या करने में और कोई भी समर्थ नहीं था! संकीर्तन के समय उसकी जैसी भावोन्मत्तता, उसकी भाँति नवीन-नवीन भावपूर्ण पदों की योजना करने की शक्ति एवं उसके सदृश मधुर कण्ठस्वर तथा रमणीय नृत्य और किसी के लिए सम्भव नहीं था। इतना ही नहीं, हास्य कौतुक में भी उसकी बराबरी कोई नहीं कर पाता था, उसकी तरह नर-नारियों के सब प्रकार के आचरणों का अनुकरण तथा उसके सदृश नवीन-नवीन कहानियों और संगीतों को अपूर्व रूप से यथास्थान संयोजन कर सबका मनोरंजन करना दूसरों की शक्ति से परे था। इसलिए युवक तथा वृद्ध सब कोई उसके प्रति विशेष अनुरक्त हुए थे और प्रतिदिन सायंकाल वे उसके आगमन की प्रतीक्षा किया करते थे। बालक भी तदनुरूप किसी दिन किसी जगह तथा दूसरे दिन और किसी जगह उन लोगों के साथ सम्मिलित हो उन्हें आनन्द प्रदान करता था।

साथ ही उस आयु में ही बालक की बुद्धि परिपक्व होने के कारण उनमें से अनेक व्यक्ति अपनी-अपनी सांसारिक समस्याओं के समाधान के लिए उससे परामर्श लिया करते थे। धार्मिक लोग भी उसके पुनीत स्वभाव से आकृष्ट हो भगवन्नाम तथा संकीर्तनों में उसकी भावसमाधि को देखकर उसके परामर्शानुसार अपने गन्तव्य पथ पर अग्रसर होते थे।* केवल पाखण्डियों तथा धूर्त लोगों की उसके प्रति कोई सद्भावना नहीं थी। इसका कारण यह था की गदाधर अपनी तीक्ष्ण बुद्धि के द्वारा उनके ऊपरी मोहमय आवरणों को भेदकर गुप्त उद्देश्यों को जान जाता था एवं सत्यनिष्ठ तथा स्पष्टवादी होने के कारण बालक कभी-कभी सबके समक्ष उन बातों को कहकर उनको अपमानित किया करता था। केवल इतना ही नहीं, कौतुकप्रिय गदाधर बहुधा दूसरों के समीप उनके कपट आचरणों का अनुकरण भी करता रहता था। तदर्थ मन में क्रोधित होकर भी इस

* ऐसा सुना जाता है कि श्रीनिवास शंक वणिक आदि कई युवक उस समय से ही श्रीगदाधरजी की देवता-बुद्धि से भक्ति तथा पूजन करने लगे थे।

सर्वप्रिय निर्भीक बालक का वे कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते थे। इसलिए प्रायः शरणागत होकर गदाधर के हाथों से उन्हें आत्मरक्षा करनी पड़ती थी, क्योंकि शरणागतों पर सर्वदा बालक की असीम करुणा विद्यमान थी।

इससे पूर्व ही हम यह कह चुके हैं कि गदाधर उस हालत में भी प्रतिदिन किसी न किसी समय पाठशाला में उपस्थित होता था, अपने साथियों पर प्रेम ही इसका मुख्य कारण था। चौदहवें वर्ष में पदार्पण करने के पश्चात् वास्तव में बालक की भक्ति तथा भावुकता इस प्रकार प्रस्फुटित हुई कि पाठशाला की अर्थकरी शिक्षा उसके लिए एकदम अनावश्यक है, ऐसी उसे उपलब्धि होने लगी। तभी से वह यह अनुभव करने लगा था कि उसका जन्म किसी दूसरे कार्य के निमित्त हुआ है एवं धर्मसाक्षात्कार के हेतु उसे अपनी सारी शक्ति को नियोजित करना है। उस विषय की अस्पष्ट छाया उसके मन में बहुधा उदित होती थी, किन्तु उस समय तक उसकी पूर्ण अभिव्यक्ति न होने के कारण वह उसे सर्वदा धारण व अनुभव करने में समर्थ नहीं हो पाता था। किन्तु भविष्य में अपने जीवन को किस प्रकार परिचालित करना है, जब यह भावना कभी उसके मन में उदित होती थी तब उसकी विचारशील बुद्धि तत्काल ही उसे ईश्वर के प्रति निर्भर होने का संकेत कर गैरिक वसन, पवित्र अग्नि, भिक्षालब्ध भोजन तथा निःसंग विचरण के चित्र को उसके मानसपट पर उज्ज्वल वर्ण से अंकित कर देती थी। किन्तु उसका प्रेमपूर्ण हृदय दूसरे ही क्षण उसे अपनी माता तथा भाइयों की सांसारिक अवस्था की याद दिलाकर उस मार्ग में अग्रसर होने की अभिलाषा को त्याग देने तथा अपने पिताजी की तरह आत्मनिर्भर हो घर में रहकर उनकी यथासाध्य सहायता करने के लिए उसे उत्तेजित करता था। इस प्रकार उसकी बुद्धि तथा हृदय उसे विभिन्न मार्गों का निर्देश देते रहने के कारण 'जो कुछ श्रीरघुवीर करेंगे वही होगा' यह सोचकर वह ईश्वरादेश की प्रतीक्षा में बैठा हुआ था। बालक का प्रेमपूर्ण हृदय एकमात्र ईश्वर को ही अपना मानकर पहले से ही उनका आश्रय ले चुका था। इसलिए यथासमय इस प्रश्न का निराकरण वे स्वयं ही कर देंगे ऐसा सोचकर वह उस समय

गदाधर की अर्थकरी विद्यार्जन के प्रति उदासीनता का कारण।

प्रायः अपने चित्त को शान्त रखता था। इस प्रकार बुद्धि तथा हृदय के विवाद में उसका विशुद्ध हृदय ही अन्त में विजयी होता था और उसकी प्रेरणानुसार ही वह सब कुछ किया करता था।

गदाधर उस समय अपने असाधारण सहानुभूतिसम्पन्न विशुद्ध हृदय से कभी-कभी एक अन्य विषय की भी उपलब्धि कर रहा था।

गदाधर के हृदय की प्रेरणा।

पुराण पाठ तथा संकीर्तनादि के सहारे गाँव के नर-नारियों के साथ पहले से ही घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध होने के कारण उन लोगों को वह इतना अपना चुका था कि उनके जीवन के सुखदुःखादि को सम्पूर्ण रूप से वह अपना ही समझने लगा था। इसलिए उस समय जब उसकी विचारशील बुद्धि उसे संसार त्यागने की प्रेरणा प्रदान करती थी, तत्काल ही उसका हृदय उन नर-नारियों के सरल तथा प्रेमपूर्ण आचरण एवं उसके प्रति उनके असीम विश्वास का स्मरण दिलाकर उसे इस प्रकार अपने जीवन को नियोजित करने का संकेत करता था कि जिसे देखकर वे भी अपने-अपने जीवन को तदनुसार परिचालित करते हुए उच्चादर्श को प्राप्तकर कृतार्थ हो सकें एवं जिससे उसके साथ उनका वर्तमान सम्बन्ध प्रगाढ़ पारमार्थिक सम्बन्ध में परिणत हो सदा के लिए अविनश्वर रह सके। इसलिए बालक का स्वार्थगन्धरहित हृदय इस विषय का स्पष्ट आभास प्रदान कर उससे यह कह उठता था—'अपने लिए संसार को त्यागना, यह तो स्वार्थपरता है; ऐसा कोई आचरण करो कि जिससे ये सभी लोग उपकृत हो सकें।'

किन्तु पाठशाला एवं तदनन्तर संस्कृत विद्यालय में विद्याभ्यास करने के सम्बन्ध में उस समय गदाधर के हृदय तथा बुद्धि को एक ही बात सम्मत थी, परन्तु सहसा पाठशाला त्याग देने पर साथियों को

गदाधर का पाठशाला परित्याग तथा समवयस्कोंके साथ अभिनय।

उसके संग से अधिकतया वंचित होना पड़ेगा, यह जानकर ही वह उस कार्य को नहीं कर पा रहा था। कारण यह था कि प्रमुख रूप से गयाविष्णु आदि उसके समवयस्क बालक उसे हृदय से प्यार करते थे और उसकी असाधारण बुद्धि तथा असीम साहस को देखकर उन लोगों ने यहाँ भी उसे

नेता चुन रखा था। उस समय की एक घटना से बालक को अर्थकरी विद्या का परित्याग करने का अवसर प्राप्त हुआ। गदाधर की अभिनय करने की शक्ति को देखकर उसके कुछ साथियों ने एक दिन उससे नाटक-मण्डली बनाने का प्रस्ताव किया तथा उस विषय में शिक्षा देने का भार ग्रहण करने के लिए उससे अनुरोध किया। गदाधर ने भी उसमें अपनी सम्मति दी। किन्तु अभिभावकों को इस विषय का पता लग जाने से बाधा पहुँचने की सम्भावना है यह सोचकर कहाँ इस विषय की शिक्षा प्रारम्भ की जाय, एतदर्थ बालकवृन्द चिन्तित हो उठे। गदाधर की उद्भाविनी शक्ति ने उन्हें माणिकराज के आम्र कानन का निर्देश दिया एवं प्रतिदिन पाठशाला से भागकर निर्धारित समय पर वहाँ उपस्थित होने का उन लोगों ने निश्चय किया।

अविलम्ब ही संकल्प कार्य में परिणत किया गया एवं गदाधर की शिक्षा से स्वल्पकाल में ही अपने-अपने संलापों और संगीतों को कण्ठस्थ कर बालकों ने श्रीरामचन्द्र तथा श्रीकृष्णविषयक अभिनयों के द्वारा आम्र-कानन को रंगभूमि बना डाला। यह बात अवश्य है कि गदाधर को अपनी उद्भावनी शक्ति से उक्त अभिनयों के समस्त अंगों को पूर्ण करना तथा उनके प्रधान चरित्रों की भूमिकाओं में अवतीर्ण होना पड़ता था। फिर भी नाटक मण्डली साधारणतया ठीक ही बनी है, यह देखकर सभी बालक आनन्दित हुए। ऐसा सुना जाता है कि आम्र कानन में अभिनय के समय भी गदाधर को समय-समय पर भावसमाधि होने लगी थी।

गदाधर को चित्रविद्या तथा मूर्तिनिर्माण में उन्नति।

संकीर्तन तथा नाटक में गदाधर का अधिक समय व्यतीत होने के कारण चित्रविद्या में वह अधिक अग्रसर नहीं हो पाया। फिर भी ऐसा सुना जाता है कि गौरहाटि नामक गाँव में अपनी छोटी बहिन श्रीमती सर्वमंगला को बालक उस समय एक दिन देखने गया था एवं उसके घर में प्रविष्ट होते ही उसने देखा कि उसकी बहिन प्रसन्नता के साथ अपने पतिदेव की सेवा कर रही है। यह देखकर उसके कुछ दिन बाद उसने अपनी बहिन तथा उसके पतिदेव की उस अवस्था का एक चित्रांकन किया था। हमने

सुना है कि परिवार के सभी लोग उस चित्र की दोनों मूर्तियों के साथ श्रीमती सर्वमंगला तथा उसके पतिदेव के अत्यन्त सादृश्य को देखकर परम विस्मित हुए थे।

किन्तु देव-देवियों की मूर्ति निर्माण करने में गदाधर विशेष दक्ष हो गया था। उसका धार्मिक स्वभाव उन मूर्तियों का निर्माण कर अपने साथियों को लेकर उनका यथाविधि पूजन करने के निमित्त बहुधा उसे प्रेरित करता था।

अस्तु, पाठशाला छोड़ने के उपरान्त अपने हृदय की प्रेरणानुसार गदाधर पूर्वोक्त कार्यों में संलग्न रहकर घर के कार्यों में चन्द्रादेवी की सहायता करता हुआ समय बिताने लगा। मातृहीन शिशु अक्षय भी उसके हृदय पर अपना अधिकार जमाकर प्रायः उसको अपने समीप आबद्ध कर रखता था। चन्द्रादेवी को घर के काम-काज करने के लिए अवसर प्रदान करने के निमित्त शिशु को गोद में लेना तथा उसे नाना प्रकार से खेल-कूद में भुला रखना उस समय उसके नित्य कर्मों का एक अंग-सा बन गया था। इस प्रकार तीन वर्ष से भी अधिक काल व्यतीत हो जाने पर गदाधर क्रमशः १७ वर्ष की आयु में प्रविष्ट हुआ। उक्त तीन वर्ष के परिश्रम के फलस्वरूप श्री रामकुमारजी की कलकत्ते की संस्कृत पाठशाला में छात्रसंख्या की वृद्धि होने के कारण पहले की अपेक्षा उन्हें अधिक अर्थार्जन करने की सुविधा प्राप्त हुई।

गदाधर के बारे में रामकुमारजी की चिन्ता तथा उसे कलकत्ता लाना।

कलकत्ते में अधिकांश समय व्यतीत करने पर भी श्री रामकुमारजी वर्ष में एक बार कुछ दिन के लिए कामारपुकुर आकर अपनी जननी तथा भाइयों की देखभाल किया करते थे। उस समय पढ़ने लिखने में गदाधर की उदासीनता को देखकर वे चिन्तित हुए। वह किस तरह अपना समय बिताया करता है, विशेष रूप से उन्होंने इसका पता लगाया और अपनी माता तथा मध्यम भाई रामेश्वर के साथ परामर्श कर उसे कलकत्ते में अपने समीप रखना ही उचित समझा। वहाँ छात्रसंख्या-वृद्धि के साथ ही साथ संस्कृत पाठशाला के अन्यान्य कार्य भी बढ़ चुके थे; इसलिए उन कार्यों की सहायता के निमित्त एक व्यक्ति की आवश्यकता भी उस समय वे अनुभव

कर रहे थे। अतः यह निश्चय हुआ कि गदाधर कलकत्ते में रहकर उन विषयों में कुछ-कुछ सहायता प्रदान करेगा तथा अन्यान्य छात्रों की तरह उनसे पढ़ता भी रहेगा। गदाधर से उक्त प्रस्ताव करने पर जब उसे यह विदित हुआ कि अपने पितृतुल्य अग्रज के लिए उसकी सहायता की आवश्यकता है, तब उसने कलकत्ते जाने में कुछ भी आपत्ति नहीं की। अतः शुभ दिन तथा शुभ मुहूर्त में श्री रामकुमारजी तथा गदाधर श्रीरघुवीर को प्रणाम कर चन्द्रादेवी के चरणरज को मस्तक पर धारण कर कलकत्ते के लिए रवाना हुए। कामारपुकुर में जो आनन्द का स्रोत बह रहा था, वह कुछ दिन के लिए अवरुद्ध हो गया। श्रीमती चन्द्रादेवी तथा गदाधर के प्रति अनुरक्त अन्यान्य नर-नारी उसकी मधुर स्मृति तथा भावी उन्नति की चिन्ता में निमग्न रहकर किसी प्रकार समय बिताने लगे। कलकत्ते आने के पश्चात् श्रीगदाधर ने जो अलौकिक आचरण किए थे, उसका विवरण श्रीरामकृष्णलीलाप्रसंग के 'साधकभाव' नामक ग्रन्थ में लिपिबद्ध किया गया है, पाठक उसका अवलोकन करें।

श्रीरामकृष्णलीलाप्रसंग का पूर्व वृत्तान्त तथा बाल्यजीवन पर्व सम्पूर्ण।

श्रीरामकृष्णलीलाप्रसंग

साधकभाव

श्रीरामकृष्णलीलाप्रसंग

अवतरणिका

साधकभाव के समालोचन की आवश्यकता

संसार के आध्यात्मिक इतिहास को पढ़ने से पता चलता है कि लोकगुरु बुद्ध तथा श्रीचैतन्यदेव को छोड़कर अन्यान्य अवतार-पुरुषों के जीवन में साधकभाव का विवरण विस्तृत रूप से लिपिबद्ध नहीं है। जिस तीव्र अनुराग तथा उत्साह को लेकर वे अपने जीवन में सत्य की उपलब्धि के लिए अग्रसर हुए, जिस आशा-निराशा, भय-विस्मय, आनन्द-व्याकुलता की तरंग में प्रवाहित हो वे कभी उल्लसित तथा कभी विषादग्रस्त हुए — किन्तु अपने गन्तव्य लक्ष्य की ओर निरन्तर दृष्टि को निबद्ध रखने में कभी विस्मृत नहीं हुए, उन विषयों का विशद आलोचन उनके जीवन-इतिहास में नहीं मिलता। अथवा उनके जीवन के अन्तिम भाग में अनुष्ठित विचित्र कार्यावलियों के साथ उनकी बाल्यकालीन शिक्षा, उद्यम तथा कार्यों का कोई स्वाभाविक पूर्वापर कार्य-कारण सम्बन्ध दिखाई नहीं देता। दृष्टान्तस्वरूप यह कहा जा सकता है कि वृन्दावन के गोपीजन-वल्लभ श्रीकृष्ण धर्मसंस्थापक द्वारकानाथ श्रीकृष्ण के रूप में कैसे परिणत हुए, यह स्पष्ट रूप से जानने का कोई साधन नहीं है। ईसा के महान् तथा उदार जीवन में उनकी तीस वर्ष की आयु से पूर्व काल की घटनाओं में केवल दो-एक का ही पता चलता है। आचार्य शंकर का केवल दिग्विजय-वृत्तान्त ही विस्तृत रूप से लिपिबद्ध है। अन्यत्र सर्वत्र भी ठीक ऐसा ही है।

आचार्यों का साधकभाव लिपिबद्ध रूप से उपलब्ध नहीं होता है।

इसके कारण का पता लगाना कठिन है। भक्तों की भक्ति की प्रबलता से ही सम्भवतः उक्त विषयों को लिपिबद्ध नहीं किया गया है।

मानव की असम्पूर्णता को देव-चरित्र में आरोपित करने में संकुचित होकर ही सम्भवतः उन लोगों ने इन विषयों को लोकचक्षु से अगोचर रखना ही उचित समझा है। या यह भी हो सकता है कि महापुरुषों के चरित्र के सर्वांगसुंदर महान् भावसमूह सर्वसाधारण के समक्ष एक उच्च आदर्श का रूप धारण कर उनके लिए जितना कल्याण कर सकते हैं, उन भावों को प्राप्त करने के लिए महापुरुषों ने जो अलौकिक प्रयास किया है, उसके वर्णन से उस प्रकार का कोई लाभ नहीं होगा, यह सोचकर उन विवरणों को लिपिबद्ध करना उन्होंने अनावश्यक समझा है।

वे कभी असम्पूर्ण थे, यह बात भक्त की भावना के विरुद्ध है।

भक्त सदा अपने प्रभु को पूर्ण देखना चाहते हैं। मानवशरीर धारण करने के कारण उनमें कभी किंचित्मात्र भी मानवों की तरह दुर्बलता, दृष्टि तथा शक्तिहीनता विद्यमान थीं, इस बात को वे मानना नहीं चाहते। बालगोपाल के मुख-विवर में विश्वब्रह्माण्ड को वे सदा प्रतिष्ठित देखने का प्रयास करते हैं एवं बालक की असम्बद्ध चेष्टाओं में न केवल परिपक्व बुद्धि तथा पूर्ण अनुभव का परिचय प्राप्त करने के लिए वे लालायित रहते हैं, अपितु सर्वज्ञता, सर्वशक्तिमत्ता एवं विश्वजनीन उदारता तथा प्रेम की पूर्ण प्रतिमूर्ति को देखने के लिए भी वे उत्कण्ठित हो उठते हैं। अतः अपने ईश्वर-स्वरूप का सबको परिचय न देने के लिए ही अवतार पुरुष साधन-भजनादि मानसिक चेष्टाएँ एवं आहार, निद्रा, क्लान्ति, व्याधि तथा शरीर-त्याग आदि शारीरिक अवस्थाओं का मानो बाह्य प्रदर्शन करते रहते हैं, इस प्रकार का निर्णय करना उनके लिए विचित्र नहीं है। हमने स्वयं अपनी आँखों से ऐसे कितने ही विशिष्ट भक्तों को देखा है कि जिनके अन्दर श्रीरामकृष्णदेव के शारीरिक रोग के सम्बन्ध में ठीक उसी प्रकार की धारणा विद्यमान थी।

अपनी दुर्बलता के कारण ही भक्तजन इस प्रकार का निर्णय कर बैठते हैं। इसके विपरीत विचारों को अपने मन में स्थान देने से उनकी भक्ति में हानि पहुँचती है, यह समझकर ही सम्भवतः वे अवतार पुरुषों में मानव की स्वाभाविक चेष्टाओं तथा ध्येय आदि का आरोप करना नहीं चाहते हैं। अतः उनके विरुद्ध हमें कुछ नहीं कहना है। किन्तु यह बात

सत्य है कि भक्ति की अपरिपक्व अवस्था में ही इस प्रकार की दुर्बलता भक्त में दिखाई देती है। भक्ति की प्राथमिक अवस्था में भक्त कभी भगवान् को ऐश्वर्यरहित रूप से चिन्तन नहीं कर पाता। भक्ति परिपक्व होने पर तथा आगे चलकर ईश्वर के प्रति अनुराग गहरा होने पर, इस प्रकार का ऐश्वर्य-चिन्तन भक्तिमार्ग में बाधा जैसा प्रतीत होने लगता है, एवं भक्त उस समय यत्नपूर्वक उसे त्याग देते हैं। सम्पूर्ण भक्तिशास्त्रों में यह बात बारम्बार कही गई है। यह देखा जाता है कि श्रीकृष्ण-जननी यशोदा गोपाल की दिव्य विभूतियों का नित्य परिचय प्राप्त करती हुई भी उन्हें अपना बालक समझकर लालन-ताड़न आदि कर रही हैं। गोपिकाएँ श्रीकृष्ण को जगत्कारण ईश्वर जानकर भी उनमें कान्तभाव के अतिरिक्त और किसी भाव का आरोप नहीं कर पा रही हैं। इस प्रकार के उदाहरण अन्यत्र भी देखने को मिलते हैं।

उक्त प्रकार की धारणा से भक्तों की भक्ति में हानि पहुँचती है, यह बात युक्तिसंगत नहीं है।

भगवान् की शक्तिविशेष के साक्षात् परिचायक किसी प्रकार के दर्शनादि के लिए भक्तगण जब विशेष आग्रह करते थे तो श्रीरामकृष्णदेव प्रायः कहा करते थे, "देखो, इस प्रकार के दर्शन की आकांक्षा ठीक नहीं है; ऐश्वर्य को देखने से भय उत्पन्न होता है; खिलाना, पहनाना तथा (ईश्वर के प्रति) 'हम-तुम' का भाव नष्ट हो जाता है।" उस बात को सुनकर विषण्ण हो, न जाने कितने ही बार हम यह सोचते थे कि श्रीरामकृष्णदेव कृपापूर्वक हमें उक्त प्रकार के दर्शनादि कराना नहीं चाहते हैं; और इसीलिए ऐसा कहकर हमें समझा देते हैं। साहसपूर्वक उस समय यदि कोई भक्त पूर्ण विश्वास के साथ यह कहने लगता—"आपकी कृपा से असम्भव भी सम्भव हो सकता है, कृपया आप मुझे उस प्रकार के दर्शनादि करा दीजिए," तो श्रीरामकृष्णदेव मधुर तथा विनम्र भाव से कहा करते थे, "अरे, मुझमें कुछ करा देने की सामर्थ्य कहाँ है — माँ की जो इच्छा होती है, वही होता है।" यह

श्रीरामकृष्णदेव का उपदेश—"ऐश्वर्य की उपलब्धि से 'हम-तुम' का भाव रहना सम्भव नहीं है"; "किसी के भाव को नष्ट नहीं करना चाहिए।"

सुनकर भी यदि वह शान्त न होता हुआ यह कहता —“आपकी इच्छा होने पर ही माँ की इच्छा होगी।” तब वे बहुधा उसको समझाते हुए कहते, “मैं तो चाहता हूँ कि तुम लोगों को सब प्रकार की अवस्थाएँ तथा सब प्रकार का दर्शन प्राप्त हो, किन्तु ऐसा होता कहाँ है?” इस पर भी यदि वह भक्त शान्त न होकर हठ करने लगता तो उससे और कुछ न कहकर श्रीरामकृष्णदेव अपनी स्नेहपूर्ण दृष्टि तथा मन्दहास्य के द्वारा उसके प्रति अपना स्नेहभाव प्रकट कर चुप रहते थे; अथवा यह कह देते थे, “क्या बताऊँ रे बाबा, माँ की जो इच्छा होगी, वही होगा।” इस प्रकार से अत्यन्त आग्रह करने पर भी श्रीरामकृष्णदेव उसके भ्रमपूर्ण दृढ़ विश्वास को भंग कर उसके भाव को कभी नष्ट कर देने का प्रयास नहीं करते थे। उनके इस प्रकार के भाव-व्यवहार का प्रत्यक्ष अनुभव हमने कई बार किया है। एवं उनको अनेक बार यह कहते सुना है, “अरे, किसी का भाव कभी नष्ट नहीं करना चाहिए, कभी नष्ट नहीं करना चाहिए।”

भाव नष्ट करने के सम्बन्ध में दृष्टान्त—काशीपुर के बगीचे में शिवरात्रि की घटना।

प्रस्तुत विषय के साथ साक्षात् सम्बन्ध न रहने पर भी पूर्वोक्त बात की जब चर्चा प्रारम्भ की गई है, तब एक घटना का उल्लेख कर उसे पाठकों को समझा देना हम उचित समझते हैं। इच्छा तथा स्पर्श मात्र से दूसरों के मन तथा शरीर में धर्मशक्ति को संचारित करने की सामर्थ्य आध्यात्मिक जीवन में बहुत कम साधकों को प्राप्त करने का सौभाग्य मिलता है। समय आने पर स्वामी विवेकानन्द इस प्रकार की सामर्थ्य से विभूषित होकर विशेष मात्रा में लोगों का कल्याण करेंगे, यह बात श्रीरामकृष्णदेव ने बारम्बार हमसे कही थी। स्वामी विवेकानन्द जैसे उत्तम अधिकारी संसार में दुर्लभ हैं—पहले से ही श्रीरामकृष्णदेव इस बात को यथार्थ रूप से अनुभव कर, उन्हें वेदान्त प्रतिपादित अद्वैत ज्ञान का उपदेश देते हुए उनके चरित्र तथा धर्मजीवन का स्वतन्त्र रूप से निर्माण कर रहे थे। ब्राह्मसमाज की प्रथा के अनुसार द्वैतरूप से ईश्वरोपासना में अभ्यस्त स्वामीजी की दृष्टि में यद्यपि वेदान्त के ‘सोऽहम्’ भाव की उपासना पाप सदृश थी, फिर भी उनसे उसका अभ्यास

कराने के लिए श्रीरामकृष्णदेव नाना प्रकार के प्रयत्न करते थे। स्वामीजी कहा करते थे, "दक्षिणेश्वर में पहुँचते ही श्रीरामकृष्णदेव मुझे वे पुस्तकें पढ़ने को देते थे, जिन्हें वे दूसरे लोगों को पढ़ने के लिए मना करते थे। अन्यान्य पुस्तकों के अतिरिक्त उनके पास 'अष्टावक्र संहिता' नाम की एक पुस्तक थी। यदि वे किसी को वह पुस्तक पढ़ते देखते थे तो उसका निषेध करते एवं उसे 'मुक्ति तथा उसके साधन,' 'भगवद्गीता' अथवा किसी पुराण ग्रन्थ को पढ़ने का निर्देश देते थे। किन्तु जब मैं उनके समीप उपस्थित होता, तो वे 'अष्टावक्र संहिता' निकालकर मुझे पढ़ने को कहते थे। अथवा अद्वैतभावपरिपूर्ण 'अध्यात्म रामायण' के किसी अंश का पाठ करने के लिए कहते थे। यदि मैं यह कहता कि इसे पढ़ने से क्या लाभ? 'मैं ईश्वर हूँ' इस प्रकार की भावना का मन में उदय होना तक पाप है। ऐसे पापों की बातें ही इस पुस्तक में लिखी हुई हैं। इस पुस्तक को जला देना चाहिए। तब वे हँसते हुए कहते, 'क्या मैं तुम्हें पढ़ने को कह रहा हूँ? मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि मुझे पढ़कर सुनाओ। उसके कुछ अंश पढ़कर मुझे सुनाओ न। इससे तो तुम्हें यह स्वीकार नहीं करना पड़ेगा कि तुम भगवान हो।' अतः उनके अनुरोध से मुझे बाध्य होकर उस पुस्तक के कुछ अंश पढ़कर उन्हें सुनाना पड़ता था।"

श्रीरामकृष्णदेव जहाँ एक ओर स्वामीजी का इस प्रकार से निर्माण कर रहे थे, वहाँ दूसरी ओर अपने अन्यान्य बालक-भक्तों में से किसी को वे साकार उपासना, किसी को निराकार सगुण ईश्वरोपासना, किसी को शुद्धाभक्ति के द्वारा, किसी को ज्ञानमिश्र भक्ति के द्वारा नाना प्रकार से धर्मजीवन में अग्रसर करा रहे थे; इस प्रकार स्वामी विवेकानन्द आदि बालक भक्तवृन्द दक्षिणेश्वर में यद्यपि उनके समीप एक साथ शयन-उपवेशन, आहार-विहार तथा धर्मचर्चा आदि कर रहे थे, किन्तु श्रीरामकृष्णदेव अधिकारीभेद से ही उनका विभिन्न प्रकार से निर्माण कर रहे थे।

१८८६ ई. के मार्च महीने की बात है। काशीपुर के बगीचे में गले के रोग से श्रीरामकृष्णदेव का स्वास्थ्य दिनोंदिन गिरता जा रहा था। किन्तु ऐसा प्रतीत होता था कि मानो वे पहले की अपेक्षा अधिक उत्साह

के साथ भक्तों के धर्म-जीवन के निर्माण में दत्तचित्त हो उठे थे——विशेषकर स्वामी विवेकानन्द के प्रति उनका विशेष ध्यान था। स्वामीजी को साधनमार्ग का उपदेश देकर तथा उसे आचरण में लाने के लिए केवल सहायता प्रदान कर ही वे निश्चिन्त नहीं थे। प्रतिदिन सायंकाल के बाद दूसरों को हटाकर उन्हें अपने समीप बुलाकर किस प्रकार से वे तथा अन्य बालक-भक्त पुनः संसार में प्रविष्ट न होकर एक साथ रह सकें तथा इस कार्य के संचालन की व्यवस्था कैसे की जाय, प्रभृति विषयों पर वे लगातार दो-तीन घण्टे तक आलोचना तथा शिक्षा प्रदान करते थे। प्रायः सभी भक्त उनके इस व्यवहार को देखकर यह समझ रहे थे कि अपने संघ को सुप्रतिष्ठित करने के लिए ही वे गले के रोग का बहाना बनाकर बैठे हुए हैं —— उस कार्य के सम्पन्न होते ही वे पुनः पहले की तरह स्वस्थ हो जायँगे। केवल स्वामी विवेकानन्द ही दिनोंदिन अपने हृदय में यह अनुभव कर रहे थे कि श्रीरामकृष्णदेव मानो भक्तों से दीर्घ काल के लिए विदा लेने के निमित्त ही इस तरह का आयोजन तथा व्यवस्था कर रहे हैं। किन्तु उनके अन्दर भी वह धारणा सदैव विद्यमान रहती थी या नहीं, कहा नहीं जा सकता।

साधन के प्रभाव से उस समय स्वामीजी के अन्दर दूसरों को स्पर्श कर धर्मशक्ति-संचार करने की सामर्थ्य कुछ-कुछ प्रकट होने लगी थी। उन्हें अपने अन्दर बीच-बीच में उस शक्ति के उदय की स्पष्ट प्रतीति होने पर भी, कभी किसी को स्पर्श कर, अपनी धारणा की सत्यता की उन्होंने परीक्षा नहीं की थी। किन्तु नाना प्रकार के प्रमाण प्राप्त कर वेदान्त के अद्वैत मत में स्वयं विश्वाससम्पन्न होकर तर्क तथा युक्ति की सहायता से बालक एवं गृहस्थ भक्तों में इस तथ्य को प्रतिष्ठित करने का वे प्रयास कर रहे थे। फलस्वरूप भक्तों में उस आन्दोलन के कारण कभी-कभी घोर विवाद खड़ा हो जाता था। स्वामीजी का स्वभाव था कि जब वे जिस वस्तु को सत्य समझते थे, तत्काल ही जोर-शोर के साथ उस विषय को सबसे कहते थे एवं तर्क तथा युक्ति के द्वारा दूसरों को भी उसे ग्रहण कराने का प्रयास करते थे। व्यावहारिक जगत् में सत्य भी, अवस्था तथा अधिकारी भेद से विभिन्न आकार धारण करता है — बालक स्वामीजी उस समय तक इस बात को नहीं समझ पाए थे।

फाल्गुनी शिवरात्रि का दिन था। बालक-भक्तों में से तीन चार लोग स्वामीजी के साथ अपनी इच्छानुसार व्रत के उपलक्ष्य में उपवास किए हुए थे। पूजन तथा जागरण कर वे रात्रि बिताना चाहते थे। शोरगुल के कारण श्रीरामकृष्णदेव के विश्राम में कोई विघ्न न हो, इसलिए उनके निवास-स्थान से कुछ दूरी पर पूर्व दिशा में अवस्थित रसोई के लिए निर्मित एक कमरे में पूजन का आयोजन किया गया था। सायंकाल के बाद जोर से एक बार पानी बरस चुका था एवं नवीन मेघजाल में समय समय पर महादेवजी के जटापटल की भाँति विद्युत्छटा के आविर्भाव को देखकर भक्तवृन्द आनन्दित हो रहे थे।

रात्रि के दस बजे के बाद प्रथम प्रहर का पूजन, जप तथा ध्यान समाप्त कर स्वामीजी पूजन के आसन पर बैठकर ही विश्राम तथा वार्तालाप करने लगे। साथियों में से दो बालक-भक्त किसी काम से निवासस्थान की ओर चले गए। ठीक उसी समय स्वामीजी के अन्दर अकस्मात् पूर्वोक्त दिव्य विभूति के तीव्र अनुभव का उदय हुआ तथा वे भी उसे तत्काल कार्य में परिणत कर उसके परिणाम की परीक्षा करने के लिए सम्मुख बैठे हुए स्वामी अभेदानन्द से बोले, "मुझे कुछ समय तक के लिए स्पर्श किए रहो।" इसी अवसर पर निवासस्थान की ओर गए हुए पूर्वोक्त दो बालक-भक्तों में से एक ने घर के अन्दर प्रवेश किया तथा उसने देखा कि स्वामीजी निश्चल-भाव से ध्यानमग्न हैं एवं अभेदानन्दजी नेत्र बन्द करके अपने दाहिने हाथ से स्वामीजी की दक्षिण जानु को स्पर्श कर बैठे हुए हैं, और उनका वह हाथ बारम्बार कम्पित हो रहा है। इस तरह एक-दो मिनट व्यतीत होने के पश्चात् स्वामीजी ने आँखें खोलकर कहा, " बस, हो चुका। तुझे क्या अनुभव हुआ ? "

अभेदानन्दजी ने कहा, "बिजली की बैटरी (Electric Battery) को पकड़ने से जैसे प्रतीत होता है कि मानो अपने भीतर कुछ आ रहा है तथा हाथ भी कँपता रहता है, वैसा ही अनुभव उस समय तुमको स्पर्श करने से मुझे भी हो रहा था।"

दूसरे व्यक्ति ने अभेदानन्दजी से पूछा, " स्वामीजी को स्पर्श कर तुम्हारा हाथ क्या अपने आप काँप रहा था ? "

उन्होंने उत्तर दिया, "हाँ, मैं अपने हाथ को स्थिर रखने का प्रयत्न कर रहा था, किन्तु रख नहीं पा रहा था।"

फिर उस सम्बन्ध में और कोई बातचीत नहीं हुई। इसके बाद सब लोग दूसरे पहर के पूजन तथा ध्यान में संलग्न हो गए। अभेदानन्दजी उस समय गभीर ध्यानमग्न हुए। उस प्रकार ध्यान करते हुए उनको इससे पूर्व हमने कभी नहीं देखा था। उनका सारा शरीर निश्चल होकर गर्दन तथा मस्तक झुक गया था एवं कुछ काल के लिए उनकी बाह्य-चेतना एकदम विलुप्त हो गई थी। उस दृश्य को देखकर वहाँ उपस्थित सभी लोग यह सोचने लगे कि इससे पूर्व स्वामीजी को स्पर्श करने के कारण ही उन्हें इस प्रकार का गहरा ध्यान लगा है। स्वामीजी भी अभेदानन्दजी की उस अवस्था को देखकर अपने एक साथी को संकेत कर उसे दिखाने लगे।

रात के चार बजे चतुर्थ प्रहर का पूजन समाप्त होने के उपरान्त स्वामी रामकृष्णानन्दजी वहाँ आए और स्वामीजी से बोले, "ठाकुर* आपको बुला रहे हैं।" यह सुनते ही स्वामीजी निवासस्थल की दूसरी मंजिल में उनसे मिलने के लिए चल दिए। श्रीरामकृष्णदेव की सेवा के लिए रामकृष्णानन्दजी भी उनके साथ चले गए।

स्वामीजी को देखते ही श्रीरामकृष्णदेव बोले, "क्यों रे, कुछ जमा होते न होते ही खर्च? पहले अपने अन्दर अच्छी तरह जमा तो होने दे, फिर कहाँ किस प्रकार से खर्च करना है, यह स्वयं ही समझ में आ जायगा — माँ ही सब समझा देंगी। उसके अन्दर अपना भाव प्रविष्ट कराकर तूने उसकी कितनी क्षति की है, देख भला? वह अब तक जिस भाव को अवलम्बन कर चल रहा था, वह सम्पूर्ण नष्ट हो गया!— मानो छः महीने का गर्भ नष्ट हो गया! खैर, जो होना था हो चुका, अब से सहसा कभी ऐसा न करना।— जो भी हो, छोकड़े का भाग्य अच्छा है।"

स्वामीजी कहा करते थे, "मैं तो यह सुनकर चकित ही हो गया। पूजन के समय हमने नीचे जो कुछ किया, वह सब ठाकुर ऊपर बैठे जान गए। क्या करूँ—मैं उनकी भर्त्सना को एक अपराधी के समान चुपचाप सुनता रहा।"

फल यह हुआ कि अभेदानन्दजी जिस भाव की सहायता से धर्म-

---

*श्रीरामकृष्णदेव को उनकी भक्त मण्डली "ठाकुर" कहा करती थी।

जीवन में अग्रसर हो रहे थे, उसका तो समूल उच्छेद हो ही गया, साथ ही अद्वैत भाव को ठीक ठीक धारण करना तथा समझना समयसापेक्ष होने के कारण, वेदान्त की दुहाई देकर वे कभी-कभी सदाचारविरुद्ध कार्यों को करने लगे। तब श्रीरामकृष्णदेव के द्वारा अद्वैत भाव का उपदेश तथा स्नेहपूर्वक उनके उन कार्यों की भूल-त्रुटियों का निर्देश दिए जाने पर भी अभेदानन्दजी के लिए उक्त भाव से प्रेरित होकर जीवन के प्रत्येक कार्य में यथार्थ रूप से अग्रसर होना, श्रीरामकृष्णदेव के शरीरत्याग के बहुत दिनों के बाद जाकर कहीं सम्भव हो सका था।

नरलीला में सभी कार्य साधारण मनुष्य की तरह होते हैं।

सत्यलाभ अथवा जीवन में उसकी पूर्णाभिव्यक्ति के लिए अवतार पुरुषों की चेष्टाओं को जो स्वांग मानते हैं, उस श्रेणी के भक्तों से हमारा यह कहना है कि श्रीरामकृष्णदेव के मुख से हमने ऐसी बात कभी नहीं सुनी, वरन् इसके विपरीत अनेकों बार ऐसा कहते सुना है, "नरलीला में सभी कार्य साधारण मनुष्य के समान ही होते हैं; नरशरीर को स्वीकार कर भगवान् को मनुष्य की तरह सुख-दुःख भोगने पड़ते हैं एवं मनुष्य के ही सदृश उद्यम, चेष्टा तथा तपस्यादि के द्वारा सभी विषयों में पूर्णत्व प्राप्त करना पड़ता है।" संसार का आध्यात्मिक इतिहास भी इस बात की पुष्टि करता है तथा युक्ति की सहायता से विचारने पर यह बात स्पष्ट रूप से जानी जाती है कि यदि ऐसा न हो तो साधक पर दया करने के हेतु नरदेह धारण करने में ईश्वर का वह उद्देश बिलकुल सिद्ध नहीं होता और ईश्वर के नरदेह धारण करने के सारे झंझट में कोई सार्थकता भी नहीं रहती।

भक्तों को श्रीरामकृष्णदेव जो उपदेश देते थे, उसमें हमें दो प्रकार के भाव दिखाई देते हैं। उनकी कुछ उक्तियों का उल्लेख करने से पाठक इस विषय को स्वयं समझ जायँगे। यह देखा जाता है कि एक ओर तो वे अपने भक्तों से यह कह रहे हैं — "मैंने चावल पका लिया है, तुम परोसे हुए भात की थाली लेकर खाने को बैठ जाओ", "साँचा तैयार हो गया है, तुम लोग उसमें अपने अपने मन को डाल दो तथा उसे गढ़ लो", "यदि स्वयं कुछ भी न

कर सको तो मुझे अपना मुख्तार बना लो"—इत्यादि। साथ ही दूसरी ओर उनका यह कहना है—"एक-एक करके सब वासनाओं को त्याग दो, तभी अग्रसर हो सकोगे", "आँधी के सम्मुख जूठी पत्तल की तरह बने रहो", "कामिनी कांचन को त्यागकर ईश्वर को पुकारो", "मैं सोलह आने कर चुका हूँ, तुम एक आना भर तो करो"—इत्यादि। ऐसा प्रतीत होता है कि उनके इस प्रकार दो भावों की उक्तियों का अर्थ बहुधा समझ में न आने के कारण ही दैव तथा पुरुषार्थ, निर्भरता तथा साधन, इनमें से किसको अवलम्बन बनाकर जीवन में अग्रसर होना चाहिए, यह हम निर्धारित नहीं कर पाए हैं।

दैव तथा पुरुषार्थ के सम्बन्ध में श्रीरामकृष्ण-देव का अभिमत।

दक्षिणेश्वर में एक दिन अपने एक मित्र* के साथ इस विषय को लेकर कि मानव में स्वतन्त्र इच्छा का अस्तित्व कुछ विद्यमान है या नहीं, बहुत देर तक वाद-विवाद करने के पश्चात्, उसकी यथार्थ मीमांसा के लिए हम श्रीरामकृष्णदेव के समीप उपस्थित हुए। बालकों के विवाद को कुछ देर तक वे कौतूहल से सुनते रहे, तदनन्तर गम्भीर होकर बोले, "अरे, कोई स्वाधीन इच्छा भी किसी के अन्दर कुछ विद्यमान है क्या? ईश्वरेच्छा से ही सर्वदा सब कुछ हो रहा है और होता रहेगा। अन्त में मनुष्य को इस बात का पता चलता है। फिर भी यह बात है कि मानो किसी गाय को एक लम्बी रस्सी के द्वारा खूँटे से बाँध दिया गया है—वह गाय खूँटे से एक हाथ दूरी पर खड़ी हो सकती है और यदि चाहे तो रस्सी जितनी लम्बी है, वहाँ तक जाकर भी खड़ी हो सकती है—मानव की स्वाधीन इच्छा भी इसी प्रकार की है। वह गाय उस दायरे में चाहे जहाँ बैठे, खड़ी हो अथवा घूमती रहे—इसीलिए मनुष्य उसे इस प्रकार से बाँधता है। ठीक उसी प्रकार ईश्वर ने भी मानव को कुछ शक्ति देकर तदनुसार वह जैसे एवं जितना चाहे उसका प्रयोग कर सकता है, इस प्रकार की स्वतन्त्रता देकर उसे छोड़ दिया है। इसीलिए मनुष्य अपने को स्वतन्त्र समझता है। किन्तु रस्सी खूँटे से बँधी हुई है। बात यह है कि उनसे आर्त होकर प्रार्थना करने पर वे उसे ढीला

* स्वामी निरंजनानन्दजी। १९०४ ई. में हरिद्वार में उनका देहान्त हुआ।

कर बाँध सकते हैं, उस रस्सी को और भी लम्बी कर सकते हैं और चाहे तो गले के बन्धन को एकदम खोल भी सकते हैं।"

इन बातों को सुनकर हमने पूछा, "मान्यवर, तब तो साधन-भजन करने में मनुष्य का कोई हाथ नहीं है? हर एक फिर यह कह सकता है कि — मैं जो कुछ कर रहा हूँ, सब उनकी इच्छा से ही कर रहा हूँ?"

श्रीरामकृष्ण — अरे, केवल कहने से क्या होगा? कील-काँटे नहीं हैं — केवल इस प्रकार कहने से ही क्या काम चल जाता है? काँटे पर हाथ पड़ते ही उसके चुभ जाने से मनुष्य 'ऊः' करके चिल्ला उठता है! साधन-भजन करना यदि मनुष्य के हाथ में होता, तब तो सभी लोग उसका अनुष्ठान कर सकते — किन्तु मनुष्य फिर क्यों नहीं कर पाते हैं? बात यह है कि उन्होंने तुमको जितनी शक्ति दी है, यदि तुम उसका उचित प्रयोग न करो तो वे उससे और अधिक नहीं देंगे। इसीलिए पुरुषार्थ या उद्यम की आवश्यकता है। देखो न, सभी को कुछ न कुछ उद्यम करके ही ईश्वर-कृपा का अधिकारी बनना पड़ता है। ऐसा करने पर उनकी कृपा से दस जन्म के भोग एक ही जन्म में समाप्त हो जाते हैं। किन्तु (उन पर निर्भरशील होकर) कुछ न कुछ उद्यम करना ही पड़ता है। इस प्रसंग में एक कहानी सुनो —

उक्त विषय में श्रीविष्णु तथा नारदजी का संवाद।

गोलोक-विहारी विष्णु ने एक बार किसी कारणवश नारदजी को अभिशाप दिया कि उन्हें नरक भोगना पड़ेगा। नारदजी चिन्तातुर हो उठे। नाना प्रकार की स्तव-स्तुतियों द्वारा उन्हें सन्तुष्ट कर वे बोले, "अच्छा प्रभो, नरक कहाँ है, वह कैसा है तथा कितने प्रकार का है, मेरी यह जानने की इच्छा हो रही है, मुझे कृपा कर बताइए। स्वर्ग, नरक तथा पृथ्वी, जो जहाँ पर अवस्थित है, उनको खड़िया से धरती पर अंकित कर दिखाते हुए विष्णु बोले, "यहाँ पर स्वर्ग तथा यहाँ नरक है।" नारदजी ने कहा, "अच्छा, तो फिर यही मेरा नरकभोग हो गया" — यह कहकर उस अंकित नरक के ऊपर लोट लगाने के पश्चात् नारदजी ने उन्हें प्रणाम किया। विष्णु हँसते हुए बोले, 'यह क्या? तुम्हारा नरकभोग कैसे

हुआ ?' नारदजी ने कहा, "क्यों प्रभो, स्वर्ग तथा नरक का सृजन आप ही ने तो किया है ? आप उसे अंकित कर मुझे दिखाते हुए जब यह बोले कि—'यह नरक है'— तब वह स्थान वास्तव में नरक ही हो गया और उस पर लोट लगा लेने से मेरा भी नरकभोग क्यों नहीं पूरा हो गया ?" नारदजी ने यह बात अपने हार्दिक विश्वास से कही थी न ! इसलिए विष्णु ने भी 'तथास्तु' कहा। किन्तु नारदजी को उन पर यथार्थ रूप से विश्वास स्थापन कर उस अंकित नरक के ऊपर लोट लगाना पड़ा, इस प्रकार उद्यम करने के पश्चात् तब कहीं उनका भोग समाप्त हुआ। इसी प्रकार कृपा के राज्य में भी उद्यम तथा पुरुषार्थ दोनों का हो स्थान है, इस बात को श्रीरामकृष्णदेव उक्त कहानी की सहायता से कभी-कभी हमको समझाया करते थे।

मानवों की असम्पूर्णता को स्वीकार कर अवतार पुरुषों के द्वारा मुक्ति का मार्ग आविष्कार करना।

नरदेह को धारण कर नरवत् लीला में प्रवृत्त हो अवतारी पुरुषों को हमारी तरह बहुधा दृष्टिहीनता, अल्पज्ञता आदि का अनुभव करना पड़ता है। हम लोगों की भाँति उद्यम की सहायता से वे भी उन विषयों से मुक्त होने के मार्ग का आविष्कार करते हैं, एवं जब तक वह मार्ग आविष्कृत नहीं हो जाता, तब तक उनके हृदय में अपने देवस्वरूप का आभास कभी-कभी स्वल्प समय के लिए उदित होने पर भी पुनः वह आच्छन्न हो जाता है। इस प्रकार से 'बहुजन-हिताय' माया के आवरण को स्वीकार कर उन्हें भी हम लोगों की तरह आलोक-अन्धकार के राज्य में मार्ग का अन्वेषण करना पड़ता है। भेद केवल इतना ही है कि उनके अन्दर स्वार्थसुख की चेष्टा बिलकुल न रहने के कारण वे अपने जीवन-मार्ग में हम लोगों की अपेक्षा अधिक आलोक देख पाते हैं एवं अपने अन्दर अवस्थित समग्र शक्ति को सहज ही में एक साथ केन्द्रित कर अविलम्ब जीवनसमस्या का समाधान करते हुए लोक-कल्याण साधन में नियुक्त होते हैं।

मानव की असम्पूर्णता को यथार्थ रूप से स्वीकार करने के कारण ही देव-मानव श्रीरामकृष्णदेव के मानवभाव की आलोचना के द्वारा हम लोगों का अत्यन्त कल्याण हो सकता है एवं इसीलिए उनके मानव-

भावों को सर्वदा सामने रखकर उनके देवभाव की आलोचना करने के लिए हम पाठकों से अनुरोध करते हैं। वे हम लोगों में से ही एक थे, इस प्रकार चिन्तन किए बिना उनके साधनकालीन अलौकिक उद्यम तथा प्रयासों का कोई अर्थ ढूँढ़ने पर भी हमें प्राप्त नहीं होगा। अन्यथा ऐसा प्रतीत होगा कि जो नित्यपूर्ण हैं, उनके लिए सत्य लाभ के प्रयत्न की क्या आवश्यकता है? मालूम होगा कि उनकी अथक चेष्टाएँ 'लोक दिखावा' मात्र हैं। इतना ही नहीं, ईश्वरप्राप्ति के निमित्त महान् आदर्शों को अपने जीवन में सुप्रतिष्ठित करने के लिए उनके उद्यम, निष्ठा तथा त्याग के द्वारा हमें उस प्रकार आचरण करने का प्रोत्साहन प्राप्त न होगा तथा हमारा हृदय घोर उदासीनता से भर जायगा और इस जीवन में हमारी जड़ता कभी दूर न होगी।

मानव रूप से चिन्तन किए बिना अवतार पुरुषों के जीवन तथा प्रयास का अर्थ जाना नहीं जा सकता।

श्रीरामकृष्णदेव के कृपाप्रार्थी होने पर भी हमें उन्हें अपने ही सदृश मानवभावसम्पन्न मानना पड़ेगा; क्योंकि हमारे दुःख में सहानुभूति-सम्पन्न होकर ही तो वे हमारे दुःख दूर करने के लिए अग्रसर होंगे। अतः चाहे जिस ओर से भी देखा जाय मानवभावापन्न रूप में उनका चिन्तन किए बिना हमारे लिए और कोई दूसरा मार्ग नहीं है। वास्तव में, जब तक हम सब प्रकार के बन्धनों से मुक्त होकर निर्गुण देवस्वरूप में स्वयं प्रतिष्ठित नहीं होते, तब तक जगत्कारण ईश्वर एवं ईश्वरावतारों को हमें मानव-भावापन्न रूप में ही चिन्तन तथा ग्रहण करना पड़ेगा। "देवो भूत्वा देवं यजेत्"—यह उक्ति इस तरह निःसन्देह सत्य है। यदि तुम्हारे लिए समाधि के बल से निर्विकल्प भूमि में पहुँचना सम्भव हो सका हो, तो तुम ईश्वर के यथार्थ स्वरूप की उपलब्धि तथा धारणा एवं वास्तव में उनका पूजन करने के अधिकारी हो। और यदि ऐसा न हुआ हो, तो तुम्हारा पूजन उक्त देवभूमि में उठने तथा यथार्थ पूजाधिकार को प्राप्त करने के प्रयास मात्र में पर्यवसित होगा और जगत्कारण ईश्वर का विशिष्ट शक्तिसम्पन्न मानवरूप में ही तुम्हें स्वतः अनुभव होता रहेगा।

बद्ध मानव को मानवभाव का ही बोध होता है।

देवत्व में आरूढ़ होकर उक्त प्रकार से ईश्वर के मायातीत देव-स्वरूप का यथार्थ पूजन करने में समर्थ व्यक्तियों की संख्या अत्यन्त विरल है। हमारे जैसे दुर्बल अधिकारी अभी उससे बहुत दूर हैं! इसलिए हम जैसे व्यक्तियों के प्रति दयावान् होकर हम लोगों के आन्तरिक पूजन को ग्रहण करने के निमित्त ही ईश्वर का मानवभूमि में अवतरण है — मानवीय भाव तथा देह को स्वीकार कर उनका देवमानव रूप धारण करना है। पूर्व पूर्व युगों में आविर्भूत देवमानवों के साथ श्रीरामकृष्णदेव की तुलना करने पर यह पता चलता है कि उनके साधन-कालीन इतिहास की आलोचना करने में हमें बहुत कुछ सुविधा प्राप्त है; क्योंकि श्रीरामकृष्णदेव ने स्वयं अपने जीवन के उस समय की बातों को समय-समय पर हम लोगों से विस्तारपूर्वक कहा है, इसलिए उसका उज्ज्वल चित्र हमारे हृदय पर दृढ़ रूप से अंकित है। साथ ही हम लोग जब उनके समीप उपस्थित हुए थे, उससे कुछ दिन पूर्व ही उनके साधकजीवन का विचित्र अभिनय दक्षिणेश्वर के काली मन्दिर के लोगों की आँखों के सम्मुख अनुष्ठित हुआ था तथा उनमें से अनेक व्यक्ति उस समय भी वहाँ पर विद्यमान थे। उनसे उस सम्बन्ध में कुछ कुछ सुनने का अवसर भी हमें प्राप्त हुआ था। अस्तु, अब इस विषय की आलोचना में प्रवृत्त होने से पूर्व हमारे लिए साधन तत्त्वों के मूल सूत्रों की साधारण रूप से एक बार आवृत्ति कर लेना उचित प्रतीत होता है। अतः उस विषय में अब हम कुछ आलोचना करना आवश्यक समझते हैं।

इसलिए मानवों के प्रति करुणा कर ईश्वर का मानव देह धारण; अतः मानव मानकर अवतार पुरुषों के जीवन की आलोचना करना ही कल्याणप्रद है।

प्रथम अध्याय

साधक और साधना

श्रीरामकृष्णदेव के जीवन-चरित्र में साधकभाव का यथार्थ परिचय प्राप्त करने के लिए सर्वप्रथम यह समझ लेना आवश्यक है कि साधना किसे कहते हैं। यह सुनकर सम्भवतः अधिकांश लोग यह कहें कि भारत तो सदा किसी न किसी रूप से धर्मसाधन में संलग्न है, ऐसी स्थिति में पुनः उसकी चर्चा कर ग्रन्थ के कलेवर को बढ़ाने की क्या आवश्यकता है? सदैव से आध्यात्मिक राज्य की सत्य वस्तुओं का साक्षात्कार करने के लिए भारत अपनी राष्ट्रीय शक्ति का जितना व्यय करता रहा है तथा अभी तक कर रहा है, संसार में ऐसा कौन-सा दूसरा देश व दूसरी जाति है, जिसने इस प्रकार का प्रयास किया हो? किस देश में ब्रह्मज्ञ अवतार पुरुषों का आविर्भाव इतनी अधिक संख्या में हुआ है? अतः साधन के साथ सदा परिचित हम लोगों के लिए उन विषयों के मूल सूत्रों की पुनरावृत्ति करना निरर्थक है।

यद्यपि यह बात सत्य है, फिर भी इसकी आवश्यकता है। क्योंकि साधना के सम्बन्ध में अनेक स्थलों पर लोगों में विचित्र प्रकार की धारणाएँ प्रचलित हैं। उद्देश या ज्ञातव्य विषय के प्रति लक्ष्यभ्रष्ट होकर बहुधा वे केवल शारीरिक कठोरता, दुष्प्राप्य वस्तुओं के संयोग से विभिन्न स्थलों में विशेष-विशेष क्रियाओं के निरर्थक अनुष्ठान, श्वास-प्रश्वासों का अवरोध, यहाँ तक कि असम्बद्ध मन की विचित्र चेष्टाएँ आदि में ही साधना का विशिष्ट रूप देखते रहते हैं। साथ ही यह भी देखा जाता है कि कुसंस्कार अथवा कुत्सित आचरण से विकृत मन को स्वस्थ तथा स्वाभाविक बनाकर आध्यात्मिक मार्ग में उसे परिचालित करने के निमित्त महापुरुषों ने समय-समय पर जिन क्रियाओं तथा उपायों का अवलम्बन

साधना के सम्बन्ध में साधारण मानव की भ्रान्त धारणा।

करने का उपदेश दिया है, उन्हीं को साधना मानकर सभी के लिए समान रूप से उनके अनुष्ठान की आवश्यकता की बात भी अनेक स्थलों पर प्रचारित हो रही है। वैराग्यवान् हुए बिना संसार के क्षणस्थायी रूपरसादि के भोग के लिए समान रूप से लालायित रहते हुए, मंत्र या विशेष क्रिया की सहायता से, जगत्कारण ईश्वर को मन्त्रौषधिवशीभूत सर्प की तरह अपने अधीन बनाया जा सकता है — इस प्रकार की भ्रान्त धारणा के वशीभूत हो अधिकांश लोगों को व्यर्थ के प्रयास में फँसकर समय बिताते हुए देखा जा रहा है। अतः युग युगान्तर के प्रयत्न तथा चेष्टा के फलस्वरूप भारत के ऋषि-महापुरुषगण साधना सम्बन्धी जिन तत्त्वों पर पहुँचे थे, यहाँ पर उसका संक्षिप्त समालोचन करना विषय-विरुद्ध न होगा।

सर्व भूतों में ब्रह्मदर्शन ही साधना का चरम फल है।

श्रीरामकृष्णदेव कहते थे, "सर्व भूतों में ब्रह्मदर्शन अथवा ईश्वर-दर्शन सबसे उच्च और अन्तिम अवस्था है" — साधना में चरम उन्नति होने पर ही मनुष्य के सौभाग्य से वह अवश्य उपस्थित होती है। हिन्दुओं के सर्वोच्च प्रामाण्य-शास्त्र वेदोपनिषदों का भी यही कथन है। शास्त्रों का कथन है कि जगत् में स्थूल-सूक्ष्म, चेतन-अचेतन जो कुछ तुम देख रहे हो — ईंट, पत्थर, लकड़ी, मिट्टी, मनुष्य, पशु, वृक्ष-लता, जीव-जन्तु, देव-देवता ये सब एक अद्वितीय ब्रह्मवस्तु हैं। ब्रह्मवस्तु को ही तुम नाना रूप तथा नाना प्रकार से देख रहे हो, सुन रहे हो, स्पर्श, घ्राण तथा आस्वादन कर रहे हो। उनके द्वारा तुम्हारे सब प्रकार के दैनिक आचरण सम्पन्न होने पर भी उसका बोध न होने के कारण तुम यह सोच रहे हो कि विभिन्न वस्तु तथा व्यक्तियों के साथ तुम्हारा सम्पर्क है। इन बातों को सुनकर हमारे मन में जो सन्देह-परम्परा का उदय होता है एवं उसका निराकरण करते हुए शास्त्रों ने जो निर्देश प्रदान किया है, यहाँ पर उसका संक्षिप्त तात्पर्य पाठकों के सम्मुख प्रश्नोत्तर रूप में रखने से यह विषय सहज ही में हृदयंगम हो सकता है।

प्रश्न — उस वस्तु का हमें प्रत्यक्ष अनुभव क्यों नहीं हो रहा है?

उत्तर — तुम लोगों को भ्रम हो गया है। जब तक वह भ्रम दूर

न होगा, तब तक उस भ्रम का तुम्हें कैसे पता लगेगा? यथार्थ वस्तु तथा अवस्था के साथ तुलना करने पर ही हम भीतर तथा बाहर के भ्रम को समझ पाते हैं। पूर्वोक्त भ्रम को जानने के लिए भी तुमको उस प्रकार का ज्ञान आवश्यक है।

प्रश्न — अच्छा, इस प्रकार का भ्रम होने का कारण क्या है तथा कब से हमें वह भ्रम हुआ है?

उत्तर—भ्रम का कारण जो सर्वत्र देखने को मिलता है, वही यहाँ पर भी है—अर्थात् अज्ञान। वह अज्ञान कब उपस्थित हुआ, यह तुम कैसे जान सकते हो? अज्ञान के अन्दर जब तक तुम स्वयं विद्यमान हो, तब तक उसे जानने का प्रयास करना व्यर्थ है। जब तक स्वप्न देखा जाता है, तब तक वह सत्य ही प्रतीत होता रहता है। नींद खुलने पर जाग्रत् अवस्था के साथ तुलना करने से ही उसके मिथ्यात्व की धारणा होती है। तुम यह कह सकते हो कि स्वप्न देखते समय भी कभी कभी किसी किसी व्यक्ति को 'मैं स्वप्न देख रहा हूँ'—इस प्रकार का भास होता है; वहाँ भी जाग्रत् अवस्था की स्मृति से ही उसके मन में वह भाव उदित होता है। जाग्रत् अवस्था में जगत् को देखते समय भी किसी किसी में उक्त प्रकार से अद्वय ब्रह्म वस्तु की स्मृति उदित होती हुई दिखाई देती है।

भ्रम व अज्ञान के कारण सत्य का प्रत्यक्ष अनुभव नहीं होता है; अज्ञानावस्था में अज्ञान के कारण का बोध नहीं हो सकता है।

प्रश्न—तो फिर उपाय क्या है?

उत्तर—उस अज्ञान को दूर करना ही एकमात्र उपाय है। मैं यह निश्चित रूप से कह सकता हूँ कि उस भ्रम या अज्ञान को दूर किया जा सकता है। प्राचीन ऋषि-मुनि उसे दूर करने में समर्थ हुए थे एवं किस प्रकार से वह दूर किया जा सकता है, यह भी वे बता गए हैं।

प्रश्न—अच्छा, उस उपाय को जानने से पूर्व और भी एक-दो प्रश्न करने की इच्छा हो रही है। हम इतने लोग जो कुछ देख रहे हैं, प्रत्यक्ष कर रहे हैं, उसे आप भ्रम बतला रहे हैं, और अल्पसंख्यक ऋषियों ने जो कुछ या जिस रूप में इस जगत् का प्रत्यक्ष किया, उसे ही सत्य

कह रहे हैं—क्या यह सम्भव नहीं हो सकता कि उन्होंने जो कुछ प्रत्यक्ष किया है, वही भ्रम है ?

उत्तर—बहुसंख्यक व्यक्ति जो विश्वास करेंगे, वही सर्वदा सत्य होगा ऐसा कोई नियम नहीं है। ऋषियों के प्रत्यक्ष को सत्य कहने का कारण यह है कि उस प्रत्यक्ष की सहायता से वे समस्त दुःखों से मुक्त हो सब प्रकार से भय-शून्य तथा चिर-शान्ति के अधिकारी हुए थे एवं निश्चित मरणशील मानव जीवन के सर्व प्रकार व्यवहार चेष्टादि का उन्हें एक लक्ष्य भी विदित हुआ था। इसके अतिरिक्त यथार्थ ज्ञान मानव के अन्दर सर्वदा सहिष्णुता, सन्तोष, करुणा, दीनता आदि सद्गुणों का विकास कर उन्हें अपूर्व रूप से उदार बना देता है; ऋषियों के जीवन में इस प्रकार के असाधारण गुण तथा शक्तियों का परिचय हमें शास्त्रों द्वारा मिलता है तथा उनके पदचिह्नों का अनुसरण कर जो सिद्धिलाभ करते हैं, उनके अन्दर भी उन विषयों का निदर्शन अभी तक देखने में आता है।

ऋषियों ने जगत् को जिस रूप से देखा है, वही सत्य है। उसका कारण।

प्रश्न—अच्छा, हम सभी को एक प्रकार का भ्रम कैसे हुआ ? मैं जिसे पशु समझता हूँ, आप भी उसे पशु ही समझते हैं, मनुष्य नहीं समझते; अन्यान्य विषयों में भी यही बात है। इतने व्यक्तियों को इस प्रकार सभी विषयों में एक ही साथ एक ही प्रकार का भ्रम होना, कम आश्चर्य की बात नहीं है। कुछ लोगों को किसी विषय में भ्रमात्मक धारणा होने पर भी दूसरे लोगों की उस विषय में सत्य-दृष्टि बनी रहती है, और सर्वत्र प्रायः ऐसा ही देखा जाता है। किन्तु यहाँ पर उस नियम का सर्वथा व्यतिक्रम हो रहा है। इसलिए आपका कथन सम्भव प्रतीत नहीं होता।

अनेक व्यक्तियों को एक प्रकार का भ्रम होने पर भी भ्रम कभी सत्य नहीं होता।

उत्तर—अल्पसंख्यक ऋषियों की सर्वसाधारण के साथ गणना न करने के कारण तुम्हें यहाँ पर नियम का व्यतिक्रम दिखाई दे रहा है। अन्यथा पूर्व प्रश्न के साथ ही इसका उत्तर दिया जा चुका है। फिर भी

तुम जो यह पूछ रहे हो कि सबको एक प्रकार का भ्रम कैसे हुआ ?—

विराट् मन में जगत् रूप की कल्पना विद्यमान रहने के कारण ही साधारण मानवों को एक-सा भ्रम हो रहा है, किन्तु तदर्थ विराट् मन भ्रम में आबद्ध नहीं है।

इसके उत्तर में शास्त्रों का कहना है कि एक असीम अनन्त समष्टि-मन में जगत् रूप कल्पना का उदय हुआ है। तुम्हारा, मेरा तथा जन-साधारण का व्यष्टि-मन उस विराट् मन का अंश तथा अंगीभूत होने के कारण हम लोगों को एक ही प्रकार की कल्पना का अनुभव करना पड़ रहा है। इसलिए हम प्रत्येक पशु को पशु के अतिरिक्त और किसी रूप में अपनी इच्छानुसार देखने या कल्पना करने में समर्थ नहीं हैं। और इसीलिए हम लोगों में से कोई यथार्थ ज्ञान को प्राप्त कर सब प्रकार के भ्रमों से मुक्त होने पर भी, दूसरे लोग पहले से जिस प्रकार भ्रम में पड़े हुए हैं, वैसे ही उसमें पड़े रहते हैं। साथ ही एक बात यह है कि विराट् मन में जगत्रूप कल्पना का उदय होने पर भी वे हम लोगों की तरह अज्ञान-बन्धन में निश्चेष्ट नहीं हो जाते। कारण यह कि सर्वदर्शी होने से वे अज्ञानजनित जगत्कल्पना के भीतर तथा बाहर अद्वय ब्रह्मवस्तु को ओतप्रोत रूप से विद्यमान देखते हैं। इस प्रकार देखने की सामर्थ्य न रहने के कारण हम लोगों की बात स्वतः ही भिन्न है। जैसे श्रीरामकृष्ण देव कहते थे, " साँप के मुँह में विष रहता है, उसी मुँह से वह नित्य भोजन कर रहा है, किन्तु उससे साँप का कुछ नहीं बिगड़ता, किन्तु साँप जिसे काटता है, उसकी तो उस विष से तत्काल ही मृत्यु हो जाती है।"

[...]रूप कल्पना देश-[...] से अतीत है। [...]र अनादि है।

अतः शास्त्रानुसार यह देखा गया कि विश्व-मन का कल्पनाजनित जगत् एक प्रकार से हम लोगों का भी मनःकल्पित है; क्योंकि हम लोगों का क्षुद्र व्यष्टि-मन, समष्टिभूत विश्व-मन के साथ अविच्छेद्य सम्बन्ध से शरीर तथा अवयवादि की तरह नित्य अवस्थित है। साथ ही यह भी नहीं कहा जा सकता कि जगत्रूप कल्पना पहले किसी समय विश्व-मन में विद्यमान नहीं बाद में हुई। कारण यह है कि नाम एवं रूप अथवा देश व काल-

रूप दोनों पदार्थ---जिनके न रहने से किसी प्रकार की विचित्रता का सृजन नहीं हो सकता---जगत्‌रूप कल्पना की ही मध्यवर्ती वस्तुएँ हैं अथवा उस कल्पना के साथ वे भी अविच्छेद्य रूप से नित्य विद्यमान हैं। शान्त चित्त से कुछ देर विचार करने पर पाठक स्वयं ही इस बात को समझ सकेंगे। एवं वेदादि शास्त्रों से सृजनशक्ति की आदिकारण-स्वरूपा प्रकृति या माया को अनादि अथवा कालातीत रूप से मानने की शिक्षा क्यों दी है, यह भी हृदयंगम हो सकेगा। जगत् यदि मनःकल्पित ही हो एवं इस कल्पना का आरम्भ, 'काल' शब्द से हमें जो बोध होता है, यदि उसके अन्दर न हुआ हो, तो इसका निष्कर्ष यह होगा कि काल-रूप कल्पना के साथ ही साथ जगत्‌रूप कल्पना भी तदाश्रय विश्व-मन में विद्यमान है। हमारा क्षुद्र व्यष्टि-मन दीर्घकाल से लगातार उस कल्पना को देखते रहने के कारण जगत् के अस्तित्व में ही उसकी दृढ़ धारणा बनी हुई है तथा जगत्‌रूप कल्पना के अतीत अद्वय ब्रह्मवस्तु के साक्षात् दर्शन से दीर्घकाल तक वंचित रहकर यह जगत् मनःकल्पित वस्तुमात्र है, इस बात को एकदम भूल जाने के कारण अपने भ्रम का अब वह अनुभव नहीं कर पा रहा है। क्योंकि पहले ही यह कहा जा चुका है कि यथार्थ वस्तु तथा अवस्था के साथ तुलना करने पर ही हम भीतर तथा बाहर के भ्रम को सर्वदा समझने में समर्थ होते हैं।

देश-कालातीत जगत्कारण के साथ परिचित होने का प्रयास ही साधन है।

अतः यह स्पष्ट है कि जगत् के बारे में हमारी धारणा तथा अनु-भूति आदि दीर्घकाल-संचित अभ्यास के फलस्वरूप वर्तमान आकार को धारण किए हुए एवं उसके सम्बन्ध में यथार्थ ज्ञान को प्राप्त करने के लिए हमें अब नाम-रूप, देशकाल, मन-बुद्धि आदि जगत् के अन्तर्गत सभी विषयों के अतीत जो पदार्थ हैं, उससे परिचित होना पड़ेगा। इस परिचय प्राप्त को करने के प्रयास को ही वेदादि शास्त्रों ने---'साधन' नाम से निर्देश किया है; एवं वह प्रयास ज्ञात या अज्ञात रूप से जिन स्त्री-पुरुषों में विद्यमान है, उन्हीं को भारत में 'साधक' नाम से सम्बोधित किया जाता है।

जगत् से अतीत उस वस्तु का अनुसन्धान करने का पूर्वोक्त प्रयास, साधारणतया अब तक दो प्रधान मार्गों से प्रवाहित होता रहा है। उनमें

से पहला वह है—जिसे शास्त्र ने "नेति, नेति" या 'ज्ञानमार्ग' के नाम से निर्देश किया है; और जिसे "इति, इति" या 'भक्तिमार्ग' कहा जाता है—वह दूसरा है। ज्ञानमार्ग के साधक चरम लक्ष्य की बात को प्रारंभ से ही अपने हृदय में धारण तथा सर्वदा स्मरण कर ज्ञानपूर्वक उसकी ओर नित्यप्रति अग्रसर होते रहते हैं। भक्तिपथ के पथिक चरम अवस्था में कहाँ पहुँचेंगे, इस विषय में बहुधा अज्ञ रहते हैं तथा उच्च से उच्चतर लक्ष्यों को ग्रहण करते हुए अन्त में जगत् से अतीत अद्वय वस्तु का वे साक्षात् परिचय प्राप्त कर लेते हैं। किन्तु जगत् के सम्बन्ध में साधारण मानवों के अन्दर जो धारणा बनी हुई है, दोनों पथ के पथिकों को उसे त्याग देना पड़ता है। ज्ञानी प्रारम्भ से ही उसे पूर्णतया परित्याग करने का प्रयास करते हैं; एवं भक्त उसके कुछ अंशों को छोड़ तथा कुछ अंशों को ग्रहण कर साधन में प्रवृत्त होते हैं और अन्त में ज्ञानी की तरह उसको सम्पूर्ण रूप से परित्याग कर 'एकमेवाद्वितीयम्' तत्व में उपस्थित होते हैं। जगत् के सम्बन्ध में स्वार्थमय तथा एकमात्र भोग-सुखपरिपूर्ण साधारण धारणा के वर्जन को ही शास्त्रों में 'वैराग्य' कहकर निर्देश किया गया है।

'नेति, नेति' तथा 'इति, इति' साधनपथ।

नित्य परिवर्तित होनेवाले तथा निश्चित-मरणशील मानवजीवन में जगत् की अनित्यता का ज्ञान सहज ही में आकर उपस्थित होता है। अतः जगत् सम्बन्धी साधारण धारणा को त्याग कर 'नेति' 'नेति'-मार्ग से जगत्कारण का अनुसन्धान करना, प्राचीन युग में मानवों के लिए सर्व-प्रथम उपस्थित हुआ था—ऐसा प्रतीत होता है। इसीलिए यह देखा जाता है कि भक्ति एवं ज्ञान ये दोनों मार्ग एक साथ प्रचलित रहने पर भी भक्ति-मार्ग के समस्त विभागों की सम्पूर्ण परिपुष्टि होने के पूर्व ही उपनिषदों में ज्ञानमार्ग की सम्यक् परिपुष्टि हुई थी।

'नेति, नेति'—नित्यस्वरूप जगत्कारण 'यह नहीं है' 'वह नहीं है' इस प्रकार विचारपूर्वक साधन मार्ग में अग्रसर हो मानव स्वल्पकाल के भीतर ही अन्तर्मुखी बन चुका था, उपनिषद् इस बात का साक्षी है। उसने यह अनुभव किया था कि अन्य समस्त वस्तुओं की अपेक्षा अपनी देह तथा मन के द्वारा ही सबसे पहले वह जगत् के साथ सम्बन्धित

है; अतः देह तथा मन के सहारे जगत्कारण के अन्वेषण में अग्रसर होने पर शीघ्र ही उसका पता लगने की सम्भावना है। साथ ही जिस प्रकार 'हंडी के एक चावल को देखने से ही मालूम हो जाता है कि भात अच्छी तरह से पक गया है या नहीं', ठीक उसी प्रकार अपने अन्दर नित्य-कारण-स्वरूप का अनुसन्धान मिलते ही दूसरी वस्तु तथा व्यक्तियों में भी उसकी खोज मिल सकती है। इसलिए ज्ञानमार्ग के पथिकों के निकट "मैं कौन हूँ" इस विषय का अनुसन्धान ही एकमात्र लक्ष्य बन जाता है।

'नेति, नेति' मार्ग का लक्ष्य--'मैं कौन हूँ' इस विषय का अनुसन्धान।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि ज्ञानी तथा भक्त दोनों साधकों को, जगत् के सम्बन्ध में साधारण लोगों की जो धारणा बनी हुई है, उसे त्याग देना पड़ता है। उस धारणा के सर्वथा त्याग से ही मानव-मन सर्ववृत्तिरहित होकर समाधि का अधिकारी बनता है। उस प्रकार की समाधि को ही शास्त्रों में निर्विकल्प समाधि की आख्या दी गई है। ज्ञानमार्ग के साधक, "मैं वास्तव में कौन हूँ" इस तत्व के अनुसन्धान में प्रवृत्त हो किस प्रकार निर्विकल्प समाधि में उपस्थित होते हैं एवं उस समय उन्हें किस प्रकार का अनुभव होता है, यह बात अन्यत्र कही गई है।* अतः भक्तिपथ के पथिक किस तरह उस समाधि के अनुभव को प्राप्त करते हैं, अब पाठकों के लिए उस विषय में कुछ कहना उचित प्रतीत होता है।

निर्विकल्प समाधि।

भक्तिमार्ग को 'इति, इति' रूप साधन-पथ के नाम से हमने निर्देश किया है; क्योंकि उस पथ के पथिकों को जगत् की अनित्यता का प्रत्यक्ष होने पर भी वे जगत्कर्ता ईश्वर पर भरोसा रखकर उसके रचित जगत्रूप कार्य को सत्य एवं उसके अस्तित्व को स्वीकार करते हैं। भक्त लोग जगत् एवं उसकी मध्यवर्ती समस्त वस्तुओं तथा व्यक्तियों को ईश्वर के साथ सम्बन्धित देखकर उन्हें अपना लेते हैं। इस सम्बन्ध के अवलोकन के मार्ग में जो कुछ बाधाएँ प्रतीत होती हैं, उनका वे दूर से

* गुरुभाव--पूर्वार्ध का द्वितीय अध्याय देखिए।

परित्याग कर देते हैं। इसके अतिरिक्त ईश्वर के किसी रूप में * अनुरक्त तथा ध्यान में तन्मय होना और उसकी प्रीति के निमित्त ही समस्त कार्यों का अनुष्ठान करना भक्तों का तत्काल ही लक्ष्य बन जाता है।

'इति, इति' रूप मार्ग से निर्विकल्प समाधि में पहुँचने का विवरण।

रूप के ध्यान में तन्मय हो जगत् के अस्तित्व को भूलकर किस प्रकार निर्विकल्प अवस्था में पहुँचा जा सकता है, अब हम उसकी चर्चा करेंगे। यह पहले ही कहा जा चुका है कि ईश्वर के किसी रूप को अपना इष्ट अथवा मुक्ति तथा यथार्थ सत्य की प्राप्ति का प्रधान सहायक मानकर भक्त उसका ही चिन्तन एवं ध्यान किया करते हैं। सर्वप्रथम ध्यान करते समय उक्त इष्ट मूर्ति के सर्वांगीण चित्र को वे अपने मानसचक्षु के सम्मुख ला नहीं पाते; कभी उनके हस्त, कभी चरण और कभी कभी उनका मुखमण्डल मात्र उनके समक्ष अभिव्यक्त होता है; और वह भी दर्शनमात्र से ही मानो विलीन हो जाता है, उनके सामने अविचल रूप से विद्यमान नहीं रहता। अभ्यास के फलस्वरूप ध्यान के गहरे होने पर उस मूर्ति का सर्वांगीण चित्र कभी-कभी उनके मानसचक्षुओं के सम्मुख उपस्थित हो जाता है। क्रमशः ध्यान जब और भी अधिक गहरा होने लगता है तब वह चित्र, जब तक मन चंचल नहीं हो जाता तब तक के लिए निश्चल रूप से सामने अवस्थित रहता है। तदनन्तर ध्यान की गहराई के तारतम्यानुसार हृदय में उस मूर्ति का सर्वदा अवस्थान, चलना-फिरना, हँसना-बोलना तथा चरम दशा में भक्तों को उनके स्पर्श तक की भी उपलब्धि होती है। उस समय वह मूर्ति सब प्रकार से जीवित जैसी दिखाई देती है और तब भक्त चाहें नेत्र मूँदकर अथवा आँखें खोलकर कैसे भी क्यों न ध्यान करते रहें, उस मूर्ति की विभिन्न प्रकार की चेष्टाओं का समान रूप से उन्हें प्रत्यक्ष होता रहता है। तदनन्तर "मेरे इष्टदेव ने ही अपनी इच्छानुसार नाना प्रकार के रूप धारण किए हैं"—इस प्रकार के विश्वास के फलस्वरूप

* ब्राह्मसमाज की उपासना भी हमारी दृष्टि में रूपध्यान के ही अन्तर्गत है; क्योंकि आकाररहित सर्वगुणसम्पन्न व्यक्तित्व के ध्यान में प्रवृत्त होने पर आकाश, जल, वायु या तेज आदि पदार्थों के सदृश पदार्थविशेष का ही मन में उदय हुआ करता है।

भक्त-साधक अपने इष्टदेव की मूर्ति के सहारे ही विविध प्रकार के दिव्य रूपों का दर्शन करते रहते हैं। श्रीरामकृष्णदेव कहते थे, "जिस व्यक्ति को किसी एक रूप के जीवित-भाव का दर्शन प्राप्त हुआ है, उसके लिए अन्य समस्त रूपों का दर्शन सहज ही में होने लगता है।"

इससे पूर्व जो कुछ कहा गया है—उसके आधार पर यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि जिनको भाग्यवश इस प्रकार की जीवित मूर्तियों का दर्शन प्राप्त होता है उनको जाग्रत् दशा में भी दृष्ट पदार्थों की तरह ध्यान करते समय भावना-राज्य की उन मूर्तियों का अस्तित्व भी समान रूप से प्रतीत होता रहता है। इस प्रकार बाह्य-जगत् तथा भाव-राज्य का समान अस्तित्व बोध ज्यों-ज्यों बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों उसके मन में बाह्य जगत् के मनःकल्पित होने की धारणा उत्पन्न होती जाती है। साथ ही गहरे ध्यान के समय भाव-राज्य का अनुभव भक्तों के मन में इतना प्रबल हो उठता है कि उस समय उनमें बाह्य जगत् की अनुभूति लेशमात्र भी विद्यमान नहीं रहती। भक्तों की उस अवस्था को ही शास्त्रों में सविकल्प समाधि का नाम दिया गया है। इस प्रकार की समाधि के समय मानसिक शक्ति के प्रभाव से भक्त के मन में बाह्य-जगत् विलीन हो जाने पर भी भाव-राज्य का विलय नहीं होता। जगत् के दृष्ट पदार्थ तथा व्यक्तियों के साथ सम्बन्ध स्थापित कर. हम जिस प्रकार प्रतिदिन सुख-दुःखादि का अनुभव करते हैं, अपने इष्ट देव की मूर्ति के साथ सम्पर्क स्थापन कर भक्त भी उस समय ठीक उसी प्रकार का अनुभव करते रहते हैं। तब केवल अपने इष्टदेव की मूर्ति का ही आश्रय लेकर उनके मन में समस्त संकल्प-विकल्पों का उदय होता रहता है। एक विषय को मुख्य रूप से अवलम्बन करने के कारण भक्तों के हृदय में उस समय वृत्ति-परम्परा के उदय होने से शास्त्रों ने उनकी उस अवस्था को सविकल्पक या विकल्पसंयुक्त समाधि की आख्या दी है।

उक्त भाव-राज्य के विषयविशेष के चिन्तन में निमग्न रहने के कारण स्थूल बाह्य जगत् तथा एक ही भावना के प्राबल्य से अन्य विषय-समूह भक्तों के मन में विलीन हो जाते हैं। जिन भक्त-साधकों के लिए इस प्रकार अग्रसर होना सम्भव हो सका है, समाधि की निर्विकल्प भूमि उनसे अधिक दूर नहीं है। दीर्घ काल से सुपरिचित जगत् के अस्तित्व-

बोध को जो इस प्रकार दूर करने में समर्थ हुए हैं, उनके मन का अत्यधिक शक्तिसम्पन्न तथा दृढ़संकल्प होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। अपने मन को एक साथ निर्विकल्प भूमि पर आरूढ़ करने में समर्थ होने पर ईश्वर-सम्भोग स्वल्प नहीं, अपितु अधिक मात्रा में होता रहता है—एक बार इस बात की धारणा होने पर साधक का समग्र मन उस ओर उत्साह के साथ अग्रसर होता है एवं श्रीगुरुदेव तथा ईश्वर की कृपा से वे शीघ्र ही भाव-राज्य की चरम भूमि पर आरूढ़ होकर अद्वैत ज्ञान में अवस्थित हो चिर शान्ति के अधिकारी बन जाते हैं। अथवा दूसरे शब्दों में यों कहा जा सकता है कि अपने इष्टदेव के प्रति प्रगाढ़ प्रेम ही उन्हें उस भूमि का दर्शन कराता है और उसकी प्रेरणा से व्रज गोपिकाओं की भाँति वे अपने इष्टदेव के साथ उस समय एकत्व का अनुभव करते हैं।

ज्ञानी तथा भक्त साधकों के लिए चरम लक्ष्य में पहुँचने का यह क्रम शास्त्रनिर्धारित है। किन्तु अवतार पुरुषों में देव तथा मानव इन दोनों भावों का एक साथ संयोग रहने के कारण साधनावस्था में ही कभी-कभी उनके अन्दर सिद्धों की तरह विकास देखने को मिलता है तथा वे उनकी भाँति शक्तिसम्पन्न दिखाई देते हैं। उनमें देव तथा मानव इन दोनों भूमियों पर स्वभावतः विचरण करने की शक्ति का विद्यमान रहना ही इसका कारण है; अथवा आन्तरिक देवभाव उनके लिए सहज तथा स्वाभाविक होने के कारण, वह उनके मानवभाव के बाह्य आवरण को समय-समय पर भेदकर उस प्रकार से स्वतः ही प्रकट होता रहता है—इसकी मीमांसा चाहे कुछ भी हो, किन्तु इस प्रकार की घटनाओं ने अवतार पुरुषों के जीवन को मानव-बुद्धि के लिए दुर्भेद्य एवं जटिल बना रखा है। इस जटिल रहस्य का कभी सम्पूर्ण रूप से निरसन होना प्रतीत नहीं होता, परन्तु श्रद्धा के साथ उसके आलोचन द्वारा मानव का अनन्त कल्याण हो सकता है, यह बात ध्रुवसत्य है। प्राचीन पौराणिक युग में अवतार-चरित्र के मानवभाव को ढककर देवभाव का ही विवेचन किया

अवतार पुरुषों में देव तथा मानव इन दोनों भावों के विद्यमान रहने के कारण साधनकाल में वे सिद्ध जैसे प्रतीत होते हैं। देव तथा मानव इन दोनों भावों के आधार पर ही उनके जीवन की आलोचना आवश्यक है।

गया है—किन्तु संशयाच्छन्न वर्तमान युग में उक्त चरित्र का देवभाव सम्पूर्णतया उपेक्षित है तथा मानवभाव की ही आलोचना हो रही है—ऐसी स्थिति में उक्त चरित्र के आलोचन में प्रवृत्त हो पाठकों के लिए हम इस बात को समझाने का प्रयास करेंगे कि उनमें दोनों भाव एक साथ विद्यमान हैं। यह कहना अनावश्यक है कि यदि देवमानव श्रीरामकृष्णदेव के पुण्यदर्शन का सौभाग्य हमें प्राप्त न होता तो अवतार-चरित्र को इस रूप में देखना हमारे लिए कभी भी सम्भव नहीं था।

द्वितीय अध्याय

अवतारजीवन में साधकभाव

पुण्यदर्शन श्रीरामकृष्णदेव के दिव्य संग से कृतार्थ हो हमने उनके जीवन तथा चरित्र का जितना ही अनुचिन्तन किया है, उतना ही उनमें देव तथा मानव इन दोनों भावों के विचित्र सम्मिश्रण को देखकर हम मुग्ध हुए हैं। माधुर्यपूर्ण सामंजस्य के साथ उस प्रकार की विपरीत भावसमष्टि का एक ही आधार में विद्यमान रहना कभी सम्भव हो सकता है, उन्हें देखे बिना इस बात की हम धारणा नहीं कर पाते। उनको देखकर ही हमें यह अनुभव हुआ है कि श्रीरामकृष्ण वास्तव में देव-मानव थे—सम्पूर्ण देवत्व के भाव तथा शक्तिसमूह मानवदेह तथा भाव में आवृत होकर प्रकट होने पर जैसी अभिव्यक्ति होती है, वैसे ही वे थे। उनको प्रत्यक्ष कर ही हमें यह उपलब्धि हुई कि उन दोनों भावों में से किसी का भी उन्होंने व्यर्थ अनुकरण नहीं किया है एवं लोकहित के लिए ही मानवभाव को यथार्थ में स्वीकार कर उन्होंने हमें उस स्थिति से देवत्व में जाने का मार्ग दिखाया है। साथ ही उनको अवलोकन कर हम यह समझ सके हैं कि पूर्व-पूर्व युगों के समस्त अवतार पुरुषों के जीवन में भी उक्त उन दोनों भावों का विचित्र समावेश निश्चित रूप से विद्यमान था।

श्रीरामकृष्णदेव के अन्दर देव तथा मानवभाव का सम्मिश्रण।

श्रद्धापूर्ण हृदय से किसी भी अवतार पुरुष के जीवनवृत्तान्त का निरीक्षण करने पर हमें इस बात की यथार्थता का अनुभव हो सकेगा। हमें यह दिखाई देगा कि वे हमारी भावभूमि में अवस्थित रहकर कभी जगत् के समस्त पदार्थ तथा व्यक्तियों के साथ हम लोगों की तरह आचरण कर रहे हैं—और कभी उच्च भावभूमि में विचरण करते हुए हम लोगों के अज्ञात, अपरिचित भाव तथा शक्तिसम्पन्न किसी नवीन राज्य का समाचार हमें प्रदान कर रहे हैं!—उनकी इच्छा न रहने

सभी अवतार पुरुषों में यही बात देखी जाती है।

पर भी मानो कोई उन विषयों को एकत्रित कर उनके द्वारा ऐसा करा रहा है। शैशव काल से ही लगातार उनके अन्दर यह धारा प्रवाहित होती रहती है। किन्तु शैशवावस्था मे समय-समय पर उस शक्ति का परिचय मिलने पर भी वे उनकी निजी शक्ति है तथा उनमे ही अवस्थित है, इस बात को प्रायः वे समझ नहीं पाते है, अथवा अपनी इच्छामात्र से उस शक्ति का प्रयोग कर उच्च भावभूमि मे आरूढ हो दिव्य भाव की सहायता से जगत के अन्तर्गत समस्त पदार्थ तथा व्यक्तियों को देखने एवं उनके साथ तदनुरूप आचरण करने मे वे समर्थ नहीं होते है। किन्तु उस शक्ति के अस्तित्व को अपने जीवन मे बारम्बार प्रत्यक्ष करते हुए उसके साथ सम्यक् रूप से परिचित होने की प्रबल उत्कण्ठा उनके हृदय मे जाग्रत हो उठती है और वह उत्कण्ठा ही उनमे अलौकिक अनुराग उत्पन्न कर उन्हे साधन में नियुक्त करती है।

अवतार पुरुषो में स्वार्थ-सुख की वासना नही रहती।

उनकी उस उत्कण्ठा में स्वार्थ की नामगन्ध तक नहीं रहती है। इहलोक या परलोक सम्बन्धी किसी प्रकार के भोग सुख को प्राप्त करने की प्रेरणा तो दूर की बात रही, पृथ्वी के और और व्यक्तियों के लिए कुछ भी हो या न हो, मै मुक्त होकर भूमानन्द मे निमग्न रहूँ—इस प्रकार का भाव तक उनके उस उत्कण्ठा मे दिखाई नहीं देता। केवल जिस अज्ञात दिव्यशक्ति के निर्देशानुसार आजन्म वे असाधारण दिव्य भावों का अनुभव कर रहे है और स्थूल जगत् के दृष्ट पदार्थ तथा व्यक्तियों की भाँति भावराज्यस्थित समस्त विषयों के समान अस्तित्व को समय-समय पर प्रत्यक्ष कर रहे है, क्या वह शक्ति वास्तव मे जगत् की ओट में अवस्थित है अथवा अपनी कपोलकल्पना मात्र है, इन सब तत्वों का अनुसन्धान ही उक्त वासना के मूल मे विद्यमान है, ऐसा दिखाई देता है; क्योंकि साधारण लोगों के प्रत्यक्ष तथा अनुभवादि के साथ अपने प्रत्यक्षादि की तुलना कर, अल्प समय मे ही उन्हे यह हृदयंगम हो जाता है कि वे आजीवन जगत् के पदार्थ तथा व्यक्तियों को जिस तरह देख रहे है, दूसरे लोग उस प्रकार देख नही पाते—अथवा यों कहना चाहिए कि भाव-राज्य की उच्च भूमि से जगत् को देखने की सामर्थ्य उनमें नहीं के बराबर है।

केवल इतना ही नही, किन्तु इसके साथ ही साथ पूर्वोक्त तुलना के अनुसार उन्हे और भी एक बात की धारणा होती है; उनको यह अनुभव होता है कि साधारण तथा दिव्य—इन दोनों भूमि से जगत् को दो प्रकार से देखने के कारण ही दो दिन के इस नश्वर जीवन मे उपस्थित होनेवाले आपात रमणीय रूप रसादि उन्हे साधारण मानवों की तरह प्रलुब्ध नहीं कर पाते और निरन्तर परिवर्तनशील संसार की विभिन्न अवस्थाओं मे विपर्यस्त होने पर अशान्ति तथा निराशा की निविड़ छाया उनके मन को आवृत नही कर पाती है। इसलिए पूर्वोक्त शक्ति को सम्यक् रूप से अपनाकर इच्छामात्र से भाव-राज्य की उच्च तथा उच्चतर भूमि मे स्वयं आरूढ़ हो जब तक चाहे वहाँ रहने एवं सभी को उस बात की शिक्षा प्रदान कर शान्ति का अधिकारी बनाने की चिन्ता मे उनका करुणापूर्ण हृदय एक साथ निमग्न हो जाता है। अतः उनके जीवन मे साधना तथा करुणा की दो प्रबल धाराएँ सर्वदा एक साथ प्रवाहित होती हुई दिखाई देती है। साधारण मानवों के साथ अपनी स्थिति के तुलनानुसार उनके हृदय मे वह करुणा शत धाराओं मे वर्धित हो सकती है, किन्तु उक्त प्रकार से ही उसकी उत्पत्ति होती हो यह बात नहीं। उसे अपने साथ लेकर ही वे इस संसार मे जन्म लेते है। श्रीरामकृष्णदेव के उक्त विषयक एक दृष्टान्त का स्मरण कीजिए—

उनकी करुणा तथा दूसरो के लिए उनका साधन-भजन।

"तीन मित्र किसी मैदान में टहलने गए थे। टहलते हुए मैदान के बीच पहुँचकर उन्होंने चारो ओर से घिरी हुई एक जगह को देखा—उसके अन्दर से गाने-बजाने की मधुर आवाज आ रही थी। उसे सुनकर उसके भीतर क्या हो रहा है, यह देखने की उनकी इच्छा हुई। चारो ओर घूमकर उन्होंने देखा कि कहीं भी भीतर जाने का कोई दरवाजा नहीं है। फिर कैसे प्रवेश किया जाय?—उनमे से एक व्यक्ति कहीं से एक नसेनी लाकर दीवाल पर चढ़ने लगा और बाकी दो व्यक्ति नीचे खड़े रहे। दीवाल पर चढकर भीतर की घटना को देख वह आनन्द मे विभोर हो हा हा कर हँसता हुआ अन्दर कूद पड़ा। उसने

उक्त विषयक दृष्टान्त। 'तीन मित्रो के आनन्द-कानन दर्शन' सम्बन्धी श्रीरामकृष्णदेव की कहानी।

भीतर क्या देखा, नीचे खड़े हुए दो व्यक्तियो को बताने के लिए वह किंचिन्मात्र भी प्रतीक्षा न कर सका। तब उन दोनों ने सोचा---वाह, बहुत अच्छा मित्र है, उसने क्या देखा यह कुछ भी न कहा--अस्तु, चुपचाप खड़े होकर वे यह दृश्य देखते रहे। फिर दूसरा व्यक्ति उस नसेनी पर चढ़ने लगा, ऊपर चढ़कर वह भी पहले व्यक्ति की तरह उसी प्रकार हँसता हुआ भीतर कूद पड़ा। तब तीसरे व्यक्ति के लिए दूसरा और कोई उपाय ही क्या रह गया, वह भी उस नसेनी पर चढ़ा तथा भीतर के आनन्द समारोह को देखने लगा। देखकर सर्वप्रथम उसमे सम्मिलित होने की उसकी तीव्र इच्छा हुई, किन्तु तत्काल ही वह सोचने लगा---'यदि मैं अभी उसमें सम्मिलित हो जाता हूँ तो बाहर के और लोगों को यह पता न चलेगा कि यहाँ पर इस प्रकार आनन्द उपभोग करने का एक स्थान विद्यमान है; क्या मै अकेला ही इस आनन्द का उपभोग करूँ,---यह सोचकर बलपूर्वक अपने मन को वहाँ से हटाता हुआ वह नीचे उतर आया और जो कोई भी उसके सम्मुख आया, उसी से जोर से पुकारकर कहने लगा---'अरे भाई सुनो, यहाँ पर एक अपूर्व आनन्द का स्थान विद्यमान है, चलो वहाँ चलकर हम सब उस आनन्द का उपभोग करे!' इस प्रकार अनेक व्यक्तियों को साथ लेकर वह भी उस आनन्द मे सम्मिलित हुआ।'' अब सोचो, तीसरे व्यक्ति के मन में और लोगों को साथ लेकर आनन्द उपभोग करने की इच्छा का, ढूँढ़ने पर भी, जिस प्रकार कोई कारण नहीं मिलता है, ठीक उसी प्रकार अवतार पुरुषों के हृदय मे लोककल्याण साधन की इच्छा शैशवावस्था से ही क्यों विद्यमान रहती है, उसका भी कोई कारण निर्देश नहीं किया जा सकता।

अवतार पुरुषों को साधारण मानवों की भाँति संयम का अभ्यास करना पड़ता है।

पूर्वोक्त वृत्तान्त को सुनकर सम्भवतः किसी की यह धारणा हो सकती है कि अवतार पुरुषों को हम लोगों की तरह दुर्निवार्य इन्द्रियों के साथ कभी संग्राम नहीं करना पड़ता; सम्भवतः सुशील शान्त बालकों की तरह उनके इन्द्रियसमूह आजन्म उनके वशीभूत रहकर उनकी इच्छानुसार परिचालित होते रहते है एवं तदर्थ संसार के रूपरसादि विषयों से अपने मन को हटाकर वे सहज ही उसे उच्च लक्ष्य की ओर स्थापित कर लेते है। इसके उत्तर

में हमारा यह कहना है कि यथार्थ मे ऐसी बात नहीं है; इस विषय में भी नरवत् नरलीला होती रहती है; यहाँ पर भी उन्हें संग्राम में विजयी होकर अपने गन्तव्य-मार्ग की ओर अग्रसर होना पड़ता है ।

मानव-मन के स्वभाव के सम्बन्ध मे जिन्होंने कुछ भी जानने की चेष्टा की है, उनको यह विदित है कि स्थूल से लगाकर सूक्ष्म, सूक्ष्मतर तथा सूक्ष्मतम अनन्त वासनाएँ उसमे विद्यमान है, यदि किसी प्रकार उनमें से एक को अतिक्रमण करने मे तुम्हें सफलता प्राप्त हुई तो दूसरी आकर तुम्हारे मार्ग का अवरोध कर देगी—उसको पराजित करने पर और एक उस जगह आकर खड़ी हो जावेगी—स्थूल को परास्त करने पर सूक्ष्म आ खड़ी होगी—उसको हटाने से सूक्ष्मतर वासनाएँ तुम्हारे सामने उपस्थित हो जायेगी । यदि काम को त्यागा तो काचन आकर खड़ा हो जावेगा, साधारणतया काम-कांचन से विरत होने पर सौन्दर्यानुराग, लोकैषणा, सम्मान, यश आदि सामने आ उपस्थित होगे; अथवा मायिक सम्बन्धों का यत्नपूर्वक परिहार करने पर आलस्य या करुणा के रूप मे माया-मोह आकर तुम्हारे हृदय में अपना स्थान जमा लेगा ।

मन की अनन्त वासनाएँ ।

मन के इस प्रकार के स्वभाव का उल्लेख कर वासना जाल से दूर रहने के लिए श्रीरामकृष्णदेव सदा हमे सतर्क किया करते थे । दृष्टान्तस्वरूप अपने जीवन की घटना * तथा चिन्ताओं का भी समय-समय पर उल्लेख कर वे इस विषय को हमें समझाया करते थे । पुरुष भक्तों की तरह स्त्री भक्तों से भी वे इस बात को बारम्बार कहकर उनके हृदय मे ईश्वर के प्रति अनुराग उद्दीप्त करते थे । एक दिन के प्रसंग का उल्लेख करने पर पाठक इस बात को भलीभाँति समझ जायेंगे ।

वासना-त्याग के सम्बन्ध में श्रीरामकृष्णदेव की प्रेरणा ।

स्त्री अथवा पुरुष जो कोई भी श्रीरामकृष्णदेव के समीप आता था, वे सब उनकी सरलता, सद्व्यवहार तथा कामगन्धरहित अद्भुत प्रेम के आकर्षण को हृदय से अनुभव किया करते थे तथा सुविधानुसार पुनः

* गुरुभाव—पूर्वार्ध का प्रथम तथा द्वितीय अध्याय देखिए ।

उनका पुण्यदर्शन प्राप्त करने के निमित्त लालायित रहते थे। इस प्रकार न केवल वे स्वयं ही बारम्बार उनके दर्शन कर कृतकृत्य होते थे, वरन् अपने परिचित इष्ट-मित्रों को भी उनके समीप ले जाने का प्रयास करते थे जिससे वे लोग भी उनका दर्शनलाभ कर विमल आनन्द को प्राप्त कर सकें। हमारी परिचित एक महिला किसी दिन अपनी सौतेली बहिन तथा उसके पतिदेव की सगी बहिन को लेकर अपराह्न के समय दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्णदेव के समीप उपस्थित हुई एवं उन्हें प्रणाम कर बैठ गईं। श्रीरामकृष्णदेव ने उनसे परिचय तथा कुशल प्रश्नादि किए, तदनन्तर ईश्वर के प्रति अनुरागी बनना ही मानवजीवन का एकमात्र ध्येय होना चाहिए, इस विषय की चर्चा प्रारम्भ कर उनसे कहने लगे—

उक्त विषय में स्त्री-भक्तों के प्रति उनका उपदेश।

"भगवान् के शरणागत होना क्या सहज है? महामाया की ऐसी विचित्रता है कि शरणागत होने नहीं देती। जिसका कहीं भी कोई नहीं है, उसके द्वारा एक बिल्ली पलवाकर उसे संसार में फँसा रखती है!—वह भी इधर-उधर से उसके लिए मछली तथा दूध जुटाता रहता है और साथ ही यह भी कहता जाता है, 'मछली तथा दूध के न होने पर बिल्ली खाती नहीं है। बताओ, मैं क्या करूँ?'

"मानो कोई बड़े आदमी का घर है। पति-पुत्र सभी की मृत्यु हो गई—कोई भी न बचा—केवल कुछ विधवाएँ रह गईं!—उनकी मृत्यु नहीं हुई! मकान के कुछ हिस्से टूट गए, कुछ अंश गिर पड़े, छत पर पीपल का वृक्ष निकल आया—उसके साथ खाने लायक कुछ शाक भी उपजने लगे, विधवाएँ उसे राँध रही हैं और संसार-यात्रा निर्वाह कर रही हैं। क्यों? प्रभु को वे क्यों नहीं पुकारतीं? उनके शरणागत क्यों नहीं होतीं?—उसका समय भी आ चुका है। किन्तु ऐसा हो नहीं पाता।"

"मानो विवाह के बाद किसी के पति की मृत्यु हो गई—विवाह होते ही विधवा हो गई। प्रभु को वह क्यों न पुकारे? किन्तु ऐसा न कर वह अपने भाई के घर की मालकिन बन गई। सिर में जूड़ा बाँध, आँचल में चाबी का गुच्छा लटका कर हाथों को हिलाती हुई कानून छाँट रही

है—उसे देखकर पड़ोस के सभी लोग डरते रहते है !—और वह चारों ओर यह कहती फिरती है—'मेरे बिना भाई साहब का भोजन तक नहीं होता है !'—मर राँड़, तुझे क्या मिला, यह तो जरा सोच—पर उधर उसका कोई ध्यान ही नहीं।"

एक रहस्यजनक बात यह है कि हमारे परिचित रमणी की बहिन की ननंद जिन्होंने उस दिन प्रथम बार श्रीरामकृष्णदेव का दर्शन किया था, अपने भाई के घर पर मालकिन बनी हुई थीं। पर श्रीरामकृष्णदेव से किसी ने इस बात की कोई चर्चा नही की थी। किन्तु बात ही बात में वे इस दृष्टान्त को लाकर वासना के प्रबल प्रभाव तथा मानव-मन में अवस्थित अनन्त वासनास्तरों की बातों को समझाने लगे। यह कहना ही पर्याप्त है कि उक्त महिला के हृदय के अन्तःस्तल मे ये बाते प्रविष्ट हो गईं। इन दृष्टान्तों को सुनकर हमारी परिचित रमणी की बहिन उनको धक्का देती हुई चुपचाप बोलीं, "बताओ बहिन, आज ही क्या उनके मुँह से ये बाते निकलनी थीं?—मेरी ननंद अपने मन मे क्या सोचेगी?" उन्होंने कहा, "मैं क्या करूँ, उनकी इच्छा; उन्हें तो किसी ने सिखा नहीं दिया है।"

मानव-स्वभाव की आलोचना करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि जिसका मन जितनी उच्चभूमि मे आरूढ़ होता है, सूक्ष्म वासनासमूह उसे उतना ही तीव्र कष्ट अनुभव कराता रहता है। चोरी, झूट या लाम्पट्य का जिसने असंख्य बार आचरण किया है, उसके लिए पुनः उन कार्यों का अनुष्ठान उतना कष्टप्रद नहीं होता, किन्तु उदार तथा उच्चहृदय व्यक्ति उन विषयों की चिन्तामात्र से ही अपने को दोषी मानकर दुःसह यातना का अनुभव कर विह्वल हो जाते है। अवतार पुरुषों को आजीवन स्थूल रूप से विषयों को ग्रहण करने से प्रायः विरत रहते हुए देखे जाने पर भी, वे हम लोगों की तरह अन्तरस्थित सूक्ष्म वासनाश्रेणी के साथ समान रूप से संग्राम करते रहते है एवं अपने मन मे उसकी छाया देखकर हम लोगों की अपेक्षा सौ गुना अधिक कष्ट अनुभव करते है, यह बात वे स्वयं स्पष्ट शब्दों में कह गए है। अतः रूपरसादि विषयों से इन्द्रियों को प्रत्याहृत करने के निमित्त उनके द्वारा अनुष्ठित संग्राम को हम छल कैसे कह सकते हैं?

सूक्ष्म वासनाओं के साथ अवतार पुरुषो का संग्राम।

द्वैतभाव-भूमि से देखने पर जगत् के सम्बन्ध में हमे दो प्रकार की धारणाएँ होती है। पहली भूमि पर आरूढ़ होकर जब हम इस बात को समझने का प्रयास करते है कि जगत्‌रूप पदार्थ कहॉ तक सत्य है, तब हमको यह स्पष्ट अनुभव होता है कि उसकी कोई सत्ता नहीं है और न पहले ही कभी थी—'एकमेवाद्वितीयम्' ब्रह्मवस्तु के अतिरिक्त और कोई दूसरी वस्तु नहीं है; तथा दूसरी यानी द्वैतभाव-भूमि से जगत् को देखने पर नाना नाम-रूपो के समष्टिरूप यह जगत् सत्य तथा नित्य विद्यमान है, ऐसा हमे अनुभव होता है जैसे हम लोगों की तरह साधारण मानवो को सदा उपलब्धि होती रहती है। देह मे अवस्थित रहकर भी विदेह भावसम्पन्न अवतार तथा जीवन्मुक्त पुरुषों को अपने जीवन का अधिकांश समय अद्वैत-भूमि मे व्यतीत करने पर भी नीचे की द्वैत-भूमि में रहते समय यह जगत् स्वप्न की भॉति मिथ्या प्रतीत होता है। परन्तु जाग्रत अवस्था के साथ तुलना करने पर स्वप्न मिथ्या है इस प्रकार का अनुभव होने पर भी स्वप्नदशा मे जिस प्रकार उसे एकदम मिथ्या नहीं कहा जा सकता, उसी प्रकार जीवन्मुक्त तथा अवतार पुरुषों के हृदयस्थित जगत् के आभास को भी सम्पूर्णतया मिथ्या नहीं कहा जा सकता।

दूसरे प्रकार से उक्त विषय की आलोचना।

जगत्‌रूप पदार्थ जिस प्रकार पूर्वोक्त दोनों भूमि से दो प्रकार का दिखाई देता है, उसी प्रकार उक्त दोनों भावभूमियों से उसके अन्तर्गत किसी व्यक्तिविशेष को भी दो प्रकार से देखा जाता है। द्वैतभावभूमि से देखने पर वह व्यक्ति बद्धमानव तथा पूर्ण अद्वैतभूमि से अवलोकन करने पर वह शुद्धमुक्तस्वरूप—ब्रह्मस्वरूप—प्रतीत होता है। पूर्ण अद्वैतभूमि भाव-राज्य का सर्वोच्च प्रदेश है। उस पर आरूढ़ होने के पूर्व मानव-मन उच्च तथा उच्चतर विभिन्न भूमियों को अतिक्रमण करता हुआ अन्त मे अपने गन्तव्य स्थल पर पहुँच जाता है। उन उच्च तथा उच्चतर भावभूमि पर उठते समय जगत् तथा उसके अन्तर्गत व्यक्तिविशेष, साधकों को विभिन्न रूप से प्रतीत होते रहते है और उसके सम्बन्ध मे साधकों की पूर्व धारणाएँ नाना प्रकार से बदलती रहती हैं। उदाहरणार्थ—उन्हे यह उपलब्धि होती है कि यह जगत् एक

उच्चतर भावभूमि से जगत् के सम्बन्ध में विभिन्न उपलब्धियाँ।

भावमय पदार्थ है; अथवा व्यक्तिविशेष को शरीर से पृथक् अपूर्व शक्तिशाली, मनोमय या दिव्य ज्योतिर्मय रूप से वे अनुभव करते है।

अवतार पुरुषों के समीप श्रद्धा तथा भक्तिसम्पन्न होकर उपस्थित होने से साधारण मानव अज्ञात रूप से पूर्वोक्त उच्च तथा उच्चतर भावभूमिये मे आरूढ हो जाता है। यह अवश्य है कि उनकी विचित्र शक्ति के प्रभाव से ही उसको इस प्रकार आरोहण की सामर्थ्य प्राप्त होती है। अतः यह स्पष्ट है कि उन उच्च भूमियों से उन्हे उस प्रकार विचित्र रूप से देखकर ही भक्तसाधकों को उनके सम्बन्ध मे यह धारणा उत्पन्न होती है कि विचित्र शक्तिसम्पन्न दिव्यभाव ही उनका यथार्थ स्वरूप है तथा साधारण लोगों को उनमें जो मानवभाव की प्रतीति होती है, इसका कारण यह है कि वे स्वयं ही उनको ऐसा दिखाते रहते है।—यह मानो उनका 'लोकदिखावा' है। भक्ति की गहराई के अनुसार भक्तसाधकों के मन मे पहले ईश्वर-भक्तों के बारे मे और फिर ईश्वर के जगत् के सम्बन्ध में इस प्रकार की धारणा होती हुई दिखाई देती है।

अवतार पुरुषो की शक्ति से उच्च भावभूमि में आरूढ़ होने पर मनुष्य को वे मानवभावरहित दिखाई देते हैं।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि अवतार पुरुषों के जीवन में बाल्यावस्था से ही समय-समय पर यह देखा जाता है कि वे मन की उच्च भूमि में आरूढ़ होकर जगत् में सर्वदा दृष्टिगोचर होने वाली वस्तु तथा व्यक्तियों की भाँति भावराज्य के विषयों के भी दृढ़ अस्तित्व का अनुभव करते है। तदनन्तर ज्यों ज्यों दिन बीतते जाते है तथा उक्त प्रकार का दर्शन उनके जीवन मे बारम्बार जितना ही उपस्थित होता रहता है, उतना ही स्थूल यानी बाह्य जगत् की अपेक्षा भावराज्य के अस्तित्व मे ही उनका प्रगाढ़ विश्वास होता जाता है। अन्त मे सर्वोच्च अद्वैतभावभूमि में आरूढ़ होकर, जिस 'एकमेवाद्वितीयम्' वस्तु से विभिन्न नामरूपमय इस जगत् का विकास हुआ है, उसका अनुसन्धान पाकर वे सफल मनोरथ हो जाते हैं। जीवन्मुक्त पुरुषों को भी ऐसा ही होता है। अन्तर केवल इतना ही है कि अवतार-पुरुष अत्यन्त स्वल्प काल में ही जिस सत्य पर पहुँचते है, उनको उसकी उपलब्धि

अवतार पुरुषों के मन की क्रमिक उन्नति। जीव तथा अवतारों में शक्ति का भेद।

के लिए आजीवन प्रयास करना पड़ता है। अथवा स्वयं स्वल्प काल में अद्वैतभूमि पर आरोहण करने में समर्थ होने पर भी दूसरों को उस भूमि में आरोहित कराने की शक्ति, अवतार पुरुषों की तुलना मे, उनमे अत्यन्त ही स्वल्प होती है। श्रीरामकृष्णदेव की उक्त विषयक शिक्षा का स्मरण कीजिए—"शक्ति के प्रकाश को लेकर ही जीव तथा अवतार मे प्रभेद है।"

अवतारवर्ग—देव-मानव तथा सर्वज्ञ है।

अद्वैतभूमि में कुछ दिन अवस्थित रहकर जगत्कारण की साक्षात् अनुभूति से परितृप्त हो अवतार-पुरुष जब पुनः मन की निम्नभूमि में उतरते है, उस समय साधारण दृष्टि से मानव मात्र दिखाई देने पर भी वास्तव मे वे मानवातीत या देव-मानव पद को प्राप्त करते है। जगत् तथा उसके कारण इन दोनों पदार्थों को साक्षात् प्रत्यक्ष कर तुलनानुसार बाह्यान्तर जगत् के छायासदृश अस्तित्व को तब वे सर्वदा सर्वत्र अनुभव किया करते है। उस समय उनके मन में उच्च शक्तिसमूह स्वतः ही लोकहित के निमित्त सदा प्रकट होता रहता है तथा जगत् के परिदृष्ट समस्त पदार्थों के आदि, मध्य तथा अन्त को सम्यक् रूप से जानकर वे सर्वज्ञत्व को प्राप्त कर लेते है। उनके अलौकिक चरित्र तथा चेष्टाओं को देखकर स्थूलदृष्टिसम्पन्न हम लोग उनकी अभय शरण लेते है तथा उनकी असीम कृपा से हमें पुनः यह अनुभव होता है कि बहिर्मुखी वृत्तियों के द्वारा बाह्य जगत् के परिदृष्ट पदार्थ तथा व्यक्तियों का आश्रय लेकर यथार्थ सत्य की प्राप्ति अथवा जगत्कारण का अनुसन्धान एवं शान्तिलाभ प्राप्त करना हमारे लिए कदापि सम्भव नहीं है।

हमारी उपरोक्त बात को सुनकर पाश्चात्यविद्यापारंगत पाठक वर्ग निश्चय ही यह कहेंगे कि बाह्य जगत् के पदार्थ तथा व्यक्तियों का अवलम्बन

बहिर्मुखी वृत्तियो को लेकर जड़ विज्ञान की आलोचना के द्वारा जगत्कारण का ज्ञान होना असम्भव है।

कर अनुसन्धान करने के फलस्वरूप आजकल मानव का ज्ञान कितना वर्धित हुआ है तथा प्रतिदिन हो रहा है। जिसने इसका अनुभव किया है, वह ऐसा कभी नहीं कह सकता। इसके उत्तर में हमारा यह कहना है कि जड़ विज्ञान की उन्नति से भौतिक ज्ञानवर्धन की बात सत्य होने पर भी उसकी सहायता से हम पूर्ण सत्य को प्राप्त करने

मे कदापि सफल नहीं हो सकेंगे; क्योंकि जो विज्ञान जगत्कारण को जड़ अथवा हमसे भी अधम तथा निकृष्ट जाति की वस्तु कहकर धारण करने की शिक्षा दे रहा है, उसकी उन्नति से क्रमशः बहिर्मुखी बनकर अधिक मात्रा मे रूपरसादि के भोग को ही हम अपने जीवन का मुख्यतम लक्ष्य मानते चले जा रहे है। अतः एकमात्र जड़ वस्तु से ही जगत् की सारी चीजें उत्पन्न हुई है, यह बात यन्त्र के सहारे किसी समय प्रमाणित होने पर भी अन्तर्राज्य के विषय हम लोगों के लिए चिरकाल तक अन्धकाराच्छन्न तथा अप्रमाणित ही रह जायेंगे। भोगवासना का त्याग तथा अन्तर्मुखी वृत्ति सम्पन्न होने पर ही मानव मुक्ति के मार्ग पर पहुँच सकता है। जब तक यह बात हृदयंगम न होगी, तब तक देशकालातीत सत्य को प्राप्त कर शान्तिलाभ करना हमारे लिए कभी भी सम्भव न हो सकेगा।

बाल्यावस्था से ही समय-समय पर भावराज्य के विषयों में तन्मय हो जाने की बाते सभी अवतार-पुरुषों के जीवन मे सुनने मे आती है।

अवतार पुरुषों की बाल्यावस्था से ही भावतन्मयता।

श्रीकृष्ण ने बाल्यकाल में अपने माता पिता तथा बन्धु-बान्धवों के समीप विभिन्न अवसरों पर देवत्व का परिचय प्रदान किया था; बुद्धदेव ने अपनी बाल्यावस्था मे टहलने के लिए उपवन में जाकर बोधिद्रुम के नीचे समाधिमग्न हो देवता तथा मानवों का दृष्टि-आकर्षण किया था; वन की चिड़ियों को प्रेम के साथ अपने निकट आकृष्ट कर ईसा ने बाल्यकाल मे उनको अपने हाथों से खिलाया था; शंकराचार्य ने अपनी माता को दिव्यशक्ति के प्रभाव से मुग्ध तथा आश्वस्त कर बाल्यकाल मे ही संसार त्याग किया था तथा चैतन्यदेव ने बाल्यावस्था में दिव्यभाव मे आविष्ट हो इस बात का आभास प्रदान किया था कि ईश्वरप्रेमी हेय तथा उपादेय सभी वस्तुओं में ईश्वर के प्रकाश को देख पाते है।

श्रीरामकृष्णदेव के जीवन मे भी इस प्रकार की घटनाओं का अभाव नहीं है। दृष्टान्तस्वरूप कुछ घटनाओं का हम यहाँ पर उल्लेख कर रहे हैं। उनके श्रीमुख से उन घटनाओं को सुनकर हमें यह विदित हुआ है कि भाव-राज्य मे प्रथम तन्मय होना उनके लिए अत्यन्त छोटी आयु में ही सम्भव हुआ था। श्रीरामकृष्णदेव कहते थे, "वहाँ (कामारपुकुर मे)

बहुत छोटी छोटी टोकरियों में बच्चों को चबाने के लिए 'मुड़मुड़ी' (भूँजा हुआ चावल, एक प्रकार का चबेना) दी जाती है। जिनके घर पर उस प्रकार की छोटी टोकरी नहीं होती है, वे अपने कपड़े पर ही 'मुड़मुड़ी' चबाया करते है। इस प्रकार टोकरी मे और कोई कपड़े पर 'मुड़मुड़ी' लेकर चबाते हुए इधर-उधर घूमते फिरते है। जेठ या आषाढ़ का महिना था, उस समय मेरी आयु छः या सात वर्ष की थी। एक दिन प्रातःकाल उसी प्रकार छोटी टोकरी मे 'मुड़मुड़ी' चबाता हुआ जंगल में खेत की मेड़ पर होकर मै जा रहा था। आसमान पर सुन्दर काली घटा उठी थी— उसे मै देख रहा था तथा 'मुड़मुड़ी' भी चबाता जा रहा था। कुछ ही समय बाद प्रायः पूरा आसमान बादल से छा गया। ठीक उसी समय दूध की भाँति सफेद बगुलों का एक झुण्ड उन काले बादलों के नीचे से उड़कर जाने लगा। वह एक अनूठा ही दृश्य था।——उसे देखता हुआ अपूर्व रूप से तन्मय हो जाने के कारण मेरी ऐसी अवस्था हुई कि मुझे कुछ भी होश न रहा! मै गिर पड़ा, मेड़ के चारो ओर 'मुड़मुड़ी' बिखर गई। कब तक मै उस हालत मे वहाँ पड़ा रहा, मै कह नहीं सकता; लोगों ने जब देखा तब मुझे उठाकर घर ले आए। उसी दिन सर्वप्रथम भावसमाधि के कारण मै संज्ञाहीन हुआ था।"

छः वर्ष की आयु मे श्रीरामकृष्णदेव के प्रथम भावाविष्ट होने की घटना।

श्रीरामकृष्णदेव के जन्मस्थान कामारपुकुर से लगभग एक कोस उत्तर में आनूर नामक एक गाँव है। आनूर की विषलक्ष्मी * नाम की देवी

* उक्त देवी का नाम विषलक्ष्मी या विशालाक्षी है, यह निर्णय करना कठिन है। प्राचीन बगला ग्रन्थ के अनुसार मनसादेवी का दूसरा नाम विषहरि है। विषहरि शब्द सहज ही में विषलक्ष्मी मे परिणत हो सकता है। इसके अतिरिक्त मनसा-मगलादि ग्रन्थो मे मनसादेवी के रूपवर्णन में विशालाक्षी शब्द का भी प्रयोग किया गया है। अतः मनसादेवी ही सम्भवतः विषलक्ष्मी या विशालाक्षी के नाम से प्रसिद्ध होकर वहाँ पर लोगो की पूजा आदि ग्रहण कर रही है। विषलक्ष्मी या विशालाक्षी देवी का पूजन 'राढ' देश के (बगाल के अन्तर्गत गंगा से पश्चिम दिशा मे अवस्थित देशविशेष) अन्यत्र अनेक स्थानो मे भी प्रचलित है। कामारपुकुर से घाटाल (एक स्थान का नाम) आने के मार्ग में एक जगह

अत्यन्त जाग्रत है। दूर-दूर से चारों ओर के गाँवों से लोग नाना प्रकार की मनोरथ-पूर्ति के निमित्त देवी से मन्नत करते है तथा अभीष्ट सिद्ध होने पर यथासमय वहाँ उपस्थित हो देवी का पूजन करते है तथा उनको चढावा चढ़ाते है। यह अवश्य है कि यात्रियों मे स्त्रियों की संख्या ही प्रायः अधिक होती है तथा अन्यान्य कामनाओं की अपेक्षा रोगशान्ति की कामना से ही अधिक संख्या मे लोग वहाँ जाते रहते है। दूर-दूर से अच्छे घर की ग्रामीण महिलाएँ निःसंकोच देवी के प्रथम आविर्भाव तथा प्राकट्यसम्बन्धी कहानियों को कहती हुई तथा तद्विषयक गीतों को गाती हुई देवी के दर्शनार्थ जा रही है——यह दृश्य अभी तक देखने को मिलता है। श्रीरामकृष्णदेव के बाल्यकाल में कामारपुकुर आदि गाँव वर्तमान समय से अधिक समृद्ध थे तथा वहाँ की लोकसंख्या भी अधिक थी, यह बात वहाँ के जनशून्य जंगलों से भरे हुए टूटे फूटे मकान, जीर्ण तथा परित्यक्त देवमन्दिर, रास-चबूतरों आदि के देखने से भलीभाँति विदित होती है। इसलिए हमारी यह धारणा है कि उस समय आनूर की देवी के दर्शक-यात्रियों की संख्या भी बहुत अधिक होती थी।

श्रीविशालाक्षी देवी के दर्शन के लिए जाते हुए श्रीरामकृष्णदेव का द्वितीय बार भावाविष्ट होना।

मैदान में खुले आकाश के नीचे देवी विराजमान है, धूप तथा वर्षा से बचने के लिए किसान लोग प्रतिवर्ष साधारणतया पत्तियों से उस स्थान को आच्छादित कर देते है। किसी समय वहाँ ईंट का बना हुआ मन्दिर था, इसका परिचय समीपस्थ भग्न स्तूप से मिलता है। इस मन्दिर के सम्बन्ध मे गाँव के लोग कहते है कि देवी ने अपनी इच्छा से उसे तोड़ दिया है। उनका कहना है—

गाँव के ग्वालबाल देवी के प्रिय साथी है; प्रातःकाल ही वहाँ पहुँचकर गायों को छोड़कर वे उस जगह बैठ जाते है, कहानी कहते है, गाना गाते हैं, खेलते-कूदते हैं, जंगल के फूलों से उनको सजाते है तथा यात्री या पथिकवर्ग देवी को जो मिष्टान्न या पैसा चढ़ाते है, उसे लेकर आनन्द मनाते

हमने उक्त देवी का एक सुन्दर मन्दिर देखा था। मन्दिर से लगे हुए नाटचमन्दिर, तालाब, बगीचा आदि देखकर हमें यह धारणा हुई थी कि वहाँ पूजनादि की विशेष व्यवस्था है।

रहते है—इन मधुर उपद्रवों के बिना देवी को सन्तोष नहीं होता। इसके बाद किसी गाँव के धनाढ्य व्यक्ति ने अपना कोई मनोरथ पूर्ण होने पर इस मन्दिर को पक्का बनवा दिया तथा उसमे देवीजी की प्रतिष्ठा कराई। प्रतिदिन सायंप्रातः पुजारी आकर पूजन करता था तथा मन्दिर के दरवाजे बन्द करके चला जाता था। जो लोग दर्शन करने आते, वे दरवाजे की जाली के छेद में उसके बाद अपनी भेंट मन्दिर में डाल देते थे। अतः अब किसान-बालकों के लिए पहले की तरह उन पैसों को समेटने तथा मिष्टान्नादि खरीदकर एक बार देवीजी को दिखाकर स्वयं पा लेने और आनन्द मनाने की सुविधा न रही। इसलिए क्षुब्ध होकर उन्होंने देवी से प्रार्थना की—'माँ, मन्दिर के अन्दर जाकर हम लोगों का भोजन करना तूने बन्द किया? तेरी कृपा से नित्य हम लड्डू मिठाई छकते थे, अब हमें कौन उन चीजों को देगा?' सरलहृदय किसान बालकों की यह प्रार्थना देवी के कानों तक पहुँची तथा उसी रात्रि में वह मन्दिर इस प्रकार फट गया कि कहीं मूर्ति न दब जाय इस भय से व्याकुल हो दूसरे दिन पुजारी ने पुनः देवीजी को बाहर लाकर खुले आकाश के नीचे रख दिया। तब से जिस किसी ने फिर से मन्दिर बनवाने की चेष्टा की है, उसी को देवी ने स्वप्न अथवा अन्य उपायों से यह अवगत कराया है कि यह कार्य उन्हें अभीष्ट नहीं है। ग्रामवासियों का कहना है कि उन लोगों मे से किसी किसी को डराकर भी माँ ने उक्त कार्य किया है,—उन्होंने स्वप्न में कहा, "मै ग्वालबालों के साथ मैदान मे बहुत आनन्द से हूँ; मन्दिर मे मुझे बन्द करने से तेरा सत्यानाश कर दूँगी—तेरे वंश मे किसी को जीवित नहीं छोड़ूँगी।"

श्रीरामकृष्णदेव की आयु उस समय आठ वर्ष की थी—उनका यज्ञोपवीत नहीं हुआ था। कुलीन घर की अनेक महिलाएँ एक दिन इकट्ठी होकर श्रीविशालाक्षी देवी की मनौती देने के लिए जंगल के रास्ते से जा रही थीं। श्रीरामकृष्णदेव के अपने परिवार की भी दो एक महिलाएँ तथा गाँव के जमींदार धर्मदास लाहाजी की विधवा पुत्री प्रसन्न भी उन लोगों के साथ थीं। प्रसन्न की सरलता, धर्मपरायणता, पवित्रता तथा निरहंकारिता के बारे में श्रीरामकृष्णदेव की उच्च धारणा थी। सभी विषयों में प्रसन्न की सलाह लेकर चलने के लिए श्रीरामकृष्णदेव ने

कई बार माताजी * से अनुरोध किया था तथा प्रसन्न की चर्चा अपनी भक्त-महिलाओं से भी वे समय-समय पर किया करते थे। प्रसन्न का भी श्रीरामकृष्णदेव पर बाल्यकाल से ही अकपट स्नेह था और बहुधा वे उनको यथार्थ मे गदाधर ही मानती थीं। श्रीरामकृष्णदेव के श्रीमुख से देवताओं तथा ईश्वर के पुण्य चरित्र एवं भक्तिपूर्ण संगीतों को सुनकर मोहित हो सरलहृदया प्रसन्न उनसे पूछती थी, "अच्छा गदाइ, सचमुच मुझे कभी-कभी 'तू ईश्वर है' ऐसा क्यों प्रतीत होता है? अरे, सचमुच में तू ईश्वर मालूम पड़ता है!" यह सुनकर गदाइ के चेहरे पर मधुर मुसकान झलक उठती थी, किन्तु वे कहते कुछ न थे; अथवा अन्य विषयों की चर्चा कर उन्हें भुलाने की चेष्टा करते थे। प्रसन्न उनकी बातों मे न आकर गम्भीरता-पूर्वक अपने मस्तक को हिलाती हुई फिर कहती थी, "तू चाहे कुछ भी कहे, किन्तु तू मनुष्य नहीं है।" श्रीराधाकृष्ण की मूर्ति स्थापित कर प्रसन्न प्रतिदिन अपने हाथ से उनकी सेवा का आयोजन कर देती थीं। पर्व तथा उत्सवादि के समय उस मन्दिर मे अभिनय संगीतादि होते थे, किन्तु प्रसन्न उनको कदाचित् ही देखती सुनती थी। पूछने पर वे कहतीं "गदाइ के संगीत सुनने के बाद और किसी संगीत मे मुझे मिठास नहीं मिलती है—गदाइ कानों को बिगाड़ गया है!"—यद्यपि ये बाते बहुत दिन पहले की है।

महिलाएँ जा रहीं है यह देखकर बालक गदाइ कह उठे, "मै भी चलूँगा।" बालक को कष्ट होगा यह जानकर उन्होंने अनेक प्रकार से निषेध किया, किन्तु किसी भी बात को न मानकर गदाधर उनके साथ-साथ चलने लगे। इससे उन महिलाओं को आनन्द के सिवाय किसी प्रकार का असन्तोष न हुआ, क्योंकि ऐसा कौन है कि जिसके चित्त को सदैव हँसमुख कौतुकप्रिय बालक हरने मे समर्थ न हो। इसके अतिरिक्त उस अल्प आयु मे गदाइ को देवी-देवताओं के संगीतादि सब कुछ कण्ठस्थ थे। मार्ग में अनुरोध किये जाने पर वह उनमे से दो-चार तो अवश्य ही सुनावेगा, और लौटते समय यदि उसे भूख भी लगे, तो भी कोई चिन्ता नहीं, क्योंकि देवी का प्रसादी नैवेद्य तथा दूध तो उनके साथ ही रहेगा;

* श्रीरामकृष्णदेव की लीलासहधर्मिणी श्रीसारदा देवी। श्रीरामकृष्णदेव की भक्तमण्डली उन्हे 'माताजी' नाम से सम्बोधित करती थी।

इसलिए सोच विचार की बात ही क्या ? गदाइ के साथ चलने पर फिर असन्तोष का कारण ही क्या रह जाता है ? इस प्रकार विचार-विमर्श के पश्चात् गदाइ को साथ लेकर ये महिलाएँ निःशंक होकर चलने लगीं एवं उन्होंने जैसा सोचा था, गदाइ भी उसी प्रकार देवी-देवताओं की कहानियों को कहते तथा गीत गाते हुए आनन्द से चलने लगे।

किन्तु श्रीविशालाक्षीदेवी का महिमा-कीर्तन करते हुए मैदान को पार करने से पूर्व ही एक विचित्र घटना हुई। बालक गाता हुआ सहसा रुक गया, उसके अंग-प्रत्यग शिथिल हो गए, आँखों से अविरत अश्रुधारा बहने लगी एवं उन महिलाओं के द्वारा स्नेहपूर्वक बारम्बार यह पूछे जाने पर भी कि तुम्हे क्या हुआ है—उसने कोई जवाब नही दिया! दूर तक चलने में अनभ्यस्त, कोमलस्वभाव बालक को शायद लू लग गई हो, यह सोचकर महिलाएँ विशेष चिन्तित हुईं और समीपवर्ती पोखरी से जल लाकर बालक के मस्तक तथा नेत्र पर छींटे देने लगीं। किन्तु इससे भी जब बालक चैतन्य न हुआ, तब वे अत्यन्त दुःखित होकर सोचने लगीं कि अब क्या किया जाय ?—देवी की मनौती ही कैसे दी जाय तथा दूसरे के बालक गदाइ को बिना किसी प्रकार की हानि के किस प्रकार उसके घर तक पहुँचाया जाय; वहाँ और ऐसा कोई था भी नहीं जिससे सहायता माँगी जा सके, अब क्या किया जाय ? महिलाएँ बहुत ज्यादा घबड़ा गईं तथा देवी-देवताओं की बाते भूल बालक को चारों ओर से घेरकर बैठ गईं। वे कभी उसको पंखा करतीं, कभी जल की छींटे देतीं और कभी उसका नाम लेकर जोर जोर से पुकारतीं।

इस प्रकार कुछ समय व्यतीत होने पर प्रसन्न के मन मे सहसा यह बात उदित हुई कि विश्वासी तथा सरल बालक पर कहीं देवी का आवेश तो नहीं हुआ है ? सरलहृदय पवित्र बालक तथा स्त्री-पुरुषों पर ही देवदेवियों के आवेश होने की बात सुनी जाती है। अतः उन्होंने अपने साथ की स्त्रियों से इस बात को कहा तथा गदाइ को और अधिक न पुकारकर एकाग्र चित्त से श्रीविशालाक्षी का नाम लेने के लिए अनुरोध किया। पवित्र-चरित्र होने के कारण प्रसन्न के प्रति पहले से ही उन स्त्रियों की श्रद्धा थी, अतः सहज ही मे उनकी उस बात पर विश्वास कर देवीज्ञान से उस बालक को ही सम्बोधन करती हुईं वे बारम्बार कहने लगीं—'माँ

विशालाक्षी प्रसन्न हो, माँ रक्षा करो, माँ विशालाक्षी, हमारी ओर कृपा कर देखो, माँ इस महान् संकट से हमारी रक्षा करो।'

आश्चर्य की बात! उन स्त्रियों द्वारा दो-चार बार इस प्रकार देवी के नामोच्चारण से ही गदाइ का मुखमण्डल मधुर हास्य से रंजित हो उठा तथा बालक में कुछ-कुछ चेतना का लक्षण दिखाई दिया। तब आश्वस्त होकर उन्होंने यह निश्चित किया कि बालक पर वास्तव में देवी का ही आवेश हुआ है, अतः पुनः पुनः वे उसको प्रणाम तथा मातृसम्बोधन कर उससे प्रार्थना करने लगीं। *

क्रमशः चेतना प्राप्त कर बालक स्वस्थ हुआ और आश्चर्य की बात है कि उस घटना से उसके शरीर पर किसी प्रकार की श्रान्ति, थकावट तथा दुर्बलता दिखाई नहीं दी। वे उसे अपने साथ लेकर भक्तिविह्वल हो देवी के स्थान पर पहुँचीं तथा देवी को विधिपूर्वक मनौती चढ़ाने के उपरान्त घर लौटकर श्रीरामकृष्णदेव की माँ से उन्होंने उन बातों का आद्योपान्त वर्णन किया। सारे वृत्तान्त को सुनकर भयभीत हो उन्होंने गदाइ के कल्याणार्थ उस दिन अपने कुलदेव श्रीरघुवीर के विशेष पूजन का आयोजन किया तथा श्रीविशालाक्षी को स्मरण कर पुनः पुनः प्रणाम करती हुई उनके निमित्त भी विशेष रूप से अर्चन करने का संकल्प किया।

श्रीरामकृष्णदेव के जीवन की और एक घटना इस बात की साक्षी है कि बाल्यावस्था से ही वे कभी-कभी उच्चभाव-भूमि में विचरण किया करते थे। घटना इस प्रकार है—

कामारपुकुर में श्रीरामकृष्णदेव के पित्रालय से नैऋत्य दिशा की ओर कुछ दूरी पर एक सुनार रहता था। पाइन लोग उस समय विशेष धनाढ्य थे और इस बात का परिचय अभी तक उनके द्वारा प्रतिष्ठित विचित्र शिल्पकलापूर्ण पक्के शिवमन्दिर से मिलता है। उस परिवार के केवल एक दो व्यक्ति आज जीवित हैं। घर-द्वार आदि नष्ट हो चुका है। गाँव के लोगों से सुना जाता है कि उस समय पाइन लोग विशेष समृद्ध थे, घर में लोग नहीं समाते थे तथा जमीन-जायदाद, खेती बारी, हल बैल भी उनके

* किसी किसी का कहना है कि उस समय भक्ति के प्राबल्य से उन रमणियो ने श्रीविशालाक्षी के निमित्त अपने साथ लाये हुए नैवेद्यादि भी बालक को समर्पित कर दिए थे।

जिस प्रकार थे, उसी प्रकार व्यापार से भी उनकी आय अच्छी होती थी। फिर भी वे गाँव के जमींदार की भाँति धनी नहीं थे, मध्यवित्त गृहस्थ-श्रेणी के ही अन्तर्भुक्त थे।

शिवरात्रि के अवसर पर शिवजी की भूमिका में अवतीर्ण हो श्रीरामकृष्णदेव का तृतीय बार भावावेश।

पाइन परिवार के गृहस्वामी अत्यन्त धर्मनिष्ठ थे। समर्थ होने पर भी उन्होंने अपने रहने के लिए पक्का मकान बनवाने का प्रयास नहीं किया। वे सदा 'माठ-कोठा' * मे ही रहा करते थे; किन्तु उन्होंने पक्की ईटों से विशिष्ट कारीगरों द्वारा अत्यन्त सुन्दर रूप से देवालय का निर्माण अवश्य कराया था। गृहस्वामी का नाम सीतानाथ था। उनके आठ कन्याएँ तथा सात पुत्र थे; एवं विवाहित होने पर भी, पता नहीं क्यों, उनकी कन्याएँ पित्रालय मे ही रहती थीं। सुना जाता है कि श्रीरामकृष्णदेव की आयु जिस समय दस-बारह वर्ष की थी, उस समय उनकी सर्वकनिष्ठ कन्या यौवन में पदार्पण कर चुकी थी। उनकी सभी कन्याएँ रूपवती तथा देव-द्विजों मे भक्तिपरायणा थीं; अपने पड़ोस के बालक गदाइ से उनका विशेष स्नेह था। बाल्यकाल में श्रीरामकृष्णदेव का अधिकांश समय इस धर्मनिष्ठ परिवार में व्यतीत होता था। तथा पाइन महोदयों के घर पर उच्च भाव-भूमि मे आरूढ़ हो उन्होंने अनेक लीलाएँ भी की थीं, गाँव में अभी तक यह बात सुनने में आती है। किन्तु श्रीरामकृष्णदेव से ही हमने वर्तमान घटना को सुना है।

कामारपुकुर में सम्भवतः विष्णुभक्ति तथा शिवभक्ति की धाराएँ बिना किसी द्वेषभाव के एक साथ प्रवाहित थीं। अभी तक वहाँ शिवजी के उत्सव की भाँति प्रति वर्ष चौबीस पहर तक श्रीहरिनाम संकीर्तन अत्यन्त समारोह के साथ सम्पन्न होता है; फिर भी शिवमन्दिर तथा शिवस्थापित स्थानों की संख्या विष्णुमन्दिरों की अपेक्षा अधिक है। सुनारों मे प्रायः अधिकतर लोग अत्यन्त निष्ठावान वैष्णव होते है, श्रीनित्यानन्द प्रभु ने जिस समय उद्धारण दत्त को दीक्षा देकर उनका उद्धार किया था, तभी से उस जाति में वैष्णव मत का विशेष प्रचलन है। किन्तु कामारपुकुर के

* बाँस, काठ, फूस तथा मिट्टी से बना हुआ दुमंजिला मकान बंगाल के गाँवों में 'माठ-कोठा' कहा जाता है। इसमें ईंटों का बिल्कुल उपयोग नहीं होता

पाइनवर्ग शिव तथा विष्णु दोनों के ही भक्त थे। वृद्ध गृहस्वामी पाइन, एक ओर जिस प्रकार त्रिसन्ध्या हरिनाम किया करते थे, दूसरी ओर उसी प्रकार उन्होंने शिवजी की भी प्रतिष्ठा की थी तथा प्रतिवर्ष वे शिवरात्रि का व्रत किया करते थे। रात्रिजागरण मे सहायता मिलेगी इस भावना से व्रत के दिन पाइन महोदयों के घर पर रात मे धार्मिक नाटक का आयोजन होता था।

एक बार इसी प्रकार शिवरात्रि के व्रत के उपलक्ष्य में पाइन महोदय के घर पर नाटक का आयोजन हुआ था। गाँव के समीप की ही एक मण्डली द्वारा शिवजी के महिमासूचक अभिनय की व्यवस्था की गई थी। एक दण्ड रात्रि व्यतीत होने के बाद अभिनय प्रारम्भ होने को था। सायंकाल के समय यह समाचार मिला कि उक्त मण्डली मे जो बालक शिवजी बना करता था, वह अकस्मात बहुत बीमार हो गया है; बहुत तलाश करने पर भी शिवजी बनने लायक कोई उपयुक्त व्यक्ति नहीं मिल रहा है; अतः हताश होकर मण्डली के अधिकारी ने उस रात्रि के लिए नाटक को बन्द रखने की प्रार्थना की है। अब क्या किया जाय? शिवरात्रि का जागरण कैसे हो? वृद्ध लोग परामर्श करने लगे तथा उन्होंने अधिकारी से यह पुछवाया कि यदि शिवजी बनने लायक किसी व्यक्ति की व्यवस्था कर दी जाय तो वे उस रात्रि को नाटक कर सकेंगे या नहीं? उत्तर मिला कि व्यवस्था होने पर नाटक हो सकता है। ग्राम पंचायत मे पुनः यह परामर्श होने लगा कि शिवजी बनने के लिए किससे अनुरोध किया जाय? निश्चय हुआ कि अल्पायु होने पर भी गदाइ को शिवजी के अनेक गाने कण्ठस्थ है तथा उस भूमिका मे वह बहुत अच्छा फबेगा, अतः उससे ही कहा जाय। शिवजी बनकर जो दो-चार बाते कहनी है, अधिकारी स्वयं अपने चातुर्य से उसे सम्हाल लेंगे। गदाधर से कहा गया। सभी के आग्रह को देखकर वे उस कार्य के लिए सहमत हुए। पूर्व निर्धारित व्यवस्था के अनुसार रात्रि का एक दण्ड व्यतीत हो जाने पर नाटक प्रारम्भ हुआ।

गाँव के जमींदार धर्मदास लाहा का, श्रीरामकृष्णदेव के पिताजी के साथ विशेष स्नेह था। इसी कारण उनके ज्येष्ठ पुत्र गयाविष्णु लाहा तथा श्रीरामकृष्णदेव में भी आपस मे मित्रता थी। शिवजी की भूमिका में

मित्र के अवतीर्ण होने का समाचार पाकर गयाविष्णु अपने साथियों सहित उनका तदनुरूप श्रृंगार करने लगे। श्रीरामकृष्णदेव शिवजी की वेशभूषा धारण कर श्रृंगारगृह मे बैठे हुए शिवजी का चिन्तन कर रहे थे, उसी समय रंगमंच पर उपस्थित होने के लिए उनको बुलाया गया। उनके मित्रों मे से एक व्यक्ति उनको रंगमंच की ओर लिवा लाने के लिए गया। मित्र के बुलाने पर श्रीरामकृष्णदेव उठे और किसी ओर ध्यान न देते हुए अन्तर्मुखी हो धीरे-धीरे मंच पर आकर चुपचाप खड़े हो गए। उस समय उनके जटाजूट-समन्वित विभूतिमण्डित वेश, धीर-अचंचल पादक्षेप तथा मंच पर पहुँच-कर उनकी अचल अटल अवस्थिति, विशेष कर अपार्थिव अन्तर्मुखी निर्निमेष दृष्टि तथा अधर पर मन्द हास्य देखकर सभी लोग आनन्द और विस्मय से मुग्ध हो गाँवों की प्रथानुसार सहसा उच्च स्वर से हरिनाम करने लगे एवं रमणियों मे से किसी किसी ने मुख से मंगलसूचक शब्दोच्चारण तथा शंखनाद भी किया। तदनन्तर सबको शान्त करने के लिए मण्डली के अधिकारी ने उसी शोरगुल मे शिवजी की स्तुति प्रारम्भ की। उससे दर्शकगण कुछ शान्त अवश्य हुए, किन्तु वे परस्पर इशारा करते हुए तथा एक दूसरे को धीरे से धक्का देते हुए धीमे स्वर से कहने लगे, 'वाह, वाह,' 'गदाइ कैसा अच्छा फबा है,' 'शिवजी की भूमिका मे वह ऐसा सुन्दर अभिनय कर सकेगा, हमे ऐसी धारणा न थी,' 'इसे हथियाकर हम भी एक नाटक की मण्डली बना ले।' किन्तु गदाधर तब भी उसी प्रकार खड़े रहे, विशेषकर उनके वक्षःस्थल को प्लावित कर निरन्तर अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। इस प्रकार कुछ समय व्यतीत होने के बाद भी गदाधर को इधर-उधर चलते-फिरते अथवा कुछ कहते-सुनते न देखकर अधिकारी तथा गाँव के एक-दो वृद्ध व्यक्ति बालक के समीप पहुँचे तथा उन्होंने देखा कि उसके हाथ-पैर शिथिल-से हो चुके हैं—बालक पूर्णतया अचेत हो गया है। तब और अधिक शोरगुल होने लगा। किसी ने कहा—जल लाओ, उसके आँख तथा मुँह पर जल की छींटे दो; दूसरे ने कहा—पंखा झलो; कोई कहने लगा कि शिवजी का आवेश हुआ है, हरिनाम-कीर्तन करो; और कोई यह कह उठा कि छोकड़े ने सब कुछ बिगाड़ दिया, अब नाटक नहीं होगा। अस्तु, किसी भी प्रकार से बालक के चेत

न होने के कारण नाटक बन्द हो गया तथा कुछ लोग उसे कन्धों पर उठाकर किसी तरह उसके घर पहुँचा आए। सुना जाता है कि उस रात्रि मे अनेक प्रयत्न किए जाने पर भी गदाधर का वह भावावेश दूर नहीं हुआ था, घर के लोग विह्वल होकर रोने लगे थे तथा दूसरे दिन सूर्योदय होने पर वे पुनः स्वस्थ हुए थे। *

---

* किसी किसी का कहना है कि वे लगातार तीन दिन तक उसी हालत में थे।

तृतीय अध्याय

साधकभाव का प्रथम विकास

भावतन्मयता के सम्बन्ध मे पूर्वोक्त घटनाओं के अतिरिक्त और भी अनेक बाते श्रीरामकृष्णदेव के बाल्यजीवन की सुनने मे आती है। छोटे-मोटे अनेक विषयों मे उनके इस प्रकार के मानसिक स्वभाव का परिचय हमे समय-समय पर मिलता है। जैसे—गॉव का कोई कुम्हार शिव दुर्गा आदि देव-प्रतिमाओं का निर्माण कर रहा था, समवयस्क बालकों के साथ टहलते हुए वहाँ जाकर उन मूर्तियों को देख श्रीरामकृष्णदेव सहसा कह उठे, 'यह क्या बनाया है? देव-देवियों के नेत्र क्या इस प्रकार के होते है? उन्हे इस तरह अंकित करना चाहिए'—यह कहकर जिस प्रकार के नेत्रों अंकित करने पर उनमे अपार्थिव शक्ति, करुणा, अन्तर्लीनता तथा आनन्द का एकत्र समावेश हो मूर्तियाँ जाग्रत देवभाव-विशिष्ट हो सकती हैं—उन्होंने उस विषय का उसे उपदेश दिया। इस विषय मे बिना किसी प्रकार की शिक्षा प्राप्त किए वे कैसे उस विषय को समझने तथा समझाने मे समर्थ हुए, विस्मित हो सभी लोग सोचने लगे, किन्तु उसका कोई कारण निरूपण न कर सके।

श्रीरामकृष्णदेव के बाल्य-जीवन में भावतन्मयता के परिचायक अन्यान्य दृष्टान्त।

इसी प्रकार अपने मित्रों के साथ खेलते खेलते किसी देवविशेष के पूजन का संकल्प कर श्रीरामकृष्णदेव ने अपने हाथों से किसी ऐसी सुन्दर मूर्ति का निर्माण किया या चित्र बनाया कि लोग उसे देखकर किसी दक्ष कुम्हार अथवा चित्रकार की कृति समझने लगे। अथवा, बिना किसी प्रश्न के उठे, सहज मे ही किसी व्यक्ति से उन्होंने कोई बात कह दी, जिससे उसके मनोगत दीर्घकालीन संशय आदि दूर हो गए और अपने भावी जीवन को नियन्त्रित करने का विशेष रहस्य तथा सामर्थ्य प्राप्त कर स्तम्भित हृदय से वह यह सोचने लगा कि बालक गदाइ को

माध्यम बनाकर क्या उसके आराध्यदेव ने ही करुणापूर्वक उसे इस प्रकार मार्ग-दर्शन कराया !

इसी प्रकार एक बार कुछ शास्त्रवेत्ता पण्डितवर्ग किसी प्रश्न की मीमांसा नहीं कर पा रहे थे। बालक गदाइ ने एक ही बात मे उसका निराकरण कर सबको आश्चर्यचकित कर दिया।*

श्रीरामकृष्णदेव के जीवन की उन घटनाओं के बारे मे छः प्रकार का श्रेणी निर्देश।

श्रीरामकृष्णदेव के बाल्यजीवन के सम्बन्ध मे उक्त प्रकार की जो अद्भुत घटनाएँ हमने सुनी है, वे सभी उच्चभाव-भूमि मे आरोहणजनित उनकी दिव्य शक्ति की परिचायक हों, ऐसी बात नहीं है। उनमे से कुछ इस प्रकार की होने पर भी अन्य घटनाओं को हम साधारणतया छः श्रेणियों मे विभक्त कर सकते है। उनमे से कुछ उनकी अद्भुत स्मृतिशक्ति, कुछ प्रबल विचारबुद्धि, कुछ विशेष निष्ठा तथा दृढ प्रतिज्ञा, कुछ असीम साहस, कुछ परिहासप्रियता एवं कुछ अपार प्रेम या करुणा की परिचायक है। पूर्वोक्त सभी श्रेणियों की समस्त घटनाओं मे यही देखने को मिलता है कि उनमें मानसिक असाधारण विश्वास, पवित्रता तथा निःस्वार्थभाव ओतप्रोत रूप से विद्यमान है। यह देखा जाता है कि विश्वास, पवित्रता तथा स्वार्थरहित उपादानों से मानो स्वभावतः उनके मन का निर्माण हुआ है और संसार के विभिन्न घात-प्रतिघातों से उनमे स्मृति, बुद्धि, प्रतिज्ञा, साहस, हास-परिहास, प्रेम या करुणा तरंग रूप मे उदित हो रही है। कुछ दृष्टान्तों के उद्धरण से पाठक इस बात को भलीभाँति समझ सकेंगे।

अद्भुत स्मृतिशक्ति का दृष्टान्त।

गाँव में रामलीला या कृष्णलीला का अनुष्ठान हुआ है, अन्य लोगों के साथ गदाधर ने भी ये देखे है; उन पवित्र पुराण गाथाओं को भूलकर दूसरे दिन सब लोग अपने-अपने स्वार्थ-कार्य में संलग्न हो गए है, किन्तु उन लीलाओं के द्वारा बालक गदाइ के मन मे जिस भावतरंग का उदय हुआ है, उसका विराम नहीं। उन लीलाओं की पुनरावृत्ति कर आनन्द उपभोग करने के निमित्त बालक ने अपने साथियों को आम के बगीचे में एकत्रित किया है तथा प्रत्येक को उसके

* गुरुभाव-पूर्वार्ध का चतुर्थ अध्याय देखिए।

विभिन्न चरित्रों की भूमिका में अभिनय करने की यथासम्भव शिक्षा देकर तथा स्वयं प्रधान भूमिका मे अवतीर्ण हो उसने अभिनय करना प्रारम्भ किया है। भोले-भाले किसान इस बगीचे की समीपवर्ती जमीन को जोतते हुए बालकों की क्रीडा को देखकर मुग्ध हो यह सोच रहे है कि केवल एक बार सुनने से ही उस लीला के प्रायः सम्पूर्ण कथानक तथा संगीतों को इन लोगों ने कैसे कण्ठस्थ कर लिया है?

दृढ़ प्रतिज्ञा का दृष्टान्त।

यज्ञोपवीत के समय आत्मीयवर्ग तथा समाज की प्रचलित प्रथा के विरुद्ध लुहार जाति की धनी नाम की रमणी से सर्वप्रथम भिक्षा लेकर उसे 'भिक्षामाता' के रूप मे स्वीकार करने के लिए बालक हठ करने लगा। * अथवा धनी की स्नेह-प्रीति से मुग्ध हो एवं उसके हृदय की अभिलाषा जानकर समाज के नियमों को एक ओर रखकर बालक ने उस नीच जाति की रमणी के हाथ से बने हुए व्यञ्जनादि जबरदस्ती लिए!—धनी बेचारी ने भयभीत होकर अत्यन्त आग्रहपूर्वक उसे निषेध किया, किन्तु बालक को उस कार्य से वह निवृत्त न कर सकी।

असीम साहस का दृष्टान्त।

विभूति-विमण्डित जटाजूटधारी नागा साधुओं को देखकर शहर तथा गाँव के बालकों के हृदय मे प्रायः भय का संचार होता है। ऐसे साधु छोटी आयु के बालकों को विभिन्न प्रकार से भुलावा देकर अथवा मौका मिलने पर बलपूर्वक दूर देशों मे ले जाकर अपनी दलपुष्टि करते है, यह किंवदन्ती बंगाल मे सर्वत्र प्रचलित है। कामारपुकुर से दक्षिण की ओर श्रीजगन्नाथपुरी जाने का मार्ग है। उस मार्ग से उस समय प्रायः प्रतिदिन उस प्रकार के साधु-फकीर, बैरागी-वैष्णवों आदि के दल आया-जाया करते थे। मार्ग मे गाँव मे भिक्षावृत्ति के द्वारा भोजन संग्रह कर एक-दो दिन विश्राम कर वे अपने गन्तव्य स्थान की ओर चल देते थे। किंवदन्ती के अनुसार भयभीत होकर अन्य बालकों के दूर भाग जाने पर भी गदाइ डरने का नाम नही लेता था। फकीरों को देखते ही वह उनके साथ मिल जुलकर मधुर वार्तालाप तथा सेवा के द्वारा उन्हें प्रसन्न कर उनके आचार-व्यवहारों को देखने के लिए उनके

* गुरुभाव-पूर्वार्ध का चतुर्थ अध्याय देखिए।

साथ दीर्घ समय तक रहा करता था। किसी किसी दिन देवताओं को निवेदित अन्नादि उनके साथ ग्रहण करने के उपरान्त वह घर लौटता था तथा अपनी माता से उन विषयों की चर्चा करता था। उनकी तरह वेश धारण करने के लिए एक दिन अपने समस्त अंगों मे तिलक लगाकर तथा पिता-माता के द्वारा दिए हुए नवीन वस्त्र को फाडकर कौपीन और बहिर्वास के रूप में धारण कर जननी के समीप वह उपस्थित हुआ था।

गाँव की नीच जातियों मे अधिकांश लोग रामायण महाभारत पढना नहीं जानते थे। उन ग्रन्थों को सुनने की जब उन्हें इच्छा होती थी, तब वे ऐसे किसी ब्राह्मण अथवा अपनी जाति के व्यक्ति को बुलाते थे, जो उन ग्रन्थों को पढ़कर उन्हें समझा सके और उनके आने पर भक्तिपूर्वक चरण धोने के लिए जल, नवीन हुक्के मे तमाकू तथा बैठकर पाठ करने के निमित्त उत्तम आसन या उसके अभाव मे एक नयी चटाई बिछा देते थे। इस प्रकार का सम्मान पा अत्यन्त अभिमान मे चूर होकर वह व्यक्ति श्रोताओ के बीच कैसे उच्च आसन पर बैठता था एवं किस प्रकार विचित्र रूप से अंग संचालन तथा विकृत स्वर से ग्रन्थपाठ करता हुआ उनको अपना प्राधान्य दिखाता था, तीक्ष्ण विचारसम्पन्न परिहासप्रिय बालक यह सब विशेष ध्यानपूर्वक देखा करता था तथा समय-समय पर दूसरों के निकट अत्यन्त गम्भीरता के साथ उसका अभिनय करता हुआ सबको हँसाकर लोटपोट कर देता था।

परिहासप्रियता का दृष्टान्त।

श्रीरामकृष्णदेव के बाल्यकाल की पूर्वोक्त घटनाओं की आलोचना के द्वारा हमें यह ज्ञात होता है कि वे किस तरह की मानसिक स्थिति को लेकर साधनाक्षेत्र में अग्रसर हुए थे। उन घटनाओं से यह स्पष्ट है कि उनके मन का झुकाव जिस विषय की ओर होता, उसे कार्यान्वित किए बिना उनका मन कभी शान्त नहीं होगा तथा अभीष्ट-प्राप्ति के मार्ग मे जो कुछ बाधाएँ उपस्थित होंगी, उन्हे कठोर हाथों से तत्काल ही दूर करने मे कभी भी वह पीछे न हटेगा। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि इस प्रकार का हृदय ईश्वर तथा अपने ऊपर एवं मानवमात्र के अन्तर्निहित देवस्वभाव पर दृढ़ विश्वास स्थापित कर संसार के समस्त

श्रीरामकृष्णदेव के मन का स्वाभाविक गठन।

कार्यों में अग्रसर होगा, नीच अपवित्र भावों की बातों का तो कहना ही क्या है—संकीर्णता की किंचिन्मात्र गन्ध भी जिन भावों मे दिखाई देगी, उन्हे उपादेय समझकर कभी वह ग्रहण नहीं कर सकेगा एवं पवित्रता, प्रेम तथा करुणा के द्वारा ही वह सर्वदा सब विषयों मे नियन्त्रित होता रहेगा। इसके साथ ही यह भी हृदयंगम होता है कि अपने अथवा दूसरो के अन्तःकरण का कोई भी भाव अपना स्वरूप छिपाकर कपटवेश के द्वारा उक्त प्रकार के हृदय मन को कभी भी प्रतारित नहीं कर सकेगा। श्रीरामकृष्णदेव के अन्तःकरण के सम्बन्ध मे पूर्वोक्त बातों को विशेष रूप से ध्यान मे रख कर जब हम अग्रसर होंगे, तभी हमे उनके साधक-जीवन की अलौकिकता का यथार्थ अनुभव होगा।

दाल-रोटी प्राप्त करना जिस विद्या का लक्ष्य है, वह मै नहीं सीखूंगा; जिससे यथार्थ ज्ञान होता है, वही विद्या मै सीखूंगा।

श्रीरामकृष्णदेव के जीवन मे साधकभाव का सर्वप्रथम विशेष विकास हमें उस दिन देखने को मिलता है, जब कलकत्ते मे उनके अग्रज के संस्कृत विद्यालय मे अध्ययन के सम्बन्ध मे उनके अग्रज रामकुमारजी के तिरस्कार तथा भर्त्सना के उत्तर मे जिस दिन उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा था—"दाल-रोटी प्राप्त करने वाली विद्या मुझे नहीं चाहिए; मै तो ऐसी विद्या सीखना चाहता हूँ जिससे ज्ञान का उदय होकर मनुष्य वास्तव में कृतार्थ हो जाता है!" उस समय उनकी आयु सतरह वर्ष की थी, तथा गाँव की पाठशाला मे उनकी शिक्षा की विशेष अग्रगति की सम्भावना न देखकर उनके अभिभावक उन्हें कलकत्ता ले आए थे।

कलकत्ते में झामापुकुर स्थित रामाकुमारजी के सस्कृत विद्यालय में निवास करते समय श्रीरामकृष्णदेव का आचरण।

झामापुकुर मे स्वर्गीय दिगम्बर मित्र के मकान के समीप ज्योतिष तथा स्मृतिशास्त्र में निपुण उनके धर्मनिष्ठ अग्रज संस्कृत विद्यालय खोलकर छात्रों को शिक्षा प्रदान कर रहे थे। साथ ही मित्र-परिवार के अतिरिक्त पड़ोस के कुछ अच्छे घरों में भी उन्होंने प्रतिदिन की देव सेवा का कार्य सम्हाल रखा था। नित्य क्रिया समाप्त करने के पश्चात् छात्रों को पढ़ाने में ही प्रायः उनका सारा समय बीत जाता था, इसलिए दूसरों के घर पर नित्यप्रति सायं प्रातः

उपस्थित हो नियमपूर्वक देव-सेवा करना थोड़े ही दिनों में उनको एक बडा भार-सा प्रतीत होने लगा। फिर भी सहसा उसे त्याग देना उनके लिए सम्भव नहीं था। क्योंकि दान आदि के द्वारा पाठशाला की जो आय होती थी, वह अपर्याप्त ही नहीं वरन् घटती जा रही थी; ऐसी स्थिति में देव-सेवा से उन्हे जो पारिश्रमिक प्राप्त होता था, उसे त्याग देना सम्भव नहीं था। इसलिए अपने छोटे भाई को कलकत्ता लाकर उस पर देव-सेवा का भार सौंप कर अध्यापन कार्य मे वे संलग्न हो गए।

कलकत्ता आते ही इच्छानुरूप कार्य मिल जाने के कारण गदाधर आनन्दपूर्वक उन कार्यों को करने के पश्चात् अपने अग्रज की सेवा तथा उनसे कुछ कुछ अध्ययन भी करने लगे। गुणशाली प्रियदर्शन बालक थोड़े ही दिनों मे यजमानों के परिवारों के प्रियपात्र बन गए। कामारपुकुर की तरह वहाँ पर भी सम्भ्रान्त घरों की महिलाएँ उनके सरल आचरण, कार्यदक्षता, मधुर वार्तालाप तथा देवभक्ति को देखकर बिना किसी संकोच के उनके समीप आती थी और उनके द्वारा छोटे-मोटे कार्यो को कराने तथा उनके मधुर कण्ठ से भजन सुनने के लिए आग्रह करती थीं। इस प्रकार कामारपुकुर की भाँति वहाँ भी बिना किसी प्रयास के बालक का एक अपना दल बन गया था और अवकाश मिलते ही बालक भी समस्त नरनारियों के साथ मिलकर आनन्दपूर्वक दिन बिताने लगा। इसलिए यह स्पष्ट है कि कलकत्ता आकर भी बालक की शिक्षा मे विशेष उन्नति नहीं हुई।

यह सब कुछ जानते हुए भी रामकुमारजी के लिए सहसा अपने भाई से कुछ कहना सम्भव नहीं हुआ। कारण यह था कि एक तो माता के प्रिय कनिष्ठ पुत्र को उनको स्नेह-सुख से वंचित कर वे एक तरह अपनी ही सुविधा के लिए दूर लिवा लाए थे, और दूसरे यह कि लघु भ्राता के सद्गुणों से आकृष्ट हो लोग उसे आग्रहपूर्वक अपने घर पर स्वागत निमन्त्रणादि देते रहते थे, ऐसी स्थिति मे बालक को रोककर उसके आनन्द में विघ्न उत्पन्न करना क्या न्यायसंगत हो सकता है? ऐसा करने से बालक के लिए कलकत्ता मे रहना क्या वनवास की तरह असहनीय नहीं होगा? घर की आर्थिक स्थिति यदि अनुकूल होती तो बालक को माता के निकट से दूर लिवा लाने की भी कोई आवश्यकता

नहीं थी। कामारपुकुर के समीपवर्ती किसी दूसरे गाँव मे किसी योग्य अध्यापक के पास पढ़ने के लिए भी उसे भेजा जा सकता था। उस हालत मे माता के समीप रहकर ही बालक पढ-लिख सकता था। इस प्रकार की भावना से प्रेरित हो कुछ महीनों तक बालक से कुछ न कहते हुए भी अन्त में कर्तव्य की प्रेरणा से पढने मे ध्यान देने के निमित्त एक दिन रामकुमारजी ने सामान्य रूप से बालक को डाँट-डपट दी; क्योंकि कुछ दिनो के बाद सरल तथा सदा आत्मविह्वल बालक को आगे चलकर संसारी बनना पड़ेगा, और इसके लिए अभी से उसे नियन्त्रित कर उचित मार्ग मे चलने की शिक्षा न मिली, तो भविष्य मे उसके लिए वह कार्य क्या कभी सम्भव हो सकता है? अतः भ्रातृवात्सल्य तथा सांसारिक अनुभव—दोनों कारणों से प्रेरित होकर ही रामकुमारजी ने ऐसा किया था।

अपने भाई के मानसिक स्वभाव के बारे में रामकुमारजी की अनभिज्ञता।

किन्तु संसार की स्वार्थमयी कठोर प्रथा का कुछ-कुछ अनुभव प्राप्त रहने पर भी स्नेहपरवश रामकुमारजी को अपने छोटे भाई की अद्भुत मानसिक गठन के बारे में विशेष कुछ ज्ञात नहीं था। उन्हे स्वप्न मे भी इस बात की धारणा नहीं हुई थी कि उस छोटी सी आयु मे ही बालक ने सांसारिक मानवों की सर्वविध प्रचेष्टा तथा उनके आजीवन परिश्रम के उद्देश्य का परिचय प्राप्त कर चन्द दिन की प्रतिष्ठा तथा भोग-सुख को तुच्छ मानकर उसने मानवजीवन का दूसरा ही उद्देश्य निर्धारित किया है, इसलिए तिरस्कार के भय से विचलित न होकर सरल-हृदय बालक ने जब स्पष्टतया अपने हृदय की बातों को उनसे कहा, तब वे उसके तात्पर्य को भलीभाँति हृदयंगम न कर सके। वे सोचने लगे कि पिता-माता का यह अत्यन्त स्नेहपात्र बालक शायद अपने जीवन में इस प्रकार सर्वप्रथम तिरस्कृत हो असन्तुष्ट होने के कारण ही इस प्रकार का उत्तर दे रहा है। पर उस दिन उस सत्यनिष्ठ बालक ने उन्हे अपने हृदय की बातों को समझाने का पूरा पूरा प्रयास किया, अर्थकरी विद्या को सीखने की उसकी इच्छा नही है, इस बात को भी उसने नाना प्रकार से व्यक्त किया, किन्तु बालक की बात सुनता कौन है? बालक तो आखिर

बालक ही है, जब किसी वयोवृद्ध को भी हम कभी स्वार्थमय प्रयास से विमुख होते देखते है, तब यह निश्चय कर लेते है कि उसका मस्तिष्क विकृत हो गया है।

बालक की उन बातों को उस दिन रामकुमारजी ठीक ठीक हृदयंगम नहीं कर सके। किसी विशेष स्नेहपात्र को कुछ तिरस्कृत करने के बाद जिस प्रकार हम दुःखित होते है तथा पहले की अपेक्षा उसे सौगुना अधिक प्यार कर स्वयं शान्तिलाभ करने का प्रयास करते है, उसी प्रकार अपने छोटे भाई के प्रति भी कुछ काल तक के लिए प्रत्येक कार्य मे उनका आचरण होता रहा। किन्तु इस समय से बालक गदाधर अपने हार्दिक अभिप्राय को सफल बनाने के लिए अवसर ढूँढने लगे। उक्त घटना के उपरान्त उनके कार्यो को देखकर हमे इस बात का विशेष परिचय मिलता है।

पूर्वोक्त घटना के बाद दो वर्ष तक श्रीरामकृष्णदेव तथा उनके अग्रज के जीवन मे परिवर्तन का स्रोत कुछ प्रबल रूप से प्रवाहित हुआ था।

रामकुमारजी की सांसारिक स्थिति।

अग्रज की आर्थिक स्थिति दिनोंदिन गिरती जा रही थी तथा अनेक प्रकार से प्रयास करने पर भी उस विषय मे उनकी कुछ भी उन्नति नहीं हो रही थी। विद्यालय को बन्द कर दूसरा कोई कार्य स्वीकार किया जाय अथवा नहीं, इस विषय को लेकर उनके मन मे बड़ी उथल पुथल मची थी, किन्तु वे कुछ निश्चय नहीं कर पा रहे थे। फिर भी इस बात को अच्छी तरह समझ रहे थे कि संसार-यात्रा के निर्वाह के लिए शीघ्र ही दूसरा कोई उपाय ढूँढे बिना कोई दूसरा मार्ग नहीं है; क्योंकि इस प्रकार समय बिताने से उन्हे अन्त मे ऋणग्रस्त हो विभिन्न अनर्थो का सामना करना पडेगा। किन्तु किस उपाय का अवलम्बन किया जाय ? यजन, याजन तथा अध्यापन के अतिरिक्त और किसी कार्य की शिक्षा उन्हे प्राप्त नहीं हुई थी एवं प्रयासपूर्वक समयोपयोगी किसी अर्थकरी विद्या सीखने का उनमे उद्यम और उत्साह भी नहीं था। साथ ही यदि इस प्रकार की शिक्षा प्राप्त कर अर्थार्जन के लिए प्रयास भी किया जाय तो उन्हें भजन-पूजन आदि के लिए अवकाश मिलना भी कठिन होगा। थोड़े ही मे सन्तुष्ट तथा साधु-स्वभाव रामकुमारजी वैषयिक

कार्यों मे विशेष उत्साही नहीं थे। इसलिए श्रीरघुवीर की इच्छा पर निर्भर हो उक्त चिन्ताओं से मन को हटाकर वे पहले जो कुछ कर रहे थे विषण्ण हृदय से उसी मे लगे रहे। अस्तु, इस प्रकार अनिश्चित स्थितियों मे ईश्वर की इच्छा से एक घटना के द्वारा मार्ग-दर्शन मिल जाने के कारण रामकुमारजी थोड़े ही समय मे चिन्तामुक्त हो गए।

चतुर्थ अध्याय

दक्षिणेश्वर का कालीमन्दिर

रामकुमारजी का कलकत्ता में संस्कृत विद्यालय स्थापित करने का कारण तथा उसका समय निरूपण ।

सन् १८५० मे रामकुमारजी ने कलकत्ते मे जिस समय संस्कृत विद्यालय स्थापित किया था, उस समय उनकी आयु लगभग ४५ वर्ष की थी । उसके कुछ दिन पूर्व से ही घर की आर्थिक स्थिति खराब रहने के कारण वे चिन्तित से हो गए थे तथा उनके एकमात्र पुत्र अक्षय का जन्म होते ही उनकी धर्मपत्नी का देहान्त हो चुका था । ऐसा सुना जाता है कि साधक रामकुमारजी को उनकी सहधर्मिणी की मृत्यु की बात पहले से ही विदित हो गई थी तथा उन्होने अपने परिवार में किसी किसी से यह कहा भी था, 'वह (उनकी धर्मपत्नी) अब की बार जीवित न रहेगी ।' श्रीरामकृष्णदेव उस समय चौदह वर्ष के थे । श्रीरामकुमारजी कलकत्ता यही सोचकर आए थे कि वह एक सम्पन्न नगरी है और वहाँ अनेक प्रकार के धनी तथा मध्य वर्ग के लोग रहते है । शान्ति-स्वस्त्ययनादि क्रियाकर्म, धार्मिक व्यवस्था आदि के सहारे तथा संस्कृत विद्यालय के छात्रों को विद्याभ्यास कराकर उन्हे विद्वान् बनाने में एक बार उनकी ख्याति हो जाने पर फिर शायद घर के आय-व्यय के निमित्त उन्हे कोई चिन्ता न रहेगी । उनको अपने जीवन में पत्नी-वियोग से विशेष परिवर्तन तथा अभाव का अनुभव हो रहा था, उन्होंने यह भी सोचा था कि परदेश जाकर विभिन्न कार्यों में संलग्न हो जाने से, शायद उस शोक से भी उन्हें छुटकारा मिल जावेगा । अस्तु, झामापुकुर में संस्कृत विद्यालय प्रतिष्ठित होने के कोई तीन वर्ष बाद जिस उद्देश्य से वे श्रीरामकृष्णदेव को कलकत्ता लाए थे तथा सन् १८५२ में कलकत्ता आकर श्रीरामकृष्णदेव ने जिस प्रकार तीन वर्ष व्यतीत किए थे, उसका उल्लेख हम इससे पूर्व कर चुके है । श्रीरामकृष्णदेव के जीवन की घटनाओं

दक्षिणेश्वर का कालीमन्दिर
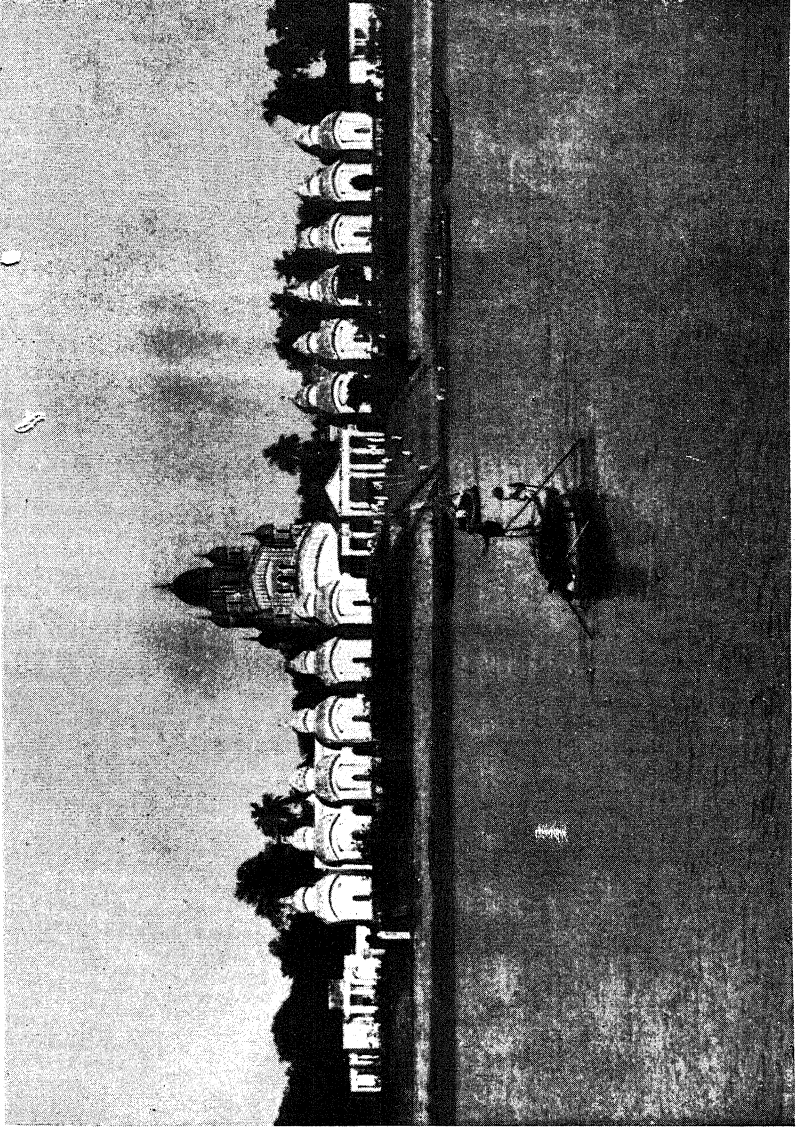
को जानने के लिए हमें दूसरी ओर भी दृष्टिपात करना पड़ेगा। दान आदि प्राप्त करने की सुविधा के लिए उनके अग्रज जिस समय छातुबाबू के दल मे सम्मिलित हो अपने विद्यालय की उन्नति करने मे लगे हुए थे, उस समय कलकत्ता मे ही अन्यत्र एक जगह किसी विशिष्ट परिवार मे ईश्वरेच्छा से जिस घटनापरम्परा का उदय हो रहा था, अब उस ओर हम पाठकों का ध्यान आकृष्ट करेंगे।

रानी रासमणि।

कलकत्ता की दक्षिण ओर जानबाजार नामक मुहल्ले में सुप्रसिद्ध रानी रासमणि का निवासस्थान था। क्रमशः चार पुत्रियों की माता बनने के पश्चात् चवालीस वर्ष की आयु में रानी विधवा हो गई। उसके बाद से अपने स्वर्गीय पति राजचन्द्रदास की विशाल सम्पत्ति की वे स्वयं देखरेख करने लगीं और थोड़े ही समय में उसमे पर्याप्त उन्नति करके वे कलकत्तानिवासियों के बीच विशेष रूप से परिचित हो गई। केवल उक्त कार्य के संचालन मे दक्ष होने के कारण ही वे यशस्विनी नहीं बनी, किन्तु ईश्वर-विश्वास, ओजस्विता * तथा गरीबों के प्रति निरन्तर सहानुभूति, †

* ऐसा सुना जाता है कि रानी रासमणि के जानबाजार स्थित मकान के समीप पहले अँग्रेजो का एक 'बैरक' (Barrack) या अड्डा था। मदिरा पीकर उन्मत्त हो सैनिकवर्ग एक दिन रानी के सिपाहियों को बलपूर्वक वशीभूत कर मकान के भीतर प्रविष्ट होकर लूटमार करने लगे थे। रानी के दामाद मथुरबाबू आदि पुरुषवर्ग उस समय कार्यवश बाहर गए हुए थे। किसी प्रकार की रुकावट न होने के कारण सैनिकों को अन्तःपुर मे प्रविष्ट होते देखकर रानी स्वय अस्त्रादि लेकर उनको रोकने के लिए प्रस्तुत हुई थी।

† कहा जाता है कि गगाजी से मछली पकडने के लिए धीवरो पर अँग्रेज सरकार ने एक बार कर लगाया था। उन धीवरो में से अधिकांश रानी की जमीदारी मे रहते थे। कर के बोझ से तग आकर उन लोगो ने रानी के समीप अपने कष्टो को निवेदन किया। उनकी बातो को सुनकर रानी ने उन्हे आश्वासन दिया तथा पर्याप्त धन देकर राज्य सरकार से उन्होने स्वय मछली पकड़ने का ठेका ले लिया। रानी मछली का व्यापार करना चाहती है, यह सोचकर राज्य सरकार द्वारा ठेका मजूर होते ही रानी ने गगाजी के कुछ भाग मे एक किनारे से लगाकर दूसरे किनारे तक साँकल द्वारा इस प्रकार घिरवा लिया कि सरकारी जलयानो का उसमे प्रविष्ट होने का मार्ग प्रायः अवरुद्ध हो गया। तब राज्य

दान, प्रचुर अन्न वितरण आदि के द्वारा वे सभी के लिए विशेष आदरणीय बन गई थीं। असाधारण गुण तथा कर्म द्वारा उस समय उस रमणी ने वास्तव मे अपने 'रानी' नाम को सार्थक किया था एवं ऊँच-नीच सभी जाति की हार्दिक श्रद्धा तथा भक्ति का पात्र बन गई थीं। हम जिस समय की बात कह रहे है, उस समय रानी की पुत्रियों के विवाह हो चुके थे तथा उनके सन्तान-सन्तति भी हो चुके थे; एवं इकलौते पुत्र को रखकर उनकी तीसरी पुत्री की मृत्यु हो जाने के कारण उनके तीसरे दामाद

सरकार ने रानी के उस कार्य का प्रतिवाद किया। रानी ने कहला भेजा, "मैने पर्याप्त धन देकर नदी मे मछली पकडने का अधिकार आप से मोल लिया है तथा उसी अधिकार के बल पर मैने ऐसा किया है। कारण यह है कि नदी में होकर जलयानो के निरन्तर यातायात से मछलियाँ इधर-उधर भाग जाती है, और इससे हमारा बहुत नुकसान होने की सम्भावना है, अतः मै साँकलो को हटाने की आज्ञा कैसे दे सकती हूँ? किन्तु यदि सरकार, नदी में मछली पकड़ने के लिए जो नया कर लगाया गया है, उसे हटाने को प्रस्तुत हो, तो मै भी अपने अधिकार को स्वेच्छापूर्वक त्यागने को तैयार हूँ। अन्यथा इस विषय को लेकर मुकदमेबाजी होगी और राज्यसरकार को मेरा पूरा हर्जाना देना होगा।" सुना जाता है कि रानी के इस प्रकार युक्तिपूर्ण तर्क से, तथा यह समझ कर कि गरीबो की सेवा तथा धीवरो की रक्षा के निमित्त ही रानी का यह प्रयास है, राज्य सरकार ने थोडे ही दिनो में उस कर को हटा लिया एवं धीवर लोग पहले की भाँति नदी मे बिना किसी रोकटोक के अपनी इच्छानुसार मछली पकड़ने लगें एवं रानी को आशीर्वाद देने लगे।

लोकहितकारी कार्यों मे रानी रासमणि का सदा उत्साह था। "सोनाई, बेलेघाटा तथा भवानीपुर के बाजार, कालीघाटस्थित घाट तथा मुमूर्षु-निवास, हाली शहर मे जान्हवी तट पर के घाट, सुवर्णरेखा के दूसरे तट से कुछ दूर तक श्रीजगन्नाथपुरी जाने की सड़क आदि के निर्माण द्वारा इस बात का परिचय मिलता है। गंगासागर, त्रिवेणी, नवद्वीप, अग्रद्वीप, तथा जगन्नाथपुरी की यात्रा कर रासमणि ने देव-सेवा के निमित्त पर्याप्त अर्थ व्यय किया था।" इसके अतिरिक्त मकिमपुर नामक अपनी जमीदारी की प्रजा को 'नीलकर' के अत्याचारो से मुक्त करना तथा दस सहस्र मुद्रा खर्च कर 'टोना' की खाई खुदवा कर मधुमती के साथ नवगंगा का संयोग स्थापित करना इत्यादि अनेक प्रकार के सत्कार्य रानी रासमणि के द्वारा अनुष्ठित हुए थे।

प्रियदर्शन श्री मथुरामोहन उर्फ मथुरानाथ विश्वास के साथ उनका सम्बन्ध समाप्त हो जायगा, यह सोचकर रानी ने उसी दामाद के साथ अपनी चतुर्थ पुत्री जगदम्बा का विवाह कर अपने भग्नहृदय को पुनः स्नेह-डोर से आबद्ध कर लिया था। रानी की उक्त चार पुत्रियों की सन्तान-सन्तति अभी भी विद्यमान है।*

परम गुणवती रानी रासमणि की श्रीकालिकादेवी के पादपद्मों मे आरम्भ से ही विशेष भक्ति थी। जमींदारी के कागजपत्रो मे नामाङ्कित करने के लिए उन्होंने जो मुहर बनाई थी, उसमे---'कालीपद-अभिलाषी श्रीमती रासमणि दासी''—इस प्रकार उनके नाम का उल्लेख

रानी की देवभक्ति।

---

* पाठको की जानकारी के लिए रानी रासमणि की वंशतालिका श्रीदक्षिणेश्वर नामक पुस्तिका से हम यहाँ पर उध्दृत कर रहे है---
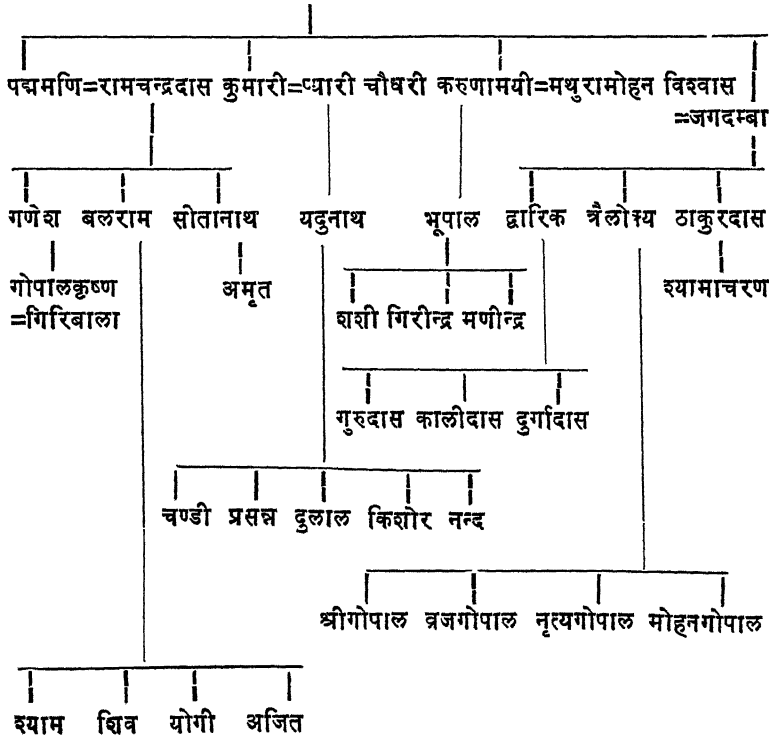
था। श्रीरामकृष्णदेव के मुखारविन्द से हमने सुना है कि तेजस्विनी रानी की देवभक्ति इसी प्रकार सभी विषयों मे अभिव्यक्त होती थी।

श्रीकाशीधाम जाने का आयोजन करते समय स्वप्न में रानी रासमणि को देव-आदेश प्राप्त होना।

श्रीकाशीधाम जाकर श्रीविश्वेश्वर तथा अन्नपूर्णा माँ के दर्शन तथा विशेष रूप से पूजन करने की अभिलाषा रानी के हृदय मे बहुत दिनों से प्रबल रूप से विद्यमान थी। सुना जाता है कि इस शुभ कार्य के निमित्त उन्होंने प्रचुर धनसंचय कर रखा था; किन्तु अकस्मात् उनके पतिदेव की मृत्यु हो जाने से सारी जमींन-जायदादों की देखभाल करने का बोझ उनके कन्धों पर आ जाने के कारण उस समय तक वे उस अभिलाषा को पूर्ण नहीं कर पायी थीं। उस समय उनके दामाद लोग, विशेषकर छोटे दामाद श्री मथुरामोहनजी जमींदारी के कार्य मे शिक्षा प्राप्त कर उनके प्रधान सहायक बन गए थे। फलतः सन् १८४९ मे श्रीकाशीधाम की यात्रा के लिए रानी तैयारी करने लगीं। सब व्यवस्था हो जाने पर यात्रा के लिए निर्धारित दिवस की ठीक प्रथम रात्रि मे ही उन्हें देवी का दर्शन तथा यह आदेश प्राप्त हुआ——श्रीकाशीधाम जाने की कोई आवश्यकता नहीं है, भागीरथी के तट पर किसी मनोरम स्थान में मेरी मूर्ति प्रतिष्ठित कर तुम मेरे पूजन तथा भोग आदि की व्यवस्था करो, मै उस मूर्ति को आश्रय कर आविर्भूत हो प्रतिदिन तुम्हारी पूजा ग्रहण करती रहूँगी।* भक्तिमती रानी इस आदेश से अत्यन्त प्रसन्न एवं सन्तुष्ट हुईं तथा श्रीकाशीधाम की यात्रा स्थगित कर उन्होंने अपने संचित द्रव्य से उक्त कार्य को सम्पन्न करने का संकल्प किया।

इस प्रकार श्रीजगदम्बा के प्रति दीर्घ काल से रानी के हृदय में जो भक्ति विराजमान थी, वह उस समय साकार रूप धारण करने के लिए उन्मुख हो उठी। भागीरथी के तट पर विस्तृत जमीन † खरीद कर उन्होंने बहुत धन व्यय करके नवरत्नपरिशोभित विशाल मन्दिर, देव-

---

* किसी किसी का कहना है कि यात्रा कर कलकत्ता के उत्तर मे दक्षिणेश्वर गाँव तक पहुँच जाने पर नाव के ऊपर रात्रियापन करते समय रानी को उक्त देव-आदेश प्राप्त हुआ था।

† कालीमन्दिर की जमीन कुल ६० बीघा है, देवोत्तर-दान-पत्र में लिखा
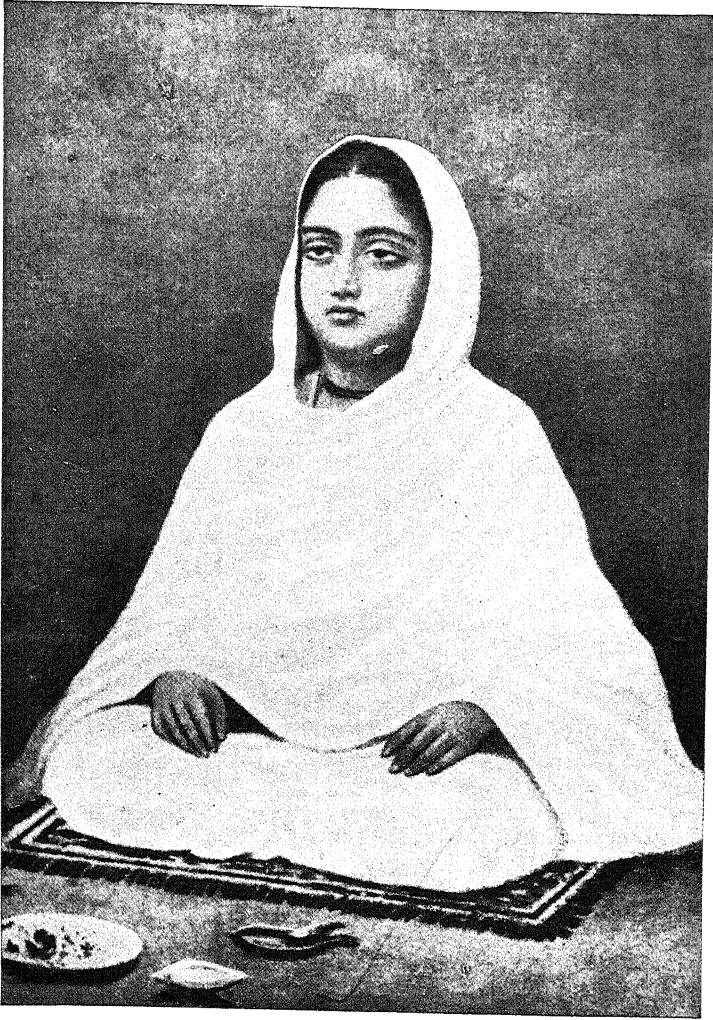
रानी रासमणि

उपवन तथा उसी से लगे हुए उद्यान का निर्माण प्रारम्भ कर दिया। तब से लगाकर सन् १८५५ तक देव-मन्दिर के निर्माण-कार्य को सम्पूर्ण रूप से समाप्त न होते देखकर रानी अपने मन में यह सोचने लगीं कि जीवन अनिश्चित है, मन्दिर के निर्माण मे दीर्घ समय व्यतीत कर देने पर श्रीजगदम्बा की प्रतिष्ठा के संकल्प को सम्भवतः वे अपने जीवन में पूर्ण न कर सकेंगी। ऐसा विचार कर ३१ मई १८५५ (बंगला सन् १२६२ के ज्येष्ठ मास की १८ तारीख) को श्रीजगन्नाथदेव की स्नानयात्रा के दिन उन्होंने श्रीजगदम्बा के प्रतिष्ठा-कार्य को सम्पन्न किया। पाठकों की जानकारी के लिए उससे पूर्व के कुछ वृत्तान्तों का उल्लेख कर देना यहाँ पर आवश्यक होगा।

रानी द्वारा देवमन्दिर का निर्माण।

देव-आदेश प्राप्त होने या हृदय के स्वाभाविक भावावेश के कारण रानी के मन मे श्रीजगदम्बा को अन्नभोग देने की प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई थी, क्योंकि भक्तवृन्द अपने इष्टदेव की सदा आत्मवत् सेवा करना चाहते हैं। रानी ने सोचा—इच्छानुरूप मन्दिर आदि का निर्माण हो चुका है, सेवा की व्यवस्था के निमित्त यथेष्ट सम्पत्ति भी दी जा चुकी है, किन्तु इतने पर भी यदि श्रीजगदम्बा को अपनी अभिलाषा के अनुसार प्रतिदिन अन्न का भोग देने से वह वंचित रहती है, तो ये सब कुछ व्यर्थ है। लोग यह कह सकते है कि रानी रासमणि बहुत बड़ी कीर्ति छोड़ गई है, किन्तु लोगों के कहने से क्या बनता-बिगड़ता है? वे मन ही मन देवी से प्रार्थना करने लगीं—'हे जगदम्बे, केवल निरर्थक यश तथा ख्याति प्रदान कर मेरे चित्त को उधर आकृष्ट न करो। आप यहाँ सदा विराजो तथा कृपापूर्वक इस दासी की हार्दिक अभिलाषा को पूर्ण करो।'

रानी के मन में देवी को अन्नभोग देने की इच्छा।

रानी ने देखा कि देवी का अन्नभोग लगाने मे उनकी जाति तथा सामाजिक प्रथा ही मुख्य रूप से बाधक है। अन्यथा अन्नभोग लगाने से

है—६ सितम्बर १८४७ ई. मे उक्त जमीन कलकत्ता के सुप्रिम कोर्ट के एटर्नी हेस्टी नामक एक अँग्रेज से खरीदी गई है। मन्दिर आदि के निर्माण में लगभग दस वर्ष लगे थे।

जगन्माता उसे ग्रहण न करेंगी—इस बात को उनका हृदय बिलकुल नहीं मानता। अन्नभोग लगाने की आकांक्षा से उनका हृदय उत्फुल्लित होने के सिवाय कभी संकुचित नहीं होता। फिर इस प्रकार की विपरीत प्रथा चालू रहने का कारण ही क्या है? शास्त्रकार क्या प्राणहीन थे? अथवा स्वार्थभावना से प्रेरित होकर ईश्वर के समीप भी उन्होंने उच्च वर्णो के लिए उच्चाधिकार प्रदान किया है? हृदय की पवित्र आकांक्षा का अनुसरण कर प्रचलित प्रथा के विरुद्ध कार्य करने पर भी भक्त-ब्राह्मण तथा सज्जनवृन्द देवालय मे आकर प्रसाद ग्रहण नहीं करेंगे—ऐसी स्थिति मे दूसरा उपाय ही क्या है? अन्नभोग लगाने के निमित्त वे विभिन्न स्थानों के शास्त्रवेत्ता पण्डितों से उनके अभिप्राय मंगवाने लगीं, किन्तु उनमें से किसी ने भी उनको उक्त विषय मे प्रोत्साहित नही किया।

पण्डितों के मतानुसार चलने पर भी उक्त अभिलाषा की पूर्ति में विघ्न।

इस प्रकार मन्दिर तथा मूर्तिनिर्माण के सम्पूर्ण होने पर भी रानी को पूर्व संकल्प के पूर्ण होने का कोई उपाय दिखाई नहीं दिया। पण्डित-वर्ग के बारम्बार प्रत्याख्यान के फलस्वरूप जब उनकी आशा लगभग निर्मूल हो चुकी थी, उस समय झामापुकुर संस्कृत विद्यालय से एक दिन यह व्यवस्था-पत्र प्राप्त हुआ—"प्रतिष्ठा से पूर्व रानी यदि किसी ब्राह्मण के लिए उस सम्पत्ति का दान कर दें और वह ब्राह्मण उस मन्दिर मे देवीमूर्ति की प्रतिष्ठा कर अन्नभोग लगाने की व्यवस्था करे, तो शास्त्रमर्यादा की कोई हानि नहीं होगी तथा ब्राह्मणादि उच्च वर्ण के लोग उस देवालय में प्रसाद लेने पर किसी प्रकार से दोषी नहीं होंगे।"

रामकुमारजी द्वारा व्यवस्थाप्रदान।

उक्त व्यवस्थापत्र को पाकर रानी की आशा पुनः मुकुलित हो उठी। उन्होंने अपने गुरुदेव के नाम देवालय की प्रतिष्ठा कर उनकी अनुमति से उस देवसेवा के व्यवस्थापक के पद को स्वीकार करने का निश्चय किया। श्रीराम-कुमार भट्टाचार्य महोदय की व्यवस्था के अनुसार प्रतिष्ठा-कार्य को सम्पादन करने के लिए रानी

मन्दिर के उत्सर्ग के बारे में रानी का संकल्प।

का दृढ़ संकल्प सुनकर आचार्य, पण्डितवर्ग टीका-टिप्पणी करने लगे कि—'यह कार्य सामाजिक प्रथा के विरुद्ध है,' 'इस प्रकार से प्रतिष्ठा करने पर भी ब्राह्मण लोग वहाँ प्रसादादि नहीं लेंगे' इत्यादि इत्यादि। किन्तु इस प्रकार का आचरण शास्त्रविरुद्ध है, यह कहने का किसी को साहस नहीं हुआ।

रामकुमारजी की उदारता।

इस घटना से श्रीरामकुमार भट्टाचार्य के प्रति रानी की दृष्टि विशेष रूप से आकृष्ट हुई और इसकी कल्पना भी हम भलीभाँति कर सकते है। विचारपूर्वक देखने से पता चलता है कि उस समय रामकुमारजी का इस प्रकार का अभिप्राय प्रदान करना केवल एक सामान्य उदारता का परिचायक नहीं था, क्योंकि समाज के नेतृत्व-वर्ग तथा ब्राह्मण-पण्डितों का हृदय उस समय संकीर्ण सीमा के अन्दर आबद्ध हो चुका था; उस परिधि से बाहर निकलकर शास्त्रमर्यादा के अनुरूप किसी उदार भाव को देखने तथा परिस्थिति के अनुसार अभिप्राय एवं व्यवस्था प्रदान करने मे विरले ही समर्थ थे; , फलतः अनेक स्थलों पर उन लोगों की व्यवस्था का उल्लंघन करने की मानसिक प्रवृत्ति लोगों मे उत्पन्न होती थी।

रानी रासमणि द्वारा योग्य पूजक की खोज।

अस्तु। रामकुमारजी के साथ रानी का विचार एवं भावसामञ्जस्य इतने से ही समाप्त नहीं हो गया। बुद्धिशालिनी रानी ने अपने गुरुवंश के व्यक्तियों का यथायोग्य सम्मान किया; साथ ही इस बात को भी विशेषरूप से उन्होंने अनुभव किया कि उनमे शास्त्रज्ञान का अभाव है तथा शास्त्रानुसार देव-सेवा करने मे वे पूर्णतया असमर्थ है। अतः उनके लिए उपयुक्त भेटपूजा को अक्षुण्ण रखकर नवीन देवालय की सेवा-पूजा का भार किसी योग्य शास्त्रज्ञ सदाचारी ब्राह्मण पर सौंपने का उन्होंने निश्चय किया। तथा उस विषय की यथोचित व्यवस्था करने में वे संलग्न हुई। इस कार्य में भी सामाजिक प्रचलित प्रथा बाधक बनी। शूद्रों द्वारा प्रतिष्ठित देव-देवियों के पूजन करने की बात तो दूर की बात हुई, सद्वंश के ब्राह्मण लोग उस समय उन मूर्तियों को प्रणाम कर मूर्तियों की मर्यादा तक नहीं रखते थे तथा रानी के गुरु-वंशोद्भवों की भाँति ब्राह्मण बन्धुओं को शूद्र-जैसा मानते थे। इसलिए

यजन-याजन में दक्ष कोई भी सदाचारी ब्राह्मण रानी के देवालय मे पुजारी पद को स्वीकार करने के लिए सहसा तैयार नहीं हुआ। फिर भी वे हताश नहीं हुई बल्कि वेतन तथा पुरस्कार की राशि बढाकर विभिन्न स्थानों मे वे पुजारी के लिए खोज करने लगी।

रानी के कर्मचारी सिहड-ग्राम निवासी महेशचन्द्र चट्टोपाध्याय द्वारा पूजक की व्यवस्था करने का भारग्रहण।

श्रीरामकृष्णदेव की बहिन श्रीमती हेमांगिनी देवी का मकान कामारपुकुर के निकटवर्ती सिहड़ गाँव मे था। वहाँ अनेक ब्राह्मणों का निवास था। उस गाँव के महेशचन्द्र चट्टोपाध्याय * नामक एक व्यक्ति उस समय रानी के दफ्तर मे नौकरी करते थे। कुछ मिलने की आशा से उस समय वे रानी के देवालय के लिए पुजारी, रसोइया आदि सब प्रकार के ब्राह्मण कर्मचारियों की व्यवस्था कर देने का भार लेने को तैयार हुए। इस उत्तरदायित्व को स्वीकार कर उन्होंने अपने गाँव के गरीब ब्राह्मणों को यह समझाया कि रानी के देवालय मे कार्य करना कोई निन्दनीय कार्य नहीं है, और सर्वप्रथम अपने अग्रज क्षेत्रनाथजी को श्रीराधागोविन्दजी के मन्दिर के पुजारीपद के लिए निश्चित कर लिया। इस प्रकार अपने परिवार के एक व्यक्ति को वहाँ नियुक्त कर देने के बाद अन्यान्य ब्राह्मण कर्मचारियों की व्यवस्था करना उनके लिए अपेक्षाकृत सहज हो गया। किन्तु अनेक प्रयास करने पर भी श्रीकालिकादेवी की पूजा के लिए सुयोग्य पुजारी की व्यवस्था वे न कर सके। और इसलिए वे विशेष चिन्तित थे।

रामकुमारजी को पूजक-पद ग्रहण करने के लिए रानी का अनुरोध।

श्रीरामकुमार भट्टाचार्य के साथ महेशजी का पहले से ही परिचय था। गाँव के सम्पर्क से सम्भवतः उन दोनों ने परस्पर कोई सम्बन्ध भी स्थापित किया था। रामकुमारजी एक भक्तिमान् साधक है, तथा उन्होंने स्वेच्छापूर्वक शक्तिमन्त्र ग्रहण किया है, यह बात महेशजी से छिपी नहीं थी। उनके पारिवारिक कष्ट की बात भी महेशजी कुछ-कुछ जानते थे। इसलिए श्रीकालिकामाता

* किसी किसी का कहना है कि उस वश के लोगों को किसी समय "मजुमदार" की उपाधि प्राप्त हुई थी।

के पुजारी की खोज के सिलसिले मे उनकी दृष्टि उस समय रामकुमारजी की ओर गई; किन्तु फिर उन्हे यह ध्यान आया कि यद्यपि अशूद्रयाजी रामकुमारजी ने कलकत्ते मे दिगम्बर मित्र आदि दो-एक व्यक्तियों के घर पर सामयिक रूप से पुजारी-पद को स्वीकार किया है, फिर भी क्या वे कैवर्त जाति मे उत्पन्न रानी के देवालय मे उस कार्य को करना स्वीकार करेगे ? महेशजी को इस विषय मे विशेष सन्देह होने लगा। जो भी हो, इस तरह श्रीकालिकादेवी की प्रतिष्ठा का दिन निकट आ गया। कोई योग्य व्यक्ति भी नहीं मिल रहा था; इसलिए विचार-विमर्श के पश्चात् महेशजी ने उस विषय मे एक बार फिर प्रयास करना उचित समझा; किन्तु स्वयं उस विषय मे सहसा निर्णय न लेकर रानी के सम्मुख सारी बात रख दी और यह कहा कि कम से कम प्रतिष्ठा के दिन पुजारी रूप से समस्त कार्यों को सम्पन्न करने के निमित्त वे रामकुमारजी को सानुरोध आमंत्रित कर ले। रामकुमारजी से पूर्वोक्त व्यवस्थापत्र प्राप्त कर उनकी योग्यता के सम्बन्ध मे पहले से ही रानी की उच्च धारणा थी, अतः इस बात की सम्भावना देखकर कि शायद वे पुजारी-पद स्वीकार कर ले वे अत्यन्त आनन्दित हुई और विशेष विनम्रता के साथ उन्होंने उनके पास यह समाचार पहुँचाया—'आपकी व्यवस्थानुसार ही श्रीजगन्माता की प्रतिष्ठा का मै आयोजन कर सकी हूँ। आगामी 'स्नानयात्रा' के दिन शुभ मुहूर्त मे उस कार्य को सम्पन्न करने का सम्पूर्ण आयोजन किया गया है। श्रीराधा-गोविन्दजी की सेवा के लिए पुजारी की व्यवस्था हो गई है, किन्तु श्रीकाली माता के पुजारी पद को स्वीकार कर प्रतिष्ठाकार्य मे मुझे सहायता प्रदान करने के निमित्त कोई भी सुयोग्य ब्राह्मण नही मिल रहा है। अतः इस विषय मे यथाशीघ्र समुचित व्यवस्था कर आप मुझे इस संकट से मुक्त करने की कृपा करे। आप स्वयं विद्वान् पंडित है तथा शास्त्रज्ञ है, उक्त पद के लिए किसी भी अधिकारी-अनधिकारी को नियुक्त कर देना कहाँ तक उचित होगा, यह आप स्वयं जानते है। अधिक मै आपसे क्या निवेदन करूँ।"

रानी के इस अनुरोध-पत्र को लेकर महेशजी स्वयं रामकुमारजी के पास पहुँचे और उनको अनेक प्रकार से समझा-बुझाकर उस समय तक के लिए जब तक कि कोई दूसरा योग्य पुजारी न मिल जाय, उस पद को ग्रहण करने की स्वीकृति उनसे प्राप्त की। इस प्रकार निश्चित तिथि

में श्रीजगदम्बा की प्रतिष्ठा में कोई आशंका न रहे, इसलिए निर्लोभ तथा भक्तिमान् रामकुमारजी सर्वप्रथम दक्षिणेश्वर* पधारे थे, तदनन्तर रानी तथा मथुर बाबू के अनुनय-विनय से और साथ ही किसी योग्य पुजारी के न मिल पाने से वे आजन्म वहीं रह गए। श्रीजगदम्बा की इच्छा से ही संसार के छोटे-बड़े सारे कार्य सम्पन्न होते है, अतः इस प्रसंग मे भी केवल इच्छामयी की इच्छा जानकर देवीभक्त रामकुमारजी उस कार्य मे संलग्न हुए थे या नहीं—यह कौन कह सकता है?

---

* दक्षिणेश्वर कालीमन्दिर मे श्रीरामकुमारजी के प्रथम आगमन के सम्बन्ध मे पूर्वोक्त विवरण हमे श्रीरामकृष्णदेव के अनुगत भानजे श्रीहृदयराम से प्राप्त हुआ है। किन्तु उनके भतीजे श्री रामलाल भट्टाचार्य का कथन कुछ और है। उनका कहना है कि कामारपुकुर के समीपवर्ती देशडा नामक गाँव के रामधन घोष रानी रासमणि के कर्मचारी थे। कार्यकुशलता के कारण रानी ने इन्हे क्रमशः अपने यहाँ दीवान तक नियुक्त किया था। श्री रामकुमारजी के साथ इनका परिचय था। कालीमन्दिर की प्रतिष्ठा के समय इन्होने भेंट-दक्षिणा लेने के निमित्त उनको आमन्त्रित किया था। निमन्त्रण पाकर रामकुमारजी ने रानी के जानबाजार स्थित भवन मे आकर रामधनजी से कहा, "रानी कैवर्त जाति मे उत्पन्न हुई है, उनका निमन्त्रण तथा दानग्रहण करने से ब्राह्मणसमाज से मुझे बहिष्कृत होना पडेगा।" यह सुनकर रामधनजी ने उन्हे निमन्त्रण की तालिका दिखाकर कहा था, "बहिष्कृत होने का क्या कारण है? यह देखो, कितने ही ब्राह्मणो को आमन्त्रित किया गया है, ये सभी लोग उपस्थित होगे तथा रानी से भेंट-बिदाई भी लेगे।" तब रामकुमारजी बिदाई ग्रहण करने को सम्मत हुए और कालीमन्दिर की प्रतिष्ठा के पूर्वदिवस श्रीरामकृष्ण को साथ लेकर दक्षिणेश्वर आए। प्रतिष्ठा के पूर्वदिवस धार्मिक नाटक, काली कीर्तन, श्रीमद्भागवत तथा रामायण की कथा इत्यादि से कालीमन्दिर मे चारो ओर आनन्द की धारा प्रवाहित हो चली थी। रात मे भी वह आनन्दस्रोत वैसा ही रहा। असंख्य प्रकाशमालाओं से देवालय मे मानो दिन की तरह प्रकाश था। श्रीरामकृष्णदेव कहते थे, 'उस समय देवालय को देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि मानो रानी ने रजतगिरि को लाकर वहाँ स्थापित कर दिया है।' इसी आनन्दोत्सव को देखने के लिए श्री रामकुमारजी प्रतिष्ठा के पूर्वदिवस कालीमन्दिर मे आए थे।

रामलाल भट्टाचार्य के इस कथन से ऐसा अनुमान होता है कि रामधनजी तथा महेशजी इन दोनों के अनुरोध से ही श्री रामकुमारजी ने दक्षिणेश्वर आकर पुजारी-पद को ग्रहण किया था।

इस प्रकार एक असम्भव-सी युक्ति द्वारा रामकुमारजी को पुजारी के रूप में पाकर रानी रासमणि ने गुरुवार, ३१ मई १८५५ को (बंगला सन् १२६२ ज्येष्ठ की १८ तारीख) 'स्नान-यात्रा' के शुभ अवसर पर विशेष समारोह के साथ श्रीजगदम्बा को नवीन मन्दिर मे प्रतिष्ठित किया। सुना जाता है कि 'दीयतां भुज्यताम्' की ध्वनि से उस दिन वह स्थल दिन-रात समान रूप से गूँज उठा था। मुक्त हस्त से अजस्र अर्थव्यय कर अतिथि-अभ्यागतों को अपनी ही तरह आनन्दित करने मे रानी ने कोई कसर नही उठा रखी थी। सुदूर कान्यकुब्ज (कन्नौज), वाराणासी, श्रीहट्ट (सीलेट), चटगाँव, उड़ीसा तथा नवद्वीप आदि पण्डितप्रधान स्थानों से अनेक अध्यापक तथा विद्वान् ब्राह्मण उस उपलक्ष्य मे वहाँ उपस्थित हुए थे तथा प्रत्येक को रेशमी वस्त्र, चद्दर तथा बिदाई-स्वरूप एक-एक स्वर्णमुद्रा दी गई थी। सुना जाता है कि देवालय के निर्माण तथा प्रतिष्ठा में रानी ने नौ लाख रुपये खर्च किए थे और २,२६,००० रुपये मे त्रैलोक्यनाथ ठाकुर से दिनाजपुर जिले के ठाकुरगाँव तहसील के अन्तर्गत शालवाड़ी परगना को खरीद कर देव-सेवा के निमित्त उन्होंने दानपत्र लिख दिया था।

रानी की देवीप्रतिष्ठा।

किसी किसी का कहना है कि रामकुमारजी ने उस दिन सीधा लेकर गंगातट पर रसोई बनाकर अपनी अभीष्ट देवी का भोग लगाने के पश्चात् उस प्रसाद को ग्रहण किया था। किन्तु हमे यह बात यथार्थ प्रतीत नहीं होती। कारण यह कि देवीभक्त रामकुमारजी ने स्वयं व्यवस्था-पत्र देकर देवी के लिए अन्नभोग देने का निर्देश दिया था। अतः स्वयं ही उस निवेदित अन्न को ग्रहण न कर अपने निर्णय तथा भक्तिशास्त्र के विरुद्ध आचरण करना कदापि सम्भव नहीं होता। श्रीरामकृष्णदेव से भी हमने कभी इस प्रकार की कोई बात नहीं सुनी। अतः हमारी धारणा है कि पूजन के अनन्तर उन्होंने श्रीजगदम्बा के प्रसादी नैवेद्यान्न को ही आनन्दपूर्वक ग्रहण किया था। किन्तु श्रीरामकृष्ण-देव ने उस आनन्दोत्सव मे सर्वात्मना सम्मिलित होने पर भी भोजन के सम्बन्ध मे अपनी निष्ठा की रक्षा की एवं सायंकाल समीपवर्ती बाजार से

प्रतिष्ठा के दिन श्रीरामकृष्णदेव का आचरण।

साथ ही शक्तिप्रतिष्ठा के लिए शास्त्रनिर्दिष्ट अन्यान्य शुभ दिनों में मन्दिर की प्रतिष्ठा न कर स्नानयात्रा के दिन विष्णु-पर्व मे रानी ने श्रीजगदम्बा की प्रतिष्ठा क्यों की, इस सम्बन्ध मे चर्चा करते हुए श्रीराम-कृष्णदेव कभी-कभी हमसे कहा करते थे कि––देवीमूर्ति निर्माण के प्रारम्भिक दिवस से ही रानी शास्त्रानुसार कठोर तपस्या करने लगी थीं, वे प्रतिदिन त्रिसन्ध्या स्नान, हविष्यान्न भोजन, भूमिशयन, यथाशक्ति मन्त्रजप तथा पूजन आदि कर रही थीं; मन्दिर तथा देवीमूर्ति निर्मित हो जाने पर जब धीरे-धीरे प्रतिष्ठा का शुभ दिन निर्धारित किया जा रहा था एवं उस मूर्ति के टूटने की आशंका से एक सन्दूक मे उसे बन्द कर दिया गया था, उस समय चाहे जिस कारण से भी हो वह मूर्ति पसीने से भीग उठी थी और रानी को स्वप्नादेश हुआ—'मुझे और कितने दिन इस प्रकार बन्द कर रखना चाहती है? मुझको अत्यन्त कष्ट हो रहा है; जितनी जल्दी हो सके मेरी प्रतिष्ठा की व्यवस्था कर।' इस प्रकार का दैव आदेश प्राप्त करने के पश्चात् देवी की प्रतिष्ठा के लिए व्यग्र होकर रानी मुहूर्त विचरवाने लगीं और स्नानयात्रा की पूर्णिमा से पहले कोई शुभ दिन न मिलने के कारण उक्त दिवस उस कार्य को सम्पन्न करने का उन्होंने निश्चय किया था।

इसके अतिरिक्त देवी को अन्नभोग देने के निमित्त अपने गुरुदेव के नाम से रानी द्वारा देवमन्दिर की प्रतिष्ठा आदि की उपरोक्त सभी बाते हमने श्रीरामकृष्णदेव से सुनी थीं। केवल मन्दिर की प्रतिष्ठा के सम्बन्ध में राम-कुमारजी का व्यवस्थाप्रदान तथा श्रीरामकृष्णदेव को समझाने के लिए रामकुमारजी का धर्मपत्रानुष्ठान ये दो बाते हमे श्रीरामकृष्णदेव के भानजे श्रीहृदयराम मुखोपाध्याय से विदित हुई है।

दक्षिणेश्वर कालीमन्दिर मे स्थायी रूप से पुजारी-पद को स्वीकार करना रामकुमार भट्टाचार्य के लिए अभीप्सित नहीं था, यह हमे श्रीराम-कृष्णदेव की उस समय की बातों से ज्ञात होता है। इस सम्बन्ध में विवेचना करने पर प्रतीत होता है कि सरलहृदय रामकुमारजी उस समय उक्त विषय को यथावत् समझ नहीं पाए थे। उन्होंने सोचा था कि देवी के लिए अन्नभोग देने का विधान देकर प्रतिष्ठा के दिन उस कार्य को स्वयं सम्पन्न करके वे पुनः झामापुकुर लौट जायेंगे। उस दिन देवी को

अन्नभोग देते समय वे किंचिन्मात्र भी संकुचित नहीं हुए थे और न उनके मन में इस प्रकार की ही भावना उपस्थित हुई थी कि वे किसी प्रकार का अशास्त्रीय कार्य कर रहे है। अपने छोटे भाई के साथ उस समय किए गए उनके व्यवहार से इस बात का स्पष्ट परिचय मिलता है।

प्रतिष्ठा के दूसरे दिन अग्रज का समाचार लेने तथा प्रतिष्ठा-सम्बन्धी जो कार्य अवशिष्ट थे, उन्हे देखने के लिए श्रीरामकृष्णदेव सहज ही दक्षिणेश्वर आए। कुछ देर तक वहाँ रहने के पश्चात् उन्हें यह अनुभव हुआ कि उस दिन उनके अग्रज के लिए झामापुकुर लौटने की कोई सम्भावना नहीं है। इसलिए उस दिन वहाँ रहने का अनुरोध होने पर भी अग्रज की बात को न मानकर भोजन के समय वे पुनः झामापुकुर वापस आ गए। तदनन्तर पाँच-सात दिन तक श्रीरामकृष्णदेव फिर दक्षिणेश्वर नही गए। वहाँ का कार्य समाप्त हो जाने के बाद अग्रज यथासमय झामापुकुर वापस आ जावेंगे यह सोचकर वे वहीं रहे; किन्तु एक सप्ताह व्यतीत हो जाने पर भी जब रामकुमारजी वापस नहीं आए, तब श्रीरामकृष्णदेव के मन में नाना प्रकार की चिन्ताएँ होने लगीं तथा अग्रज का कुशल समाचार लाने के लिए वे पुनः दक्षिणेश्वर पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने सुना कि रानी के विशेष अनुरोध से सदा के लिए रामकुमारजी ने श्रीजगदम्बा के पुजारी-पद को ग्रहण करने का निश्चय किया है। यह सुनते ही उनके मन मे विभिन्न बातें उदित हुई और वे अपने पिताजी के अशूद्रयाजन तथा अप्रतिग्रह की याद दिलाकर उनको उस कार्य से निवृत्त करने का प्रयास करने लगे। सुना जाता है कि रामकुमारजी ने श्रीरामकृष्णदेव को शास्त्र तथा युक्तियों द्वारा विभिन्न प्रकार से समझाने की चेष्टा की, किन्तु यह देखकर कि कोई भी बात उनके हृदय को स्पर्श नहीं कर रही है, अन्त में उन्होंने 'धर्मपत्र' अनुष्ठानरूप* सरल उपाय का अवलम्ब किया। ऐसा सुनने में आता है कि 'धर्मपत्र' मे यह लिखा हुआ निकला था— "रामकुमार ने पूजक के पद को स्वीकार कर कोई निन्दित कर्म नहीं किया

* गाँवो में यह प्रथा प्रचलित है कि युक्ति, तर्क आदि के द्वारा जब किसी विषय की मीमासा की सम्भावना दिखाई नही देती है, तब लोग दैव पर निर्भर हो उस विषय में देवता का क्या अभिमत है, यह जानने के लिए 'धर्मपत्र' का अनुष्ठान करते हैं एवं उसके द्वारा देवता की इच्छा को जानकर उस विषय में

है। उससे सभी का मंगल होगा।" 'धर्मपत्र' की मीमांसा को देखकर श्रीरामकृष्णदेव का मन उस विषय मे निश्चिन्त होने पर भी एक दूसरी चिन्ता ने उनके हृदय पर अपना अधिकार जमा लिया। वे सोचने लगे कि इस परिस्थिति मे संस्कृत विद्यालय का बन्द हो जाना अनिवार्य है, अतः उन्हें क्या करना चाहिए! उस दिन झामापुकुर न लौटकर वे उसी चिन्ता में निमग्न रहे तथा रामकुमारजी के कहने पर भी देवमन्दिर मे प्रसाद ग्रहण करने को वे सम्मत नहीं हुए। रामकुमारजी ने उनको कई प्रकार से समझाया तथा कहा, "प्रथम तो यह देवमन्दिर है फिर गंगाजल से रसोई बनी है, सर्वोपरि श्रीजगदम्बा का भोग लगाया गया है, अतः उस प्रसाद को ग्रहण करने से कोई दोष नहीं होगा।" किन्तु श्रीरामकृष्णदेव के लिए ये बाते न्यायसंगत प्रतीत नहीं हुई। तब रामकुमारजी बोले, "फिर तुम सीधा (सूखा सामान) लेकर पंचवटी के नीचे गंगागर्भ मे स्वयं अपने हाथ से रसोई बनाकर भोजन करो; इस बात को तो तुम मानते ही हो कि

भोजन के सम्बन्ध में श्रीरामकृष्णदेव की निष्ठा।

फिर और कोई युक्ति तर्क न करते हुए तदनुसार कार्य करते है। 'धर्मपत्र' का अनुष्ठान निम्नलिखित रूप से किया जाता है--

कुछ कागजो के टुकडो अथवा बिल्वपत्रो पर "हाँ" तथा "न" लिखकर एक लोटे के अन्दर उनको रखकर उनमे से एक को निकालने के लिए किसी बालक से कहा जाता है। उस बालक के द्वारा "हाँ" लिखा हुआ कागज निकालने पर अनुष्ठाता यह समझता है कि देवता उस कार्य को करने के लिए आदेश दे रहे है और उसके विपरीत होने पर यह जाना जाता है कि देवता का अभिप्राय कुछ दूसरा ही है। 'धर्मपत्र' के अनुष्ठान द्वारा कभी-कभी जमीन-जायदादो का बँटवारा भी किया जाता है। जैसे किसी व्यक्ति के चार पुत्र पहले एक साथ रहते थे, कुछ दिन बाद परस्पर अलग रहने का निश्चय कर जमीन-जायदाद को बाँटने में प्रवृत्त हो कौन-सा हिस्सा किसे मिलना चाहिए, इसका यदि वे निर्णय न कर सके तो गाँव के कुछ निःस्वार्थ तथा धार्मिक प्रवृत्ति के लोगो से उन्होने मीमासा कर देने का अनुरोध किया। उस समय वे लोग स्थावर तथा अस्थावर समस्त सम्पत्ति को यथासम्भव समानरूप से चार भागो मे बाँटकर कौनसा भाग किस भाई को मिलना चाहिए इसका निर्णय 'धर्मपत्र' के द्वारा करते है।

गंगागर्भ मे अवस्थित समस्त वस्तुएँ पवित्र है; भोजन के सम्बन्ध में श्रीराम-कृष्णदेव के मन की प्रगाढ निष्ठा उनकी अन्तर्निहित गंगाभक्ति के सम्मुख उस समय पराजित हुई। इससे पहले शास्त्रवेत्ता रामकुमारजी युक्ति आदि की सहायता से समझा-बुझाकर उनके द्वारा जो कार्य नहीं करा पाए थे, विश्वास तथा भक्ति के द्वारा वह कार्य सम्पन्न हुआ। श्रीरामकृष्णदेव इस बात पर राजी हो गए और उक्त प्रकार से भोजन कर दक्षिणेश्वर में रहने लगे।

श्रीरामकृष्णदेव की गगाभक्ति।

वास्तव में हमने श्रीरामकृष्णदेव को जीवनभर गंगाजी के प्रति विशेष भक्ति करते हुए देखा है। वे कहते थे,--नित्य शुद्ध ब्रह्म ही जीव को पवित्र करने के लिए वारिरूप मे गंगाजी का आकार धारण कर विराजमान हैं। इसलिए गंगाजी साक्षात् ब्रह्मवारि है। गंगातट पर निवास करने से अन्तःकरण देवतुल्य हो जाता है तथा धर्मबुद्धि स्वतः ही स्फुटित होती है। गंगाजी के पवित्र जलकणपरिपूर्ण वायु उसके दोनों तट पर जहाँ तक प्रवाहित होती है, वहाँ तक की भूमि पवित्र हो जाती है और उस भूमि पर निवास करनेवालों के जीवन मे सदाचार, ईश्वरभक्ति, निष्ठा, दान तथा तपस्या की भावना शैलसुता भागी-रथी की कृपा से सदा ही विद्यमान रहती है। बहुत देर तक विषयवार्ता की आलोचना अथवा विषयी लोगों के साथ रहकर जब कोई उनके समीप आता था, तब श्रीरामकृष्णदेव थोड़ा-सा गंगाजल पान करने के लिए उससे कहते थे। ईश्वरविमुख, विषयासक्त मानव उस पुनीत आश्रम की किसी

उस समय भी प्रायः पूर्वोक्त रीति का ही अनुसरण किया जाता है। छोटे-छोटे कागज के टुकडो पर सम्पत्ति के अधिकारियो का नाम लिखकर इस प्रकार से उनको मोड़कर एक लोटे के अन्दर रखा जाता है कि कोई उन नामों को देख न सके, तथा उक्त चार भागो में विभक्त सम्पत्ति के प्रत्येक भाग को 'क' 'ख' इत्यादि रूप से चिन्हित तथा उसी प्रकार छोटे-छोटे कागजो के टुकड़ो पर लिखकर उनको भी दूसरे किसी पात्र मे पहले की तरह रख दिया जाता है। इसके पश्चात् दो बालको को बुलाकर उनको पृथक्-पृथक् पात्रो से उन कागज के टुकडो को उठाने के लिए कहा जाता है। तदनन्तर उन कागजो को खोलकर देखने के बाद जिसके नाम सम्पत्ति का जो अश उठता है, उसी अश को लेने के लिए उसे बाध्य किया जाता है।

जगह बैठ विषय-चिन्तन के द्वारा यदि उस स्थल को कलुषित कर देता था, तब वे वहाँ पर गंगाजल छिड़क देते थे। गंगाजल मे किसी को शौचादि करते हुए देखकर उन्हे विशेष कष्ट का अनुभव होता था।

श्रीरामकृष्णदेव का दक्षिणेश्वर में निवास तथा अपने हाथो से रसोई बनाकर भोजन।

अस्तु, भागीरथी के मनोरम तट पर विहगकूजित पंचवटी, परिशोभित उपवन, सुविशाल देवमन्दिर मे भक्तिमान् साधक के द्वारा सुष्ठु रूप से अनुष्ठित तथा सुसम्पादित देवसेवा, धार्मिक तथा सदाचारी पितृतुल्य अग्रज का अकृत्रिम स्नेह एवं देवद्विजपरायणा पुण्यशीला रानी रासमणि तथा उनके दामाद मथुर बाबू की श्रद्धा-भक्ति से दक्षिणेश्वर का कालीमन्दिर श्रीरामकृष्णदेव के लिए कामारपुकुर का घर-जैसा बन गया और कुछ दिन अपने हाथ से रसोई बनाकर भोजन करने पर भी वहाँ पर आनन्दपूर्वक रहते हुए वे अपने मन के संशय को दूर करने मे समर्थ हुए।

श्रीरामकृष्णदेव की भोजनसम्बन्धी पूर्वोक्त निष्ठा की बात को सुनकर कोई कोई सम्भवतः यह कहेगे कि इस प्रकार की अनुदारता हम-जैसे मानवो मे ही साधारणतया दिखाई देती है—श्रीरामकृष्णदेव के जीवन में उसका उल्लेख करने का तात्पर्य क्या यह है कि इस प्रकार अनुदार बने बिना आध्यात्मिक जीवन मे चरम उन्नत होना असम्भव है? इसके उत्तर

अनुदारता तथा आत्यन्तिक निष्ठा में भेद।

मे हमे यह कहना है कि अनुदारता तथा आत्यन्तिक निष्ठा ये दोनों एक वस्तु नहीं है। पहले का जन्म अहंकार से होता है तथा उसका प्रादुर्भाव होने पर मानव स्वयं जो कुछ समझता या करता है, उसे ही सर्वश्रेष्ठ मानता हुआ चारों ओर से उसमे आवद्ध हो निश्चिन्तता के साथ बैठ जाता है; और शास्त्र तथा महापुरुषों के अनुशासन में विश्वास ही दूसरे की उत्पत्ति का मूल है—उसके उदय होने पर मानव अपने अहंकार को चूर्ण कर आध्यात्मिक जीवन मे उन्नत तथा क्रमशः परम सत्य का अधिकारी बनता है। निष्ठा के प्रादुर्भाव से प्रारम्भिक दशा में मानव कुछ काल के लिए अनुदार जैसा प्रतीत हो सकता है, किन्तु उसकी सहायता से जीवनयात्रा के मार्ग में धीरे धीरे उसे उच्चतर प्रकाश दिखाई देने लगता है तथा उसकी संकीर्णता

अपने-आप दूर हो जाती है। इसलिए आध्यात्मिक उन्नति के निमित्त निष्ठा की परम आवश्यकता है। श्रीरामकृष्णदेव के जीवन के निष्ठा-सम्बन्धी पूर्वोक्त प्रकार के परिचय द्वारा यही सिद्ध होता है कि शास्त्रशासन के प्रति दृढ निष्ठा रखकर यदि हम आध्यात्मिक तत्वों को देखने के लिए अग्रसर हों, तभी समय आने पर यथार्थ उदारता के अधिकारी बनकर परम शान्ति को प्राप्त कर सकते है, अन्यथा नहीं। जैसा कि श्रीरामकृष्ण-देव कहते थे—काँटे से ही काँटे को निकालना होगा—निष्ठा का अव-लम्बन कर ही सत्य की उदारभूमि पर पहुँचना पड़ेगा—शासन तथा नियम का अनुसरण करके ही शासनातीत तथा नियमातीत स्थिति को प्राप्त करना होगा।

यौवन के प्रारम्भ मे श्रीरामकृष्णदेव के जीवन मे इस प्रकार की असम्पूर्णता को देखकर कोई सम्भवतः यह कहे कि फिर उन्हें ईश्वरावतार कहने का तात्पर्य क्या है, उनको मनुष्य कहने मे क्या हानि है? और यदि उन्हे ईश्वर बनाना ही ध्येय हो तो उनकी उन असम्पूर्णताओं को छिपाकर वर्णन करना ही श्रेयस्कर है, अन्यथा सहज मे उक्त उद्देश्य की सिद्धि नहीं हो सकती। इस सम्बन्ध मे हमारा कहना यह है कि—भाई, एक समय ऐसा था, जब हम भी मानव-विग्रह धारण कर ईश्वर के अवतीर्ण होने की बात पर स्वप्न में भी विश्वास नहीं करते थे; किन्तु जिस समय उनकी अहैतुकी कृपा से उन्होंने हमे यह समझा दिया कि ऐसा होना असम्भव नहीं है, तब हमको यह विदित हुआ कि मानव-देह धारण करने पर उस देह की असम्पूर्णताओं की तरह मानव-मन की त्रुटियों को भी यथावत् स्वीकार करना पड़ता है। श्रीरामकृष्णदेव कहते थे, "सुवर्ण आदि धातु मे ताँबा आदि मिलाए बिना जिस प्रकार अलंकार का निर्माण सम्भव नहीं है, उसी प्रकार विशुद्ध सत्वगुण के साथ रजोगुण तथा तमोगुण के कुछ-कुछ मिश्रित न होने पर देह-मन का गठन होना भी असम्भव है।" वे अपने जीवन की उन असम्पूर्णताओं की बातों को हम लोगों के पास प्रकट करने में कभी किंचिन्मात्र भी संकुचित नहीं हुए, साथ ही स्पष्ट शब्दों में उन्होंने बारम्बार हमसे यह भी कहा है—पूर्व पूर्व युगों में राम तथा कृष्णादिरूप से जो आविर्भूत हुए थे, इस समय (अपने शरीर को दिखाकर) इस आवरण के अन्दर उनका ही आगमन हुआ है; किन्तु इस

बार गुप्त रूप से आगमन है—राजा जैसे वेष बदलकर शहर देखने के लिए निकलते है, ठीक उसी प्रकार समझना चाहिये।" अतः श्रीराम-कृष्णदेव के सम्बन्ध मे हमें जो कुछ विदित है, उन समस्त बातो का ही हम उल्लेख करेंगे। पाठक उनमे से जिन अंशो को विश्वास व स्वीकार करना उचित समझें, कर सकते है तथा बाकी अंशों के लिए यथेच्छ निन्दा तथा तिरस्कार करने पर भी हमे किसी प्रकार का कष्ट न होगा।

पंचम अध्याय

पूजक-पद ग्रहण

मन्दिर प्रतिष्ठित होने के कुछ सप्ताह बाद सौम्यदर्शन, कोमल-स्वभाव, धर्मनिष्ठ तथा अल्पवयस्क श्रीरामकृष्णदेव की ओर रानी रासमणि के दामाद श्री मथुरबाबू की दृष्टि आकृष्ट हुई। साधारणतया यह देखने मे आता है कि जीवन मे जिन लोगों के साथ दीर्घकालव्यापी घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित होता है, उनका प्रथम दर्शन होते ही मानव-हृदय मे एक प्रकार के प्रेम का आकर्षण सहसा उत्पन्न हो जाता है। शास्त्रों का कहना है कि हम लोगों के पूर्वजन्मकृत सम्बन्ध के संस्कार से ही उसका उदय होता है। श्रीरामकृष्णदेव को देखकर मथुरबाबू के हृदय मे उस समय एक अनिर्दिष्ट आकर्षण का उद्भव हुआ था, इस बात को आगे चलकर उन दोनो के पारस्परिक सुदृढ़ प्रेम-सम्बन्ध को देखकर हम निश्चित रूप से हृदयंगम कर सकते है।

प्रथम दर्शन से ही मथुर बाबू का श्रीरामकृष्णदेव के प्रति आचरण तथा सकल्प।

देवमन्दिर प्रतिष्ठित हो जाने के बाद श्रीरामकृष्णदेव ने अपना कर्तव्य-निर्धारण न कर पाने के कारण अग्रज के अनुरोध से एक महीने तक दक्षिणेश्वर मे निवास किया था। उस समय मथुरबाबू ने अपने मन मे देवी के श्रृंगार के निमित्त उनको नियुक्त करने का संकल्प कर राम-कुमार भट्टाचार्य से उस सम्बन्ध मे चर्चा की थी। रामकुमारजी ने अपने भाई की मानसिक स्थिति उनसे पूर्ण रूप से निवेदन कर उस बारे मे उन्हें निरुत्साहित किया था, किन्तु मथुरबाबू सहसा निरस्त होनेवाले नहीं थे। अतः इस प्रकार की वार्ता सुनकर भी वे अपने संकल्प को कार्यरूप मे परिणत करने का अवसर ढूँढ़ने लगे।

श्रीरामकृष्णदेव के जीवन के साथ घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित एक और व्यक्ति उस समय दक्षिणेश्वर में आए थे। श्रीरामकृष्णदेव की बुआ की

लड़की * श्रीमती हेमांगिनी देवी के पुत्र श्री हृदयराम मुखोपाध्याय पूर्वोक्त घटना से कुछ महीने पूर्व काम-काज की तलाश के लिए बर्दवान शहर में आए हुए थे। उस समय हृदयराम की आयु सोलह वर्ष की थी। वहाँ अपने गाँव के परिचित व्यक्तियों के समीप रहकर उसे अपने संकल्पसिद्धि की कोई सुविधा प्राप्त नहीं हो रही थी। उस समय लोगों के द्वारा उसे यह समाचार मिला कि उसके मातुलवर्ग रानी रासमणि के नवीन मन्दिर मे अत्यन्त सम्मान के साथ रह रहे है, वहॉ किसी प्रकार पहुँच जाने पर शायद उद्देश्य सिद्ध हो सकता है। अतः हृदयराम तुरन्त ही दक्षिणेश्वर-देवालय मे उपस्थित हुआ एवं बाल्यकाल से सुपरिचित तथा प्रायः अपने समवयस्क मामा श्रीरामकृष्णदेव के साथ आनन्द-पूर्वक रहने लगा।

श्रीरामकृष्णदेव के भानजे हृदयराम।

हृदयराम का कद लम्बा और देखने मे वह सुडौल तथा सुन्दर था। उसका शरीर जिस प्रकार सुदृढ़ तथा बलिष्ठ था, उसी प्रकार उसका

---

* पाठको की सुविधा के लिये यहाँ पर हम श्रीरामकृष्णदेव की वंशावली प्रदान कर रहे है—
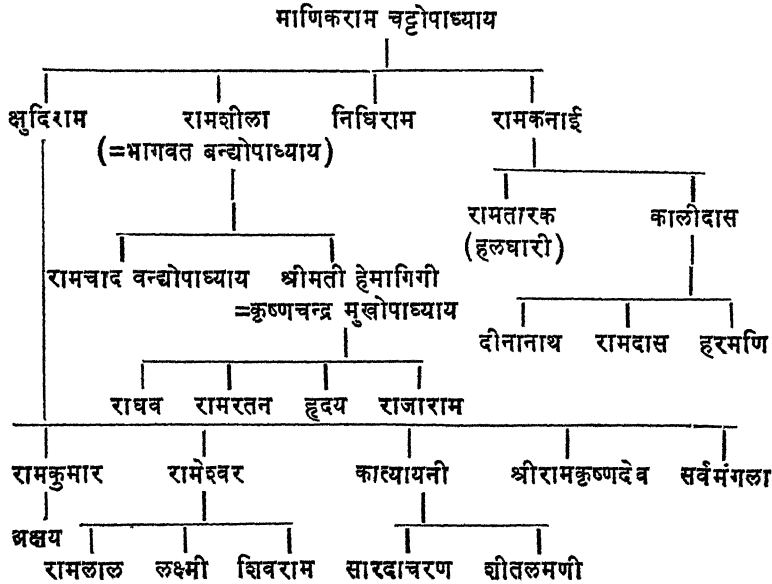
मन भी उद्यमशील तथा निर्भीक था। कठोर परिश्रम तथा परिस्थिति के अनुसार व्यवस्था करने एवं प्रतिकूल अवस्था में धैर्य धारण आदि अद्भुत उपायों के द्वारा उसका अतिक्रमण करने मे उसका हृदय विशेष दक्ष था। अपने छोटे मामाजी के प्रति उसका वास्तविक स्नेह था तथा उनको सुखी करने के लिए वह शारीरिक कष्टों को सहन करने मे भी कभी पीछे नहीं हटता था।

परन्तु आलस्यरहित होते हुए भी हृदय के अन्तःकरण मे भावुकता का नामनिशान न था। इसलिए संसारी मानवों की तरह उसका चित्त अपने स्वार्थ से कभी भी सम्पूर्णतया विमुक्त नहीं हो पाता था। श्रीरामकृष्णदेव के साथ हृदयराम के सम्बन्ध के बारे में हम आगे चलकर ज्यों-ज्यों आलोचना करेंगे, त्यों-त्यों यह बात स्पष्ट हो जावेगी कि भविष्य मे उसके जीवन मे जो भावुकता तथा निःस्वार्थ चेष्टा का परिचय मिलता है, वह भावमय श्रीरामकृष्णदेव के निरन्तर संग के प्रभाव से कभी कभी उनकी चेष्टाओ के अनुकरण करने के फलस्वरूप उत्पन्न हुआ था। श्रीरामकृष्णदेव के सदृश आहार-विहारादि समस्त शारीरिक चेष्टाओं में उदासीन, सर्वदा मननशील तथा स्वार्थगन्धरहित भावुक-जीवन के निर्माण काल में हृदयराम के सदृश एक श्रद्धासम्पन्न, साहसी तथा उद्यमी पुरुष की नितान्त आवश्यकता थी। क्या इसलिए श्रीजगदम्बा ने श्रीरामकृष्णदेव के साधन के समय हृदयराम-जैसे पुरुष को उनके साथ घनिष्टरूप से सम्बद्ध किया था? श्रीरामकृष्णदेव ने बारम्बार हमसे यह कहा है कि साधन के समय यदि हृदयराम न होता तो उनके शरीर की रक्षा न हो पाती। अतः श्रीरामकृष्णदेव के जीवन के साथ हृदयराम का नाम नित्य संयुक्त है एवं तदर्थ ही श्रद्धा-भक्ति का अधिकारी हो वह सदा के लिए हमारा प्रणम्य बना हुआ है।

हृदयराम के दक्षिणेश्वर पहुँचने के कुछ महीने पूर्व श्रीरामकृष्णदेव बीसवें वर्ष मे प्रविष्ट हुए थे। उसको साथी रूप में पाकर उस समय से उनका दक्षिणेश्वर-निवास सुविधाजनक हो गया था, इस बात का अनुमान हम सहज ही कर सकते है। चलना-फिरना, सोना-बैठना आदि सारे कार्य वे उसके साथ ही किया करते थे। सदा बालक-स्वभाव श्रीरामकृष्णदेव के आचरणों

हृदयराम के आगमन के समय श्रीरामकृष्णदेव की अवस्था।

का, जो कि साधारण दृष्टि में निरर्थक जैसे प्रतीत होते थे, प्रतिवाद न कर सर्वदा हार्दिक सहानुभूति के साथ समर्थन करने के कारण, हृदयराम तभी से उनका विशेष प्रियपात्र हो गया था।

हृदयराम का श्रीरामकृष्णदेव के प्रति प्रेम।

हृदयराम ने स्वयं हमसे कहा है—"उस समय से मै अपने अन्दर श्रीरामकृष्णदेव के प्रति एक अनिर्वचनीय आकर्षण का अनुभव करता था तथा छाया की तरह सदा उनके साथ रहता था, उनको छोड़कर क्षण भर के लिए भी कहीं रहने से मुझे कष्ट होता था। शयन, भोजन तथा उपवेशन आदि सब कुछ हमारा एक साथ हुआ करता था। केवल मध्याह्न भोजन के समय कुछ देर के लिए हमको अलग होना पड़ता था; क्योंकि श्रीरामकृष्णदेव सीधा (सूखा सामान) लेकर पंचवटी मे स्वयं अपने हाथ से रसोई बनाकर भोजन किया करते थे और मै मन्दिर मे प्रसाद पाता था। उनके लिए रसोई की मै सारी व्यवस्था कर जाता था और कभी-कभी वही प्रसाद भी ले लिया करता था। किन्तु भोजन-सम्बन्धी उनकी निष्ठा उस समय इतनी प्रबल थी कि स्वयं रसोई बनाकर भोजन करने पर भी उन्हे शान्ति नहीं मिलती थी। दोपहर के समय इस प्रकार स्वयं रसोई बनाने पर भी रात्रि मे वे हम लोगों की तरह श्रीजगदम्बा की प्रसादी पूरी पाते थे। कितने ही दिन हमने देखा है कि उस प्रकार रात्रि मे पूरी-प्रसाद पाते समय उनकी आँखे सजल हो उठी है और खेद के साथ वे श्रीजगन्माता से कह रहे है, 'माँ तू मुझे कैवर्त का अन्नभोजन करा रही है।"

कभी-कभी श्रीरामकृष्णदेव ने स्वयं हमसे उस समय की चर्चा करते हुए कहा है,—"कैवर्त का अन्नग्रहण करना पडेगा यह सोचकर उस समय मुझे अत्यन्त कष्ट होता था। ऐसे अनेक गरीब भिक्षुक थे, जो उस समय इसी कारण से रानी रासमणि के मन्दिर मे भोजन करने नहीं आते थे। प्रसाद लेने वालों के अभाव में कितने ही दिन प्रसादी अन्न गाय को देना पड़ा है तथा अवशिष्ट अन्न गंगाजी मे प्रवाहित किया गया है।" किन्तु स्वयं रसोई बनाकर श्रीरामकृष्णदेव को अधिक दिन तक भोजन नहीं करना पड़ा था, यह बात भी हृदयराम तथा उनके श्रीमुख से ही हमने सुनी है। हमारा ख्याल है कि जब तक वे काली-

मन्दिर के पुजारी-पद पर अधिष्ठित नहीं हुए थे, तभी तक उन्होंने ऐसा किया था। देवालय प्रतिष्ठित होने के दो-तीन महीने बाद ही वे उस पद पर अधिष्ठित हुए थे।

श्रीरामकृष्णदेव के आचरण के सम्बन्ध में हृदयराम की समझ में न आने वाली बातें।

श्रीरामकृष्णदेव का हृदयराम पर जो विशेष स्नेह था, इस बात को वह स्वयं अनुभव करता था। उनके सम्बन्ध में केवल एक ही बात किसी भी तरह उसकी समझ मे नहीं आती थी। वह यह थी कि जिस समय वह अपने बड़े मामा रामकुमारजी को किसी विषय मे सहायता करने के लिए जाता था, दोपहर को भोजन करने के पश्चात् कुछ समय के लिए जब थोडा-सा विश्राम करता था, अथवा सायंकाल जिस समय मन्दिर में आरती का दर्शन करता था, उस समय कुछ देर के लिए श्रीरामकृष्णदेव न जाने कहाँ अन्तर्हित हो जाते थे। बहुत ढूँढ़ने पर भी उसे उनका पता नहीं लगता था। तदनन्तर दो-एक घण्टे के बाद जब वे वापस आते थे, तब पूछने पर वे कहते थे, "मै तो यहीं था।" किसी-किसी दिन उनकी खोज मे निकलकर उन्हें पंचवटी की ओर से वापस आते हुए देख वह यह सोचा करता था कि शायद शौचादि के लिए वे उधर गए होंगे, अतः उस सम्बन्ध मे उनसे वह और कुछ नहीं पूछता था।

श्रीरामकृष्णदेव द्वारा निर्मित शिवमूर्ति का दर्शन कर मथुरबाबू की प्रशंसा।

हृदयराम कहता था कि--'उस समय एक दिन मूर्ति बनाकर शिवपूजन करने की श्रीरामकृष्णदेव की इच्छा हुई थी।' हम इससे पूर्व यह कह आए है कि बाल्यावस्था में कामारपुकुर में कभी कभी वे इस प्रकार पूजन किया करते थे। इस प्रकार पूजन करने की इच्छा होते ही वे गंगाजी से मिट्टी लाकर उससे वृष, डमरू तथा त्रिशूलसहित शिवजी की मूर्ति अपने हाथों से बनाकर पूजन करने लगे। मथुरबाबू उस समय टहलते हुए वहाँ आ गए और तन्मयता के साथ वे किसका पूजन कर रहे है, यह जानने के लिए उत्सुक हो उनके निकट आकर उन्होंने उस मूर्ति को देखा। बड़ी न होने पर भी वह मूर्ति बहुत सुन्दर थी। उसको

देखकर मथुरबाबू विस्मित हुए तथा उसे देखते ही वे यह समझ गए कि बाजार में उस प्रकार देवभावांकित मूर्ति का मिलना सम्भव नहीं है। कुतूहलवश उन्होंने हृदयराम से पूछा, "यह मूर्ति कहाँ मिली, किसने बनाई है?" उत्तर मे हृदयराम से यह सुनकर कि श्रीरामकृष्णदेव देव-देवियों की मूर्ति बनाना तथा भग्न मूर्तियों को जोड़ना जानते है, वे अत्यन्त विस्मित हुए तथा पूजन के पश्चात् उक्त मूर्ति को उन्हे दे देने के लिए उनसे अनुरोध किया। हृदयराम भी इस बात से सहमत हो पूजन के उपरान्त श्रीरामकृष्णदेव से कहकर वह मूर्ति उन्हें दे आया। उस मूर्ति को पाकर मथुरबाबू उसे विशेष ध्यान से देखने लगे और स्वयं मुग्ध हो उन्होंने रानी को उसे दिखाने के लिए भेजा। रानी भी उसे देखकर बनानेवाले की प्रशंसा करने लगी तथा यह जानकर कि श्रीरामकृष्ण-देव ने उस मूर्ति का निर्माण किया है, मथुरबाबू की तरह विस्मित हुईं।* श्रीरामकृष्णदेव को देवमन्दिर के कार्य मे नियुक्त करने की इच्छा पहले से ही मथुरबाबू की थी। पर उस समय उनके इस विशिष्ट गुण का परिचय पाकर वह इच्छा और अधिक प्रबल हुई। मथुरबाबू का इस प्रकार का अभिप्राय श्रीरामकृष्णदेव को इससे पूर्व ही अपने अग्रज से विदित हो चुका था; किन्तु ईश्वर के सिवाय और किसी की नौकरी न करने की भावना बाल्यावस्था से ही उनके मन में दृढ़ रूप से विद्यमान रहने के कारण उन्होंने उस ओर कोई ध्यान नहीं दिया था।

नौकरी के बारे मे श्रीरामकृष्णदेव को प्रायः इस प्रकार की भावना व्यक्त करते हुए हमने भी सुना है। अत्यन्त अभावग्रस्त हुए बिना स्वेच्छापूर्वक नौकरी करने पर किसी व्यक्ति को वे अच्छी दृष्टि से नहीं देखते थे। उनके बालक-भक्तों मे से एक ने † किसी समय नौकरी करना स्वीकार किया है, यह जानकर विशेष व्यथित हो उन्हें यह कहते हुए हमने सुना है—"उसका शरीरान्त हो गया है, इस समाचार से मुझे

* किसी किसी का कहना हे कि यह घटना श्रीरामकृष्णदेव के पुजारीपद ग्रहण करने के बाद की है और मथुर बाबू ने रानी रासमणि को उसे दिखाकर यह कहा था—'जिस प्रकार उपयुक्त पूजक हमें प्राप्त हुआ है, उससे देवी भी शीघ्र ही जागृत हो उठेगी।'

† स्वामी निरजनानन्द।

जितना कष्ट न होता, वह नौकरी कर रहा है यह सुनकर मुझको उससे भी अधिक कष्ट हुआ है।" इसके कुछ दिन बाद उस व्यक्ति से पुनः भेंट होने पर जब उन्हें यह विदित हुआ कि अपनी असहाय वृद्धा माता के भरण-पोषण के निमित्त उसने नौकरी करना स्वीकार किया है, तब अत्यन्त स्नेहपूर्वक उसके शरीर तथा मस्तक पर हाथ फेरते हुए उन्होंने कहा, "फिर इसमे कोई दोष नहीं, इस तरह नौकरी करने से तुझे किसी प्रकार के दोष का स्पर्श नहीं होगा; किन्तु माँ के निमित्त न होकर, यदि तू अपनी इच्छा से नौकरी करने लगता तो मै तुझे फिर कभी छू नहीं सकता। तभी तो मै कहता हूँ कि मेरे निरंजन मे तनिक भी अंजन (कालिमा) नही है, उसमे इस प्रकार की हीन बुद्धि का उदय ही क्यों होने लगा?"

नौकरी के सम्बन्ध में श्रीरामकृष्णदेव का अभिमत।

नित्यनिरंजन को लक्ष्य कर श्रीरामकृष्णदेव की पूर्वोक्त बात को सुनकर अन्यान्य सभी आए हुए लोग विस्मित हुए। यहाँ तक कि उनमे से एक व्यक्ति यह कह उठा, "महाशय, आप तो नौकरी की निन्दा कर रहे है, किन्तु नौकरी न करने पर संसार-यात्रा का निर्वाह कैसे हो सकता है?" उत्तर मे श्रीरामकृष्णदेव बोले, "जो नौकरी करना चाहें करे, मै तो सबको मना नहीं कर रहा हूँ, (निरंजन तथा अन्यान्य बालक-भक्तों को दिखाकर) मै इन लोगों से यह बात कह रहा हूँ, इनकी बात अलग है।" श्रीरामकृष्णदेव अपने बालक-भक्तों के जीवन को दूसरे ही प्रकार से निर्माण कर रहे थे तथा यह कहना ही पर्याप्त है कि पूर्ण आध्यात्मिकता के साथ नौकरी का कभी सामञ्जस्य नहीं होता है—इस प्रकार की धारणा के वशीभूत होकर ही उन्होंने ऐसा कहा था। अतः मथुरबाबू के अभिप्राय को अपने अग्रज द्वारा जानकर श्रीरामकृष्णदेव तब से उनके सम्मुख न जाकर जहाँ तक सम्भव था उनकी दृष्टि से दूर ही रहने का प्रयास करते थे; क्योंकि सर्वात्मना सत्य तथा धर्म के पालन के निमित्त जिस प्रकार वे कभी किसी की अपेक्षा नहीं करते थे, ठीक उसी प्रकार बिना किसी विशेष कारण के किसी की उपेक्षा कर उसे व्यर्थ में कष्ट देने

नौकरी करने को कहेंगे, इस भय से श्रीरामकृष्णदेव का मथुरबाबू के समीप जाने में संकोच।

के लिए भी वे बड़े संकुचित होते थे। साथ ही मन मे किसी प्रकार की आशा न रखकर गुणी व्यक्ति के गुणों का आदर करना तथा सम्मानित व्यक्ति को सरल तथा स्वाभाविक रूप से सम्मान प्रदान करना उनका स्वभाव था। अतः यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि देवालय के पुजारीपद को स्वीकार करना चाहिए अथवा नहीं, स्वयं इस सम्बन्ध मे कुछ निर्णय करने से पहले उन्हे यही संकोच लगता था कि यदि मथुरबाबू उनसे उस पद को स्वीकार करने के लिए अनुरोध करेंगे और उसे उन्होंने अस्वीकार कर दिया तो मथुर बाबू को कष्ट होगा। इस प्रकार का संशय ही श्रीरामकृष्णदेव के उक्त आचरण का मूल कारण था। फिर उस समय वे केवल एक युवक ही थे और मथुरबाबू रानी रासमणि के प्रधान कार्यकर्ता होने के कारण परम सम्माननीय व्यक्ति थे; ऐसी स्थिति मे मथुरबाबू के अनुरोध का निषेध करना उनके लिए एक प्रकार से लड़कपन ही होगा। किन्तु ज्यों-ज्यों दिन बीतते गए दक्षिणेश्वर के कालीमन्दिर मे रहना उनके लिए उतना ही सुखद हो रहा था, अपना यह मनोगत भाव भी अन्तर्दृष्टिसम्पन्न श्रीरामकृष्णदेव के समीप छिपा हुआ नही था। किसी प्रकार का उत्तरदायित्वपूर्ण कार्यभार न लेकर वहाँ रहने में उस समय उन्हें पहले की तरह कोई आपत्ति नहीं थी तथा जन्मभूमि कामारपुकुर वापस जाने के लिए भी उस समय उनका मन पहले जैसा अब चंचल नहीं था, यह बात इसके बाद की घटनाओं से हम भलीभाँति अनुभव कर सकेंगे।

श्रीरामकृष्णदेव का पूजक-पद ग्रहण।

श्रीरामकृष्णदेव को जिस बात का संशय था, एक दिन वही सामने आकर उपस्थित हुई। कालीमन्दिर मे दर्शनादि के निमित्त मथुरबाबू आए थे। वहाँ से कुछ ही दूरी पर श्रीरामकृष्णदेव को देखकर मथुरबाबू ने उनको बुला भेजा। श्रीरामकृष्णदेव उस समय हृदयराम के साथ टहलते हुए दूर से मथुरबाबू को देखकर वहाँ से हटकर अन्यत्र जा ही रहे थे कि ठीक उसी समय उनके नौकर ने आकर कहा, "बाबू आपको बुला रहे है।" श्रीरामकृष्णदेव उनके समीप जाने मे हिचक रहे है यह देखकर हृदयराम ने जब कारण पूछा तो उन्होंने कहा,—" उनके समीप जाते ही वे मुझे यहाँ पर रहने तथा नौकरी

करने के लिए कहेगे।" हृदयराम बोला, "इसमें हानि ही क्या है? ऐसे स्थान पर, बड़े व्यक्ति के आश्रय में रहकर कार्य करना तो अच्छा ही है, फिर क्यों हिचक रहे हो?"

श्रीरामकृष्णदेव ने कहा, "नौकरी में चिरकाल तक आबद्ध रहने की मेरी इच्छा नहीं है। विशेषकर यहाँ पुजारीपद स्वीकार करने से देवी के समस्त आभूषणों के लिए मुझे उत्तरदायी होना पड़ेगा, यह बहुत ही झंझट की बात है; मुझसे यह सम्भव न होगा; किन्तु यदि तुम इस कार्य का भार लेकर यहाँ रहो तो पूजा करने मे मुझे कोई आपत्ति नही है।"

हृदयराम वहाँ पर नौकरी की तलाश मे तो आया ही हुआ था। अतः उनकी इस बात मे वह सहर्ष राजी हो गया। श्रीरामकृष्णदेव तब मथुरबाबू के समीप गए और उन्होंने जब देवालय का कार्य करने का अनुरोध किया तो श्रीरामकृष्णदेव ने अपना पूर्वोक्त अभिप्राय व्यक्त कर दिया। मथुरबाबू ने उस बात को स्वीकार कर उसी दिन से उनको काली-मन्दिर मे श्रृंगार करने के कार्य पर तथा हृदयराम को रामकुमारजी की तथा उनकी सहायता के लिए नियुक्त कर दिया। मथुरबाबू के अनुरोध से भाई को इस प्रकार कार्य मे नियुक्त होते देखकर रामकुमारजी निश्चिन्त हुए।

श्रीगोविन्दजी की मूर्ति का खण्डित होना।

देवालय प्रतिष्ठित होने के तीन महीने के अन्दर ही पूर्वोक्त घटनाएँ हुई। सन् १८५५ की बात है। पहले दिन जन्माष्टमी उत्सव भलीभाँति सम्पन्न हो चुका था। उस दिन 'नन्दोत्सव' था। मध्याह्न के समय श्रीराधागोविन्दजी के विशेष पूजन तथा भोगरागादि के पश्चात् पुजारी क्षेत्रनाथ चट्टोपाध्याय श्रीराधारानी को एक कमरे में शयन कराके श्रीगोविन्दजी को शयन देने के लिए ले ही जा रहे थे कि सहसा वे फिसल पडे और श्रीमूर्ति का एक चरण टूट गया। विभिन्न पण्डितों का अभिमत लेने के बाद श्रीरामकृष्णदेव के परामर्शानुसार श्रीमूर्ति के उस अंश को जुड़वाकर पूजनादि होने लगा।* भगवत्प्रेम से विह्वल हो श्रीरामकृष्णदेव को इससे पूर्व बीच-बीच में भावाविष्ट होते देखकर तथा किसी किसी विषय में उन्हें देव-आदेश प्राप्त हुआ है, इस बात को सुन-

* इस घटना के विस्तृत विवरण के लिए "गुरुभाव" पूर्वार्ध का षष्ठ अध्याय देखिए।
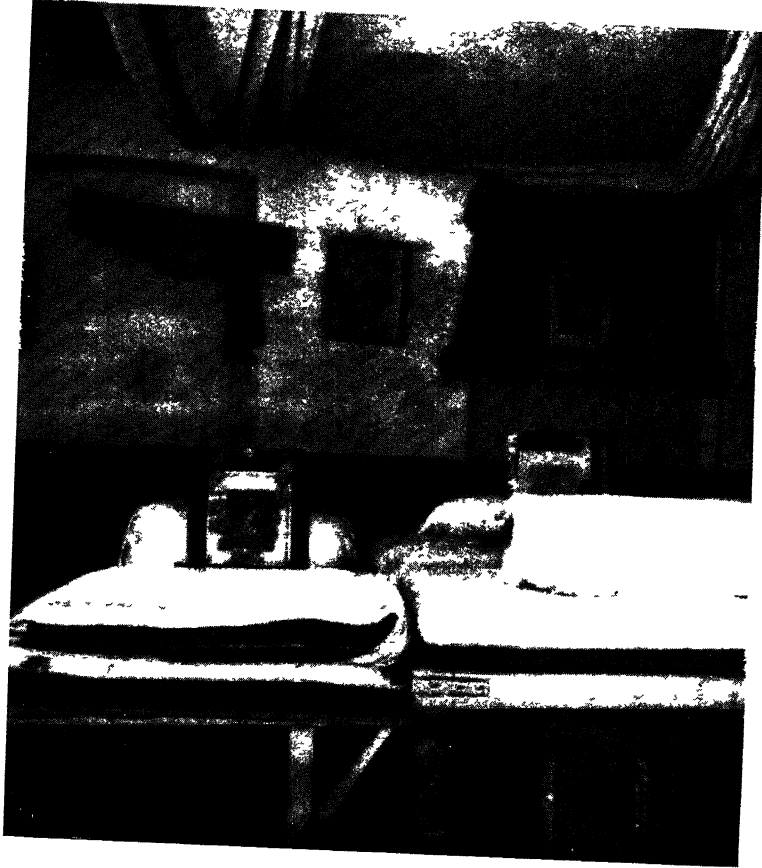
श्रीरामकृष्णदेव का कमरा, दक्षिणेश्वर

कर मथुरबाबू भग्नमूर्ति के परिवर्तन के बारे मे उनसे परामर्श लेने को उत्साहित हुए थे। हृदयराम का कहना था कि भग्नमूर्ति के सम्बन्ध मे मथुरबाबू के प्रश्नों के उत्तर देने से पूर्व श्रीरामकृष्णदेव भावाविष्ट हुए थे तथा उक्त भावावेश के हटने पर उन्होंने कहा था कि मूर्ति परिवर्तन करने की कोई आवश्यकता नहीं है। भग्नमूर्ति को जोड़ने में श्रीरामकृष्णदेव की दक्षता की बात मथुरबाबू को अविदित नहीं थी। इसलिए उनके अनुरोध से उन्हें ही उस मूर्ति को जोड़ना पड़ा था। उन्होंने उसे इस सुन्दरता से जोड़ दिया था कि विशेष ध्यानपूर्वक देखने पर भी वह मूर्ति खण्डित हुई प्रतीत नहीं होती थी और आज अभी तक इस चिह्न का पता लगाना सम्भव नहीं है।

श्रीगोविन्दजी की मूर्ति के खण्डित हो जाने से अंगहीन मूर्ति का पूजन करना उचित नहीं है, यह कहकर लोग नाना प्रकार की आलोचना किया करते थे। किन्तु रानी रासमणि तथा मथुरबाबू श्रीरामकृष्णदेव के युक्तियुक्त परामर्श मे विश्वास कर उन बातों की ओर कोई ध्यान नहीं देते थे। अस्तु, पूजक क्षेत्रनाथ को असावधानता के अपराध मे पूजन कार्य से पृथक् कर दिया गया तथा श्रीराधागोविन्दजी के पूजन का कार्य तब से श्रीरामकृष्णदेव को दिया गया। हृदयराम भी उस समय से पूजन के समय श्रीकालीमाता का श्रृंगार कर रामकुमारजी की सहायता करने लगा।

खण्डित विग्रह के पूजन के सम्बन्ध में जयनारायण बाबू से श्रीरामकृष्णदेव का कथन।

मूर्ति खण्डित होने के प्रसंग मे हृदयराम ने किसी समय हमसे और एक घटना का उल्लेख किया था। कलकत्ता से कुछ मील उत्तर, वराहनगर के 'कुटिघाटा' के समीप 'नड़ाल' के प्रसिद्ध जमींदार रतन राय का घाट विद्यमान है। उस घाट के निकट एक देवमन्दिर मे दशमहाविद्या की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित है। पहले उस मन्दिर मे पूजन आदि की उपयुक्त व्यवस्था रहने पर भी श्रीरामकृष्णदेव के साधनकाल में उसकी दशा खराब हो चुकी थी। मथुरबाबू जिस समय श्रीरामकृष्णदेव के प्रति विशेष श्रद्धा-भक्ति कर रहे थे, उस समय एक दिन उनके साथ वे उस देवालय मे दर्शन करने गए तथा वहाँ की स्थिति को देख मथुरबाबू से कहकर उन्होंने भोग के लिए दो मन चावल तथा दो रुपये मासिक

सहायता की व्यवस्था की थी। तब से बीच-बीच मे दशमहाविद्या दर्शन करने के निमित्त वे वहाँ जाया करते थे। एक दिन दर्शन से लौटते समय उन्होंने वहाँ के प्रसिद्ध जमींदार जयनारायण बन्द्योपाध्याय को अनेक व्यक्तियों के साथ उनके प्रतिष्ठित घाट पर खड़े हुए देखा। पहले से परिचित होने के कारण श्रीरामकृष्णदेव उनसे मिलने गए। जयनारायण बाबू ने उनको नमस्कार किया तथा आदरपूर्वक अपने समीप बुलाकर अपने साथियों से उनका परिचय कराया। तदनन्तर वार्तालाप के प्रसंग मे रानी रासमणि के कालीमन्दिर की चर्चा करते हुए उन्होने श्रीरामकृष्णदेव से पूछा, "महाशय, वहाँ के श्रीगोविन्दजी क्या खण्डित है?" यह सुनकर श्रीरामकृष्णदेव बोले, "तुम्हारी यह कैसी बुद्धि है? जो अखण्ड-मण्डलाकार है, क्या वे कभी खण्डित हो सकते है?" जयनारायण बाबू के प्रश्न से निरर्थक नाना प्रकार की चर्चाओं की सम्भावना को देखकर उन्होंने उक्त प्रकार से उस प्रसंग को टाल दिया तथा अन्य प्रसंग उठाकर समस्त वस्तुओं के निःसार भाग को त्याग कर सारांश ग्रहण करने के लिए उनसे कहा। सुबुद्धिसम्पन्न जयनारायण बाबू ने भी श्रीरामकृष्णदेव के हार्दिक भाव को समझकर तब से इस प्रकार के प्रश्न नहीं किए।

श्रीरामकृष्णदेव की संगीत-शक्ति।

हृदयराम से हमने सुना है कि श्रीरामकृष्णदेव का पूजन एक दर्शनीय विषय था; जो उसे देखता था वही मुग्ध हो जाता था। और श्रीरामकृष्णदेव का मधुर भावपूर्ण गायन! — जो उस गायन को एक बार सुनता था, वह कभी उसे भूल नहीं सकता था। उसमे उच्चांग संगीत का राग-रंग कुछ भी नही था, केवल अपने अन्दर गीत सम्बन्धी भाव को सम्पूर्णतया आरोपित कर मर्मस्पर्शी मधुर स्वर से उसकी यथार्थ अभिव्यक्ति तथा ताल-लय की विशुद्धता विद्यमान रहती थी। जिन्होंने उनके गीत सुने है, उनको यह स्पष्ट अनुभव हुआ है कि वास्तव में भाव ही संगीत का प्राण है। साथ ही ताल-लय विशुद्ध न होने पर उस भाव के विकास मे बाधा पहुँचती है, यह बात श्रीरामकृष्णदेव के मुखनिःसृत संगीत सुनने के पश्चात् और दूसरों के संगीत के साथ उसकी तुलना करने पर स्पष्ट हो जाती थी। रानी रासमणि जब-जब दक्षिणेश्वर आती थीं, तभी श्रीरामकृष्णदेव को

बुलवाकर उनसे गाना सुना करती थीं। निम्नलिखित गीत उनका विशेष प्रिय था —

"कोन हिसाबे हरहृदे दाँडायेछो माँ पद दिए।
साध करे जिव् बाड़ायेछो, जेनो कतो न्याका मेये॥
जेनेछि जेनेछि तारा
तारा कि तोर एमनि धारा
तोर माँ कि तोर बापेर बुके दाड़ाँये छिलो एमनि करे॥"

इस गीत का तात्पर्य यह है — हे माँ, किस हिसाब से तुम श्रीशिवजी के हृदय पर पैर रखकर खड़ी हो। तुमने इच्छापूर्वक अपनी जीभ निकाल रखी है, मानो कितनी भोली-भाली लड़की हो। हे तारा, मुझे यह विदित हो चुका है कि तुम्हारी रीति ही ऐसी है, तुम यह तो बतलाओ कि तुम्हारी माँ क्या इस प्रकार तुम्हारे पिताजी के वक्षःस्थल पर पैर रखकर खड़ी हुई थी।

श्रीरामकृष्णदेव के गीत के इतने मधुर होने का और भी एक कारण था। गाते समय गीतसम्बन्धी भाव मे वे स्वयं ऐसे तन्मय हो जाते थे कि किसी की प्रसन्नता के लिए वे गा रहे है, इस बात को वे एकदम भूल जाते थे। गीत सम्बन्धी भाव मे मुग्ध हो इस प्रकार सम्पूर्णतया आत्मविस्मृत होते हुए हमने जीवन मे और किसी को नही देखा है। भावुक गायक भी श्रोताओं से कुछ न कुछ प्रशंसा की आशा रखते है। हमने केवल श्रीरामकृष्णदेव को ही देखा है कि उनके गायन सुनकर प्रशंसा करने पर वास्तव मे वे यह सोचते थे कि यह व्यक्ति गीतसम्बन्धी भावों की प्रशंसा कर रहा है, तथा उस प्रशंसा के किंचिन्मात्र भी वे अधिकारी नही है।

पूजन के समय श्रीरामकृष्णदेव को प्रथम दर्शन प्राप्त होना।

हृदयराम का कहना था कि इस प्रकार गीत गाते हुए दोनों नेत्रों के आँसुओं से उनका वक्षःस्थल प्लावित हो जाता था और जब वे पूजन किया करते थे उस समय इतने तन्मय हो जाते थे कि पूजन के स्थल पर किसी के आने अथवा समीप मे खड़े होकर वार्तालाप करने का कोई शब्द उनके कानों तक नहीं पहुँचता था। श्रीरामकृष्णदेव कहते थे कि अंगन्यास, करन्यास आदि पूजन के अंगों को सम्पन्न करने के समय वास्तव मे वे उन

मन्त्रवर्णों को अपने शरीर मे उज्ज्वलरूप से सन्निविष्ट देखा करते थे। उनको यह स्पष्टरूप से दिखाई देता था कि सर्पाकृति कुण्डलिनी शक्ति सुषुम्ना मार्ग से सहस्रार में पहुँच रही है और शरीर के जिस जिस अंश को वह त्याग रही है, वे अंश एक साथ निष्पन्द, शून्य तथा मृतवत् होते जा रहे है। साथ ही पूजा-पद्धति के अनुसार जिस समय वे "रं इति जलधारया वह्निप्राकारं विचिन्त्य"—अर्थात् 'रम्' इस मन्त्रवर्ण का उच्चारण कर पुजारी अपने चारों ओर जल छिड़ककर यह चिन्तन करे कि मानो अग्नि की दीवाल द्वारा पूजन का स्थान घिरा हुआ है एवं तदर्थ किसी प्रकार का विघ्न वहाँ प्रवेश नहीं कर पा रहा है--इत्यादि शब्दों का जब उच्चारण करते थे, उस समय उन्हे यह स्पष्ट दिखाई पड़ता था कि उनके चारों ओर शतजिह्वा विस्तार कर अग्नि की अगम्य दीवाल विद्यमान है तथा सर्वप्रकार के विघ्नों से पूजन-स्थल की वह पूर्णतया रक्षा कर रही है। हृदयराम का कहना था कि पूजन के समय श्रीरामकृष्णदेव के तेजःपुंज देह तथा तन्मय भाव को देखकर अन्यान्य ब्राह्मण लोग आपस मे यह कहा करते थे कि मानो साक्षात् ब्रह्मण्यदेव मानवशरीर धारण कर पूजन करने बैठे है।

श्रीरामकृष्णदेव को कार्य-दक्ष बनाने के लिए रामकुमारजी की शिक्षा।

देवीभक्त रामकुमारजी दक्षिणेश्वर आने के उपरान्त यद्यपि आत्मीयवर्ग के भरण-पोषण के बारे में बहुत कुछ निश्चिन्त हो चुके थे, फिर भी अन्य एक विषय के बारे मे वे अत्यन्त चिन्तित रहते थे। कारण यह था कि वहाँ आने के पश्चात् उन्हें अपने कनिष्ठ भाई की निर्जनप्रियता तथा संसार के प्रति एक प्रकार की उदासीनता दृष्टिगोचर हो रही थी। जिससे घर की उन्नति हो सकती है, ऐसे किसी भी कार्य में उनका कोई ध्यान देखने मे नहीं आता था। वे देखते थे कि सायं-प्रातः बालक जब-तब मन्दिर से दूर गंगातट पर अकेला घूमा करता है, पंचवटी के नीचे चुपचाप बैठा हुआ है अथवा पंचवटी के चारों ओर उस समय जो जंगल था, वहाँ प्रविष्ट हो बहुत देर बाद वहाँ से निकल रहा है। रामकुमारजी सर्वप्रथम यह सोचते थे कि शायद कामारपुकुर में माताजी के पास लौटने के लिए बालक व्यग्र हो रहा है तथा उसी बात का निरन्तर चिन्तन कर रहा है। किन्तु

इस प्रकार कुछ दिन व्यतीत होने के बाद भी जब उसने स्वयं अपने मुँह से घर लौटने की कोई चर्चा नहीं की तथा कभी-कभी पूछने पर भी जब उनको उस बात की सत्यता विदित नहीं हुई, तब उसे घर वापस भेजने का कोई प्रश्न ही न रहा। उन्होंने सोचा कि अपनी आयु भी अधिक हो चुकी है, शरीर भी दिनों-दिन कमजोर होता जा रहा है, अतः कब जीवन समाप्त हो जावेगा, यह कौन कह सकता है?—ऐसी स्थिति मे व्यर्थ समय नष्ट न कर बालक को इस योग्य बना देना नितान्त आवश्यक है जिससे वह अपने पैर पर खड़ा होकर दो पैसा अर्जन कर घर का निर्वाह कर सके। इसलिए मथुरबाबू ने जिस समय बालक को देवालय में नियुक्त करने के बारे मे रामकुमारजी से राय माँगी थी, उस समय वे अत्यन्त प्रसन्न हुए थे और उसके कुछ दिन बाद मथुरबाबू के अनुरोध से बालक ने जब सर्वप्रथम श्रृंगार करने एवं तत्पश्चात् पूजा के कार्यभार को स्वीकार किया तथा दक्षता के साथ उन कार्यों को वह करने लगा, उस समय वे कुछ निश्चिन्त हो उसे श्रीदुर्गासप्तशती का पाठ एवं श्रीकालीमाता तथा अन्यान्य देव-देवियों के पूजन आदि की शिक्षा देने लगे। कर्मकाण्डी ब्राह्मणों के लिए जिन विषयों की शिक्षा आवश्यक है, श्रीरामकृष्णदेव उन विषयों मे शीघ्र ही पारंगत हो गए। शक्ति-मन्त्र की दीक्षा लिए बिना देवी का पूजन करना उचित नहीं है, यह सुनकर उन्होंने शक्ति-मन्त्र मे दीक्षित होने का भी संकल्प किया।

केनाराम भट्टाचार्य से श्रीरामकृष्णदेव का शक्ति-मन्त्र का दीक्षाग्रहण।

श्री केनाराम भट्टाचार्य नामक एक प्रवीण शक्ति-साधक उस समय कलकत्ते के बैठकखाना बाजार में रहते थे। रानी रासमणि के दक्षिणेश्वर के देवालय मे वे प्रायः आते-जाते रहते थे और सम्भवतः मथुरबाबू आदि सभी प्रमुख व्यक्तियों से उनका परिचय भी था। हृदयराम से हमने सुना है कि उनसे जिन लोगों की जान-पहचान थी, वे सभी उनको अनुरागी साधक मानकर उनका विशेष सम्मान किया करते थे। श्रीरामकृष्णदेव के अग्रज रामकुमारजी के साथ पहले से ही वे परिचित थे। श्रीरामकृष्णदेव ने उनसे दीक्षा लेने का निश्चय किया। हमने सुना है कि दीक्षा लेते ही श्रीरामकृष्णदेव भावावेश मे समाधिस्थ हो गए थे और उनकी असाधारण भक्ति से मुग्ध

हो श्री केनारामजी ने इष्ट-प्राप्ति के विषय मे उनको हार्दिक आशीर्वाद दिया था।

रामकुमारजी तब से चाहे शारीरिक अस्वस्थता के कारण हो अथवा श्रीरामकृष्णदेव को उस कार्य में अभ्यस्त कराने के लिए ही हो, स्वल्प परिश्रमसाध्य श्रीराधागोविन्दजी की सेवा-पूजा स्वयं करने लगे और श्रीकालीमाता का पूजन-कार्य श्रीरामकृष्णदेव के द्वारा सम्पन्न कराने लगे। मथुरबाबू ने इस बात को सुनकर तथा यह जानकर कि देवी के पूजन-कार्य मे श्रीरामकृष्णदेव दक्ष हो चुके है, विष्णु-मन्दिर मे स्थायीरूप से पूजा करने के लिए रामकुमारजी से अनुरोध किया। अतः तभी से श्रीरामकृष्णदेव कालीमन्दिर में सेवा-पूजा करने लगे। वृद्ध रामकुमारजी का शरीर कमजोर था और कालीमन्दिर के अत्यधिक कार्यभार को सम्हालना उनके लिए सम्भव नहीं था यही सोचकर मथुरबाबू ने इस प्रकार पुजारियों में कार्य वितरण किया था। इस व्यवस्था से रामकुमारजी भी बड़े आनन्दित हुए तथा छोटे भाई को देवी की सेवा-पूजा यथावत् सम्पन्न करने की शिक्षा प्रदान कर निश्चिन्त हो गए। इसके कुछ दिन बाद मथुरबाबू से कहकर उन्होंने हृदयराम को श्रीराधागोविन्दजी की पूजा मे नियुक्त किया एवं स्वयं अवकाश लेकर कुछ दिन के लिए घर लौटने की व्यवस्था करने लगे। किन्तु रामकुमारजी के लिए घर जाना सम्भव न हो सका। घर वापस जाने की तैयारी करते हुए कलकत्ते के उत्तर दिशा मे 'श्यामनगर-मूलाजोड़' नामक स्थान पर कार्यवश उन्हे दो-चार दिन के लिए जाना पड़ा और वहीं एकाएक उनका निधन हो गया। रामकुमार भट्टाचार्य ने रानी रासमणि का देवालय प्रतिष्ठित होने के बाद केवल एक वर्ष जीवित रहकर श्रीजगन्माता की सेवा-पूजा की थी। सम्भवतः बंगला सन् १२६३ (सन् १८५६ ई.) के आरम्भ में उनका देहान्त हुआ था।

रामकुमारजी की मृत्यु।

षष्ठ अध्याय

व्याकुलता और प्रथम दर्शन

अति अल्प आयु मे ही श्रीरामकृष्णदेव के पिताजी का देहान्त हो गया था। इसलिए बाल्यावस्था से ही जननी चन्द्रमणि तथा अग्रज रामकुमारजी की स्नेहपूर्ण देखरेख मे उनका लालन पालन हुआ था। रामकुमारजी श्रीरामकृष्णदेव से इकतीस वर्ष बड़े थे। अतः श्रीरामकृष्णदेव की पितृभक्ति का कुछ अंश सम्भवतः उनको प्राप्त हुआ था। पितृतुल्य अग्रज की अचानक मृत्यु हो जाने के कारण श्रीरामकृष्णदेव अत्यन्त व्यथित हुए। कौन कह सकता है कि इस घटना ने उनके विशुद्ध हृदय मे संसार की अनित्यता की धारणा को दृढ़ बनाकर उनके वैराग्यानल को प्रज्वलित कर दिया हो? यह देखा जाता है कि उस समय से वे श्रीजगन्माता के पूजन में विशेषरूप से चित्त संलग्न कर, यह जानने के निमित्त कि मानव उनके दर्शन से वास्तव मे कृतार्थ होता है या नहीं, अत्यन्त व्याकुल हो उठे थे। पूजन के उपरान्त वे मन्दिर मे श्रीजगन्माता के समीप बैठकर तन्मयता के साथ पूरा दिन व्यतीत कर दिया करते थे एवं रामप्रसाद, कमलाकान्त आदि भक्तों के द्वारा रचित पदों को देवी के सम्मुख गाकर उनको सुनाते हुए प्रेम-विह्वल तथा आत्म-विस्मृत हो जाते थे। व्यर्थ के वार्तालाप मे उस समय वे एक क्षण भी नष्ट नहीं करते थे तथा रात्रि मे मन्दिर का दरवाजा बन्द हो जाने पर लोगों के संग को त्यागकर पंचवटी के निकटवर्ती जंगल मे प्रविष्ट हो जगन्माता के चिन्तन में अपना समय बिताया करते थे।

श्रीरामकृष्णदेव का उस समय का आचरण।

श्रीरामकृष्णदेव का इस प्रकार का कार्यक्रम हृदय के लिए रुचिकर नहीं था। किन्तु वह कर ही क्या सकता था? बाल्यावस्था से ही श्रीरामकृष्णदेव की जब जो इच्छा होती थी, तत्काल ही वे उस कार्य में संलग्न हो जाते थे, यह बात उससे छिपी नहीं थी। इसलिए प्रतिवाद

अथवा बाधा उपस्थित करना निरर्थक था। किन्तु दिनों दिन श्रीरामकृष्णदेव के अन्दर उस भाव का प्राबल्य देखकर कभी-कभी उनसे कुछ कहे बिना वह नहीं रह पाता था। हृदय को जब यह विदित हुआ कि वे रात्रि में न सो कर शय्या परित्याग कर पंचवटी मे चले जाते है, तब उसे अत्यन्त चिन्ता हुई; क्योंकि मन्दिर मे सेवा-पूजा के लिए उन्हे परिश्रम करना पड़ता था, साथ ही पहले की तरह वे भोजन भी नही करते थे, ऐसी स्थिति मे रात्रि मे विश्राम न करने पर उनके स्वास्थ्य के नष्ट होने की सम्भावना थी। अतः हृदय ने इस बारे में पूरा पता लगाकर उसका यथासाध्य प्रतिकार करने का निश्चय किया।

यह देखकर हृदयराम की चिन्ता तथा सकल्प।

उस समय पंचवटी के आसपास के स्थान वर्तमान की तरह समतल नहीं थे, वहाँ की निचली जमीन झाड़-झंखाड तथा खोल-कन्दरा से भरी थी। जंगली वृक्ष-लताओं के बीच वहाँ एकधात्री अर्थात् आमले का वृक्ष उग आया था। क़ब्रिस्तान के साथ ही साथ जंगल होने के कारण दिन में भी प्रायः कोई वहाँ नहीं जाता था और कभी कभी चले जाने पर भी जंगल के अन्दर प्रवेश नहीं करता था। फिर रात का तो कहना ही क्या है? भूत-प्रेत के डर से उस ओर कोई पैर तक नही रखता था। हृदय से हमने सुना है कि उस निचली जमीन में वह आमले का वृक्ष होने के कारण उसके नीचे यदि कोई बैठ जाता था तो जंगल के बाहर की ऊँची जमीन से वह दिखाई नहीं देता था। श्रीरामकृष्णदेव उस समय उसी के नीचे बैठकर ध्यान किया करते थे।

उस समय पंचवटी के आसपास की जगह की अवस्था।

रात्रि मे श्रीरामकृष्णदेव ने जब वहाँ जाना प्रारंभ किया, तब एक दिन छिपकर हृदय उनके पीछे-पीछे जाने लगा तथा उनको जंगल मे प्रविष्ट होते हुए उसने देखा। वे शायद रुष्ट होंगे यह सोचकर वह और आगे न बढ़ा। किन्तु उनको डराने के निमित्त कुछ देर तक वह चारों ओर ढेले फेकने लगा। उससे भी उनको लौटते हुए न देखकर विवश हो वह स्वयं घर लौटा

हृदयराम का प्रश्न—रात में जंगल के अन्दर जाकर क्या करते हो?

आया। दूसरे दिन अवकाश मिलने पर उसने श्रीरामकृष्णदेव से पूछा, "बताओ रात में जंगल के अन्दर जाकर तुम क्या करते हो?" श्रीरामकृष्णदेव ने कहा, "वहाँ पर आमले का एक वृक्ष है, उसके नीचे बैठकर ध्यान करता रहता हूँ; शास्त्र में कहा गया है कि आमले के वृक्ष के नीचे बैठकर जो जिस कामना से ध्यान करता है, उसकी वह कामना पूर्ण होती है।"

हृदयराम की श्रीरामकृष्णदेव को डराने की चेष्टा।

उस घटना के बाद कुछ दिन तक श्रीरामकृष्णदेव जब उस आमले के वृक्ष के नीचे ध्यान करने बैठते थे, तभी बीच-बीच में ढेले आदि आने तथा नाना प्रकार के उपद्रव होने लगे। ये सब हृदय के ही कार्य हैं, यह जानकर भी उन्होंने उससे कुछ नहीं कहा। किन्तु उनको डराकर वहाँ जाने से उन्हें रोकने में वह असमर्थ हो निश्चिन्त न हो सका। एक दिन श्रीरामकृष्णदेव के वहाँ जाने के कुछ देर बाद चुपचाप उस जंगल में प्रविष्ट होकर उसने दूर से देखा कि वे अपने पहनने का वस्त्र तथा यज्ञोपवीत को त्यागकर आनन्दपूर्वक बैठे हुए ध्यान में मग्न हैं। यह देखकर वह सोचने लगा— 'मामाजी क्या पागल हो गए हैं?' इस प्रकार का आचरण तो पागल के लिए ही सम्भव है; ध्यान करना हो करो, किन्तु नग्न होने की क्या आवश्यकता है? यह सोचकर सहसा वह उनके समीप उपस्थित हुआ तथा उनको सम्बोधन कर कहने लगा, "यह क्या हो रहा है? यज्ञोपवीत तथा वस्त्र को त्यागकर नंगे क्यों बैठे हो?"

हृदयराम से श्रीरामकृष्णदेव का कहना— 'पाशमुक्त' होकर ध्यान करना चाहिए।

इस प्रकार कुछ देर तक पुकारने के बाद श्रीरामकृष्णदेव को चेत हुआ तथा समीप ही खड़े हृदयराम को इस प्रकार प्रश्न करते हुए देख वे बोले, "तुझे क्या पता है? इस तरह 'पाशमुक्त' होकर ध्यान करना चाहिए, जन्म से ही मनुष्य घृणा, लज्जा, कुल, शील, भय, मान, जाति तथा अभिमान — इन आठ पाशों में आबद्ध है, यज्ञोपवीत भी 'मैं ब्राह्मण तथा सबसे श्रेष्ठ हूँ' — इस प्रकार के अभिमान का चिह्न होने के कारण एक पाश है; माँ को पुकारने के लिए इन पाशों को त्यागकर एकाग्रता के

साथ उन्हें पुकारना पड़ता है, इसलिए मैने इन्हे उतार रखा है, ध्यान करने के पश्चात् लौटते समय पुनः धारण कर लूँगा।" इससे पूर्व हृदय ने ऐसी बात कभी नहीं सुनी थी, इसलिए वह अवाक् रह गया तथा निरुत्तर हो वहाँ से चल दिया। अपने मामाजी को बहुत-कुछ कहने सुनने तथा तिरस्कार करने का उसने पहले से ही सोच रखा था, किन्तु वह कुछ भी न कर सका।

इस घटना के प्रसंग मे यहाँ पर एक बात का उल्लेख कर देना आवश्यक है; क्योंकि यह विदित होने पर श्रीरामकृष्णदेव के जीवन की आगे की घटनाओं को फिर हम सहज ही में समझ सकेंगे। हमने देखा कि अष्टपाश से मुक्त होने के लिए वे केवल मन से ही उन्हे त्यागकर निश्चिन्त नहीं हो पाए थे, किन्तु स्थूल रूप से भी उनका जहाँ तक त्याग हो सकता था, उन्होंने किया। आगे के जीवन मे अन्यान्य विषयों मे भी उनका इस प्रकार का आचरण हमें देखने को मिलता है। उदाहरणार्थ, अन्य लोग जिस स्थल को अत्यन्त अशुद्ध मानकर सर्वथा परित्याग करते है, ऐसे ही स्थल को अभिमान नष्ट करके हृदय मे वास्तविक दीनता प्राप्त करने के लिए उन्होंने अत्यन्त प्रयत्न के साथ स्वयं अपने हाथों से साफ किया था।

शरीर तथा मन—इन दोनो के द्वारा जाति-अभिमान का नाश, 'सम-लोष्टाश्मकांचन' बनने तथा समस्त जीवो में शिवज्ञान प्राप्त करने के लिए श्रीरामकृष्णदेव का प्रयास।

श्रीरामकृष्णदेव ने यह सुनकर कि 'समलोष्टाश्मकांचन' बने बिना अर्थात् साधारण लोग जिन सुवर्णादि धातु तथा प्रस्तरों को बहुमूल्य मानते है, उनको सामान्य पत्थर की तरह तुच्छ ज्ञान किए बिना, शारीरिक भोग तथा सुखाकांक्षा से अपने को वियुक्त कर मानव-मन ईश्वर की ओर पूर्णतया धावित नहीं होता है तथा योगारूढ़ नही हो सकता है,— कुछ मुद्राओं तथा लोष्टों को अपने हाथ मे लेकर बारम्बार 'रुपया मिट्टी, मिट्टी रुपया' यह कहते हुए उनको गंगाजी मे फेंक दिया था।

समस्त जीवों में शिवज्ञान को दृढ़ करने के निमित्त काली-मन्दिर में भिखारियों के भोजन के उपरान्त उनके जूठे अन्न को देवता का प्रसाद मानकर उन्होंने भोजन किया तथा अपने मस्तक पर धारण किया

था। तदनन्तर जूठी पत्तलों को माथे पर रख गंगातट पर फेककर उन्होंने अपने हाथ से झाड़ू द्वारा उस स्थान को साफ किया था तथा यह मानकर कि अपने नश्वर शरीर से इस प्रकार देवसेवा का यत्किंचित् अवसर प्राप्त हुआ है, उन्होंने अपने को कृतार्थ समझा था।

इस प्रकार की अनेक घटनाओं का उल्लेख किया जा सकता है। सर्वत्र ही यह देखने मे आता है कि ईश्वर-प्राप्ति के मार्ग मे प्रतिकूल विषयों को केवल मन से ही त्यागकर वे निश्चिन्त नही रहते थे किन्तु स्थूलरूप से पहले उन्हे त्यागकर अथवा शरीर तथा इन्द्रियों को उनसे यथासम्भव दूर रखकर उसके विपरीत आचरण करने के लिए वे उन्ही इन्द्रियों को बलपूर्वक नियुक्त करते थे। यह देखने मे आता है कि इस प्रकार के आचरण द्वारा उनके मानसिक पूर्व-संस्कार एक साथ नष्ट हो जाते थे तथा उनका मन इतनी दृढ़ता के साथ उसके विपरीत संस्कारों को धारण करता था कि आगे चलकर कभी भी दूसरे भावों का आश्रय लेकर वह कोई कार्य नहीं कर पाता था। इस प्रकार पहले मन के द्वारा कोई नवीन भाव ग्रहण किये जाने पर जब तक शरीर तथा इन्द्रियादि की सहायता से किंचिन्मात्र भी वह कार्य अनुष्ठित नही होता था, तब तक उस विषय मे यथार्थ धारणा का उदय हुआ है तथा उसके विपरीत भाव का परित्याग हो चुका है, इस बात को वे कभी स्वीकार नहीं करते थे।

श्रीरामकृष्णदेव के त्याग का क्रम।

पूर्वसंस्कारों को त्यागने मे नितान्त विमुख हो हम यह सोचते है कि श्रीरामकृष्णदेव के लिए इस प्रकार का आचरण करने की कुछ भी आवश्यकता नही थी। उनके उस तरह के आचरणों की आलोचना मे प्रवृत्त हो किसी किसी ने यहाँ तक कह डाला है—"अपवित्र कुत्सित स्थलों को परिष्कृत करना, 'रुपया मिट्टी है, मिट्टी रुपया है' यह कहकर मिट्टी के साथ मुद्राओं को गंगाजी मे फेक देना आदि घटनाओं से ऐसा प्रतीत होता है कि यह उनका अपना मनःकल्पित साधनमार्ग है; किन्तु इस प्रकार अदृष्टपूर्व उपायों का अवलम्बन कर उन्होंने अपने मन के ऊपर जो कर्तृत्व स्थापित किया था, वह उससे कही सरल उपायों द्वारा अत्यन्त शीघ्रता के साथ प्राप्त किया जा सकता था।"* इसके उत्तर मे हम यही

* श्री शिवनाथ शास्त्री महोदय लिखित — Personal

कहना पड़ता है कि—ठीक है, किन्तु उक्त प्रकार बाह्य आचरणो के बिना केवल मन से विषय-त्याग करने का तुम्हारे तथाकथित सरल उपाय का अवलम्बन कर अब तक कितने व्यक्ति पूर्णतया रूपरसादि विषयों से विमुख हो अपने सोलह आने मन को ईश्वर को अर्पण करने मे समर्थ हुए है ? ऐसा होना कभी सम्भव नहीं है। मन किसी चिन्ता में निमग्न हो एक ओर चलेगा तथा शरीर उस चिन्ता या भाव के विरुद्ध कार्यो का अनुष्ठान कर दूसरी ओर जायगा इस प्रकार से किसी भी महान् कार्य मे सिद्धिलाभ नहीं हो सकता, ईश्वर-लाभ तो बहुत दूर की बात है ! किन्तु रूपरसादि-भोगलोलुप मानव इस बात को नहीं समझ पाता है ! किसी भी विषय का त्याग करना उचित है यह अनुभव करने के पश्चात् भी पूर्वसंस्कारों के वशीभूत होकर वह अपने शरीर तथा इन्द्रियों द्वारा, उसे त्यागना नहीं चाहता और सोचता रहता है कि—'शरीर चाहे जिस कार्य मे संलग्न क्यों न रहे, मन के द्वारा तो मै और ही कुछ सोच रहा हूँ !' योग तथा भोग इन दोनों को एक साथ अपनाने की भावना से इस प्रकार वह अपने आपको स्वयं धोखा देता है। किन्तु प्रकाश तथा अन्धकार की भाँति योग एवं भोग—ये दोनों पदार्थ एक साथ कभी भी नहीं रह सकते। काम-कांचनमय संसार तथा ईश्वर की सेवा एक साथ एक ही समय में सम्पन्न की जा सके, आध्यात्मिक जगत् मे इस प्रकार के सहज मार्ग का आविष्कार आज तक कोई नहीं कर पाया है। * इसीलिए शास्त्र हमसे बारम्बार यही कहते है कि—'जिसे त्यागना है, सम्पूर्ण रूप से उसका परित्याग करना पड़ेगा और जिसे ग्रहण करना है, उसे भी उसी प्रकार सम्पूर्ण रूप से ग्रहण करना होगा, तभी साधक ईश्वर-प्राप्ति का अधिकारी हो सकेगा।' इसीलिए ऋषियों ने कहा है कि मानसिक भावोद्दीपक शारीरिक चिह्न तथा अनुष्ठानरहित तपस्या की सहायता से—"तपसो

'मनःकल्पित साधना-मार्ग' कहकर उक्त क्रम के सम्बन्ध मे आपत्ति तथा उसकी मीमांसा।

Reminiscences of Ramakrishna Paramhamsa. Vide Modern Review, November, 1910.

* Ye cannot serve God and Mammon together (Holy Bible)

वाप्यलिंगात्" --मानव कभी आत्मसाक्षात्कार करने में समर्थ नहीं होता। युक्ति भी यह बतलाती है कि स्थूल से सूक्ष्म तथा सूक्ष्म से कारण की ओर मानव-मन क्रमशः जाता रहता है -- "नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।"

हम यह कह चुके है कि अग्रज के देहान्त के बाद श्रीजगदम्बा के पूजन मे श्रीरामकृष्णदेव ने विशेष रूप से अपना मनःसंयोग किया था तथा उनके दर्शन प्राप्त करने के निमित्त जो भी कुछ उन्हे अनुकूल प्रतीत होता था, पूर्ण विश्वास के साथ व्यग्र हो उसी का वे अनुष्ठान करते थे।

श्रीरामकृष्णदेव की उस समय की पूजन-पद्धति।

उनके श्रीमुख से हमने सुना है कि उस समय विधिवत् पूजन करने के उपरान्त प्रतिदिन श्री रामप्रसाद आदि सिद्ध-भक्तों के पदों को गाकर देवी को सुनाना, उनकी दृष्टि मे पूजन का एक अंग बन चुका था। चित्त के गम्भीर उच्छ्वासपूर्ण उन गीतो को गाते हुए उनका हृदय उत्साह से भर जाता था। वे सोचते थे कि रामप्रसाद आदि भक्तों को माँ का दर्शन प्राप्त हुआ था; तब तो जगज्जननी का दर्शन अवश्य मिलता है; तो फिर मुझे उनका दर्शन क्यों नहीं मिलेगा? व्याकुल हृदय से वे कहने लगते -- "माँ, तूने रामप्रसाद को दर्शन दिया है, तो मुझे क्यों न दर्शन देगी? मै धन, जन, भोगसुख कुछ भी नहीं चाहता हूँ, मुझे दर्शन दे!" इस प्रकार प्रार्थना करते हुए नेत्रजल से उनका वक्षःस्थल प्लावित हो जाता था तथा उससे हृदय का बोझ कुछ हलका होने पर विश्वास की मुग्ध प्रेरणा से कुछ स्वस्थ हो पुनः गीत गाकर देवी को प्रसन्न करने के लिए वे सचेष्ट हो जाते थे। इस प्रकार पूजन, ध्यान तथा भजन मे दिन बीतने लगे तथा श्रीरामकृष्णदेव के मन की अनुरक्ति एवं व्याकुलता दिनोंदिन बढ़ने लगी।

तब से देवी की सेवा-पूजा में भी उनको पहले की अपेक्षा अधिक समय लगने लगा। पूजन करने के निमित्त बैठकर विधि के अनुसार अपने मस्तक पर एक फूल रखकर ही कभी-कभी वे दो घण्टे तक स्थाणु की तरह निश्चल रूप से ध्यान-मग्न रहने लगे; अन्नादि का भोग लगाकर, माँ भोजन कर रही है, इसी चिन्तन मे उनका पर्याप्त समय व्यतीत होने लगा, प्रातःकाल अपने हाथ से पुष्पचयन करने के पश्चात् माला बनाकर

देवी के श्रृंगार करने में उनका बहुत समय बीतने लगा अथवा अनुरागपूर्ण हृदय से दीर्घ समय तक वे सन्ध्या-आरती ही करते रहे। पुनः अपराह्न के समय देवी के समक्ष यदि वे गाने बैठे तो उस समय वे इस प्रकार तन्मय तथा भावविह्वल होने लगे कि बारम्बार उनसे यह कहे जाने पर कि आरती का समय बीता जा रहा है, उनके द्वारा ठीक समय पर आरती कराना सम्भव न हो सका। इसी तरह कुछ काल तक पूजनादि कार्य सम्पन्न होते रहे।

इस प्रकार की निष्ठा, भक्ति तथा व्याकुलता को देखकर मन्दिर के लोगों की दृष्टि उस समय श्रीरामकृष्णदेव की ओर विशेष रूप से आकृष्ट हुई थी और यह बात सहज ही मे अनुभव भी की जा सकती है। साधारणतया लोग जिस प्रकार रहते है, वैसे न रहकर नवीन रूप से किसी को रहते या कुछ करते हुए देखकर साधारण लोग सर्वप्रथम कुछ हँसी-मजाक किया करते है। किन्तु ज्यों-ज्यों दिन व्यतीत होते जाते है और वह व्यक्ति दृढता के साथ अपने मार्ग मे जितना ही अग्रसर होता है, लोगों की भावना भी तदनुरूप परिवर्तित होकर श्रद्धा का रूप धारण कर लेती है। श्रीरामकृष्णदेव के सम्बन्ध मे भी उस समय ठीक ऐसा ही हुआ था। कुछ दिन उस प्रकार पूजन करते हुए अधिकांश लोगों के वे परिहास-पात्र बने किन्तु उसके कुछ दिन बाद लोग उन पर श्रद्धा करने लगे। सुना जाता है कि उस समय श्रीरामकृष्णदेव के पूजनादि को देखकर सन्तुष्ट हो मथुरबाबू ने रानी रासमणि से कहा था, "हमे अद्भुत पुजारी मिला है, देवी सम्भवतः शीघ्र ही जागृत हो उठेंगी!" किन्तु लोगों के उक्त प्रकार मन्तव्य से श्रीरामकृष्णदेव अपने मार्ग से कभी भी विचलित नहीं हुए। समुद्रगामिनी नदी की भाँति तभी से उनका मन सतत एवं समान रूप से श्रीजगन्माता के श्रीचरणों की ओर तीव्रगति से अग्रसर होने लगा।

उस समय श्रीरामकृष्णदेव के पूजनादि कार्यों के सम्बन्ध में मथुरबाबू आदि व्यक्तियों की धारणा।

जैसे-जैसे दिन व्यतीत होने लगे, श्रीरामकृष्णदेव के हृदय की अनुरक्ति तथा व्याकुलता भी उसी प्रकार वर्धित होने लगी तथा इस प्रकार अविश्रान्त रूप से एक ओर मन की गति होने के कारण उनके शरीर में भी नाना प्रकार के बाह्य लक्षण प्रकट होने लगे। उनके आहार,

श्रीभवतारिणी

निद्रा आदि कम हो गए। शरीर का रक्तप्रवाह वक्षःस्थल तथा मस्तिष्क मे निरन्तर द्रुत गति से प्रवाहित होने के कारण उनका वक्षःस्थल सदा आरक्त रहने लगा, उनकी आँखे बीच-बीच मे अश्रुसिक्त होने लगीं, तथा भगवद्दर्शन के निमित्त अत्यन्त व्याकुलताजनित 'क्या करूँ, कैसे दर्शन प्राप्त हो'—इस प्रकार की चिन्ता निरन्तर उनके अन्दर विद्यमान रहने लगी। फलस्वरूप ध्यान-पूजनादि के समय को छोड़कर शेष समय मे उनके शरीर मे एक प्रकार की अशान्ति तथा व्यग्रता दिखाई देने लगी।

ईश्वरानुराग की वृद्धि से श्रीरामकृष्णदेव के भीतर उपस्थित होने वाले शारीरिक विकार।

हमने उनके श्रीमुख से सुना है कि उस समय एक दिन वे श्रीजगदम्बा को गाना सुना रहे थे एवं उनके दर्शनार्थ अत्यन्त व्याकुल हो प्रार्थना तथा रुदन करते हुए यह कह रहे थे, "माँ, मै जो इतना पुकार रहा हूँ, क्या तू उसका कुछ भी नही सुन पा रही है? रामप्रसाद को तूने दर्शन दिया है, मुझे क्या तू दर्शन न देगी?" वे कहते थे—

"माँ का दर्शन न मिलने से उस समय मेरे हृदय मे असह्य यातना थी; जलरहित करने के लिए लोग जिस प्रकार बलपूर्वक अँगोछे को निचोड़ते रहते है, मुझे भी तब ऐसा ही प्रतीत हुआ मानो मेरे हृदय को पकड़कर कोई वैसे ही निचोड़ रहा है। माँ का दर्शन सम्भवतः मुझे कभी भी प्राप्त न होगा, यह सोचकर वेदना से मै तड़पने लगा। व्याकुल होकर मै यही सोचने लगा कि इस जीवन से क्या लाभ है। उस समय मेरी दृष्टि माँ के मन्दिर मे रखी हुई तलवार पर सहसा जा पडी। तत्काल ही जीवन को समाप्त करने की भावना से उन्मत्त की तरह दौड़ता हुआ वहाँ जाकर मै उसे पकड़ ही रहा था कि उस समय सहसा माँ का मुझे अद्भुत दर्शन मिला तथा बेसुध होकर मै गिर पड़ा। तदनन्तर क्या हुआ, किस तरह वह दिन तथा दूसरे दिन व्यतीत हुए, मुझे इसका कुछ भी पता नहीं है! किन्तु मेरे हृदय में एक अपूर्व घनीभूत आनन्द का स्रोत प्रवाहित हो रहा था और मैने माँ के साक्षात् प्रकाश की उपलब्धि की थी।"

श्रीजगदम्बा के प्रथम दर्शनलाभ का विवरण तथा श्रीरामकृष्णदेव की तत्कालीन व्याकुलता।

उपरोक्त अद्भुत दर्शन के बारे में श्रीरामकृष्णदेव ने दूसरे एक दिन

हमसे विस्तारपूर्वक वर्णन करते हुए कहा था, "घर, द्वार, मन्दिर—ये सब कुछ न जाने कहाँ विलुप्त हो गये—मानो कहीं कुछ भी नहीं था!— मुझे एक अनन्त, असीम, चेतन ज्योतिःसमुद्र दिखाई देने लगा। — जिधर जहाँ तक मै देख रहा था, उधर ही चारों ओर से गरजती हुई उसकी उज्ज्वल तरगे मुझे ग्रस्त करने के निमित्त अत्यन्त तीव्र वेग से बढी आ रही थीं। देखते-देखते वे मेरे ऊपर आ गिरीं और पता नहीं मुझे कहॉ एकदम डुबो दिया। हाँपता तथा डुबकियॉ लगाता हुआ अचेत होकर मै गिर पड़ा।" इस प्रकार प्रथम दर्शन के समय चेतन ज्योतिःसमुद्र के दर्शनलाभ की बात उन्होंने हमसे कही थी। किन्तु चैतन्यघन वराभयकरा जगदम्बा की मूर्ति? —उस ज्योतिःसमुद्र के अन्दर मूर्ति का दर्शन भी क्या उनको उस समय प्राप्त हुआ था? हमे ऐसा प्रतीत होता है कि अवश्य प्राप्त हुआ होगा; क्योंकि हमने सुना है कि प्रथम दर्शन के समय जब उन्हे सामान्य चेतना हुई थी, तभी कातर कण्ठ से उन्होंने 'माँ', 'माँ' शब्द का उच्चारण किया था।

पूर्वोक्त दर्शन के विराम होने पर श्रीजगदम्बा की चिन्मयी मूर्ति के दर्शन के निमित्त श्रीरामकृष्णदेव के हृदय मे एक अविश्रान्त क्रन्दन-ध्वनि का प्रादुर्भाव हुआ था। बाह्यतः सब समय प्रकट न होने पर भी वह ध्वनि सर्वदा उनके भीतर विद्यमान रहती थी तथा कभी-कभी वह इस प्रकार तीव्र हो उठती थी कि उसको दबाने में असमर्थ हो धरती पर गिरकर छटपटाते हुए 'माँ मुझ पर कृपा करो, मुझे दर्शन दो'—यह कहकर इस प्रकार से वे रोने लगते कि वहॉ चारों ओर लोग एकत्रित हो जाते थे।—इस तरह के अशान्त आचरण को देखकर लोग क्या कहेंगे, इस बात की ओर उस समय उनका लेशमात्र भी ध्यान नहीं था। वे कहते थे, "चारों ओर लोगों के खड़े रहने पर भी छाया या चित्रांकित मूर्ति की भाँति वे मुझे अवास्तव-जैसे प्रतीत होते थे, इसलिए मेरे मन मे किंचिन्मात्र भी लज्जा या संकोच उत्पन्न नहीं होता था। उस असहनीय यातना से कभी-कभी मै बेसुध हो जाता था और उसके बाद ही मुझे 'माँ की वराभयकरा चिन्मयी मूर्ति' का दर्शन प्राप्त होता था और मै यह देखता था कि वह मूर्ति हँस रही है, बाते कर रही है और तरह तरह से मुझे सान्त्वना तथा शिक्षा प्रदान कर रही है।"

सप्तम अध्याय

साधना तथा दिव्योन्माद

श्रीजगदम्बा के प्रथम दर्शनलाभ के आनन्द मे निमग्न रहने के कारण दो-चार दिन तक श्रीरामकृष्णदेव एकदम किसी भी कार्य लायक नहीं रहे। मन्दिर के पूजनादि कार्यों को यथावत् सम्पन्न करना उनके लिए असम्भव हो गया। हृदयराम दूसरे एक ब्राह्मण की सहायता से उन कार्यों को किसी प्रकार सम्पादन करने लगा तथा ऐसा सोचकर कि मामाजी को वायुरोग हो गया है, उनकी चिकित्सा के लिए प्रयत्न करने लगा। भूकैलास के राजभवन मे नियुक्त एक योग्य वैद्य से किसी प्रकार उसका परिचय हो चुका था; हृदय उस समय उनके द्वारा श्रीरामकृष्णदेव की चिकित्सा कराने लगा, किन्तु उससे रोग के उपशम होने की कोई सम्भावना न देखकर उसने कामारपुकुर मे समाचार भेजा।

प्रथम दर्शन के बाद की स्थिति।

भगवद्दर्शन के निमित्त तीव्र व्याकुलता से श्रीरामकृष्णदेव जिस दिन एकदम अधीर अथवा बाह्यचेतनारहित नहीं हो जाते थे, उस दिन पहले की भाँति पूजन करने के लिए वे उद्यत रहते थे। उस समय पूजन तथा ध्यान करते हुए उन्हे जो चिन्तन तथा अनुभव होता था, उस सम्बन्ध मे उन्होंने कभी-कभी हमसे निम्न-लिखित घटनाओं का उल्लेख किया था—"ध्यान करने के लिए जाते समय मै अपने मन को मॉ के नाट्यमन्दिर की छत की दीवाल पर ध्यानमग्न भैरव की जो मूर्ति है, उसे दिखाता हुआ यह कहता था, 'इस प्रकार स्थिर तथा निश्चल रूप से बैठकर माँ के पादपद्मों का चिन्तन करना है।' ध्यान के लिए बैठते ही शरीर तथा अंग-प्रत्यंगों की ग्रन्थियों मे, पैर से लगाकर ऊपर की ओर मुझे खटखट शब्द सुनाई

श्रीरामकृष्णदेव के तत्कालीन शारीरिक तथा मानसिक दर्शनादि।

पड़ता था और ऐसा प्रतीत होता था कि मेरे शरीर की ग्रन्थियाँ क्रमशः आबद्ध होती हुई चली जा रही है, मानो भीतर से कोई उन स्थानों मे ताले बन्द कर रहा है। जब तक मै ध्यान किया करता था, तब तक शरीर को किंचिन्मात्र भी हिला-डुलाकर आसन परिवर्तन अथवा इच्छामात्र से ध्यान छोड़कर अन्यत्र गमन या किसी कार्य को करने की मुझमे सामर्थ्य नहीं रहती थी। जब तक पहले की तरह खटखट आवाज कर, पुनः ऊपर से लगाकर पैर तक की उक्त ग्रन्थियाँ खुल नही जाती थी, तब तक मानो कोई बलपूर्वक मुझे उसी प्रकार बैठाए रखता था! ध्यान करते समय आरम्भ मे खद्योतपुंज की तरह ज्योतिर्बिन्दुओं का मुझे दर्शन होता था; और कभी-कभी पिघली हुई चाँदी-जैसी उज्ज्वल ज्योति से सब कुछ परिव्याप्त दिखाई देता था। आँखे बन्द करने पर ये दृश्य देखने को मिलते थे तथा किसी-किसी समय खुली आँखों से भी उसी प्रकार दिखाई पड़ता था। मै क्या देख रहा हूँ उसका मुझे कुछ भी ज्ञान नहीं रहता था तथा इस प्रकार का दर्शन होना अच्छा है अथवा नहीं, यह भी मै नहीं जानता था; इसलिए व्याकुल होकर माँ (जगन्माता) के समीप यह प्रार्थना किया करता था--'माँ, यह क्या हो रहा है, मुझे कुछ भी पता नहीं; तुझे आवाहन करने का मन्त्र-तन्त्र भी मै कुछ नही जानता हूँ; तू ही मुझे यह बता दे कि कैसी तेरी प्राप्ति हो सकती है। माँ, तेरे सिवाय मुझे और कौन सिखायेगा; तुझे छोड़कर मेरा दूसरा और कोई भी सहायक अथवा गति नहीं है!' एकाग्र चित्त से मै इस प्रकार प्रार्थना किया करता था तथा हृदय की व्याकुलता से रोता रहता था।"

उस समय श्रीरामकृष्णदेव के ध्यान-पूजनादि ने विलक्षण रूप धारण कर लिया था। वह अद्भुत तन्मय भाव दूसरे को समझाकर बतलाना कठिन है। उस भाव में श्रीजगदम्बा का आश्रय लेने के कारण उनमे बालकों का सा विश्वास, सरलता, शरणागत भाव और माधुर्य सदा दिखाई देता था! वह एक ऐसी स्थिति थी कि जिसमे वृद्धों का गाम्भीर्य, पुरुषार्थ की सहायता से देशकालपात्र के अनुसार विधिनिषेधों का पालन अथवा भविष्य का चिन्तन करते हुए चारों ओर सामंजस्य स्थापित

प्रथम दर्शन प्राप्त कर श्रीरामकृष्णदेव की प्रत्येक चेष्टा व भावना में उपस्थित होनेवाले परिवर्तन।

कर आचरण करने का लक्षण उसमें कुछ भी विद्यमान नहीं था। देखने से ऐसा मालूम पड़ता था कि—'माँ, तेरे शरणागत बालक को जो कुछ कहना व करना है, तू ही बतला दे तथा तू ही करा ले'—सम्पूर्णतया इस प्रकार की भावना का आश्रय लेते हुए इच्छामयी की इच्छा मे अपनी क्षुद्र इच्छा तथा अभिमान को निमज्जित कर श्रीरामकृष्णदेव उस समय मानो यन्त्र बनकर ही समस्त कार्यो को कर रहे थे। इसलिए साधारण मानव के विश्वास तथा आचरण के साथ उनके व्यवहारादि का सामंजस्य न बैठने से विभिन्न व्यक्ति सर्वप्रथम अस्पष्टतया तथा बाद मे खुली तौर से नाना प्रकार की आलोचना करने लगे। किन्तु उससे होना क्या था? जगदम्बा पर आश्रित रहनेवाला यह अलौकिक बालक उसकी इच्छा के अनुसार व्यवहार करता था, और इस कारण विक्षुब्ध संसार का व्यर्थ कोलाहल उसके कानों मे प्रवेश ही नहीं करता था! उस समय संसार के अन्दर रहकर भी वह उससे बाहर था। उसके निकट बाह्य जगत् स्वप्नराज्य बन चुका था; प्रयत्न करने पर भी उसे सत्य मानना उसके लिए किसी प्रकार सम्भव नहीं था। श्रीजगदम्बा की चिन्मयी आनन्दघन मूर्ति ही उस समय उसके समीप एकमात्र सारवस्तु के रूप मे प्रतीत हो रही थी।

इससे पूर्व ध्यान-पूजनादि करते समय किसी दिन उनको माँ के करकमल अथवा कमलोज्ज्वल युगलचरण या 'सौम्यातिसौम्य' हास्य-विमण्डित स्निग्ध मुख-चन्द्र का दर्शन होता था, किन्तु उस समय ध्यान-पूजन-काल के अतिरिक्त अन्य समय मे भी वे देखा करते थे कि सर्वावयव-सम्पन्ना ज्योतिर्मयी माँ हँस रही है, बातें कर रही है तथा 'इस कार्य को करो, उसे न करो' — इस प्रकार कहती हुई उनके साथ-साथ वे घूम रही है।

श्रीरामकृष्णदेव के इससे पूर्वकालीन तथा इस समय के पूजन-दर्शनादि में भिन्नता।

पहले माँ को अन्नादि का भोग लगाकर वे देखते थे कि माँ के नेत्रों से चमकती हुई ज्योतिःरश्मि निकलकर भोग की वस्तुओं को स्पर्श करती हुई उसके सार भाग को लेकर पुनः नेत्रों मे प्रविष्ट हो रही है! किन्तु उस समय भोग लगाते ही और कभी-कभी उससे पूर्व ही उनको यह स्पष्ट दिखाई देता था कि अपने श्रीअंग की प्रभा से मन्दिर को

यह सोचा करता था कि मामाजी क्या वास्तव मे पागल हो गए है? अन्यथा पूजन के समय वे इस प्रकार का आचरण क्यों करते है? रानी रासमणि तथा मथुरबाबू को इस प्रकार पूजन करने की बात विदित होने पर उनके मन मे इसकी क्या प्रतिक्रिया होगी, यह सोचकर भी मै अत्यन्त भयभीत हो जाता था। किन्तु मामाजी के मन मे एक बार भी यह बात उदित नहीं होती थी और इस सम्बन्ध मे कुछ कहने पर भी वे उस ओर कोई ध्यान नहीं देते थे। उस समय मै अधिकतर उन्हें कुछ कह भी नही पाता था; एक प्रकार की अव्यक्त भीति तथा संकोच से मेरा मुँह बन्द हो जाता था और उनके तथा अपने बीच एक अनिर्वचनीय दूरत्व के व्यवधान का मै अनुभव करता था। इसलिए चुपचाप यथासाध्य उनकी सेवा मे ही तत्पर रहता था; किन्तु मन मे यह चिन्ता होती थी कि कहीं मामाजी किसी दिन कोई काण्ड न कर बैठे।"

पूजन के समय सहसा मन्दिर मे पहुँचकर श्रीरामकृष्णदेव की जिन चेष्टाओं को देखकर हृदय के मन मे युगपत् विस्मय, भय तथा भक्ति का उदय होता था, उस सम्बन्ध मे उसने हमसे इस प्रकार कहा था—"मै देखता था कि जवापुष्प के साथ बिल्वपत्र का अर्घ्य सजाकर मामाजी ने सर्वप्रथम उसके द्वारा अपने मस्तक, वक्षःस्थल, सर्वांग, यहाँ तक कि अपने पैरपर्यन्त स्पर्श कर तदनन्तर उसे जगदम्बा के पादपद्मो मे अर्पण किया।"

"मै देखा करता था कि शराब के नशे मे मस्त व्यक्ति की तरह उनका वक्षःस्थल तथा नेत्र आरक्त हो उठे है और उस हालत मे हिलते-डुलते हुए पूजन के आसन को त्याग कर सिंहासन पर आरूढ़ हो वे अत्यन्त स्नेहपूर्वक जगदम्बा की ठोढी को स्पर्श कर प्यार, गान, परिहास अथवा बातचीत कर रहे है अथवा श्रीमूर्ति के हाथ पकड़कर उन्होंने नृत्य करना ही प्रारम्भ कर दिया है।"

" मै देखता था कि श्रीजगदम्बा को अन्नादि का भोग लगाकर एकाएक वे खड़े हो गए तथा थाली से एक ग्रास व्यञ्जन लेकर शीघ्रता के साथ सिंहासन पर चढ़कर माँ के मुँह मे उसे स्पर्श कराकर कहने लगे, 'ले माँ भोजन कर, अच्छी तरह से भोजन कर।' बाद मे कभी वे यह कह उठे, 'मैं भोजन करूँ? अच्छा, कर रहा हूँ।'—

यह कहकर उसका कुछ अंश स्वयं ग्रहण करने के पश्चात् बाकी अंश पुनः माँ के मुँह में देकर कहने लगे, 'मैंने तो खा लिया है, अब तू भोजन कर ले।''

"एक दिन मैंने देखा कि भोग लगाते समय कालीमन्दिर में एक बिल्ली को म्याऊँ म्याऊँ करती हुई देखकर 'माँ भोजन करेगी, भोजन करेगी' यह कहते हुए मामाजी भोग का अन्न उसे ही खिलाने लगे।"

"मैं देखता था कि एक दिन रात में जगन्माता को शयन करा कर 'मुझे अपने पास सोने के लिए कह रही है—अच्छा, सो रहा हूँ'—यह कहते मामाजी जगन्माता के चाँदी के पलंग पर कुछ देर तक सोये रहे।"

"मैं यह भी देखता था कि पूजन के निमित्त बैठकर वे इस प्रकार तन्मयता के साथ ध्यान में निमग्न हो गए हैं कि बहुत देर तक उनकी बाह्यचेतना एकदम विलुप्त हो गई।"

"प्रातःकाल उठकर माँ काली की माला बनाने के लिए मामाजी प्रतिदिन पुष्पचयन करते थे। मैं देखता था कि उस समय भी वे किसी से वार्तालाप कर रहे हैं, हँस रहे हैं, आदर अनुरोध तथा कौतुक परिहासादि कर रहे हैं।"

"पुनः मैं यह देखता था कि रात में मामाजी बिलकुल सोते नहीं हैं। जब मेरी नींद खुलती थी तभी मैं यह देखा करता था कि मामाजी उसी प्रकार भावाविष्ट होकर बातें कर रहे हैं, गा रहे हैं अथवा पंचवटी में जाकर ध्यान में निमग्न हैं।"

श्रीरामकृष्णदेव की रागात्मिका पूजा को देखकर कालीमन्दिर के खजानची आदि कर्मचारियों की जल्पना तथा मथुरबाबू के समीप समाचार भेजना।

हृदय कहता था कि श्रीरामकृष्णदेव के इस प्रकार के आचरण को देखकर उसके मन में आशंका होने पर भी किसी दूसरे से उस सम्बन्ध में कहकर परामर्श लेने का कोई उपाय नहीं था; क्योंकि वह व्यक्ति कदाचित् मन्दिर के कर्मचारियों में उस बात को और अधिक फैला दे। होते होते शायद वह बात बाबू लोगों के कान तक पहुँचे और उससे शायद मामाजी का कोई अनिष्ट हो जाय। हृदय इसी बात को डरता था। किन्तु अब तो जब नित्यप्रति वैसा ही होने लगा तो उसे छिपाना भी कैसे सम्भव था? कुछ अन्य लोगों ने भी पूजन के समय काली-

मन्दिर में जाकर श्रीरामकृष्णदेव के उन आचरणों को स्वयं देखा तथा खजानची आदि कर्मचारियों से शिकायत की। तब तो इन कर्मचारी लोगों ने भी कालीमन्दिर मे स्वयं जा अपनी आँखों से सब कुछ प्रत्यक्ष देखा; किन्तु श्रीरामकृष्णदेव की देवाविष्ट के सदृश आकृति, उनके निःसंकोच आचरण तथा निर्भीक उदासीन भावों को देखकर वे लोग भी सहम गए और सहसा उनसे कुछ कहने अथवा निषेध करने मे विफल हुए। वहाँ से दफ्तर में लौटकर परामर्श करने के पश्चात् उन लोगों ने निश्चय किया कि या तो भट्टाचार्य महोदय पागल हो गए है अथवा उन पर किसी भूत-प्रेत का आवेश हुआ है। अन्यथा पूजन के समय कोई भी इस प्रकार शास्त्रविरुद्ध मनमाना आचरण नहीं कर सकता; अस्तु,— उन लोगों ने यही सोचा कि देवी का पूजन तथा भोगरागादि कुछ भी नहीं हो रहा है; उन्होंने सब कुछ नष्ट कर दिया है; अतः बाबू लोगों के समीप यह समाचार भेजना नितान्त आवश्यक है।

मथुरबाबू के निकट समाचार भेजा गया। उत्तर मे उन्होंने कहलवा भेजा कि वे स्वयं शीघ्र ही उपस्थित हो उस सम्बन्ध मे यथोचित व्यवस्था करेंगे, और तब तक भट्टाचार्य महोदय जिस तरह पूजनादि कर रहे है, वैसे ही करते रहे; उसमे किसी प्रकार की बाधा न पहुँचायी जाय। मथुरबाबू का इस प्रकार का समाचार पाकर सभी लोग अत्यन्त व्यग्रता के साथ उनके आगमन की प्रतीक्षा करने लगे। वे सोचने लगे कि बस "अब की बार भट्टाचार्य महोदय का पदच्युत होना अनिवार्य है, बाबू आते ही उन्हे हटा देंगे—देवता की सन्निधि मे अपराध, भला देवता कब तक सहन कर सकते है।"

मथुरबाबू किसी को बिना कोई सूचना दिए एक दिन पूजन के समय अचानक कालीमन्दिर में पहुँच गए और बहुत देर तक श्रीरामकृष्णदेव के क्रियाकलापों को देखते रहे। किन्तु भावविह्वल श्रीरामकृष्णदेव ने उनकी ओर ध्यान न दिया। पूजन के समय माँ को लेकर प्रतिदिन वे इस प्रकार तन्मय रहते थे कि मन्दिर मे कौन आ-जा रहा है, इसका उन्हे कुछ भी ध्यान नहीं रहता था। और यह बात

श्रीरामकृष्णदेव का पूजन देखने के निमित्त मथुरबाबू का आगमन तथा उस सम्बन्ध में उनकी धारणा।

श्री मथुरामोहनजी को स्वयं प्रत्यक्ष विदित हो गई। तत्पश्चात् श्रीजगन्माता के समीप बालक की भाँति उनके सप्रेम आग्रह-अनुरोधादि को देखकर वे समझ गए कि ये प्रगाढ़ प्रेमाभक्ति-जनित आचरण है। वे अपने मन मे यह सोचने लगे—इस प्रकार निष्कपट भक्ति-विश्वास के द्वारा यदि माँ की प्राप्ति न हो तो और किस तरह उनका दर्शन मिल सकता है? पूजन करते हुए भट्टाचार्य महोदय का कभी निरवच्छिन्न अश्रुप्रवाह, कभी स्वाभाविक उद्दाम-उल्लास और कभी-कभी जड़-जैसी अचेतनता एवं निश्चल भाव तथा बाह्य विषयों मे पूर्णतया ध्यानशून्यता—यह सब देखकर उनका हृदय अपूर्व आनन्द से गद्‌गद् हो उठा। वे यह अनुभव करने लगे कि दैवी प्रकाश से मन्दिर वास्तव मे समुद्भासित हो उठा है। उनको यह दृढ़ निश्चय हो गया कि भट्टाचार्य महोदय जगन्माता की कृपा को प्राप्त कर कृतार्थ हुए है। तदनन्तर भक्तिपुनीत हृदय से एवं अश्रुपूर्ण नेत्रों से श्रीजगन्माता तथा उनके अपूर्व पुजारी को दूर से ही बारम्बार प्रणाम करते हुए वे कहने लगे, "इतने दिनों के बाद देवी की प्रतिष्ठा सफल हुई, अब श्रीजगन्माता सचमुच यहाँ आविर्भूत हुई है और उनका पूजन भी ठीक-ठीक सम्पन्न हो रहा है।" कर्मचारियों में से किसी को भी कुछ भी न कहकर वे उस दिन घर लौट गए। दूसरे दिन मन्दिर के प्रधान कर्मचारी को उनका यह निर्देश मिला—'भट्टाचार्य महोदय चाहे जिस प्रकार से भी पूजन क्यों न करे, उनके कार्य मे किसी प्रकार की बाधा न पहुँचायी जाय।*

प्रबल ईश्वर-प्रेम के कारण श्रीरामकृष्णदेव को रागात्मिका भक्ति की प्राप्ति तथा उस भक्ति का परिणाम।

पूर्वोक्त घटनाओं को सुनकर शास्त्रज्ञ पाठक सहज ही में इस बात को अनुभव कर सकेगे कि वैधीभक्ति की विधिबद्ध सीमा का अतिक्रमण कर श्रीरामकृष्णदेव का मन उस समय अहैतुकी प्रेमाभक्ति के उच्च मार्ग की ओर अत्यन्त तीव्र गति से अग्रसर हो रहा था। इस प्रकार सरल तथा स्वाभाविक रूप से वह घटना उपस्थित हुई थी कि दूसरों का तो कहना ही क्या, वे स्वयं भी उस विषय को उस समय हृदयंगम नही कर पाए थे। उनको केवल इतना ही अनुभव हुआ था कि जगन्माता के प्रति प्रगाढ़ प्रीति की प्रेरणा से वे उस प्रकार चेष्टादि किए

* गुरुभाव—पूर्वार्ध, षष्ठ अध्याय देखिए।

बिना रह ही नहीं सकते — मानो बलपूर्वक कोई उनके द्वारा उन कार्यों को करा रहा है। इसलिए यह देखा जाता है कि बीच-बीच मे उनके मन मे इस प्रकार की भावना उदित होने लगी थी 'मेरी यह क्या दशा होती जा रही है? मै ठीक मार्ग पर तो चल रहा हूँ?' इसलिए यह देखने में आता है कि व्याकुल होकर श्रीजगदम्बा से वे प्रार्थना कर रहे है—'माँ, मेरी ऐसी दशा क्यों हो रही है, यह मै कुछ भी नहीं समझ पा रहा हूँ; मुझे जो कुछ करना है, तू मुझसे करा ले तथा जो सिखाने का है, उसे सिखा दे। सदा तू मेरे हाथो को पकड़े रह!' काम-कांचन, सम्मान-ख्याति तथा पृथ्वी के समस्त भोग-ऐश्वर्यादि से चित्त को हटाकर हृदय के अन्तःस्तल से जगन्माता के समीप उन्होंने यह प्रार्थना की थी। श्रीजगन्माता ने भी उनका हाथ पकड़कर सर्वथा उनकी रक्षा करती हुई उनकी प्रार्थना को पूर्ण किया था, साथ ही उनके साधक-जीवन की परिपुष्टि तथा पूर्णता के निमित्त उनको जब जिस वस्तु तथा जिस प्रकार के व्यक्तियों की आवश्यकता हुई, तभी उन वस्तुओं तथा व्यक्तियों को अयाचित रूप से उनके समीप उपस्थित कर उन्हे शुद्ध ज्ञान तथा शुद्धा भक्ति की चरम सीमा पर स्वाभाविक तथा सहज रूप से आरूढ कराया था। गीता में श्रीभगवान् ने भक्त से प्रतिज्ञा की है —

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥ गीता, ९-२२

—जो लोग अनन्य चित्त से उपासना कर मेरे साथ नित्ययुक्त होते है—शरीर धारण के उपयोगी आहार-विहारादि विषयों में भी किसी प्रकार की चिन्ता न कर सम्पूर्ण मन मुझमे अर्पण करते है—(अयाचित होकर भी) मै आवश्यक सभी विषयों को उनके समीप लाकर उपस्थित करता रहता हूँ। गीता की वह प्रतिज्ञा श्रीरामकृष्णदेव के जीवन मे किस प्रकार अक्षरशः सत्य प्रमाणित हुई थी, श्रीरामकृष्णदेव के तत्कालीन जीवन की हम जितनी ही आलोचना करेंगे, उतना ही उसे सम्यक् रूप से हृदयंगम कर विस्मित तथा आश्चर्यचकित होंगे। काम-कांचन ही जिस युग का एकमात्र लक्ष्य है, उस स्वार्थपरायण वर्तमान युग मे उक्त प्रतिज्ञा की सत्यता को पुनः प्रमाणित करने की आवश्यकता थी। "सब छोड़े सब पावै"—श्रीभगवान के निमित्त सर्वस्व त्याग करने पर आवश्यकीय

किसी भी विषय के लिए साधक को अभावग्रस्त हो कोई कष्ट उठाना नहीं पड़ता है — इस बात का उपदेश युग-युग में साधकों द्वारा किए जाने पर भी दुर्बलहृदय विषयाबद्ध मानव वर्तमान युग मे उसे पूर्णरूपेण प्रत्यक्ष किए बिना विश्वास नहीं कर पा रहा था। इसलिए मानव की शास्त्र के इस वाक्य की पुष्टता एवं सफलता दिखाने के निमित्त ही सम्पूर्णतया अनन्यचित्त श्रीरामकृष्णदेव को लेकर श्रीजगन्माता का यह अद्भुत लीलाभिनय था। हे मानव, पवित्र हृदय से इस बात को श्रवण कर त्याग के मार्ग में यथासाध्य अग्रसर होते रहो।

श्रीरामकृष्णदेव का कथन—रागात्मिका या रागानुगा भक्ति के पूर्ण प्रभाव को केवल अवतार पुरुषो के शरीर-मन ही धारण करने में समर्थ हैं।

श्रीरामकृष्णदेव कहते थे कि ईश्वरीय भाव की प्रबल बाढ़ जिस समय अचानक मानव-जीवन में आकर उपस्थित होती है, उस समय उसे दबाने की सहस्र चेष्टा करने पर भी वह दबती नहीं। साधारण मानव की जड़देह उसके प्रबल वेग को धारण करने मे असमर्थ होकर एकदम चकनाचूर हो जाती है। इस प्रकार से अनेक साधकों का देहान्त भी हो चुका है। पूर्णज्ञान या पूर्णभक्ति के तीव्र वेग को धारण करने के निमित्त उपयुक्त शरीर की आवश्यकता है। अवताररूप से विख्यात महापुरुषों के शरीर को ही उसके पूर्ण वेग को सर्वदा धारण कर संसार मे जीवित रहते हुए अब तक देखा गया है। भक्तिशास्त्रों ने इसलिए उन्हे शुद्धसत्वविग्रहवान् कहकर बारम्बार निर्देश किया है। शुद्धसत्वगुणरूप उपादान द्वारा निर्मित शरीर को धारण कर संसार में आने के कारण ही वे आध्यात्मिक भावों के पूर्ण वेग को सहन करने मे समर्थ होते है। इस प्रकार का शरीर धारण करने पर भी बहुधा उनके प्रबल वेग से उन्हे तथा विशेष कर. भक्तिमार्गावलम्बी अवतार पुरुषों को विह्वल होते देखा जाता है। भाव-भक्ति के प्राबल्य से ईसा तथा चैतन्यदेव के शरीर की अंगग्रन्थियों का शिथिल होना, पसीने की तरह प्रत्येक रोमकूप से बूँद-बूँद रुधिर का निकलना आदि शास्त्रवर्णित विवरणों के द्वारा इस बात का समर्थन होता है। इस प्रकार शारीरिक विकार दुःखद प्रतीत होने पर भी उसी के सहारे उन लोगों का शरीर भक्तिजनित असाधारण मानसिक वेग को

धारण करने में अभ्यस्त होने लगता है। तदनन्तर उस वेग को धारण करने में उनका शरीर क्रमशः जितना अभ्यस्त होता जाता है, उक्त विकारादि भी उतने ही विलीन होते जाते है। भाव-भक्ति की प्रबल प्रेरणा से श्रीरामकृष्णदेव के शरीर में तब से नाना प्रकार के अद्भुत विकार उत्पन्न होने लगे थे। साधना के प्रारम्भ से ही उनके गात्रदाह होने की बात इससे पहले ही हम कह चुके है। उसकी वृद्धि से प्रायः उनको विशेष कष्ट उठाना पड़ता था। श्रीरामकृष्णदेव ने अनेक बार उसका कारण स्वयं हमसे इस प्रकार निर्देश किया है—"सन्ध्या पूजनादि करते समय शास्त्रीय विधि के अनुसार जब मै इस प्रकार चिन्तन करता था कि भीतर का पापपुरुष दग्ध हो चुका है, तब यह कौन जानता था कि शरीर के अन्दर सचमुच पापपुरुष विद्यमान है तथा वास्तव मे उसे दग्ध तथा विनष्ट किया जा सकता है! साधना के प्रारम्भ से ही मेरे शरीर मे जलन उत्पन्न हुई; तब मैने यह सोचा कि पुनः मुझे यह क्या रोग हो गया। क्रमशः उसके बहुत अधिक बढ़ जाने से वह असहनीय हो उठी। अनेक प्रकार के आयुर्वेदीय तेलों का प्रयोग किया गया; किन्तु उससे कुछ भी लाभ नही हुआ। तदनन्तर एक दिन मै पंचवटी मे बैठा हुआ था, उस समय एकाएक मैने देखा कि एक घोर श्यामवर्ण भीषणाकृति पुरुष मानो शराब पीकर हिलते-डुलते हुए (अपने शरीर को दिखाकर) इसके भीतर से निकल कर मेरे सम्मुख टहलने लगा। दूसरे ही क्षण मै क्या देखता हूँ कि और एक सौम्यमूर्ति पुरुष गेरुआ वस्त्र तथा त्रिशूल धारण किए हुए उसी प्रकार (शरीर के) भीतर से निकला तथा भीषणाकृति पुरुष पर बलपूर्वक आक्रमण कर उसे मार डाला! उस दिन से मेरा गात्रदाह भी घट गया! इस घटना से पूर्व छः महीने तक गात्रदाह से मुझे बहुत ही कष्ट भोगना पड़ा था।"

उक्त भक्ति के प्रभाव से श्रीरामकृष्णदेव के शारीरिक विकार तथा तज्जनित कष्ट—यथा गात्रदाह। प्रथम दाह—पापपुरुष के दग्ध होते समय, द्वितीय-प्रथम दर्शनलाभ के उपरान्त ईश्वर-विरह में; तृतीय—मधुरभाव के साधन के समय।

हमने श्रीरामकृष्णदेव से सुना है कि पाप पुरुष के विनष्ट होने के बाद गात्रदाह के निवृत्त हो जाने पर भी उसके कुछ ही दिन पश्चात् पुनः

गात्रदाह प्रारम्भ हुआ था। उस समय वैधी भक्ति की सीमा को पार कर वे अहैतुकी प्रेमाभक्ति के उच्च मार्ग के अनुसार श्रीजगदम्बा के पूजनादि मे नियुक्त थे। क्रमशः वह इतना बढ गया था कि भीगा अंगोछा मस्तक पर रखकर तीन-चार घण्टे तक गंगाजी मे शरीर डुबोकर बैठे रहने पर भी उन्हे शान्ति नहीं मिलती थी। बाद मे ब्राह्मणी ने आकर यह कहा कि श्रीभगवान के पूर्ण दर्शन के निमित्त उत्कण्ठा तथा विरहवेदना के कारण ही इस प्रकार का गात्रदाह हो रहा है तथा किसी सहज उपाय द्वारा उन्होंने गात्रदाह को दूर कर दिया। * तदनन्तर मधुरभाव के साधन के समय पुनः श्रीरामकृष्णदेव के शरीर मे गात्रदाह होने लगा था। हृदय कहता था, "हृत्पिण्ड के अन्दर मिट्टी के एक बड़े सकोरे मे अग्नि रखने पर जैसा उत्ताप तथा जिस प्रकार यातना होती है, उस समय श्रीरामकृष्ण-देव को ठीक वैसा ही अनुभव होता था। उससे वे व्याकुल हो जाते थे। बीच-बीच मे गात्रदाह फिर से होने के कारण उन्हे बहुत दिन तक कष्ट उठाना पडा था। तदनन्तर साधन-काल के कुछ वर्ष व्यतीत होने पर बारासात निवासी मुखतार श्री कानाईलाल घोषाल के साथ उनका परिचय हुआ था। वे एक उन्नत शक्तिसाधक थे तथा उन्होंने श्रीरामकृष्णदेव की इस प्रकार के गात्रदाह की बात को सुनकर उन्हे अपने अंग मे इष्टदेव के ताबीज धारण करने का परामर्श दिया था। ताबीज धारण करने के बाद फिर कभी उनको उस प्रकार गात्रदाह से कष्ट भोगना नहीं पड़ा था।"

पूजन के समय वैषयिक कार्यों के चिन्तन करने के हेतु रानी रासमणि को श्रीरामकृष्णदेव का दण्ड देना।

श्रीरामकृष्णदेव के उस प्रकार अद्भुत पूजन को देखने के पश्चात् जानबाजार मे वापस आकर मथुरामोहन ने रानी रासमणि से सारा वृत्तान्त कह दिया। उसे सुनकर भक्तिमती रानी अत्यन्त प्रसन्न हुई। भट्टाचार्य महोदय के मुखनिःसृत भक्तिपूर्ण संगीतों को सुनकर इसके पूर्व ही वे उनके प्रति अत्यन्त स्नेहपरायणा थीं, एवं श्रीगोविन्दजी की मूर्ति भग्न होने के समय उनका भावावेश तथा भक्ति-पुनीत बुद्धि का परिचय पाकर वे विस्मित हुई थीं। + अतः वे सहज ही समझ गई कि उनके सदृश

* गुरुभाव-उत्तरार्ध, प्रथम अध्याय देखिए।

\+ गुरुभाव-पूर्वार्ध, पचम अध्याय देखिए।

पवित्रहृदय व्यक्ति के लिए श्रीजगदम्बा की कृपा प्राप्त करना असम्भव नहीं है। किन्तु इसके कुछ ही दिन बाद एक ऐसी घटना हुई जिससे रानी तथा मथुरबाबू के उस विश्वास के नष्ट होने की विशेष सम्भावना दिखाई दी। एक दिन रानी मन्दिर मे श्रीजगदम्बा के दर्शन तथा पूजनादि करते समय तन्मय न होकर वैपयिक कार्यसम्बन्धी एक मुकदमे के नतीजे के बारे मे चिन्तन कर रही थी। श्रीरामकृष्णदेव उस समय वहाँ बैठकर उनको संगीत सुना रहे थे। भावाविष्ट श्रीरामकृष्णदेव उनके मन की बात जान गए तथा 'यहाँ पर भी वही चिन्तन'—यह कहते हुए उनके शरीर पर आघात कर उन्हे उस चिन्ता से विरत होने के लिए शिक्षा प्रदान की। श्रीजगदम्बा की कृपापात्री साधनसम्पन्ना रानी उससे अपने हृदय की दुर्बलताओं को अनुभव कर अनुतप्त हुई, पर उस घटना से श्रीरामकृष्णदेव के प्रति उनकी भक्ति विशेष बढ गई। इसका वर्णन अन्यत्र विशद रूप से किया गया है।*

इसके कुछ ही दिन बाद श्रीजगन्माता को लेकर श्रीरामकृष्णदेव का भावावेश तथा आनन्दोल्लास इस प्रकार बढ़ गया कि किसी तरह देवी का नित्य-नैमित्तिक पूजनादि करना भी उनके लिए असम्भव हो गया। आध्यात्मिक स्थिति की उन्नति होने पर वैधी कर्मों का त्याग किस प्रकार अपने आप होने लगता है, इसके दृष्टान्तस्वरूप श्रीरामकृष्णदेव कहा करते थे,—जैसे गृहस्थ-वधू जब तक गर्भवती नहीं होती है, तब तक उसकी सास उसे सभी पदार्थ खाने तथा समस्त काम-काज करने को देती है; गर्भसंचार होते ही उन विपयों मे कुछ-कुछ नियन्त्रण प्रारम्भ हो जाता है; तदनन्तर ज्यों-ज्यों गर्भ बढ़ता जाता है तदनुरूप उसके कार्य भी कम कर दिए जाते है; क्रमशः जब प्रसव का समय निकट आता है, तब गर्भस्थ शिशु की अनिष्टशंका से उसको कोई भी कार्य करने को नहीं दिया जाता; तत्पश्चात् जिस समय उसके सन्तान होती है, उस समय सन्तान की देखभाल मे ही उसका सारा समय व्यतीत होता रहता है।' श्रीजगदम्बा की बाह्य सेवा-पूजादि का परित्याग भी श्रीराम-कृष्णदेव के लिए ठीक उसी प्रकार स्वाभाविक रूप से होने लगा था।

भक्ति की परिणति से श्रीरामकृष्णदेव द्वारा बाह्यपूजन परित्याग तथा उनकी तत्कालीन स्थिति।

* गुरुभाव-पूर्वार्ध, पचम अध्याय देखिए।

सेवापूजादि के समय का उनका विचार भी उस समय विलुप्त हो चुका था। सर्वदा भावावेश में विह्वल रहने के कारण श्रीजगन्माता की जब जो सेवा करने की उन्हे इच्छा होती थी, तब वे तदनुरूप सेवा किया करते थे। जैसे कभी पूजन किए बिना ही उन्होंने नैवेद्य का भोग लगा दिया। अथवा ध्यान मे तन्मय होकर अपने पृथक् अस्तित्व के बारे में सम्पूर्णतया विस्मृत हो देवी के पूजन के निमित्त रखे हुए पुष्पचन्दनादि से वे अपने अंग को भूषित करने लगे! अपने भीतर तथा बाहर निरन्तर जगदम्बा के दर्शन से ही श्रीरामकृष्णदेव के तत्कालीन कार्य इस प्रकार होने लगे थे, यह बात हमने कई बार उनसे सुनी है। और यह भी सुना है कि यदि कभी वह तन्मयता किंचिन्मात्र भी कम हो जाती थी और फलस्वरूप अत्यन्त स्वल्प काल के लिए भी यदि उनके मातृदर्शन मे बाधा उपस्थित करती थी, तो उस समय उनमे ऐसी व्याकुलता छा जाती थी कि वे पछाड खाकर धरती पर गिर पड़ते थे और मुँह रगड़ते हुए इस प्रकार रुदन करते थे कि उसकी ध्वनि चारों ओर गूँज उठती थी। श्वास-प्रश्वास बन्द हो जाने के कारण उनके प्राण छटपटाया करते थे! पछाड़ खाकर गिरने के कारण उनके सर्वांग क्षतविक्षत तथा रुधिरलिप्त हो जाने पर भी उसका उन्हे कोई ध्यान नहीं रहता था। वे जल में गिर रहे है अथवा अग्नि मे, इस बात तक का कभी कभी वे अनुभव नहीं कर पाते थे। पर दूसरे ही क्षण पुनः श्रीजगदम्बा का दर्शन पाकर उनका वह भाव दूर हो जाता था और उनका मुखमण्डल अद्भुत ज्योति तथा उल्लास से पूर्ण हो उठता था — उस समय वे मानो सम्पूर्णतया एक दूसरे ही व्यक्ति बन जाते थे।

पूजन के परित्याग के सम्बन्ध में हृदय का वक्तव्य तथा श्रीरामकृष्णदेव की तत्कालीन स्थिति के बारे में मथुरबाबू का सन्देह।

श्रीरामकृष्णदेव की जब तक ऐसी स्थिति नहीं हुई थी, तब तक मथुरबाबू किसी तरह उनके द्वारा पूजनादि कार्य सम्पन्न करा रहे थे; किन्तु फिर यह असम्भव जानकर उन्होंने पूजनादि की दूसरी व्यवस्था करने का निश्चय किया। हृदय कहता था, "मथुरबाबू के इस प्रकार का निर्णय करने का और भी एक कारण उपस्थित हुआ था। एक दिन एकाएक पूजन के आसन से उठकर श्रीरामकृष्णदेव ने मन्दिर के अन्दर मुझे तथा मथुरबाबू को देखा और मेरा

हाथ पकड़कर पूजा के आसन पर बैठाकर मथुरबाबू की ओर लक्ष्य कर कहने लगे, 'आज से हृदय पूजन करेगा; माँ कह रही है कि मेरे पूजन की तरह वे उसके पूजन को भी समान रूप से ग्रहण करेंगी।' श्रद्धासम्पन्न मथुरबाबू ने श्रीरामकृष्णदेव की उस बात को देव-आदेश मानकर ग्रहण कर लिया।" हृदय की यह बात कहाँ तक सत्य है, हम कह नहीं सकते; किन्तु उस समय की स्थिति के अनुसार श्रीरामकृष्णदेव के लिए नित्य पूजनादि करना असम्भव था, इस बात को मथुरबाबू भलीभाँति समझ चुके थे।

प्रथम-दर्शन के अवसर से ही मथुरबाबू का मन श्रीरामकृष्णदेव के प्रति विशेषरूप से आकृष्ट हुआ था, यह बात हम पहले ही कह चुके हैं। और उस दिन के बाद से उनकी सब प्रकार की असुविधाओं को दूर कर उनको दक्षिणेश्वर के मन्दिर में रखने के लिए वे प्रयत्नशील हुए। तदनन्तर उनके अद्भुत गुणों का उन्हे क्रमशः ज्यों-ज्यों परिचय मिलने लगा, त्यों-त्यों मुग्ध होकर आवश्यकतानुसार उनकी सेवा तथा दूसरों के अनुचित व्यवहार से उनकी रक्षा करने मे वे संलग्न हुए थे। उदाहरणार्थ, श्रीरामकृष्णदेव की प्रकृति वायुप्रधान जानकर मथुरबाबू ने उनके लिए प्रतिदिन मिश्री के शरबत की व्यवस्था की थी; रागानुगा भक्ति के प्रभाव से अदृष्टपूर्व प्रणाली के अनुसार श्रीरामकृष्णदेव जब पूजन करने लगे थे, उस समय किसी विघ्न के उपस्थित होने की सम्भावना जानकर उन्होंने उनकी देखरेख की थी; इस प्रकार की और भी कुछ घटनाओं का अन्यत्र उल्लेख किया गया है।* किन्तु रानी रासमणि के अंग पर आघात कर श्रीरामकृष्णदेव ने जिस दिन उन्हे शिक्षा दी थी, उस दिन से कुछ सन्दिग्ध होकर मथुरबाबू ने यह सोच लिया था कि उन्हे वायुरोग हो गया है और यह बात हमारी दृष्टि मे सम्भव भी प्रतीत होती है। ऐसा मालूम होता है कि उस घटना से उनकी आध्यात्मिकता के साथ उन्मत्तता के संयोग का भी उन्होंने अनुमान किया था, क्योंकि उस समय उन्होंने कलकत्ते के सुप्रसिद्ध वैद्य श्री गंगाप्रसाद सेन के द्वारा उनकी चिकित्सा की व्यवस्था की थी।

वैद्यराज गंगाप्रसाद सेन की चिकित्सा।

* गुरुभाव-पूर्वार्ध, षष्ठ अध्याय देखिए।

केवल चिकित्सा की व्यवस्था कर ही मथुरबाबू सन्तुष्ट नहीं हुए थे। किन्तु युक्ति तथा तर्क के द्वारा उन्हें उस विषय को समझाने का भी उन्होंने भरसक प्रयत्न किया था जिससे श्रीरामकृष्णदेव अपने मन को संयत रखकर साधना मे अग्रसर हो सके। लाल-जवापुष्प के वृक्ष में श्वेत-जवा प्रस्फुटित होते देखकर वे उस समय पराजित हो किस प्रकार सम्पूर्ण रूप से श्रीरामकृष्णदेव के वशीभूत हुए थे, इन विषयों की चर्चा हमने अन्यत्र की है।*

इसके पूर्व हम यह कह चुके है कि प्रतिदिन नियमित रूप से मन्दिर मे देवी की सेवा श्रीरामकृष्णदेव के द्वारा सम्पन्न होना असम्भव जानकर मथुरबाबू ने उस समय दूसरी व्यवस्था की थी। श्रीरामकृष्णदेव के चाचाजी के पुत्र श्रीरामतारक चट्टोपाध्याय कार्य की तलाश मे उस समय वहाँ आए थे। मथुरबाबू ने उन्हे श्रीरामकृष्णदेव के स्वस्थ होने तक देवी के पूजन-कार्य पर नियुक्त किया था। यह घटना बंगला सन् १२६५ (१८५८ ई.) की है।

हलधारीजी का आगमन।

रामतारक को श्रीरामकृष्णदेव हलधारी कहकर पुकारते थे। इनके बारे में बहुत-सी बाते हमने उनसे सुनी है। हलधारी अच्छे विद्वान् तथा निष्ठासम्पन्न साधक थे। श्रीमद्भागवत, अध्यात्म रामायण आदि ग्रन्थों का वे प्रतिदिन पाठ किया करते थे। श्रीविष्णु-पूजा में उनकी अधिक प्रीति रहने पर भी शक्ति के प्रति उनका द्वेष नहीं था। इसलिए विष्णुभक्त होकर भी मथुरबाबू के अनुरोध से उन्होंने श्रीजगदम्बा पूजन करना स्वीकार किया था। मथुरबाबू से कहकर नित्य सीधा (सूखा सामान) लेकर अपने हाथ से रसोई बनाकर भोजन करने की उन्होंने व्यवस्था की थी। इस सम्बन्ध में मथुरबाबू ने उनसे पूछा था, "क्यों, तुम्हारे भाई श्रीरामकृष्ण तथा भानजे हृदय तो मन्दिर में प्रसाद ले रहे है?" इसके उत्तर में बुद्धिमान हलधारी ने उनको उत्तर दिया था, "मेरे भाई उच्च आध्यात्मिक स्थिति में अवस्थित है; उनको कभी दोषस्पर्श नहीं कर सकता; मै उस अवस्था में नहीं पहुँचा हूँ, इसलिए निष्ठा को त्यागने से मुझे दोष लगेगा।" मथुरबाबू उनकी उस बात को सुनकर बड़े सन्तुष्ट हुए और

* गुरुभाव-पूर्वार्ध, षष्ठ अध्याय देखिए।

तभी से हलधारी सीधा लेकर प्रतिदिन पंचवटी के नीचे अपने हाथ से रसोई बनाकर भोजन करते रहे।

शाक्तविरोधी न होने पर भी हलधारी की, देवी के लिए पशुबलि प्रदान करने की प्रवृत्ति नहीं होती थी। पहले श्रीजगदम्बा के लिए पशुबलि प्रदान करने की प्रथा वहाँ प्रचलित रहने के कारण उन दिनों वे आनन्दपूर्वक पूजन नहीं कर पाते थे। कहा जाता है कि लगभग एक महीने तक उस प्रकार क्षुब्ध हृदय से पूजन करने के पश्चात् एक दिन जब वे सन्ध्या करने बैठे तो उन्होंने देखा कि देवी भयंकर मूर्ति धारण कर उनसे कह रही है, "तू मेरा पूजन करना छोड दे, नहीं तो सेवापराध से तेरी सन्तान की मृत्यु होगी!" सुनने मे आता है कि मानसिक कल्पना समझकर प्रारम्भ मे उन्होंने उस आदेश पर कोई ध्यान नहीं दिया। किन्तु कुछ दिन बाद सचमुच जब उनके पुत्र के निधन का समाचार मिला तो उस समय उन्होंने श्रीरामकृष्णदेव से आद्योपान्त उस विषय को कहकर देवीपूजन से क्षमा ली। इसलिए तब से वे श्रीराधा-गोविन्दजी का तथा हृदय देवी का पूजन करते रहे। यह घटना हमने हृदय के भाई श्री राजारामजी से सुनी थी।

अष्टम अध्याय

प्रथम चार वर्ष की अन्य घटनाएँ

श्रीरामकृष्णदेव के साधनकाल की आलोचना के लिए उन्होंने हमसे इस काल के सम्बन्ध मे अपने श्रीमुख से जो कुछ कहा है, सर्वप्रथम उस ओर ध्यान देना होगा और तभी तत्कालीन घटनाओं का यथार्थ समय निरूपण करना सम्भव हो सकेगा। पाठकों से पहले ही यह कहा जा चुका है कि हमने उनसे सुना है कि सतत द्वादश वर्ष पर्यन्त निरन्तर वे विभिन्न मत के साधनों में निमग्न थे। रानी रासमणि के मन्दिर-सम्बन्धी देवसेवानिमित्त दानपत्र को देखने से यह पता चलता है कि बंगला सन् १२६२ के १८ ज्येष्ठ, (३१ मई, १८५५ ई.) गुरुवार, को दक्षिणेश्वर कालीमन्दिर की प्रतिष्ठा हुई थी। उसके कुछ ही महीने बाद श्रीरामकृष्णदेव ने पूजक-पद को ग्रहण किया था। अतः बंगला सन् १२६२ से लगाकर १२७३ (सन् १८५६ से १८६७) तक उनका साधनकाल था, यह बात निश्चित है। ये द्वादश वर्ष श्रीरामकृष्णदेव के साधनकाल के रूप में विशेषरूप से निर्दिष्ट है। उसके पश्चात् तीर्थदर्शन के निमित्त जाकर उन स्थानों मे वहाँ से दक्षिणेश्वर लौटकर भी वे कभी-कभी कुछ दिन के लिए साधना में संलग्न हुए थे।

साधन-काल का समय-निरूपण।

पूर्वोक्त द्वादश वर्ष को तीन हिस्सों में बाँटकर हम प्रत्येक भाग की आलोचना करेंगे। प्रथम—सन् १८५६ से लगाकर १८५९ तक के चार वर्ष की प्रधान-प्रधान घटनाओं की इससे पूर्व आलोचना की जा चुकी है। द्वितीय—सन् १८६० से लगाकर १८६३ पर्यन्त चार वर्ष श्रीरामकृष्णदेव ने ब्राह्मणी के निर्देशानुसार 'गोकुल-व्रत' से प्रारम्भ कर बंगाल मे प्रचलित चौसठ प्रकार के प्रधान तन्त्रनिर्दिष्ट साधनों का विधिवत् अनुष्ठान किया था। तृतीय—सन् १८६४ से लगा-

उक्त काल के तीन प्रधान विभाग।

कर १८६७ तक चार वर्ष, उन्हें 'जटाधारी' नामक रामोपासक साधु से 'राम-मन्त्र' का उपदेश तथा श्रीरामलला की मूर्ति प्राप्त हुई थी। वैष्णव-तन्त्र के अनुसार मधुरभाव में सिद्धि प्राप्त करने के निमित्त छः महीने तक उन्होंने स्त्री-वेश धारण किया था। आचार्य श्री तोतापुरीजी से संन्यास-दीक्षा लेकर समाधि की निर्विकल्प-भूमि मे वे आरूढ हुए थे तथा अन्त मे श्रीगोविन्दजी से उन्होंने इस्लाम धर्म का उपदेश ग्रहण किया था। उक्त द्वादश वर्ष के अन्दर ही वैष्णव-तंत्रोक्त सख्यभाव तथा 'कर्ता-भजा', 'नवरसिक' आदि वैष्णव मत के अवान्तर सम्प्रदायों की साधन प्रणालियों से भी वे परिचित हुए थे। वैष्णव धर्म के अन्तर्गत समस्त सम्प्रदायों का उन्हे जो विशेष परिचय था, उसकी पुष्टि इस बात से होती है कि वैष्णवचरण गोस्वामी आदि विभिन्न मार्ग के साधक उनके समीप आध्यात्मिक सहायता प्राप्त करने के निमित्त आते रहते थे। श्रीराम-कृष्णदेव के साधनकाल को तीन भागों मे विभक्त कर पर्यालोचना करने पर उक्त तीन भागों के प्रत्येक भाग मे उनके द्वारा अनुष्ठित साधनों के अन्दर एक प्रकार की शृंखलाबद्ध विभिन्नता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

साधनकाल के प्रथम चार वर्षों में श्रीरामकृष्णदेव की स्थिति तथा दर्शनादि की पुनरावृत्ति।

हम यह देख चुके है कि साधनकाल की प्रारम्भिक दशा मे श्रीराम-कृष्णदेव ने बाह्य सहायता के रूप मे केवल श्री केनाराम भट्ट महोदय से दीक्षा ग्रहण की थी। ईश्वर-प्राप्ति के निमित्त आन्तरिक व्याकुलता ही उस समय उनकी एकमात्र सहायक हुई थी। उसके ही प्राबल्य से अत्यन्त स्वल्पकाल के अन्दर उनके शरीर तथा मन मे विशेष परिवर्तन उपस्थित हुए थे। अपने उपास्य के प्रति असीम प्रीति उत्पन्न करने के पश्चात् उसी ने वैधी-भक्ति के नियमों का उल्लंघन करा कर क्रमशः उन्हें रागानुगा भक्ति की ओर अग्रसर किया था तथा श्रीजगन्माता के प्रत्यक्ष दर्शन का सौभाग्य प्रदान कर उनको योग-विभूति का अधिकारी भी बनाया था।

पाठक सम्भवतः यह कहे कि—'फिर बाकी ही क्या रह गया ?—उसी समय योगसिद्धि तथा ईश्वरलाभ कर श्रीरामकृष्णदेव तो कृतार्थ हो ही चुके थे; फिर साधन की क्या आवश्यकता थी ?' इसके उत्तर में

यह कहना पड़ता है कि—एक प्रकार से यह बात यथार्थ होने पर भी उनके लिए परवर्ती काल में साधन मे प्रवृत्त होने का एक दूसरा कारण था। श्रीरामकृष्णदेव कहते थे—'साधारणतया वृक्ष तथा लताओं मे सर्वप्रथम फूल तथा बाद मे फल लगते है; किन्तु उनमे से कुछ ऐसे भी है जिनमे प्रथम फल दिखाई देने के पश्चात् फूल देखने को मिलते है!' साधनक्षेत्र मे श्रीरामकृष्णदेव के मन का विकास भी ठीक उसी प्रकार से हुआ था। इसलिए पाठकों की पूर्वोक्त बात को हम एक प्रकार से यथार्थ मानते है। किन्तु साधनकाल के प्रथम भाग मे उनके लिए अद्‌भुत अनुभूतियाँ तथा जगदम्बा के दर्शनादि प्राप्त होने पर भी, जब तक उन विषयों को शास्त्र-वर्णित साधकों की उपलब्धियों के साथ वे ठीक-ठीक मिला नहीं पा रहे थे, तब तक उनकी सत्यता तथा चरम सीमा के सम्बन्ध में उनका दृढ़ निश्चय नहीं हो रहा था। केवल हृदय की व्याकुलता से उन्होंने इससे पूर्व जो अनुभव किया था, पुनः शास्त्रनिर्दिष्ट मार्गप्रणाली का अवलम्बन कर उसे प्रत्यक्ष करने की उन्हे आवश्यकता प्रतीत हुई थी। शास्त्रों का यह कथन है कि श्रीगुरुमुख से श्रवण किए हुए अनुभव शास्त्रों में लिपि-बद्ध पूर्व-पूर्व युगों के साधुओं के अनुभव के साथ जब तक साधक अपने धर्मजीवन के दिव्य दर्शन तथा अलौकिक अनुभवों को मिलाकर उनकी समता को प्रत्यक्ष नहीं कर लेता है, तब तक वह पूर्णतया निश्चिन्त नहीं हो पाता है। इन तीनों विषयों की एकता का प्रत्यक्ष होते ही फिर वह सम्पूर्णरूप से संशयरहित हो पूर्ण शान्ति का अधिकारी बन जाता है।

उस समय श्रीजगदम्बा के दर्शन प्राप्त करने के पश्चात् श्रीरामकृष्णदेव पुनः साधन में क्यों प्रवृत्त हुए? गुरु-उपदेश, शास्त्र-वाक्य तथा अपने द्वारा किए गए प्रत्यक्ष अनुभव की एकता को देखकर उनका सन्तोष।

पूर्वोक्त कथन के दृष्टान्त-स्वरूप हम पाठकों के लिए व्यासनन्दन परमहंसाग्रगण्य श्रीशुकदेव के जीवनवृत्तान्त का निर्देश कर सकते है। मायारहित शुकदेवजी के जीवन में जन्म से ही नाना प्रकार के दिव्य-दर्शन तथा अनुभव उपस्थित होने लगे थे। किन्तु वे इस बात को समझ नहीं पा रहे थे कि पूर्णज्ञान प्राप्त

व्यासनन्दन शुकदेव का उक्त विषयक वृत्तान्त।

कर कृतार्थ होने के कारण ही उनको इस प्रकार के अनुभव हो रहे थे। पूज्य व्यासदेव के समीप वेदादि शास्त्रों का अध्ययन समाप्त कर शुकदेवजी एक दिन अपने पिताजी से बोले, "शास्त्रों मे जिन अवस्थाओं का उल्लेख है, मै आजन्म उनका अनुभव कर रहा हूँ; फिर भी आध्यात्मिक राज्य के चरम सत्य की मुझे उपलब्धि हुई है या नहीं, यह मै पूर्णतया निश्चय नहीं कर पा रहा हूँ; अतः उस विषय मे आपको जो विदित है, कृपा कर मुझे बतलाएँ।" व्यासदेवजी यह सोचने लगे कि शुक को आध्यात्मिक लक्ष्य तथा चरम सत्य के सम्बन्ध मे मैंने निरन्तर उपदेश दिया है, फिर भी उसके मन का सन्देह दूर नही हुआ है; वह यह सोच रहा है कि उसे पूर्ण ज्ञान प्राप्त होने पर वह संसार को त्याग देगा, इसलिए मैंने स्नेहवश अथवा अन्य किसी कारण से उससे सारी बाते नहीं बताई है, अतः अन्य किसी मनीषी के समीप जाकर उसे उन विषयों को श्रवण करना होगा—इस प्रकार चिन्तन कर व्यासदेवजी ने कहा, 'मै तुम्हारे इस सन्देह को दूर करने मे असमर्थ हूँ; मिथिला के विदेहराज जनकजी की यथार्थ ज्ञानी होने की ख्याति तुमसे छिपी नही है, अतः उनके समीप जाकर तुम अपने प्रश्नों की मीमांसा कर लो।' शुकदेवजी अपने पिताजी की बात सुनकर तुरन्त ही मिथिला पहुँचे तथा राजर्षि जनकजी से ब्रह्मज्ञ पुरुषों को जिस प्रकार की अनुभूति होती है, उसे श्रवण कर गुरु-उपदेश, शास्त्रवाक्य तथा अपने जीवन के अनुभवों मे ऐक्य देखकर शान्ति प्राप्त की थी। उपरोक्त कारण के अतिरिक्त श्रीरामकृष्णदेव के लिए परवर्ती काल मे साधन करने के और भी कई विशेष कारण थे। यहाँ पर हम उनका उल्लेख मात्र ही कर रहे है।

श्रीरामकृष्णदेव के साधन के अन्य कारण; स्वार्थ के निमित्त नहीं—दूसरो के हित के लिए ही वे साधन में प्रवृत्त हुए थे।

शान्ति प्राप्त कर स्वयं कृतार्थ होना ही उनके साधन का ध्येय नहीं था। श्रीजगन्माता ने जगत् के कल्याणार्थ ही उनको शरीर-धारण कराया था। इसीलिए परस्पर कलहयुक्त धार्मिक मतों का अनुष्ठान कर सत्यासत्य के निर्णय करने का अद्भुत प्रयास उनके जीवन मे उपस्थित हुआ था। अतः यह कहा जा सकता है कि समग्र आध्यात्मिक जगत् के आचार्य-पद को ग्रहण करने के निमित्त उन्हें सर्व

प्रकार के धार्मिक मतों के साधन तथा उनके चरम उद्देश के साथ परिचित होना पड़ा था। इतना ही नहीं, केवल अनुष्ठान की सहायता से उनकी तरह निरक्षर पुरुष के जीवन में शास्त्रवर्णित अवस्थाओं को उदित कर श्रीजगदम्बा श्रीरामकृष्णदेव के द्वारा वर्तमान युग में वेद, बाईबिल, पुराण, कुरान आदि समस्त धर्मशास्त्रों की सत्यता को पुनः प्रतिष्ठित करने के लिए अग्रसर हुई थीं। इसीलिए स्वयं शान्तिलाभ करने के पश्चात् भी उनके साधनों का विराम नहीं हुआ था। प्रत्येक धर्म-मत के सिद्ध-पुरुष तथा विद्वानों को यथासमय दक्षिणेश्वर में लाकर श्रीरामकृष्णदेव को समस्त धर्म-मतसम्बन्धी साधनानुष्ठानपूर्ण शास्त्रों को सुनने का जो अधिकार जगन्माता ने विशेष प्रयोजन साधन के निमित्त ही प्रदान किया था, उसे, हम जितना ही उनके जीवन की आलोचना मे प्रविष्ट होंगे, उतना ही स्पष्टतया समझ सकेंगे।

यथार्थ व्याकुलता के उदय से साधक को ईश्वर-प्राप्ति। श्रीराम-कृष्णदेव के जीवन में वह व्याकुलता कहाँ तक उपस्थित हुई थी।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि साधनकाल के प्रथम चार वर्षों में ईश्वर-दर्शन के निमित्त हृदय का व्याकुल आग्रह ही श्रीरामकृष्णदेव का प्रधान अवलम्बन था। उनको सब विषयों में शास्त्रनिर्दिष्ट विधिपूर्वक ठीक मार्ग मे परिचालित कर आध्यात्मिक उन्नति की ओर बढाने के लिए उस समय कोई भी व्यक्ति उनके समीप उपस्थित नहीं हुआ था। इसलिए सभी साधन-प्रणालियों के अन्तर्गत तीव्र आग्रह ही उस समय उनका एकमात्र सहारा था। केवल उसी की सहायता से श्रीरामकृष्णदेव को श्रीजगदम्बा का दर्शन प्राप्त हुआ था और इससे यह भी प्रमाणित होता है कि बाह्य किसी विषय की सहायता न मिलने पर भी केवल व्याकुलता के द्वारा ही साधक को ईश्वर-प्राप्ति हो सकती है, किन्तु केवल उसकी सहायता से सफल होने के लिए उस व्याकुलता का परिमाण कितना अधिक होना वांछनीय है, बहुधा हम इस बात का विचार करना भूल जाते है। श्रीरामकृष्णदेव के तत्कालीन जीवन की पर्यालोचना करने पर हमे यह बात स्पष्ट प्रतीत होती है। हमने देखा है कि तीव्र व्याकुलता की प्रेरणा से उनके भोजन, निद्रा, लज्जा, भयादि, शारीरिक एवं मानसिक दृढ़ संस्कार तथा अन्य सारे

अभ्यास मानो कहीं विलुप्त हो चुके थे। साथ ही शारीरिक स्वास्थ्यरक्षण करना तो दूर रहा, अपने जीवन की रक्षा की ओर भी उनका किंचित् मात्र ध्यान नहीं था! श्रीरामकृष्णदेव कहते थे, "शरीर के संस्कार की ओर बिलकुल ध्यान न रहने से उस समय मस्तक के केश बढकर धूल-मिट्टी लगने के कारण अपने-आप जटा बन चुके थे। ध्यान करने के लिए बैठने पर मन की एकाग्रता से शरीर स्थाणु की तरह ऐसा निश्चल हो जाता था कि उसे जड़ पदार्थ समझकर बिना किसी संकोच के मेरे मस्तक पर चिड़ियाँ आकर बैठी रहती थीं तथा केश की अन्दर की धूल मे चोंच गाड़कर चावल के कणों को ढूँढा करती थीं! पुनः कभी कभी भगवद्विरह मे अधीर हो धरती पर मै इस प्रकार अपने मुँह को रगड़ता था कि मुँह छिल जाता था तथा जगह-जगह से रुधिर निकलने लगता था! इस तरह ध्यान, भजन, प्रार्थना, आत्मनिवेदन आदि में उस समय मेरा सारा दिन किस प्रकार से निकल जाता था, इसका मुझे कुछ भी होश नहीं रहता था! तदनन्तर सन्ध्या होने पर जब चारों ओर से शंख घन्टों की ध्वनि होती थी, तब मुझे यह ख्याल होता था कि दिन डूब चुका है, और वह दिन भी व्यर्थ निकल गया, माँ का दर्शन नहीं मिला। उस समय तीव्र क्षोभ से मेरा हृदय इस प्रकार व्याकुल हो उठता था कि मै शान्त नहीं हो पाता था, पछाड़ खाकर धरती पर गिरकर 'माँ, अभी तक तूने दर्शन नही दिया' यह कहकर जब मै जोर से रोने लगता, उस समय मेरा रुदन चारों ओर गूँज उठता था तथा यातना से मै छटपटाया करता था। लोग कहते थे, 'पेट मे शूल का दर्द होने लगा है, इसीलिए वह इतना रो रहा है।' " हम लोग जिस समय श्रीरामकृष्णदेव के समीप पहुँचे थे, उस समय कभी-कभी हम लोगों को ईश्वर के निमित्त हृदय मे तीव्र व्याकुलता की आवश्यकता को समझाने के लिए इन बातों को सुनाते हुए आक्षेप के साथ वे कहा करते थे, "स्त्री-पुत्रादि की मृत्यु अथवा जमीन-जायदाद के नष्ट होने पर लोग आँखों से घड़ों पानी बहाते है, पर ईश्वर का दर्शन हमे नहीं हुआ इसके लिए क्या एक चुल्लू भर भी पानी कभी किसी की आँखों से निकला है? और उल्टा कहते है— 'उनको इतना पुकारा, फिर भी उन्होंने दर्शन नहीं दिया।' ईश्वर के लिए इस प्रकार व्याकुल होकर एकबार पुकारो तो सही, देखे कैसे वे दर्शन

नहीं देते है ?" उनकी ये बातें हमारे हृदय मे भिद जाती थीं; यह सुनने से ही हमे यह अनुभव होता था कि अपने जीवन मे इन बातों की सत्यता का प्रत्यक्ष करने के कारण ही वे इस प्रकार असन्दिग्ध हो उन्हे इस प्रकार कह पा रहे है।

साधनकाल के प्रथम चार वर्ष मे श्रीजगदम्बा के दर्शन मात्र से ही श्रीरामकृष्णदेव निश्चिन्त नहीं हुए थे। भावावस्था में श्रीजगन्माता के दर्शन करने के पश्चात् अपने कुलदेवता श्रीरघुवीर की ओर उनका चित्त आकृष्ट हुआ था। यह समझकर कि हनुमानजी की भाँति अनन्य भक्ति के द्वारा ही श्रीरामचन्द्रजी का दर्शन लाभ सम्भव है, दास्य भक्ति मे सिद्ध होने के निमित्त वे उस समय अपने मे महावीरजी के भाव का आरोप कर कुछ दिन के लिए साधना मे प्रवृत्त हुए थे। निरन्तर महावीरजी का चिन्तन करते हुए उस आदर्श मे वे इतने तन्मय हो गए थे कि कुछ काल के लिए उन्हें अपने पृथक् अस्तित्व तथा व्यक्तित्व तक का बोध लुप्त हो चुका था। वे कहते थे, "उस समय आहारविहारादि सभी कार्य मुझे हनुमानजी की तरह करने पड़ते थे--इसका तात्पर्य यह नहीं है कि मै इच्छापूर्वक उन कार्यों को किया करता था, किन्तु अपने-आप ही वैसा हो जाता था। पहनने के वस्त्र को पूँछ की तरह लपेटकर मै अपनी कमर में बाँधता था, उछल कूदकर चलता था, फल मूलादि के अतिरिक्त और कुछ भी नही खाता था तथा छिलके निकालकर फल खाने की मेरी प्रवृत्ति नहीं होती थी, पेड़ के ऊपर ही अधिक समय बिताया करता था और गम्भीर स्वर से 'रघुवीर, रघुवीर' कहकर निरन्तर मै उनको पुकारता रहता था। उस समय मेरी आँखें सदा चञ्चल रहती थीं तथा आश्चर्य है कि उस समय मेरी रीढ की हड्डी का अन्तिम छोर भी लगभग एक इच बढ गया था।"* उनकी इस बात को सुनकर हमने उनसे पूछा था, "महाशय, आपके शरीर का वह अंश क्या अब भी उसी प्रकार है ?" उत्तर मे उन्होंने कहा था, "नही, मन के ऊपर से उस भाव का प्रभुत्व हट जाने के बाद धीरे-धीरे वह पहले के समान स्वाभाविक आकार का पुनः हो गया है।"

महावीरजी के अनुगामी होकर श्रीरामकृष्णदेव द्वारा दास्यभाव की साधना।

* Enlargement of the Coccyx.

दास्य भक्ति के साधन के समय श्रीरामकृष्णदेव के जीवन में एक अभूतपूर्व दर्शन तथा अनुभव हुआ था। वह दर्शन तथा अनुभव, इससे पूर्व उन्हे जितने दर्शन-अनुभवादि हुए थे, उनसे इतना नवीन प्रकार का था कि उनके हृदय में गहरे रूप से अंकित होकर उनकी स्मृति मे वह निरन्तर जागरूक रहा। वे कहते थे, "उस समय एक दिन मै पंचवटी के नीचे बैठकर ध्यान-चिन्तनादि कुछ नही कर रहा था, ऐसे ही बैठा था, उसी समय एक अनुपम ज्योतिर्मयी स्त्रीमूर्ति मेरे समीप आविर्भूत हुई और वह स्थान आलोकित हो उठा। तब केवल वह मूर्ति ही मुझे दृष्टिगोचर नहीं हो रही थी, किन्तु पंचवटी की वृक्ष-लताएँ तथा गंगाजी आदि सभी कुछ मुझे दिखाई दे रहा था। मैने देखा कि वह मूर्ति मानवीय है क्योंकि देवियो की तरह वह त्रिनेत्रयुक्त नहीं है। किन्तु प्रेम, दुःख, करुणा तथा सहिष्णुतापूर्ण उस प्रकार के मुखमण्डल की भाँति अपूर्व ओजस्वी गम्भीर भाव देवीमूर्तियों मे भी प्रायः देखने को नहीं मिलता है! प्रसन्न दृष्टि से मुग्ध करती हुई वह देवी-मानवी धीरे-धीरे उत्तर से दक्षिण, मेरी ओर आ रही थीं! स्तम्भित होकर मै सोचने लगा, 'ये कौन है?' — ठीक उसी समय एक बड़ा भारी बन्दर कहीं से 'हुप! हुप!' करता हुआ वहाँ आकर उनके चरणों पर गिर पड़ा, यह देखकर मेरा मन भीतर से कह उठा, 'सीता, जन्मदुःखिनी सीता, जनकराज नन्दनी सीता, राममयजीविता सीता!' तब 'माँ' 'माँ' कहकर अधीर हो मै उनके चरणों मे लोट ही रहा था कि तत्काल वे बड़ी तेजी से आगे बढ़कर (अपने शरीर को दिखाते हुए) इसमे प्रविष्ट हो गई!—आनन्द तथा विस्मय से मै विह्वल हो उठा तथा अचेत होकर गिर पड़ा। ध्यान-चिन्तनादि के बिना इस प्रकार का कोई दर्शन इससे पूर्व मुझे कभी प्राप्त नहीं हुआ था। जन्मदुःखिनी सीताजी का दर्शन सर्वप्रथम प्राप्त होने के कारण ही सम्भवतः मुझे उनकी तरह आजन्म दुःख भोगना पड़ रहा है!"

दास्य भक्ति के साधन के समय श्रीसीतादेवी के दर्शन मिलने का विवरण।

तपस्या के लिए उपयोगी पवित्र भूमि की आवश्यकता अनुभव कर श्रीरामकृष्णदेव ने उस समय हृदय से एक नवीन पंचवटी* स्थापित

* अश्वत्थबिल्ववृक्षच वटधात्री अशोककम्।

करने की अभिलाषा व्यक्त की थी। हृदय कहता था, "पंचवटी के समीपवर्ती 'हाँसपुकुर' नामक पोखर को उस समय साफ करवाया गया था तथा प्राचीन पंचवटी के समीपस्थ नीची जमीन में उस मिट्टी को डालकर उसे समतल करने के कारण इससे पूर्व श्रीरामकृष्णदेव जिस आमले के वृक्ष के नीचे बैठकर ध्यान किया करते थे, वह नष्ट हो चुका था।" तदनन्तर इस समय जहाँ साधनकुटीर है, उसके पश्चिम की ओर श्रीरामकृष्णदेव ने स्वयं अपने हाथों से एक अश्वत्थ वृक्ष रोपकर हृदय के द्वारा वट, अशोक, बिल्व तथा आमले के पौधे लगवाए एवं तुलसी तथा अपराजिता (एक प्रकार की लता) के बहुत-से पौधे लगाकर उन्होंने समग्र स्थल को घिरवा दिया। बकरी तथा गायों से उन पौधों की रक्षा के निमित्त मन्दिरस्थित बगीचे के 'भर्त्तामारी' नामक एक माली की सहायता से जिस प्रकार अद्भुत उपाय अवलम्बन कर उन्होने उस स्थान मे घेरा लगवाया था, उसका अन्यत्र उल्लेख किया गया है। × श्रीरामकृष्णदेव की देखरेख तथा नियमित जल सिंचन से तुलसी तथा अपराजिता के वृक्ष शीघ्र ही इतने बढ़ गए तथा इस प्रकार घने हो उठे कि उनके अन्दर बैठकर जब वे ध्यान करते थे, उस समय बाहर के लोग उन्हे एकदम नहीं देख पाते थे। कालीमन्दिर प्रतिष्ठित होने की बात प्रचारित होने के बाद गंगासागर तथा श्रीजगन्नाथधाम दर्शनाभिलाषी पथिक साधुवृन्द, उन दोनों तीर्थों में जाते समय बीच में दो-चार दिन के लिए श्रद्धासम्पन्न रानी का आतिथ्य स्वीकार कर दक्षिणेश्वर के मन्दिर में विश्राम करने लगे। + श्रीरामकृष्णदेव

अपने हाथो से श्रीरामकृष्णदेव के द्वारा पचवटी की स्थापना।

वटीपंचकमित्युक्त स्थापयेत् पचदिक्षु च ॥
अश्वत्थ स्थापयेत्प्राचि बिल्वमुत्तरभागतः ।
वट पश्चिमभागे तु धात्री दक्षिणतस्तथा ॥
अशोक वन्हिदिक्स्थाप्य तपस्यार्थं सुरेश्वरि ।
मध्ये वेदी चतुर्हस्ता सुन्दरी सुमनोहराम् ॥

इति--स्कन्दपुराण ।

× गुरुभाव-पूर्वार्ध, द्वितीय अध्याय देखिए।
+ गुरुभाव-उत्तरार्ध, द्वितीय अध्याय देखिए।
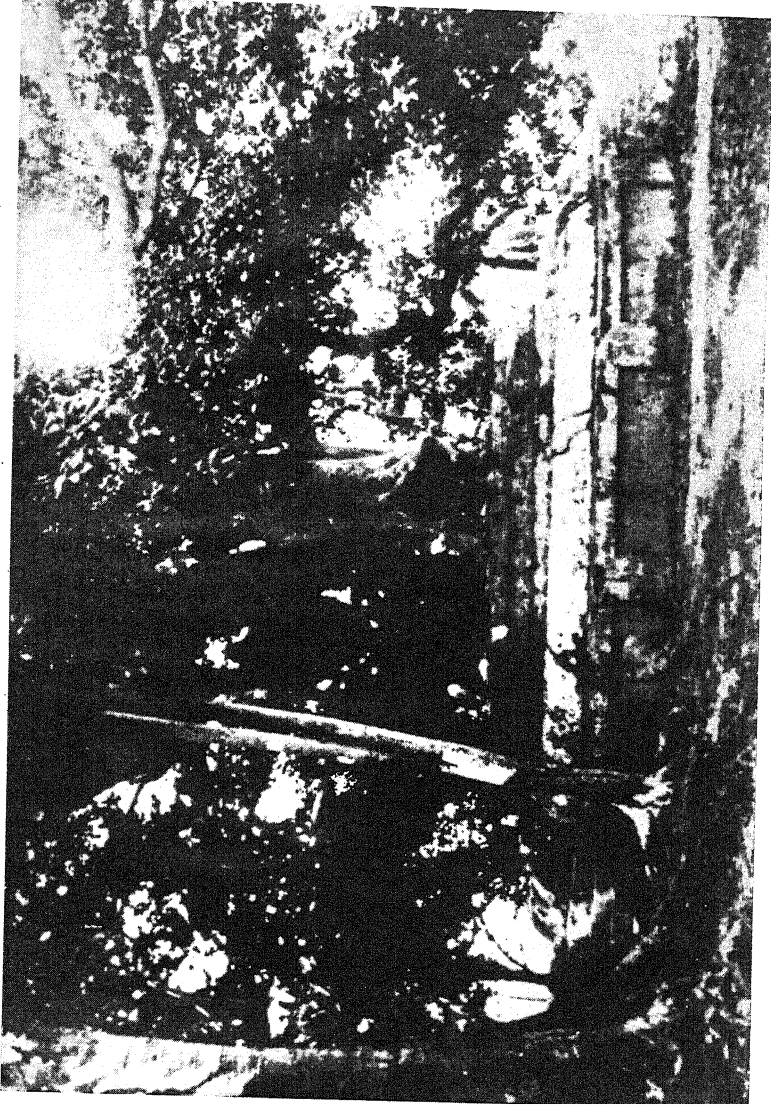
पंचवटी

कहते थे कि इस तरह अनेक साधक तथा सिद्ध महापुरुषों का वहाँ पदार्पण हुआ था। ऐसा प्रतीत होता है कि उनमें से किसी से उपदेश प्राप्त कर उस समय श्रीरामकृष्णदेव प्राणायाम, हठयोग आदि की क्रियाओ का अभ्यास करते थे। हलधारी-सम्बन्धी निम्नलिखित घटना को कहते समय एक दिन उन्होंने हमसे इस विषय का संकेत किया था। हठयोग की क्रियाओं का स्वयं अभ्यास करने के पश्चात् उसके परिणाम को देखकर ही वे अपने परवर्ती जीवन में हम लोगों से उन क्रियाओं को करने के लिए मना करते थे। हमें विदित है कि जब कोई इस विषय में उपदेश प्राप्त करने के निमित्त उनके पास जाता था, तब उसे यह उत्तर मिलता था—"ये साधन वर्तमान समय के लिए उपयोगी नहीं है। कलियुग मे जीव अल्पायु तथा अन्नगतप्राण है; इस समय हठयोग का अभ्यास कर शरीर को दृढ़ बनाने के पश्चात् राजयोग की सहायता से ईश्वर को पुकारने का समय ही कहाँ है? हठयोग की क्रियाओं का अभ्यास करने के लिए सिद्ध-गुरु के साथ निरन्तर रहना पड़ता है तथा आहार-विहारादि सभी विषयों मे उनसे उपदेश लेकर कठोर नियमों का पालन करना पड़ता है। नियमों में किंचित् व्यतिक्रम होने पर व्याधि तथा कभी-कभी साधकों की मृत्यु तक हो जाती है। इसलिए उनके अनुष्ठान की आवश्यकता नहीं है। मन के निरोध के लिए हो तो प्राणायाम तथा कुम्भकादि के द्वारा वायु का निरोध किया जाता है? ईश्वर-भक्तिसंयुक्त ध्यान से मन तथा वायु दोनों स्वतः ही निरुद्ध होते जाते है। कलिकाल में जीव स्वल्पायु तथा स्वल्पशक्ति होने के कारण भगवान ने कृपापूर्वक ईश्वर-प्राप्ति के मार्ग को सुगम बना दिया है। स्त्री-पुत्रों के वियोग से हृदय में जिस प्रकार व्याकुलता तथा उनके अभाव का अनुभव हुआ करता है, ईश्वर के निमित्त केवल चौबीस घण्टे के लिए ठीक उसी प्रकार की व्याकुलता किसी के हृदय मे स्थायी होने पर इस समय भी वे उसे दर्शन देकर अवश्य कृतार्थ करते है—इसमें कोई सन्देह नहीं।"

श्रीरामकृष्णदेव द्वारा हठयोग का अभ्यास।

'लीलाप्रसंग' में अन्यत्र एक स्थल पर पाठको से यह कहा गया है कि वर्तमान समय में स्मृतिशास्त्र के अनुगामी भारतीय साधकवृन्द

साधनानुष्ठान में प्रायः तन्त्रों का सहारा लिया करते है तथा वैष्णव सम्प्रदाय के अनुगामी साधक प्रायः परकीया प्रेमसाधनरूप मार्ग की ओर तीव्र गति से अग्रसर होते है।* श्रीराधागोविन्दजी के पूजनकार्य मे नियुक्त होने के कुछ दिन बाद वैष्णवमत-प्रीति-सम्पन्न हलधारी ने भी पूर्वोक्त साधन मार्ग का अवलम्बन किया था। लोगों को इसका पता लगने पर वे परस्पर कानाफूसी करने लगे; किन्तु हलधारी के सम्बन्ध मे वाक्सिद्ध अर्थात् जिससे वे जो कुछ कह देगे वही होगा, इस प्रकार की प्रसिद्धि होने के कारण कहीं वे कुपित न हो जायॅ, इसलिए उनके समक्ष उस बात की आलोचना या हास-परिहास करने का किसी को साहस नहीं होता था। क्रमशः श्रीरामकृष्णदेव को अपने अग्रज के सम्बन्ध मे यह बात विदित हुई तथा चुपके चुपके लोग इस बात की चर्चा करते हुए उनकी निन्दा कर रहे है, यह देखकर उन्होंने उनसे सारी बाते स्पष्ट रूप से कह दीं। किन्तु श्रीरामकृष्णदेव के कथन का विपरीत अर्थ ग्रहण कर अत्यन्त रुष्ट हो हलधारी ने कहा—"कनिष्ठ होकर तूने मेरी अवज्ञा की? तेरे मुँह से खून गिरेगा।" श्रीरामकृष्णदेव ने अनेक प्रकार से उन्हे प्रसन्न करने का प्रयास किया, किन्तु उस समय उन्होंने किसी बात पर ध्यान नहीं दिया।

हलधारी का अभिशाप।

उक्त घटना के कुछ दिन बाद एक दिन रात के लगभग आठ-नौ बजे श्रीरामकृष्णदेव के तालु में एकाएक बड़ी खुजली उठी और उससे उनके मुँह से वास्तव में खून की धारा बहने लगी। श्रीरामकृष्णदेव कहते थे, "सेम की पत्ती के रस की तरह उसका रंग घोर काला था तथा इतना गाढ़ा था कि उसका कुछ अंश मुँह से बाहर गिरने लगा और कुछ मुँह के अन्दर जम जाने के कारण सामने के दाँतों के अगले भाग में बरगद की जटा की तरह लटकने लगा! मुँह के अन्दर कपड़ा दबाकर मैने खून बन्द करने की चेष्टा की, फिर भी बन्द न होने से मुझे अत्यन्त भय हुआ। समाचार पाकर सब लोग दौड़कर मेरे पास आए। हलधारी उस समय मन्दिर मे सेवा का कार्य कर रहा था;

उक्त अभिशाप कैसे सफल हुआ था।

* गुरुभाव-उत्तरार्ध, प्रथम अध्याय देखिए।

इस समाचार से घबड़ाकर वह भी आ गया। मैंने उससे कहा, 'दादा, देखो तो सही, अभिशाप देकर तुमने मेरी यह क्या दशा कर डाली?' मेरी अधीरता को देखकर वह भी रोने लगा।

"मन्दिर मे उस दिन एक प्राचीन विज्ञ साधु आए हुए थे। शोरगुल सुनकर वे भी मुझे देखने आए एवं खून का रंग तथा मुँह के अन्दर जिस जगह से वह निकल रहा था, उसकी परीक्षा कर उन्होंने कहा, 'कोई डर नहीं है, खून निकल जाने से अच्छा ही हुआ है। मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि तुम योगसाधन किया करते थे। हठयोग की चरम दशा मे जड़समाधि होती है, तुम्हे भी वह हो रही थी। सुषुम्ना के द्वार खुल जाने से शरीर का खून मस्तक पर चढ़ रहा था। मस्तक पर न चढ़कर अब इस प्रकार मुँह के अन्दर से अपने-आप निकलने का एक मार्ग बनाकर वह निकल गया, यह अच्छा ही हुआ; क्योंकि जड़समाधि लगने से वह किसी तरह भंग नहीं होती। तुम्हारे शरीर द्वारा श्रीजगन्माता का कोई विशेष कार्य है; अतः उन्होंने इस प्रकार से तुम्हारी रक्षा की!' महात्माजी की इस बात को सुनकर मैं शान्त हुआ।" श्रीरामकृष्णदेव के सम्बन्ध मे हलधारी का वह अभिशाप इस प्रकार 'काकतालीय न्याय' से सफल होकर वरदान के रूप में परिणत हुआ था।

श्रीरामकृष्णदेव के सम्बन्ध में बारम्बार हलधारी की धारणा-परिवर्तन का विवरण।

हलधारी के प्रति श्रीरामकृष्णदेव मे एक सुन्दर मधुर रहस्यमय भाव विद्यमान था। पहले ही कहा जा चुका है कि हलधारी श्रीरामकृष्णदेव के चाचाजी के पुत्र थे तथा उनसे उम्र मे बड़े थे। सन् १८५८ के लगभग दक्षिणेश्वर आकर वे श्रीराधा-गोविन्दजी के पूजन-कार्य में संलग्न हुए तथा सन् १८६५ में कुछ दिन तक वे उस कार्य को करते रहे। अतः श्रीरामकृष्णदेव के साधनकाल के द्वितीय चार वर्ष तथा उसके बाद दो वर्ष से भी अधिक काल तक दक्षिणेश्वर में रहकर उन्हे श्रीरामकृष्णदेव को देखने का अवसर प्राप्त हुआ था। फिर भी श्रीरामकृष्णदेव के सम्बन्ध मे उनकी कोई निश्चित धारणा नही बन पायी थी। वे स्वयं अत्यन्त निष्ठासम्पन्न थे; इसलिए भावाविष्ट होकर श्रीरामकृष्णदेव का वस्त्र, यज्ञोपवीत आदि का परित्याग उन्हे नहीं सुहाता था। वे सोचते थे कि उनका कनिष्ठ भ्राता यथेच्छाचारी अथवा पागल हो

गया है। हृदय कहता था, "वे कभी-कभी मुझसे कहा करते थे, 'हृदु, कभी तो वे वस्त्र फेंक देते है और कभी जनेऊ उतार डालते है, यह कार्य अत्यन्त अनुचित है; जन्म-जन्मान्तर के पुण्य से ब्राह्मण के घर जन्म होता है, और क्या वे उस ब्राह्मणत्व को तुच्छ मानकर उस अभिमान को त्यागना चाहते है? ऐसी क्या उन्नत स्थिति उन्हें प्राप्त हुई है, जिसके आधार पर वे अपने को इस प्रकार के आचरण करने का अधिकारी समझते है? हृदु, वे तुम्हारा कहना कुछ-कुछ मानते है, जिससे वे इस प्रकार के आचरण न करें, इसका तुम्हे ध्यान रखना चाहिए; यहाँ तक कि उन्हे बाँधकर भी यदि तुम उनके इन आचरणों को रोक सको तो तुम्हे वह भी करना वांछित है।"

साथ ही पूजन करते समय श्रीरामकृष्णदेव के नेत्रों मे प्रेमधारा, भगवन्नामगुणादि सुनकर उनका अद्भुत उल्लास तथा ईश्वर-प्राप्ति के निमित्त उनकी अदृष्टपूर्व व्याकुलता आदि को देखकर मोहित हो वे यह सोचा करते थे कि निश्चय ही उनके कनिष्ठ भ्राता की अवस्थाएँ ऐश्वरिक आवेश के फलस्वरूप उपस्थित होती है, अन्यथा ऐसी स्थिति साधारण मानवों में तो दिखाई नहीं देती! यह सोचकर हलधारी पुनः कभी-कभी हृदय से कहा करते थे, "हृदय, तुम्हें अवश्य ही इनके अन्दर कोई आश्चर्यजनक दर्शन प्राप्त हुआ है, नहीं तो तुम इस तरह उनकी सेवा कभी नहीं करते।"

नास लेकर शास्त्रविचार करने बैठते ही हलधारी की उच्च धारणा का विलोप।

हलधारी का मन सर्वदा इस प्रकार संदिग्ध अवस्था में रहने के कारण श्रीरामकृष्णदेव की वास्तविक स्थिति के बारे में वे किसी भी प्रकार से कोई निश्चित मीमांसा नहीं कर पाते थे। श्रीरामकृष्णदेव कहते थे, "मेरे पूजन को देखकर मुग्ध हो हलधारी ने कितने ही बार मुझसे कहा है, 'रामकृष्ण, अब की बार मैंने तुमको पहचान लिया है।' यह सुनकर कभी-कभी परिहासपूर्वक मै कह उठता था, 'देखना, फिर कभी गोलमाल न हो जाय।' वह कहता था, अब तुम मुझे कभी धोखे मे नहीं डाल सकते; तुम्हारे अन्दर अवश्य ही ईश्वर का आवेश विद्यमान है; अब मैंने यह ठीक-ठीक जान लिया है।' यह सुनकर मै कहता था,

'अच्छा, देखा जायगा।' तदनन्तर मन्दिर की सेवापूजा समाप्त कर हलधारी जब नास लेकर श्रीमद्‌भागवत, गीता या अध्यात्मरामायणादि शास्त्रों का विचार करने बैठता, तब अहंकार मे चूर होकर मानो दूसरा ही व्यक्ति बन जाता था। उस समय मै उसके पास जाता और कहता था, 'शास्त्रों में तुम जो कुछ पढ रहे हो, मुझे उन अवस्थाओं की उपलब्धि हो चुकी है, मै उन बातों को समझ सकता हूँ।' यह सुनकर वह कह उठता था, 'अरे, तू तो निपट मूर्ख है, इन बातों को क्या समझेगा?' मै (अपने शरीर को दिखाकर) कहता था, 'सच कह रहा हूँ, इसके अन्दर जो बैठा हुआ है, वह सारी बातों को समझा देता है। अभी कुछ समय पूर्व तुमने जो यह कहा कि इसके अन्दर ईश्वरीय आवेश विद्यमान है—वही मुझे सारी बाते समझा देता है।' हलधारी इस बात को सुनकर क्रुद्ध होकर कह उठता था, 'जा जा, मूर्ख कहीं का, कलियुग मे कल्कि के सिवाय ईश्वर के और अवतार की बात किस शास्त्र मे है? तू पागल हो गया है, इसलिए ऐसा सोचा करता है।' हँसकर मै कहता था—'अभी जो तुम यह कह रहे थे कि फिर कभी गड़बड़ी न होगी'—किन्तु उस बात को कौन सुनता है? इस प्रकार की घटना एक-आध दिन नहीं, दीर्घकाल तक होती रही। तदनन्तर एक दिन उसने मुझे भावाविष्ट हो वस्त्र त्यागकर वृक्ष के ऊपर बैठकर बालक की तरह लघुशंका करते हुए देखा,—उस दिन से उसने यह पक्का निश्चय कर लिया कि मुझ पर ब्रह्मराक्षस का आवेश हुआ है।''

श्रीकाली माँ को तमोगुणमयी कहने पर श्रीरामकृष्णदेव का हलधारी को शिक्षाप्रदान।

इसके पूर्व हलधारी के शिशुपुत्र के देहान्त का हम उल्लेख कर चुके है। उस दिन से उनको श्रीकालीमूर्ति के सम्बन्ध मे तमोगुणमयी या तामसी होने की धारणा उत्पन्न हुई थी। एक दिन श्रीरामकृष्णदेव से उन्होंने उस बात को कह डाला, ''तामसी मूर्ति की उपासना से क्या कभी आध्यात्मिक उन्नति हो सकती है? तुम उस देवी की आराधना क्यों करते हो?'' इस बात को सुनकर श्रीरामकृष्णदेव ने उस समय उनसे कुछ नहीं कहा, किन्तु इष्ट देवता की निन्दा सुनकर उनका हृदय अत्यन्त व्यथित हुआ। तदनन्तर कालीमन्दिर मे जाकर अश्रुपूर्ण नेत्रों से

उन्होंने श्रीजगन्माता से पूछा, "माँ, हलधारी शास्त्रज्ञ विद्वान् है—वह तुझे तमोगुणमयी कहता है; क्या तू वास्तव में वैसी है?" तदनन्तर श्रीजगदम्बा के श्रीमुख से उस विषय के यथार्थ तत्त्व को जान लेने के पश्चात् उल्लास में उत्साहित हो श्रीरामकृष्णदेव दौड़कर हलधारी के समीप आए और एकदम उनके कन्धो पर चढकर उत्तेजित स्वर से बारम्बार कहने लगे, "तू माँ को तामसी कहता है? क्या माँ तामसी है? माँ तो सब कुछ — त्रिगुणमयी और साथ ही साथ शुद्ध सत्वगुणमयी है!" भावाविष्ट श्रीरामकृष्णदेव के इस प्रकार कथन तथा स्पर्श से तब हलधारी की मानो अन्तर्दृष्टि खुल गई। उस समय वे पूजन के आसन पर बैठे हुए थे—उन्होंने श्रीरामकृष्णदेव की इस बात को हृदय से स्वीकार किया तथा उनके अन्दर साक्षात् जगदम्बा के आविर्भाव को प्रत्यक्ष कर सामने रखे हुए पुष्पचन्दनादि लेकर उन्होने उनके पादपद्मों में भक्तिपूर्वक अंजलि प्रदान की। इसके कुछ ही समय बाद हृदय ने आकर उनसे पूछा, "मामाजी, तुम तो यह कहते थे कि रामकृष्ण पर भूत का आवेश है, तो फिर इस प्रकार तुमने उनकी पूजा क्यों की?" हलधारी बोले, "पता नहीं हृदु, कालीमन्दिर से लौटकर उसने मुझे कुछ ऐसा कर डाला कि सब कुछ भूलकर उसके अन्दर साक्षात् ईश्वर का प्रकाश मुझे दिखाई देने लगा। जब कभी मै कालीमन्दिर मे रामकृष्ण के समीप जाता हूँ, तभी वह मुझे ऐसा कर देता है। यह एक अद्भुत घटना है—मै कुछ भी नहीं समझ पाता हूँ।"

इस प्रकार हलधारी को श्रीरामकृष्णदेव के अन्दर बारम्बार दैवी प्रकाश दिखाई देने पर भी नास लेकर जब वे शास्त्रविचार करने बैठते थे, तभी पाण्डित्य के अभिमान मे चूर होकर 'पुनर्मूषिकत्व' को प्राप्त हो जाते थे। अतः काम-कांचन से आसक्ति दूर हुए बिना बाह्यशौच, सदाचार तथा शास्त्र-ज्ञान से कोई विशेष कार्य नहीं होता है तथा उससे मानव को सत्य तत्त्व की धारणा नहीं हो सकती है, यह बात हलधारी के पूर्वोक्त आचरण से स्पष्टतया समझी जा सकती है। मन्दिर में प्रसाद लेने के निमित्त आए हुए भिखारियों को नारायण

भिखारियों की जूठन खाते हुए देखकर हलधारी की श्रीरामकृष्णदेव को भर्त्सना तथा श्रीरामकृष्णदेव का उत्तर।

मानकर श्रीरामकृष्णदेव ने किसी समय उनकी जूठन को ग्रहण किया था—यह हम पहले कह चुके है। यह देखकर अप्रसन्न हो हलधारी ने उनसे कहा था, "मै देखूँगा कि तेरी सन्तानों का विवाह कैसे होगा?" ज्ञानाभिमानी हलधारी के मुँह से इस बात को सुनकर उत्तेजित हो श्रीरामकृष्णदेव ने उन्हे उत्तर दिया था, "अरे दादा! वाह रे अरण्यपण्डित! शास्त्रव्याख्या करते समय तू क्या यह नहीं कहता है कि जगत् मिथ्या है तथा सर्वभूतों में ब्रह्मदृष्टि करनी चाहिए? कदाचित् अपने मन मे तू यह सोचता होगा कि मै भी तेरी तरह जगत् को मिथ्या कहूँ और ऊपर से लड़के-बच्चे भी मुझे होते रहेंगे? धिक्कार है तेरे इस शास्त्रज्ञान को!"

हलधारी के पाण्डित्य से श्रीरामकृष्णदेव के हृदय में सन्देह का उदय होना तथा श्रीजगदम्बा का पुनर्दर्शन एव आदेश प्राप्त होना,—'तू भावमुखी रह।'

बालक-स्वभाव श्रीरामकृष्णदेव पुनः कभी-कभी हलधारी के पाण्डित्य से विभ्रान्त होकर अपने कर्तव्य के विषय मे श्रीजगन्माता का अभिमत प्राप्त करने के निमित्त दौड़ जाते थे। हमने सुना है कि भाव की सहायता से ऐश्वरिक स्वरूप के बारे मे जो अनुभूतियाँ होती है, उनको मिथ्या सिद्ध करते हुए शास्त्र के सहारे ईश्वर को भावाभाव के अतीत रूप से निर्देश कर हलधारी ने एक दिन श्रीरामकृष्णदेव के हृदय में एक महान् सन्देह उपस्थित कर दिया था। श्रीरामकृष्णदेव कहते थे, "तब मै यह सोचने लगा कि भावावेश मे जिन ईश्वरी रूपों के मुझे दर्शन मिले है और जो आदेश प्राप्त हुए है, वे क्या सभी भ्रमात्मक है; यदि ऐसा है तब तो माँ ने मुझे ठग लिया! मेरा मन अत्यन्त व्याकुल हो उठा और मै क्षुब्ध होकर रोता हुआ माँ से कहने लगा—'माँ, निरक्षर मूर्ख होने के कारण क्या मुझे इस प्रकार ठगना उचित है'—उस रुदन के वेग को रोकना मेरे लिए कठिन हो गया! कोठी के अन्दर बैठकर मै रो रहा था। कुछ देर बाद मैं क्या देखता हूँ कि फर्श से एकाएक ओस की तरह धुआँ निकलने लगा और सामने के कुछ स्थल को उसने ढक लिया! तदनन्तर उसके अन्दर वक्षःस्थलपर्यन्त लम्बी दाढ़ीयुक्त एक गौरवर्ण, सौम्य जीवित मुखमण्डल दिखाई दिया! मेरी ओर निश्चल दृष्टि से देखती हुई उस मूर्ति ने गम्भीर स्वर से कहा—'अरे, तू भावमुखी रह, भावमुखी रह,

भावमुखी रह !'—इस प्रकार तीन बार इन शब्दों का उच्चारण करने के पश्चात् वह मूर्ति धीरे-धीरे पुनः उसी ओर विलीन हो गई और ओस की तरह वह धुआँ भी अन्तर्हित हो गया ! इस प्रकार दर्शन पाकर उस बार मै शान्त हुआ।" इस घटना को श्रीरामकृष्णदेव ने एक दिन अपने मुँह से स्वामी प्रेमानन्दजी से कहा था। श्रीरामकृष्णदेव कहते थे कि हलधारी की बात सुनकर और एक बार इस प्रकार का सन्देह उनके मन मे उदित हुआ था। "उस बार पूजन करते समय रोता हुआ इस विषय की मीमांसा के निमित्त माँ से मैने अत्यन्त आग्रहपूर्वक प्रार्थना की थी; माँ ने उस समय 'रति की माँ' नाम की एक महिला का वेष धारण कर घर के समीप आविर्भूत हो मुझे उपदेश दिया — 'तू भावमुखी रह।'" इसके बाद परिव्राजकाचार्य तोतापुरीजी जब उन्हे वेदान्तज्ञान का उपदेश देकर दक्षिणेश्वर से चले गए और श्रीरामकृष्णदेव छः महीने तक निरन्तर निर्विकल्प-भूमि में अवस्थान कर रहे थे, तब भी उक्त समय के अन्त में श्रीजगदम्बा की अशरीरी वाणी उनके हृदय मे ध्वनित हो उठी थी—'तू भावमुखी रह !'

कालीमन्दिर में हलधारी कितने वर्ष रहे थे।

दक्षिणेश्वर के मन्दिर मे हलधारी ने लगभग सात वर्ष तक निवास किया था। इसलिए क्रमशः दक्षिणेश्वर मे उपस्थित होनेवाले पिशाच जैसे आचरण करनेवाले पूर्ण ज्ञानी साधु, ब्राह्मणी, जटाधारी नामक रामोपासक साधु तथा तोतापुरीजी को मिलने का उन्हे अवसर प्राप्त हुआ था। श्रीरामकृष्णदेव के श्रीमुख से यह सुना गया है कि हलधारी श्रीमत् तोतापुरीजी के साथ बैठकर कभी-कभी अध्यात्मरामायण आदि शास्त्रों का पाठ किया करते थे। अतः पूर्वोक्त सात वर्ष के अन्दर विभिन्न समय मे हलधारी से सम्बन्धित घटनाएँ घटी थीं। वर्णन की सुविधा के लिए यहाँ पर हमने पाठकों के लिए एक साथ उनका उल्लेख किया है।

श्रीरामकृष्णदेव के साधक-जीवन के सम्बन्ध मे अब तक जो विवेचना की जा चुकी है, उससे यह बात निश्चयात्मक रूप से कही जा सकती है कि कालीमन्दिर के जनसाधारण की दृष्टि मे वे उस समय पागल जैसे प्रतीत होने पर भी किसी मस्तिष्कविकार या रोगजनित साधारण उन्माद अवस्था में नहीं थे। ईश्वरदर्शन के निमित्त उनके हृदय में तीव्र

व्याकुलता का उदय हुआ था एवं उसी के प्रभाव से वे उस समय अपने को सम्हाल नहीं पा रहे थे। अग्निशिखा की भाँति ज्वालामयी उस व्याकुलता को निरन्तर हृदय में धारण कर साधारण विषयों में साधारण व्यक्तियों की तरह सम्मिलित होने मे समर्थ न हो सकने के कारण ही लोग उन्हे पागल समझने लगे थे। वैसा व्यवहार उस स्थिति में कैसे सम्भव हो सकता है? हृदय की तीव्र वेदना जब मानव की स्वाभाविक सहनशक्ति को अतिक्रमण कर जाती है, उस समय कोई भी व्यक्ति बाहर एक प्रकार तथा भीतर अन्य प्रकार की भावना रखकर संसार में सब के साथ मिलकर नहीं चल सकता है। यह कह सकते हो कि सबकी सहन करने की क्षमता एक-सी नहीं होती है, कोई स्वल्प सुख-दुःख मे ही विचलित हो उठता है और कोई उन दोनों के गहरे वेग को अपने हृदय मे धारण करने के पश्चात् भी समुद्र की तरह अचल-अटल बना रहता है; अतः श्रीरामकृष्णदेव मे सहन करने की क्षमता कितनी थी, यह कैसे समझी जा सकती है? इसके उत्तर मे कहा जा सकता है कि उनके जीवन की अन्यान्य घटनाओं की पर्यालोचना करने पर यह स्पष्ट रूप से प्रतीत होगा कि उनकी सहन-शक्ति असाधारण थी; दीर्घ द्वादश वर्ष पर्यन्त आधा पेट खाने पर, या उपवास करने पर तथा अनिद्रा अवस्था मे जो निश्चल रह सकते हों, अतुल सम्पत्ति बारम्बार चरणों में उपस्थित होने पर भी उसे ईश्वर-प्राप्ति के मार्ग मे बाधक मानकर जो उससे भी अधिक बार उनका प्रत्याख्यान कर सकते हों—ऐसी कितनी ही बाते उनके सम्बन्ध मे कही जा सकती है—उनके शरीर तथा मन के असाधारण धैर्य के बारे मे भला क्या और कुछ कहना शेष रह जाता है?

श्रीरामकृष्णदेव की दिव्योन्माद-अवस्था सम्बन्धी आलोचना।

उस समय की घटनाओं की विवेचना करने से यह पता चलता है कि काम-कांचन में उन्मत्त बद्ध जीवों की दृष्टि मे ही उनकी पूर्वोक्त दशाएँ रोगजनित प्रतीत हुई थीं। यह देखने मे आता है कि मथुरानाथजी को छोड़कर उस समय दक्षिणेश्वर के कालीमन्दिर में ऐसा कोई भी दूसरा व्यक्ति नहीं था, जो कल्पना या युक्ति की सहायता से उनकी मानसिक स्थिति के बारे मे आंशिक रूप मे भी कुछ निर्धारित कर पाए हों।

श्री केनारामजी भट्ट श्रीरामकृष्णदेव को दीक्षा देकर कहाँ चले गए, इसका कुछ पता नही चलता है; क्योंकि उस घटना के बाद उनके सम्बन्ध में हृदय अथवा अन्य किसी से हमने कुछ भी नही सुना है। मन्दिर के मूर्ख तथा लोलुप कर्मचारियो ने श्रीरामकृष्णदेव के तत्कालीन क्रियाकलाप तथा उनकी मानसिक स्थिति के सम्बन्ध मे जो सूचना प्रदान की है, उसे कभी प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। अतः उस समय कालीमन्दिर मे समागत सिद्ध तथा साधकों ने उनकी स्थिति के बारे मे जो कुछ कहा है, वही एकमात्र विश्वस्त प्रमाण है। स्वयं श्रीरामकृष्णदेव तथा अन्यान्य व्यक्तियों से उस विषय मे जो कुछ सुनने मे आया है, उसके अनुसार यह विदित होता है कि उनको पागल मानना दूर रहा, प्रत्युत् उसके अनुसार उनके सम्बन्ध मे सर्वदा उन लोगों की बहुत उच्च धारणा थी।

अज्ञ व्यक्तियों ने ही उनकी उस स्थिति को रोगजनित समझा था, साधकों ने नहीं।

परवर्ती समय की घटनाओं की आलोचनात्मक मीमांसा से हमें यह ज्ञात होगा कि ईश्वर-प्राप्ति की प्रबल व्याकुलता में श्रीरामकृष्णदेव जब तक सम्पूर्णतया देहज्ञानरहित नहीं हो जाते थे, तब तक शारीरिक कल्याण के निमित्त जिस व्यक्ति के द्वारा जो कुछ कहा जाता था, वे तत्काल ही उसका पालन करते थे। पाँच व्यक्तियों ने मिलकर कहा, उनकी चिकित्सा होनी चाहिए, वे उसके लिए तैयार हो गए; उन्हे कामारपुकुर उनकी माँ के समीप ले जाया जाय, वहाँ जाने के लिए भी सम्मत हो गए; उनके विवाह की व्यवस्था की जाय, इसमे भी उन्होंने कोई आपत्ति नहीं की!— ऐसी स्थिति मे उनके आचरणों की तुलना किसी उन्मत्त व्यक्ति के साथ कैसे की जा सकती है?

तत्कालीन कार्यों को देखकर श्रीरामकृष्णदेव को रोगग्रस्त नहीं कहा जा सकता।

पुनः यह देखने मे आता है कि दिव्योन्माद दशा को प्राप्त होने के समय से श्रीरामकृष्णदेव विषयी लोगों तथा विषयसम्बन्धी कार्यों से सदा दूर रहने के लिए प्रयत्न करने पर भी बहुत से लोग जहाँ एकत्रित होकर देव-पूजन अथवा कीर्तनादि करते थे, वहाँ जाने एवं उन कार्यों मे सम्मिलित होने के निमित्त किसी प्रकार की आपत्ति करना तो दूर रहा,

तदर्थ वे अत्यन्त आग्रह प्रकट किया करते थे। वराहनगर मे श्रीदशमहाविद्या का दर्शन, कालीघाट में श्रीजगदम्बा के दर्शन के निमित्त गमन तथा उस समय से प्रायः प्रतिवर्ष पानिहाटी के महोत्सव मे सम्मिलित होना, ये सब बाते उपरोक्त तथ्य की द्योतक है। उन स्थानों पर भी शास्त्रज्ञ साधकों के साथ कभी-कभी उनके दर्शन तथा सम्भाषणादि हुए थे। उस सम्बन्ध में हमे जो कुछ थोड़ा-बहुत विदित हुआ है, उसके आधार पर हम यह जान पाए है कि उन साधको ने भी उन्हें उच्च आसन प्रदान किया था।

सन् १८५९ में पानिहाटी महोत्सव में वैष्णवचरण को श्रीरामकृष्णदेव का प्रथम दर्शन तथा उनकी धारणा।

उक्त विषय के दृष्टान्त-स्वरूप हम सन् १८५९ ई. मे श्रीरामकृष्णदेव के पानिहाटी-महोत्सवदर्शन करने के निमित्त वहाँ जाने की घटना का उल्लेख कर सकते है। उत्सवानन्द गोस्वामीजी के पुत्र श्री वैष्णवचरण को उन्होंने उस दिन प्रथम देखा था। हृदय तथा स्वयं श्रीरामकृष्णदेव के मुँह से हम लोगों मे से किसी-किसी ने सुना है कि उस दिन पानिहाटी जाकर जब वे श्री मणिमोहन सेन के देव-मन्दिर में बैठे हुए थे, उस समय श्री वैष्णवचरण वहाँ आए और उनको देखते ही उन्हें यह दृढ निश्चय हो गया था कि श्रीरामकृष्णदेव आध्यात्मिक उन्नत दशा मे पहुँचे हुए एक अद्वितीय महापुरुष है। श्री वैष्णवचरण ने उस दिन उत्सव-क्षेत्र में अधिकांश समय उन्हीं के साथ व्यतीत किया था एवं अपने खर्च से चिउड़ा, खील, आम इत्यादि खरीदकर 'मालसा भोग' (मिट्टी के सकोरे मे दही आदि के साथ उन वस्तुओ को मिलाकर जो भोग दिया जाता है, बंगाल मे उसे 'मालसा-भोग' कहते है) की व्यवस्था कर उनके साथ आनन्द मनाया था। पुनः उत्सव के अनन्तर कलकत्ता लौटते समय उनके दर्शन के निमित्त रानी रासमणि के कालीमन्दिर मे जाकर उन्होंने श्रीरामकृष्णदेव के बारे मे पूछताछ की, किन्तु यह जानकर कि उस समय तक वे उत्सव-क्षेत्र से वापिस नहीं आए है वे दुःखित होकर लौट आए। इस घटना के तीन-चार वर्ष बाद श्री वैष्णवचरण को पुनः किस प्रकार श्रीरामकृष्णदेव का दर्शन प्राप्त हुआ था तथा उनके साथ कैसे उनका घनिष्ट सम्बन्ध हुआ था, इसका वर्णन हमने अन्यत्र

विस्तारपूर्वक किया है।*

इन चार वर्षों में ही पुनः अपने हृदय से कांचनासक्ति को सर्वथा दूर करने के निमित्त कुछ मुद्राओं को मिट्टी के साथ हाथों पर रखकर श्रीरामकृष्णदेव सत्यासत्य निर्णय करने मे संलग्न हुए थे। सच्चिदानन्दस्वरूप ईश्वर की प्राप्ति जिस व्यक्ति के लिए जीवन का ध्येय बन चुका है, मिट्टी की तरह कांचन से भी उसे उस विषय मे किसी तरह की सहायता नहीं मिलती है। अतः उसके समीप मिट्टी और कांचन ये दोनों ही समान है। इस बात की दृढ धारणा के निमित्त बारम्बार 'रुपया मिट्टी है', 'मिट्टी रुपया है' यह कहते हुए उन्होंने अपने हाथ में मिट्टी तथा मुद्राओं को एक साथ लेकर गंगाजी मे विसर्जित कर दिया था। इसी प्रकार आब्रह्मस्तम्बपर्यन्त वस्तु तथा व्यक्तियों को श्रीजगदम्बा के प्रकाश व अंशरूप से धारणा करने के निमित्त भिखारियों के उच्छिष्ट को ग्रहण कर उनके भोजन के स्थल को साफ करना—सबके घृणा के पात्र भंगी की अपेक्षा वे स्वयं किसी अंश मे श्रेष्ठ नहीं है, इस बात की धारणा कर मन से अभिमान को दूर करने के लिए अशुद्ध स्थल को साफ करना — चन्दन से विष्ठापर्यन्त सभी पदार्थ पंचभूत के विकासमात्र है, यह जानकर भले-बुरे ज्ञान को दूर करने के निमित्त जीभ के द्वारा दूसरों की विष्ठा को निर्विकार होकर स्पर्श करना आदि अश्रुत साधन-सम्बन्धी जो बाते श्रीरामकृष्णदेव के सम्बन्ध में सुनने मे आती है, इन सबका अनुष्ठान इसी समय उन्होंने किया था। प्रथम चार वर्षों के उक्त प्रकार के साधन तथा दर्शन की आलोचना करने पर यह स्पष्ट रूप से विदित होता है कि ईश्वर-प्राप्ति के निमित्त उनके हृदय में उस समय किस प्रकार असाधारण आग्रह का विकास हुआ था तथा किस अलौकिक विश्वास के साथ वे उस समय साधन राज्य की ओर अग्रसर हुए थे। साथ ही इस बात की भी निश्चित धारणा होती है कि दूसरे किसी से कोई सहायता प्राप्त न कर केवल तीव्र उत्कण्ठा के सहारे उस समय श्रीजगदम्बा का पूर्ण दर्शन प्राप्त कर

श्रीरामकृष्णदेव के तत्कालीन अन्यान्य साधन—'रुपया मिट्टी है, मिट्टी रुपया है'; अशुद्ध स्थल को साफ करना; चन्दन तथा विष्ठा में समता-बोध।

* गुरुभाव-उत्तरार्ध, प्रथम अध्याय देखिए।

वे सफलकाम हुए थे एवं साधन के चरम लक्ष्य को प्राप्त कर गुरुवाक्य तथा शास्त्रवाक्य के साथ अपने अपूर्व अनुभवों की एकता के स्थापन के निमित्त ही परवर्तीकाल में पुनः साधन-क्षेत्र की ओर अग्रसर हुए थे।

त्याग तथा संयम का निरन्तर अभ्यास कर साधक जब अपने मन को सम्पूर्ण वशीभूत कर पवित्र बन जाता है, श्रीरामकृष्णदेव कहते थे कि उस समय वह मन ही उसका गुरु बन जाता है। इस प्रकार के शुद्ध मन मे जो भावतरंगे उठती रहती है, वे उसे विपथगामी करने की तो बात ही क्या, शीघ्र ही गन्तव्य लक्ष्य पर पहुँचा देती है। अतः यह स्पष्ट है कि श्रीरामकृष्णदेव का आजन्म परिशुद्ध मन ही, गुरु की भाँति उनका पथ-प्रदर्शक बना था तथा उसने प्रथम चार वर्षों मे ही ईश्वर-प्राप्ति के विषय मे उन्हें सफलकाम किया था। हमने उनसे सुना है कि उस समय उन्हे कौनसा कार्य करना है एवं किस कार्य से विरत रहना है, इतनी ही शिक्षा प्रदान कर वह मन निश्चिन्त नहीं हो जाता था, किन्तु समय-समय पर मूर्ति धारण कर पृथक् एक व्यक्ति की तरह देह के भीतर से उनके सम्मुख आविर्भूत हो उन्हे साधनमार्ग मे अग्रसर होने के लिए प्रोत्साहित करता था, भयोत्पादन कर ध्यान में निमग्न हो जाने के लिए कहा करता था, विशेष अनुष्ठानादि क्यों आवश्यक है यह भी समझा देता था तथा किए हुए कार्यों का परिणाम उन्हें अवगत कराता रहता था। तब ध्यान करते समय वे देखते थे कि तीक्ष्ण त्रिशूलधारी एक संन्यासी उनकी देह से बाहर निकलकर उनसे कह रहे है, "अन्य चिन्ताओं को त्यागकर यदि तुम अपने इष्टदेव का चिन्तन नहीं करोगे तो यह त्रिशूल तुम्हारी छाती मे भोंक दूँगा!" अन्य किसी समय उन्होंने देखा कि शरीर से भोगवासनामय पापपुरुष के निकलने पर उसके साथ ही साथ वह संन्यासी युवक भी बाहर निकल आया तथा उसने उस पुरुष को मार डाला!—दूरस्थित देव-देवियों की मूर्तियों के दर्शन अथवा कीर्तन सुनने के लिए अभिलाषी होकर वह संन्यासी युवक कभी-कभी उसी प्रकार देह से निकलकर ज्योतिर्मय मार्ग से उन स्थानों की ओर जा रहे है तथा

अन्त में अपना मन ही साधक का गुरु बन जाता है। श्रीरामकृष्णदेव के मन का तत्कालीन गुरुवत् आचरण का दृष्टान्त, (१) सूक्ष्मदेह मे ही कीर्तनानन्द।

कुछ समय तक आनन्द करने के पश्चात् पुनः पूर्वोक्त ज्योतिर्मय मार्ग से वापस आकर शरीर के अन्दर प्रविष्ट हो रहे है!—इस प्रकार विभिन्न तरह के दर्शन की बाते भी हमने श्रीरामकृष्णदेव से सुनी है।

(२) अपने शरीर के अन्दर युवक संन्यासी का दर्शन तथा उपदेश-लाभ।

साधन के प्रारम्भिक काल से ही दर्पण मे प्रतिबिम्ब की भाँति तदनुरूप आकारविशिष्ट, शरीर के अन्दर रहनेवाले उस युवक संन्यासी का दर्शन श्रीरामकृष्णदेव को प्राप्त हुआ था एवं क्रमशः समस्त कार्यों की मीमांसा के समय उनके परामर्शानुसार चलने मे वे अभ्यस्त हुए थे। अपने साधक-जीवन के अनुभव तथा प्रत्यक्षादि की चर्चा करते हुए एक दिन इस सम्बन्ध में उन्होंने हमसे कहा था,—"देखने में ठीक मुझ जैसा एक युवक संन्यासी मेरे अन्दर से जब चाहे तभी निकलकर मुझे सभी विषयों मे उपदेश दिया करता था। इस प्रकार उसके बाहर निकलने पर कभी मुझे यत्किंचित् बाह्यज्ञान बना रहता था और किसी समय बाह्यज्ञान एकदम विलुप्त होकर जड़-जैसी दशा को प्राप्त होकर मै उसकी चेष्टाओं को देखा तथा उसकी बातों को सुना करता था। उसके मुँह से मैने जो कुछ सुना था, ब्राह्मणी तथा न्यांगटा (श्री तोतापुरीजी) ने आकर पुनः मुझे उन्ही तत्त्वों का उपदेश दिया था। मुझे जो विदित हो चुका था, उन लोगों ने वही अवगत कराया था। अतः मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि शास्त्रविधि की मर्यादा रक्षण के निमित्त ही गुरु के रूप में वे मेरे जीवन में उपस्थित हुए थे। अन्यथा न्यांगटा आदि को गुरु के रूप मे ग्रहण करने का और कोई कारण दिखाई नही देता है।"

साधन के प्रथम चार वर्षों के अन्तिम भाग में श्रीरामकृष्णदेव जिस समय कामारपुकुर में थे, उस समय उक्त विषयक एक और अपूर्व दर्शन उनके जीवन में हुआ था। पालकी पर सवार होकर कामारपुकुर से शिऊड़ गाँव मे हृदय के घर जाते समय उनको वह दर्शन प्राप्त हुआ था। वही बात अब हम पाठकों के सम्मुख रखते है—नील आकाश के नीचे विस्तृत जंगल, श्यामल धान्य-क्षेत्र, विहंग-कूजित शीतल छाया-युक्त अश्वत्थ-वटवृक्षादि श्रेणी तथा मधुगन्ध-कुसुम विभूषित तरुलता आदि का अवलोकन कर प्रफुल्लित हो जाते जाते श्रीरामकृष्णदेव ने देखा कि

दर्शनों से ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हे उस समय से ही यह अवगत हो चुका था कि अत्यन्त प्राचीन काल से पृथ्वी पर सुपरिचित कोई आत्मा उनके शरीर तथा मन में 'अहं-अभिमान' को धारण कर किसी विशेष प्रयोजन की सिद्धि के निमित्त अवस्थित है! उस समय अपने व्यक्तित्व के सम्बन्ध में इस प्रकार जो आभास उन्हे प्राप्त हो रहा था, वही यथासमय स्पष्ट हो उनको यह विदित करा रहा था कि — पूर्व पूर्व युगों मे धर्मसंस्थापन के निमित्त श्रीअयोध्या तथा श्रीवृन्दावन में जानकीवल्लभ श्रीरामचन्द्र तथा राधावल्लभ श्रीकृष्णचन्द्र के रूप में जिनका आविर्भाव हुआ था, वे ही पुनः भारत तथा जगत् को नवीन धर्मादर्श प्रदान करने हेतु नवीन शरीर धारण कर श्रीरामकृष्णदेव के रूप मे अवतीर्ण हुए है। हमने बारम्बार उनको यह कहते हुए सुना है— "जो राम और कृष्ण के रूप मे आविर्भूत हुए थे, वे ही इस समय (अपने शरीर को दिखाकर) इस आवरण के अन्दर आए हुए है—राजा जिस प्रकार अपना वेष बदलकर कभी-कभी नगर मे घूमने के लिए निकलते है, उसी प्रकार गुप्त रूप से अब की बार उनका इस पृथ्वी पर आगमन हुआ है!"

उक्त दर्शन से विदित होनेवाले तथ्य।

पूर्वोक्त दर्शन का सत्यासत्य निर्णय करने के लिए अपने अन्तरंग भक्तों के समीप श्रीरामकृष्णदेव ने इस प्रकार अपने व्यक्तित्व के सम्बन्ध में जो कुछ कहा है, उसमें विश्वास स्थापन किए बिना अन्य कुछ उपाय ही नहीं है। किन्तु पूर्वोक्त दर्शन के विषय को छोड़कर उनके तत्कालीन अन्यान्य दर्शनों के सत्यासत्य के सम्बन्ध मे हम निश्चित धारणा कर सकते हैं; क्योंकि इस प्रकार के दर्शनादि हमारे समय मे श्रीरामकृष्णदेव के जीवन में नित्य उपस्थित होते थे एवं उनके अंग्रेजी शिक्षित सन्दिग्ध शिष्य-वर्ग उन दिव्य दर्शनों की परीक्षा मे प्रवृत्त हो प्रतिदिन पराजित तथा स्तम्भित होते थे। इस विषय के कुछ उदाहरण * 'लीलाप्रसंग' मे अन्यत्र वर्णित होने पर भी पाठक की तृप्ति के लिए यहाँ एक दृष्टान्त का उल्लेख किया जाता है—

श्रीरामकृष्णदेव के दर्शन आदि कभी मिथ्या प्रमाणित नहीं हुए।

* गुरुभाव-उत्तरार्ध, चतुर्थ अध्याय देखिए।

उक्त विषयक दृष्टान्त— १८८५ ई में श्री सुरेशचन्द्र मित्र के घर पर श्रीशारदीया दुर्गापूजा के समय श्रीरामकृष्णदेव के दर्शन का विवरण।

१८८५ ई. के अन्तिम भाग की घटना है; क्वार के महीने में श्रीशारदीया दुर्गापूजा के महोत्सव के समय कलकत्ता नगरी के बालक-वृद्ध-वनिता आदि सभी वर्ग के लोग प्रतिवर्ष की भाँति आनन्द में उन्मत्त हो रहे थे। श्रीरामकृष्णदेव के भक्तों के हृदय मे उस आनन्दप्रवाह का स्पर्श होने पर भी उसे बाहर व्यक्त करने मे एक विशेष बाधा थी; क्योंकि जिन्हे लेकर उनका आनन्दोल्लास था, उनका शरीर अस्वस्थ था— श्रीरामकृष्णदेव गले के रोग से पीड़ित थे। कलकत्ता के श्यामपुकुर मुहल्ले मे दो-मंजिला मकान* किराए पर लेकर भक्तवर्ग ने प्रायः एक मास पूर्व उनको वहाँ लाकर रखा था तथा सुप्रसिद्ध चिकित्सक श्री महेन्द्रलाल सरकार उनके उपचार का यथासाध्य प्रयास कर रहे थे। किन्तु रोग का उपशम होना तो दूर रहा, वह दिनोदिन बढ़ता चला जा रहा था। गृहस्थ भक्तगण प्रतिदिन सायं-प्रातः वहाँ आकर सब प्रकार की देखरेख तथा व्यवस्था कर रहे थे तथा युवक छात्र-भक्तों मे से अधिकांश अपने घर पर केवल भोजनादि के लिए जाकर शेष समय श्रीरामकृष्णदेव की सेवा-शुश्रुषा मे व्यतीत करते थे; आवश्यकतानुसार कोई-कोई घर भी न जाकर चौबीस घण्टे वहीं उपस्थित रहते थे।

अधिक बोलने-चालने तथा बारम्बार समाधिस्थ होने से शरीर में रक्तप्रवाह ऊपर को ओर प्रवाहित होने से तथा उससे घाव पर चोट पहुँचने के कारण रोग का उपशम नहीं होगा, इसलिए चिकित्सक ने श्रीरामकृष्णदेव को विशेष संयत रहने के लिए कहा था। इस व्यवस्था के अनुसार चलने का प्रयास करने पर भी कभी-कभी वे उसके विपरीत कर बैठते थे, क्योंकि 'हाड़माँस का ढाँचा' मानकर अवज्ञापूर्वक जिस शरीर से उन्होंने अपने मन को हटा लिया था, साधारण मानव की तरह पुनः उसको बहुमूल्य वस्तु मानने में वे समर्थ नहीं हो पा रहे थे। भगवत्प्रसंग के छिड़ते ही, शरीर तथा शरीर की रक्षा की बात को भूलकर, वे उसमें उसी प्रकार सम्मिलित हो बारम्बार समाधिस्थ हो जाते थे! जिन्होंने पहले

* श्री गोकुलचन्द्र भट्टाचार्यजी का मकान।

उनका दर्शन नहीं किया है, ऐसे व्यक्ति वहाँ उपस्थित होते थे; उनके हृदय की व्याकुलता को देखकर वे मौन नहीं रह पाते थे, धीरे-धीरे उन्हे साधनमार्ग का निर्देश प्रदान किया करते थे। इस सम्बन्ध में उनके निरन्तर उत्साह-आनन्द को देखकर भक्तो मे से अधिकांश लोग श्रीरामकृष्णदेव के रोग को सामान्य तथा सहज-साध्य मानकर निश्चिन्त हो रहे थे और कोई-कोई व्यक्ति, यह अभिमत प्रकट कर कि श्रीरामकृष्णदेव ने नवागतजनों के प्रति कृपा करने तथा अधिकांश लोगों मे धर्मभाव प्रचार के निमित्त स्वेच्छापूर्वक कुछ दिन के लिए व्याधिरूप उपाय का अवलम्बन किया है, सभी को चिन्तामुक्त करने का प्रयास कर रहे थे।

डाक्टर महेन्द्रलाल सरकार किसी दिन प्रातःकाल और किसी दिन अपराह्न के समय प्रायः प्रतिदिन उनको देखने आते थे तथा रोग कहाँ तक घटा या बढ़ा है, इसकी परीक्षा कर व्यवस्थादि करने के पश्चात् श्रीराम-कृष्णदेव के मुँह से भगवत्प्रसंग को सुनते-सुनते इस प्रकार तन्मय हो जाते थे कि उस तन्मयता मे दो-तीन घण्टे व्यतीत हो जाने पर भी, वहाँ से उठना उनके लिए सम्भव नहीं होता था! पुनः एक के बाद दूसरा प्रश्न कर उन प्रश्नों के अद्भुत समाधानों को श्रवण करते हुए अधिक समय बीत जाने पर वे कभी कभी अनुतप्त होकर यह कहते थे, "आज आपको बहुत देर तक बातें करने के लिए मैंने विवश किया, यह अनुचित हुआ है; अस्तु, अब दिन भर और किसी से बाते न कीजिए, फिर कोई हानि न होगी। देखिए, आपकी बातों मे ऐसा आकर्षण है कि आपके समीप आने पर सब कार्यों को त्यागकर दो-तीन घण्टे बैठे बिना मै उठ नहीं पाता हूँ; यह समय किस तरह निकल जाता है, मुझे कोई ज्ञान नहीं रहता। इस प्रकार और किसी से इतनी देर तक बाते न कीजिए; केवल मेरे आने पर ही इस प्रकार बातचीत कीजिए, उससे कोई हानि न होगी।" (डाक्टर तथा भक्तों की हँसी)

श्रीरामकृष्णदेव के परमभक्त, श्री सुरेन्द्रनाथ मित्र—जिन्हे कभी-कभी वे सुरेश मित्र कहा करते थे—के सिमलास्थित भवन मे उस वर्ष श्रीशारदीया दुर्गापूजा पुनः प्रारम्भ होने का आयोजन था। पहले उनके घर पर प्रतिवर्ष दुर्गापूजा हुआ करती थी, किन्तु विशेष विघ्न होने के कारण बहुत दिन तक पूजा बन्द थी। उनके घर के और किसी व्यक्ति ने

इससे पूर्व इस पूजा को पुनः प्रारम्भ करने का साहस नहीं किया था; अथवा उनमे से कोई यदि उसकी इच्छा भी करते थे तो अन्यान्य लोग उस संकल्प को कार्यान्वित करने मे बाधा डालते थे। श्रीरामकृष्णदेव की शक्ति पर विश्वास होने के कारण सुरेन्द्रनाथ दैवविघ्नों से डरते नहीं थे तथा किसी कार्य को करने का सकल्प उनके मन मे एक बार उत्पन्न होने पर फिर वे किसी का कोई निषेधादि नहीं मानते थे। घर के लोगों द्वारा नाना प्रकार के प्रयास किए जाने पर भी उस वर्ष पूजा के संकल्प से कोई उन्हे विच्युत नहीं कर पाया। श्रीरामकृष्णदेव को सूचित कर उन्होंने समस्त व्यय-भार अपने ऊपर लेकर अपने घर पर श्रीजगदम्बा का आवाहन किया। शारीरिक अस्वस्थता के कारण सुरेन्द्रनाथ के आनन्दोत्सव मे श्रीरामकृष्णदेव उपस्थित नहीं हो सकेंगे, यही एक निरानन्द का विषय था। पूजन से कुछ दिन पूर्व घर के दो-एक व्यक्ति भी अस्वस्थ हो गए थे। अतः यह अनुमान कर कि इसके लिए वे ही दोषी है, घर के लोग भी उन पर कुछ असन्तुष्ट थे। किन्तु उससे भी विचलित न होकर सुरेन्द्रनाथ ने भक्तिपूर्वक श्रीजगन्माता का पूजन प्रारम्भ किया तथा अपने गुरुभाइयों को इस उपलक्ष्य मे आमन्त्रित किया।

सप्तमी पूजन समाप्त हो चुका था, महाष्टमी का दिवस था। श्याम-पुकुरस्थित भवन में श्रीरामकृष्णदेव के समीप अनेक भक्त एकत्रित हो भगवच्चर्चा करते तथा भजनादि गाते हुए आनन्द मना रहे थे। अपराह्न चार बजे डाक्टर साहब के आने के कुछ ही क्षण बाद नरेन्द्रनाथ ने (स्वामी विवेकानन्दजी ने) भजन गाना प्रारम्भ किया। उस दिव्य स्वर-लहरी को सुनकर सभी लोग आत्मविह्वल हो उठे। श्रीरामकृष्णदेव अपने समीप बैठे हुए डाक्टर साहब को धीमे स्वर से संगीत के भावार्थ समझाने और कभी स्वल्पकाल के लिए समाधिस्थ होने लगे। भक्तों मे से किसी-किसी की भावावेग से बाह्य चेतना लुप्त हो गई।

इस प्रकार उस घर के अन्दर आनन्द का स्रोत प्रवाहित हो रहा था। रात के साढ़े सात बज गए। डाक्टर साहब को तब कहीं होश हुआ। उन्होंने स्वामीजी को पुत्र की भाँति आलिंगन किया तथा श्रीरामकृष्णदेव से विदा लेकर उनके खड़े होते ही श्रीरामकृष्णदेव भी हँसते हुए खड़े होकर सहसा गहरी समाधि मे निमग्न हो गए। भक्तवृन्द

परस्पर धीरे-धीरे कहने लगे, "इस समय 'सन्धि-पूजन' का (अष्टमी तथा नवमी तिथि के सन्धिकाल मे श्रीजगन्माता का जो विशेष पूजन होता है, उसको 'सन्धिपूजन' कहते है) समय है न, इसीलिए श्रीरामकृष्णदेव समाधिस्थ हुए है! सन्धि-क्षण को जाने बिना सहसा इस समय दिव्य-आवेश में इस प्रकार उनका समाधिमग्न होना कम आश्चर्य की बात नहीं है!" लगभग आधे घण्टे के पश्चात् उनकी समाधि भंग हुई एवं डाक्टर साहब विदा लेकर चले गए।

श्रीरामकृष्णदेव ने समाधि-अवस्था में जो दर्शन प्राप्त किया था, उसका वर्णन करते हुए वे इस प्रकार कहने लगे, "यहाँ से सुरेन्द्र के मकान तक मुझे एक ज्योतिर्मय मार्ग दिखाई दिया। मैंने देखा कि उसकी भक्ति के कारण देवी-प्रतिमा मे माँ का आविर्भाव हुआ है! उनके तृतीय नेत्र से ज्योति की किरण निकल रही है। पूजन के मण्डप मे देवी के सम्मुख दीपमाला प्रज्वलित की गई है तथा आँगन मे बैठकर सुरेन्द्र व्याकुल हो 'माँ, माँ' कहता हुआ रो रहा है। तुम लोग अभी वहाँ चले जाओ। तुम लोगों को देखने से उसका हृदय शान्त होगा।"

तदनन्तर श्रीरामकृष्णदेव को प्रणाम कर स्वामी विवेकानन्द आदि सभी लोग सुरेन्द्रनाथ के घर पहुँचे तथा उनसे पूछने पर उनको यह विदित हुआ कि वास्तव मे देवी के सम्मुख मण्डप मे दीपमाला प्रज्वलित की गई थी और श्रीरामकृष्णदेव जिस समय समाधिस्थ हुए थे, उस समय देवी के सम्मुख स्थित आँगन मे बैठकर हृदय के आवेग के साथ सुरेन्द्रनाथ ने लगभग एक घण्टा तक 'माँ, माँ' कहते हुए बालक की तरह उच्च स्वर से रुदन किया था। इस तरह बाह्य घटना के साथ श्रीरामकृष्णदेव के समाधिकालीन उक्त दर्शन की समता पाकर भक्तवृन्द विस्मित एवं आनन्दित हो आश्चर्यचकित हो गए।

उनके साधनकालीन प्रथम चार वर्षों मे किसी समय रानी रासमणि तथा उनके दामाद मथुरामोहनजी ने ऐसा सोचा था कि अखण्ड ब्रह्मचर्य पालन के फलस्वरूप श्रीरामकृष्णदेव का मस्तिष्क विकृत हुआ है और इस कारण उनमे आध्यात्मिक व्याकुलता प्रकट होने लगी है। ब्रह्मचर्य के भंग होने पर पुनः उन्हें शारीरिक स्वस्थता प्राप्त हो सकती है, ऐसा मानकर उन्होंने लक्ष्मीबाई आदि नाज-नखरेवाली वेश्याओं के द्वारा पहले दक्षिणेश्वर

मे तथा बाद में कलकत्ता के मेछुया बाजारस्थित एक मकान में उन्हे प्रलोभित करने का प्रयास किया था। श्रीरामकृष्णदेव कहते थे कि उन नारियों मे श्रीजगन्माता का दर्शन प्राप्त कर, उस समय वे 'माँ, माँ' कहते हुए समाधिमग्न हो गए थे तथा उनकी इन्द्रिय संकुचित हो कछुए के अंग की तरह उनके शरीर के अन्दर प्रविष्ट हो गई थी। यह देखकर तथा उनके बालक-जैसे आचरण से मुग्ध हो उन नारियों के हृदय में वात्सल्य का संचार हो गया था! उनके ब्रह्मचर्य को भंग करने के निमित्त प्रलोभित करने मे प्रवृत्त हो उन्होंने महान् अपराध किया है, यह सोचकर भयभीत हो अश्रुपूर्ण नेत्रों से उनके समीप क्षमा-याचना तथा उनको बारम्बार प्रणाम कर वे चली गई।

रानी रासमणि तथा मथुरबाबू द्वारा भ्रमवश श्रीरामकृष्णदेव की परीक्षा।

नवम अध्याय

विवाह और पुनरागमन

इधर कामारपुकुर में जब श्रीरामकृष्णदेव की माँ तथा भाई के पास यह समाचार पहुँचा कि उन्होंने पूजन-कार्य छोड़ दिया है, तब वे अत्यन्त चिन्तित हुए। रामकुमारजी की मृत्यु के बाद दो वर्ष व्यतीत होते ही श्रीरामकृष्णदेव वायु के रोग से पीड़ित होने के समाचार से जननी चन्द्रमणि देवी तथा श्री रामेश्वर अत्यन्त उद्विग्न हुए। लोगों मे यह बात प्रचलित है कि मानव के भाग्य मे जब दुःख उपस्थित होता है, तब केवल एक ही दुर्घटना से उसकी समाप्ति नहीं हो जाती, किन्तु चारो ओर से नाना प्रकार के दुःख एकत्रित हो उसके जीवनाकाश को आच्छन्न कर डालते है—इन लोगों के जीवन मे भी उस समय ठीक ऐसा ही हुआ। गदाधर का जन्म चन्द्रमणि देवी की अधिक आयु में होने के कारण वे उनके अत्यन्त लाड़ले कनिष्ठ पुत्र थे। इसलिए दुःख-शोक से अधीर हो उन्होने अपने पुत्र को घर बुलवा लिया तथा उनके उदासीन, चंचल भाव एवं 'माँ, माँ' पुकारते हुए करुण क्रन्दन से व्याकुल होकर वे उसके प्रतिकार के लिए नाना प्रकार से प्रयास करने लगी। दवा आदि के साथ ही साथ शान्ति-स्वस्त्ययन, झाड़-फूँक आदि नाना प्रकार की दैवी क्रियाओ के भी अनुष्ठान होने लगे। यह घटना सन् १८५८ के आश्विन या कार्तिक मास की होगी।

श्रीरामकृष्णदेव का कामारपुकुर आगमन।

घर आकर श्रीरामकृष्णदेव कभी-कभी पहले की तरह स्वस्थ रहते हुए भी बीच बीच मे 'माँ, माँ' कहकर व्याकुलता से रोते रहते थे और किसी-किसी समय भावावेश से बाह्यज्ञानशून्य हो जाते थे। उनके आचरण तथा व्यवहारादि कभी साधारण मानव की तरह और कभी उससे सम्पूर्ण विपरीत होते थे। इसलिए उस समय एक ओर उनमे जहाँ सत्य, सरलता, देवभक्ति तथा मातृभक्ति एव मित्रों के प्रति प्रेम का

विकास देखने को मिलता था, वहाँ दूसरी ओर सांसारिक विषयों मे उदासीनता, सर्व साधारण के अपरिचित विषय विशेष को प्राप्त करने की व्याकुलता एवं लज्जा, घृणा तथा भयरहित हो अभीष्ट लक्ष्य मे पहुँचने का निःसंकोच प्रयास सर्वदा दिखाई देता था। यह देखकर लोगों के मन मे एक अद्भुत विश्वास उनके सम्बन्ध मे उत्पन्न हुआ था। उन लोगों की यह धारणा बन चुकी थी कि उन पर भूतप्रेत का आवेश हुआ है।

श्रीरामकृष्णदेव पर भूत-प्रेत का आवेश हुआ है—उनके आत्मीयवर्ग की ऐसी धारणा।

श्रीरामकृष्णदेव की सरलहृदया माँ चन्द्रादेवी के मन मे इससे पूर्व पूर्वोक्त बात कभी-कभी उदित हुई थी। उस समय अन्य लोगों की इस प्रकार की आलोचना सुनकर उन्होंने पुत्र के कल्याणार्थ ओझा बुलवाने का निश्चय किया। श्रीरामकृष्णदेव कहते थे, "एक दिन एक ओझा ने आकर अभिमन्त्रित की हुई एक बत्ती जलाकर मुझे सूँघने को दी और कहा कि यदि भूतप्रेत का आवेश हुआ होगा तो वह दूर हो जावेगा, किन्तु कुछ भी न हुआ। तदनन्तर कुछ मुख्य ओझाओं ने पूजनादि करने के पश्चात् एक दिन रात्रि मे भूत उतारा। पूजन एवं नैवेद्य ग्रहण कर प्रसन्न हो 'चण्ड' ने कहा—'इसके ऊपर किसी भूतप्रेत का आवेश नहीं है तथा इसे कोई रोग भी नहीं हुआ है!'—तदनन्तर सबके समक्ष मुझे पुकारकर कहा—'गदाइ, यदि तुम साधु होना चाहते हो तो इतनी सुपारी क्यों खाते हो? अधिक सुपारी खाने से तो काम-विकार बढता है।' इससे पूर्व सचमुच ही सुपारी मुझे अत्यन्त प्रिय लगती थी और मै प्रायः सुपारी खाया करता था; उसके कथनानुसार तभी से मैने सुपारी त्याग दी।"

ओझा बुलवाकर भूतप्रेत उतारना।

श्रीरामकृष्णदेव की आयु उस समय तेईस वर्ष पूर्ण होने जा रही थी। कामारपुकुर मे कुछ महीने रहने के पश्चात् वे किंचित् स्वस्थ हुए। श्रीजगदम्बा के बारम्बार अद्भुत दर्शन-लाभ करने के कारण ही वे उस समय शान्त हो गए थे। उस समय की बहुत-सी बाते हमें उनके आत्मीयवर्ग से सुनने को मिली है, जिनके आधार पर हमें उपर्युक्त धारणा हुई है। अब हम पाठकों

श्रीरामकृष्णदेव के स्वस्थ होने के कारण के बारे में उनके आत्मीयवर्ग की बातें ...

से उन बातों को कहेंगे :—

कामारपुकुर के पश्चिम तथा उत्तर-पूर्व की सीमाओं पर अवस्थित 'भूतिर खाल' तथा 'बुधई मोड़ल' नामक श्मशानों मे वे अकेले दिन-रात्रि मे अधिकांश समय व्यतीत किया करते थे। उनमे अदृष्टपूर्व शक्ति होने का निश्चय उनके आत्मीयवर्ग को उसी समय हुआ। उनसे हमने सुना है कि श्रीरामकृष्णदेव उक्त दोनों श्मशानों मे सियार तथा उप-देवताओं को देने के लिए नई पात्र मे फलमूल, मिष्टान्न आदि रखकर श्मशान मे अपने साथ ले जाया करते थे। नई हंडियों मे मिष्टान्नादि भोज्य पदार्थ रखकर उन स्थानों में पहुँचकर उन्हे निवेदित करते ही चारों ओर से झुण्ड के झुण्ड सियार आकर उन वस्तुओ को खा जाते थे. तथा उपदेवताओं के लिए निवेदित भोज्य वस्तुओ से भरी हुई हंडियाँ वायु के वेग से ऊपर की ओर जाकर शून्य मे विलीन हो जाती थीं। उन उपदेवताओं को वे कभी-कभी प्रत्यक्ष देखते थे। आधी रात बीत जाने पर भी छोटे भाई को किसी किसी दिन घर लौटते हुए न देखकर श्रीरामकृष्णदेव के मध्यमाग्रज श्री रामेश्वर श्मशान के समीप पहुँचकर भाई का नाम लेकर जोर से पुकारा करते थे। उस आवाज को सुनकर उनको सतर्क करते हुए श्रीरामकृष्णदेव उच्च कण्ठ से कह उठते थे, "आया! दादा! आया! आप इधर आगे न बढे, नही तो ये (उपदेवतादि) आपको कष्ट देगे।" 'भूतिर खाल' के समीपस्थ श्मशान मे उन्होने उस समय अपने हाथो से एक बेल का पेड़ लगाया था तथा श्मशान के मध्यभाग में जो अश्वत्थ का वृक्ष था, उसके नीचे बैठकर वे बहुधा ध्यान-जप किया करते थे। श्रीरामकृष्णदेव के आत्मीयवर्ग के इन कथनों से यह स्पष्ट है कि श्रीजगदम्बा के दर्शन के निमित्त लालायित हो इससे पूर्व उन्होंने जो महान् अभाव का अनुभव किया था, वह कुछ अपूर्व दर्शन तथा उपलब्धि के द्वारा उस समय प्रशमित हो चुका था। उनकी तत्कालीन जीवनचर्या के आलोचन से यह प्रतीत होता है कि श्रीजगदम्बा की खड्ग-मुण्डधारिणी, वराभयकरा, साधकों के प्रति अनुग्रहकारिणी चिन्मयी मूर्ति का दर्शन, उस समय प्रायः सर्वदा उनको उपलब्ध हो रहा था और उनसे जब जो प्रश्न करते थे उसका उत्तर प्राप्त कर तदनुसार वे अपने जीवन को परिचालित कर रहे थे। ऐसा मालूम होता है कि उस

समय से उनके मन मे यह दृढ धारणा हुई थी कि श्रीजगन्माता का अबाध निरन्तर दर्शन उनके भाग्य मे शीघ्र ही उपस्थित होने वाला है।

श्रीरामकृष्णदेव की तत्कालीन योग विभूति।

भविष्य-दर्शनरूप विभूति का विकास भी इसी समय श्रीरामकृष्णदेव के जीवन में देखने को मिलता है। हृदय तथा कामारपुकुर व जयरामवाटी के बहुत-से लोगों ने इस विषय मे साक्षी प्रदान की है। श्रीरामकृष्णदेव के श्रीमुख से भी कभी-कभी हमे इस सम्बन्ध में संकेत प्राप्त हुआ है। निम्नलिखित घटनाओं से पाठक यह भलीभाँति समझ सकेगे।

श्रीरामकृष्णदेव को स्वस्थ देखकर उनके आत्मीय-वर्ग द्वारा उनका विवाह कर देने का संकल्प।

श्रीरामकृष्णदेव के तत्कालीन आचरण तथा क्रियाकलापों को देखकर उनकी माताजी आदि की यह धारणा हुई थी कि दैवी-कृपा से उनका वायु-रोग बहुत-कुछ घट चुका है; क्योकि उन लोगों को उस समय यह दिखाई दे रहा था कि वे पहले की भाँति व्याकुल होकर रोते नही है, भोजनादि भी यथासमय कर लेते है और प्रायः सभी विषयों मे साधारण मानव की तरह आचरण करते रहते है। सर्वदा देवी-देवताओं की प्रतिमाओं को लेकर रहना, श्मशान मे विचरना, पहने हुए वस्त्र को त्यागकर कभी-कभी ध्यान-पूजनादि का अनुष्ठान करना तथा उस विषय में किसी के निषेध को न मानना आदि उनके कुछ व्यवहार यद्यपि अनन्यसाधारण थे, फिर भी उनके लिए वे अस्वाभाविक नहीं थे—उनका यह स्वभाव तो बाल्यकाल से ही था। इसलिए उनके इन आचरणों को देखकर उनके आत्मीयवर्ग को उनके वायुरोग की वृद्धि का कोई कारण दिखाई नहीं दिया। किन्तु सांसारिक समस्त विषयों मे उनकी पूर्ण उदासीनता तथा निरन्तर उपेक्षा-बुद्धि को दूर करने के लिए वे उस समय विशेषरूप से चिन्तित थे। उनके मन मे यह बात बारम्बार जाग्रत होती थी कि जब तक सांसारिक विषयों की ओर दृष्टि आकृष्ट होकर पूर्वोक्त भाव दूर नहीं होगा, तब तक उनके लिए वायुरोग से पुनः आक्रान्त हो जाने की विशेष सम्भावना है। इस रोग से रक्षा के निमित्त श्रीरामकृष्णदेव की स्नेहमयी माता तथा ज्येष्ठ भ्राता उपयुक्त कन्या ढूँढ़कर उनका विवाह

करने का परामर्श करने लगे। वे सोचने लगे कि सद्वंश की सुशीला पत्नी के प्रति स्नेह उत्पन्न होने पर उनका मन विभिन्न विषयों की ओर न जाकर अपनी सांसारिक-स्थिति के उन्नति-साधन मे ही संलग्न होगा।

विवाह के लिए श्रीरामकृष्णदेव की सम्मति।

इस बात का पता लगने पर गदाधर कही बिगड़ न बैठे, इसलिए माता तथा ज्येष्ठ पुत्र के बीच एकान्त मे परामर्श हुआ। किन्तु तीक्ष्ण-बुद्धि गदाधर को यह बात विदित होने मे अधिक विलम्ब न लगा। सब कुछ जानकर भी उन्होंने इस बारे मे कोई आपत्ति नहीं की। घर मे आनन्ददायक कोई उत्सव आदि होने पर बालक-बालिकाएँ जिस प्रकार आनन्द मनाते है, उन्होंने भी ठीक उसी प्रकार का आचरण किया। श्रीजगन्माता से इस विषय को निवेदित कर अपने कर्तव्य का परिज्ञान हो जाने के कारण ही क्या वे आनन्दित हुए थे अथवा बालक की भाँति भविष्य-दृष्टि का अभाव तथा चिन्ताशून्यता ही उनके इस प्रकार आचरण के कारण थे—इस सम्बन्ध मे अन्यत्र हमने यथासाध्य आलोचना की है, यथास्थान पाठकों को स्वयं इसका पता चल जावेगा।*

श्रीरामकृष्णदेव के द्वारा विवाह के लिए कन्या-निर्वाचन।

अस्तु। चारों ओर गाँवों मे लोग भेजे गए, किन्तु इच्छानुरूप कन्या न मिली। जिन दो-चार कन्याओं का पता लगा, उनके अभिभावकों के द्वारा अधिक धन माँगे जाने के कारण रामेश्वर को उन स्थानों मे भाई का सम्बन्ध करने का साहस न हुआ। इस प्रकार बहुत खोज करने पर भी उपयुक्त कन्या न मिलने के कारण चन्द्रादेवी तथा रामेश्वर जब अत्यन्त निराश एवं चिन्ताग्रस्त हो गए, तब भावाविष्ट हो गदाधर ने एक दिन उनसे कहा—"अन्यत्र ढूँढ़ना व्यर्थ है, जयरामवाटी गाँव मे श्री रामचन्द्र मुखोपाध्याय के घर में विवाहार्थ कन्या 'तिनके से चिह्नित'|| कर रखी हुई है।"

उस बात पर विश्वास न करते हुए भी श्रीरामकृष्णदेव की माँ तथा भाई ने वहाँ पता लगाने के लिए एक व्यक्ति को भेजा। उसने वहाँ से

---

* गुरुभाव-पूर्वार्ध, चतुर्थ अध्याय देखिए।

|| पूर्ण विवरण के लिए गुरुभाव पूर्वार्ध, चतुर्थ अध्याय देखिए।

लौटकर यह समाचार दिया कि और सब बाते चाहे जो भी कुछ हों, किन्तु कन्या नितान्त बालिका है, उसकी आयु केवल पॉच वर्ष की है। इस प्रकार अचानक कन्या की खोज पाकर चन्द्रादेवी ने वहीं पुत्र के विवाह करने का निश्चय किया तथा थोड़े ही दिनो मे अन्य सब बातें तय हो गई। तदनन्तर शुभ दिन एवं शुभ मुहूर्त मे कामारपुकुर से पश्चिम की ओर दो कोस की दूरी पर जयरामवाटी गॉव मे रामेश्वर ने अपने भाई को ले जाकर श्री रामचन्द्र मुखोपाध्याय की पॉच वर्ष की इकलौती कन्या के साथ उसका शुभ-विवाह कर दिया। विवाह मे कन्यापक्ष को तीन सौ रुपये देने पड़े। यह घटना सन् १८५९ के मई माह (बंगला सन् १२६६ के वैशाख) के अन्तिम भाग की है। श्रीरामकृष्णदेव को उस समय चौबीसवाँ वर्ष लगा था।

विवाह।

गदाधर का विवाह हो जाने से श्रीमती चन्द्रामणि बहुत-कुछ निश्चिन्त हो गई। विवाह सम्बन्धी कार्यो मे पुत्र को निर्देश पालन करते देखकर उन्हे यह धारणा थी कि इतने दिनों के बाद ईश्वर ने उन पर कृपा की है। उदास पुत्र का घर लौटना, सद्वंश की कन्या मिलना, अचिन्त्यरूप से अर्थाभाव दूर होना—यह सब दैवी अनुकूलता के बिना कैसे सम्भव हो सकता है? अतः सरलहृदया, धर्मपरायणा चन्द्रादेवी का उस समय थोड़ा-बहुत सुखी होना स्वाभाविक था। किन्तु समधी की मनस्तुष्टि तथा लोक-मर्यादा की रक्षा के निमित्त उन्होंने अपने मित्र जमींदार लाहा बाबुओं के घर से जो जेवर लिए थे और जिनसे पुत्रवधू को सजाकर अपने घर लाई थीं, कुछ दिन बाद उन जेवरों के लौटाने का प्रश्न आया। अतः अब वे पुनः चिन्तित हो गईं। नववधू को विवाह के दिन से ही उन्होने अपना लिया था। बालिका वधू के शरीर से उन आभूषणों के उतारने की चिन्तामात्र से उस वृद्धा महिला की आखे डबडबा गईं। अपने हृदय की बात और किसी से न कहने पर भी गदाधर को यह बात समझने मे विलम्ब न लगा। उन्होने माँ को शान्त कर सोई हुई पत्नी के शरीर से उन आभूषणों को इस प्रकार कुशलतापूर्वक उतार लिया कि बालिका को

विवाह के पश्चात् श्रीमती चन्द्रामणि तथा श्रीरामकृष्णदेव के आचरण।

कुछ भी पता न चला। किन्तु प्रातःकाल, उठने पर बुद्धिमती बालिका ने पूछा, "मैंने जो गहने पहने थे, वे कहाँ गए?" तब सजल नेत्र से चन्द्रादेवी ने उसे अपनी गोद मे लेकर आश्वासन देते हुए कहा, "बेटी, गदाधर तेरे लिए इनसे भी सुन्दर गहने बनवा देगा।" किन्तु इतने से ही वह बात समाप्त नहीं हुई। लड़की के काका उस दिन उसे देखने के लिए वहाँ आए थे और उन्हे जब यह बात विदित हुई, तब वे बड़े रुष्ट हुए और उसी दिन वधू को अपने घर लिवा ले गए। इस घटना से यह देखकर कि इस प्रसंग से माँ के मन को बहुत कष्ट हुआ है, गदाधर ने उनके दुःख को दूर करने के लिए परिहास मे कहा, "वे चाहे अब जो कुछ कहे या करें, उससे विवाह थोड़े ही पलट सकता है?"

श्रीरामकृष्णदेव का पुनः कलकत्ता आगमन।

विवाह के बाद लगभग एक वर्ष सात महीने तक श्रीरामकृष्णदेव ने कामारपुकुर मे निवास किया था। इस आशंका से कि सम्पूर्ण स्वस्थ हुए बिना कलकत्ता वापस जाने पर कहीं उन्हे पुनः वायुरोग न हो जाय, श्रीमती चन्द्रादेवी ने उन्हें शीघ्र ही जाने नहीं दिया। अस्तु, बंगला सन् १२६७ के मार्गशीर्ष महीने मे पुत्रवधू ने जब सप्तम वर्ष में पदार्पण किया, उस समय कुलप्रथा के अनुसार श्रीरामकृष्णदेव को दो-चार दिन के लिए ससुराल जाकर शुभ-मुहूर्त मे पत्नी को लेकर कामारपुकुर लौटना पड़ा था। इस प्रकार पत्नी के साथ घर लौटने के अल्पकाल पश्चात् उन्होंने कलकत्ता जाने का निश्चय किया, उनकी माँ तथा भाई ने और कुछ दिन घर पर रहने का आग्रह किया पर घर की आर्थिक स्थिति उन्हे ज्ञात थी, अतः उनकी बातों पर ध्यान न देकर वे कालीमन्दिर मे वापस आकर पहले की तरह श्रीजगदम्बा की सेवा-पूजा करने लगे।

द्वितीय बार श्रीरामकृष्णदेव की दिव्योन्माद-अवस्था।

कलकत्ता आकर कुछ दिन पूजन करते ही उनका मन उस कार्य में इतना तन्मय हो गया कि माँ, भाई, पत्नी, घर-द्वार, आर्थिक परिस्थिति, कामारपुकुर की सारी बातें आदि उनके मन के किसी निभृत कोने मे दब गई और श्रीजगन्माता को सदा सर्वकाल सबके भीतर कैसे दर्शन कर सकेंगे — एकमात्र यही चिन्ता उनके मन मे व्याप्त हो गई। दिन रात स्मरण-मनन, जप-ध्यान

करते हुए उनका वक्षःस्थल पुनः सर्वदा आरक्त रहने लगा, संसार तथा सांसारिक विषयों की चर्चा विषवत् प्रतीत होने लगी तथा नेत्र से निद्रा न जाने कहाँ विलुप्त हो गई! किन्तु इस प्रकार की शारीरिक तथा मानसिक अवस्था का इससे पूर्व एक बार अनुभव हो चुकने के कारण, इस बार वे पहले की भाँति एकदम आत्मविह्वल नहीं हुए।

हृदय से हमने सुना है कि मथुरबाबू के निर्देशानुसार कलकत्ता के प्रसिद्ध वैद्यराज गंगाप्रसादजी ने श्रीरामकृष्णदेव के वायुप्रकोप, अनिद्रा तथा गात्रदाह आदि रोगों के उपशम के निमित्त नाना प्रकार की औषधियाँ तथा तैल आदि की व्यवस्था की थी। इस चिकित्सा से शीघ्र कोई लाभ न होने पर भी हृदय निराश नहीं हुए और बीच-बीच में श्रीरामकृष्णदेव को साथ लेकर वैद्यराजजी के कलकत्तास्थित भवन मे जाया करते थे। श्रीरामकृष्णदेव कहते थे, "इस प्रकार एक दिन गंगाप्रसादजी के भवन पर हम गए। उन्हे जब यह दिखा कि चिकित्सा से कोई आशाजनक फल नहीं होता है तो वे चिन्तित हुए। फिर उन्होंने विशेष रूप से परीक्षण किया और नवीन उपचार की व्यवस्था करने लगे। उस समय पूर्व बंगाल के और एक वैद्य भी वहाँ उपस्थित थे। रोग के लक्षणों को सुनकर उन्होंने कहा था—'ऐसा प्रतीत होता है कि इन्हे देवोन्माद हुआ है; यह एक प्रकार की योगजनित व्याधि है; औषध प्रयोग द्वारा यह दूर होने का नहीं।'* रोगसदृश प्रतीत होने वाले मेरे शारीरिक विकारों का यथार्थ कारण निर्णय करने मे ये वैद्यजी ही सर्वप्रथम सफल हुए थे। किन्तु उस समय किसी ने भी उनकी बात पर ध्यान नहीं दिया।" इस प्रकार श्रीरामकृष्णदेव के हितैषी मथुरबाबू आदि ने उनकी इस असाधारण व्याधि से चिन्तित होकर अनेक प्रकार की चिकित्साएँ करायीं। किन्तु क्रमशः रोग की वृद्धि ही हुई, लाभ कुछ नहीं हुआ।

धीरे-धीरे यह समाचार कामारपुकुर पहुँचा। श्रीमती चन्द्रादेवी ने और कोई उपाय न देखकर पुत्र के कल्याणार्थ श्रीमहादेवजी के समीप

* किसी-किसी का कहना है कि श्री गंगाप्रसादजी के भाई श्री दुर्गाप्रसादजी ने ही श्रीरामकृष्णदेव से यह बात कही थी।

धरना देने का निश्चय किया तथा कामारपुकुर स्थित 'बूढे शंकर' (उक्त नाम से प्रसिद्ध शिवमूर्ति) को जाग्रत देवता जानकर उनके मन्दिर के एक कोने मे प्रायोपवेशन कर वे पड़ी रहीं। उन्हे वहॉ पर यह देव-आदेश प्राप्त हुआ, "मुकुन्दपुर की शिवमूर्ति के समीप धरना देने से तेरी अभिलाषा पूर्ण होगी।" इस आदेशानुसार वहाँ जाकर उन्होंने पुनः प्रायोपवेशन प्रारम्भ किया। मुकुन्दपुर की शिवमूर्ति के समक्ष कामना-पूर्ति के निमित्त इससे पूर्व कभी कोई धरना नहीं देता था। यह जानते हुए भी देव-आदेश प्राप्त उस वृद्ध महिला के हृदय मे कोई संशय उत्पन्न नहीं हुआ। वहॉ प्रायोपवेशन प्रारम्भ करने के दो-तीन दिन बाद ही उन्होंने स्वप्न मे देखा कि जटाजूट-सुशोभित व्याघ्राम्बरधारी रजतकान्ति श्रीमहादेवजी उनके सम्मुख आविर्भूत हो उन्हे सान्त्वना देते हुए कह रहे है,—"भय का कोई कारण नहीं, तुम्हारा पुत्र पागल नहीं हुआ है, ईश्वर-दर्शन की व्याकुलता से उसकी ऐसी अवस्था हुई है।" धर्मपरायण वृद्धा इस देव-आदेश से आश्वस्त हो भक्तिपूर्वक श्रीमहादेवजी का पूजन कर घर लौटीं तथा पुत्र के मानसिक विकार की शान्ति के लिए एकाग्र चित्त से कुलदेवता श्रीरघुवीर तथा श्रीशीतलादेवी की सेवा करने लगी। सुना जाता है कि तभी से मुकुन्दपुर की शिवमूर्ति के समीप प्रति वर्ष कितने ही नर-नारी धरना देकर सफलमनोरथ हो रहे है।

श्रीरामकृष्णदेव की तत्कालीन स्थिति।

तत्कालीन दिव्योन्माद-अवस्था का स्मरण कर श्रीरामकृष्णदेव ने कितने ही बार हमसे कहा है—"आध्यात्मिक भाव के प्राबल्य से साधारण जीवों के शरीर तथा मन में—उस प्रकार की तो कौन कहे—यदि उसकी चतुर्थांश खलबली भी उत्पन्न हो जाय तो शरीर उसी समय नष्ट हो जायगा। दिन-रात अधिकांश समय मॉ के किसी न किसी रूप का दर्शन पाकर मै उस समय भूला रहता था, तभी मेरी रक्षा हुई है; अन्यथा (अपने शरीर को दिखाकर) इस चोले का रहना असम्भव था! उस समय से लेकर लगातार छः वर्षपर्यन्त एक क्षण के लिए भी मुझे नींद नहीं आई! नेत्र पलकशून्य हो चुके थे, प्रयत्न करने पर भी कभी-कभी पलक नहीं डाल पाता था! कितना समय बीत गया,

इसका मुझे कोई ध्यान नहीं रहता था तथा अपने शरीर-रक्षा की बात मै प्रायः विस्मृत हो चुका था। जब कभी शरीर की ओर थोडा-बहुत मेरा ध्यान जाता था, तब उसकी दशा देखकर मै काँप उठता था, मन मे मालूम होता था कि मै कहीं पागल तो नहीं हो गया हूँ? दर्पण के सम्मुख खड़े हो ऑखों मे उँगली डालकर मै देखा करता था कि पलके गिरती है या नहीं। उस समय भी पलक नहीं गिरते थे। घबराकर मै रो उठता था और माँ से कहता था—'माँ, तुझे पुकारने तथा तुझ पर विश्वास करने का क्या यही फल निकला? तूने भयकर रोग से मेरे शरीर को जर्जर कर डाला?' पुनः दूसरे ही क्षण फिर मै कह उठता, 'जो कुछ होनहार है हो, शरीर भले ही चला जाय, पर तू मुझे न छोड़ना, मुझे दर्शन दे, मुझ पर कृपा कर; माँ, एकमात्र तेरे पादपद्मों की ही मैने शरण ली है, तेरे सिवाय मेरी और कोई भी दूसरी गति नहीं है।' इस प्रकार रोते-रोते मेरा मन पुनः अद्भुत उत्साह से पूर्ण हो उठता था, शरीर अत्यन्त तुच्छ तथा हेय प्रतीत होता था, माँ का दर्शन तथा उनकी अभय-वाणी सुनकर मै आश्वस्त होता था।"

मथुरबाबू को श्रीरामकृष्णदेव का 'शिव-काली' रूप में दर्शन।

श्रीजगन्माता के अचिन्त्य निर्देश से उस समय एक दिन श्रीरामकृष्णदेव के अन्दर अयाचित रूप से अद्भुत दैवी-प्रकाश को देखकर मथुरबाबू विस्मित तथा स्तम्भित हुए थे। किस प्रकार उन्होंने उस दिन श्रीरामकृष्णदेव के अन्दर शिवजी तथा कालीमूर्ति का साक्षात्कार कर जाग्रत देवताज्ञान से उनकी पूजा की थी, इसका विवरण अन्यत्र दिया गया है।* उस दिन से मानो दैवी-शक्ति के प्रभाववश ही श्रीरामकृष्णदेव को वे दूसरी दृष्टि से देखने तथा उनके प्रति सर्वदा भक्ति-विश्वास करने के लिए बाध्य हुए थे। इस प्रकार की अघटित घटना से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि श्रीरामकृष्णदेव के साधक-जीवन मे उस समय से मथुरबाबू की सहायता तथा अनुकूलता विशेष रूप से आवश्यक होने के कारण ही इच्छामयी श्रीजगन्माता ने उन दोनों को अविच्छेद्य प्रेममय बन्धन मे आबद्ध कर दिया था। संशयवाद, जड़वाद तथा नास्तिकता-प्रधान वर्तमान युग मे

* गुरुभाव-पूर्वार्ध, षष्ठ अध्याय देखिए।

धर्मग्लानि को दूर कर जीवित अध्यात्मशक्ति के संचार के निमित्त श्रीरामकृष्णदेव के शरीर तथा मनरूप यन्त्र का श्रीजगदम्बा ने किस प्रकार के यत्न तथा अद्भुत उपाय का अवलम्बन कर निर्माण किया था, उपरोक्त घटनाओं द्वारा उसका प्रमाण प्राप्तकर हम स्तम्भित हो जाते है।

दशम अध्याय

भैरवी ब्राह्मणी का आगमन

सन् १८६१ ई. के अन्त मे कामारपुकुर से दक्षिणेश्वर वापस आने के पश्चात् श्रीरामकृष्णदेव के जीवन मे दो घटनाएँ समुपस्थित हुई थीं। उन दोनों घटनाओं ने उनके जीवन को विशेष रूप से परिवर्तित किया था, इसलिए उनकी आलोचना विशेष आवश्यक है। १८६१ ई. के प्रारम्भ मे रानी रासमणि को संग्रहणी रोग हो गया था। श्रीरामकृष्णदेव से हमने सुना है कि उस समय रानी एक दिन सहसा गिर पड़ी थीं जिसके परिणामस्वरूप ज्वर, शरीर मे दर्द तथा अजीर्ण आदि उत्पन्न होकर इस रोग का आक्रमण हुआ था। थोड़े ही दिनों मे उस रोग ने भयंकर रूप धारण कर लिया।

रानी रासमणि का भयकर रोग।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि ३१ मई १८५५ ई. (बंगला सन् १२६२ जेष्ठ १८ तारीख) को गुरुवार के दिन रानी रासमणि ने दक्षिणेश्वर मे देवी-प्रतिष्ठा की थी। देव-सेवा के व्यय आदि के निमित्त उसी वर्ष २९ अगस्त (भाद्रपद की १४ तारीख) को दिनाजपुर जिले के अन्तर्गत तीन भाग जमींदारी को उन्होंने दो लाख छब्बीस हजार रुपये में खरीदा था। *

रानी का दिनाजपुर की सम्पति को देवोत्तर करना तथा उनकी मृत्यु।

---

* Plaint in High Court Suit No. 308 of 1872 Poddomoni Dasee vs. Jagadamba Dasee, recites the following from the Deed of Endowment executed by Rani Rasmoni :— "According to my late husband's desire ❖❖❖ I on 18th Jaistha, 1262 B. S (31st May 1855) established and consecrated the Thakurs ❖❖❖ and for purpose of carrying on the *Sheba* purchased three lots of Zamindaries in District Dinajpur on

देखभाल में उनके पूर्ण सहायक थे। कालीमन्दिर की प्रतिष्ठा के समय से मन्दिर की देवोत्तर-सम्पत्ति के आय-व्यय आदि का हिसाब समझकर रानी की इच्छानुसार वे सारी बातों की व्यवस्था कर रहे थे। इसलिए रानी की मृत्यु के पश्चात् भी पहले की तरह वे ही देव-सेवा सम्बन्धी सभी कार्यों का संचालन करते रहे। श्रीरामकृष्णदेव के पुनीत प्रभाव से मथुरामोहन के हृदय में देवभक्ति का विशेष संचार होने के कारण रानी के निधन से भी दक्षिणेश्वर की 'मातृसेवा' में कोई कमी नहीं पहुँची।

मथुरबाबू की सांसारिक उन्नति तथा देव-सेवा की व्यवस्था।

श्रीरामकृष्णदेव के साथ मथुरबाबू के विचित्र सम्बन्ध की बात, इससे पूर्व कई स्थलों पर कही जा चुकी है, अतः यहाँ पर उसकी पुनरुक्ति अनावश्यक है। इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि श्रीरामकृष्णदेव के जीवन में दीर्घकाल-व्यापी तन्त्रोक्त साधनसमूह अनुष्ठित होने से पूर्व ही रानी रासमणि का स्वर्गवास तथा कालीमन्दिर सम्बन्धी समस्त विषयों में मथुरामोहन का एकाधिपत्य होने के कारण भक्तिमान मथुरबाबू को इस सम्बन्ध में उन्हें सहायता प्रदान करने का विशेष अवसर प्राप्त हुआ था। ऐसा प्रतीत होता है कि मथुरबाबू की यह आधिपत्य-प्राप्ति मानो श्रीरामकृष्णदेव को सहायता प्रदान करने के निमित्त ही हुई थी; क्योंकि यह देखने में आता है कि तभी से श्रीरामकृष्णदेव में देव-बुद्धि स्थापन कर उनकी सेवा करना ही उनका सर्वप्रधान कार्य बन चुका था। दीर्घ काल तक समान रूप से किसी व्यक्ति में विश्वास स्थापित कर, उच्च भाव के सहारे जीवन व्यतीत करना केवल ईश्वर-कृपा से ही सम्भव है। अतः रानी की अतुल सम्पत्ति का एकाधिकार प्राप्त करने के पश्चात् विपथगामी न होकर श्रीरामकृष्णदेव के प्रति मथुरामोहन का दिनोंदिन अधिक विश्वास उत्पन्न होना तथा सतत ग्यारह वर्ष तक उनकी सेवा में अपने को समान रूप से नियुक्त रखना, निःसन्देह उनके परम सौभाग्य का द्योतक है।

श्रीरामकृष्णदेव की सहायता के निमित्त मथुरबाबू की उन्नति तथा आधिपत्य-प्राप्ति।

ईश्वरसाधक के अतिरिक्त और कोई भी व्यक्ति श्रीरामकृष्णदेव की

मथुरामोहन विश्वास

दिव्योन्माद अवस्था की असाधारण तीव्रता को किंचिन्मात्र भी अनुभव नहीं कर पाए थे। साधारण लोग उन्हें विकृत मस्तिष्क समझा करते थे; क्योंकि उन लोगों की दृष्टि में, वे सर्वप्रकार के पार्थिव भोग-सुख को त्यागकर किसी अगोचर, अनिर्दिष्ट भाव मे विभोर हो कभी 'हरि', कभी 'राम' तथा कभी-कभी 'काली', 'काली', कहते हुए दिन व्यतीत कर रहे थे। इतना ही नहीं, अपितु रानी रासमणि तथा मथुर-बाबू की कृपा प्राप्त कर कितने ही लोग धनी बन गए थे, किन्तु सौभाग्य-वश वे उनकी सुदृष्टि प्राप्त कर लेने के उपरान्त भी अपनी सांसारिक उन्नति कुछ भी नहीं कर सके। इसलिए वे लोग उन्हें हिताहितज्ञानरहित पागल के अतिरिक्त और क्या समझते? फिर भी लोगों की यह धारणा थी कि सांसारिक समस्त विषयों में अकर्मण्य होने पर भी उस उन्मत्त व्यक्ति के उज्ज्वल नेत्रों मे, अदृष्टपूर्व चाल-चलन में, मधुर कण्ठस्वर मे, सुललित वाग्विन्यास तथा तीक्ष्ण बुद्धि में ऐसा कोई आकर्षण विद्य-मान है, जिससे वे लोग जिन धनी, मानी पण्डित व्यक्तियों के सम्मुख जाने मे संकोच का अनुभव करते, श्रीरामकृष्णदेव निःसंकोच उनके समक्ष उपस्थित होते हैं और अविलम्ब उनके प्रिय बन जाते हैं। निम्न श्रेणी के लोग तथा कालीमन्दिर के कर्मचारीवर्ग यद्यपि ऐसा सोचते थे, किन्तु मथुरबाबू की धारणा इससे भिन्न थी। मथुरामोहन कहते थे, "श्रीजगदम्बा की कृपा से ही श्रीरामकृष्णदेव की उन्मत्त-जैसी स्थिति हुई है।"

श्रीरामकृष्णदेव के सम्बन्ध में मथुरबाबू तथा निम्न श्रेणी के लोगों की धारणा।

रानी रासमणि के निधन के बाद शीघ्र ही श्रीरामकृष्णदेव के जीवन मे उस वर्ष एक विशेष घटना घटी थी। दक्षिणेश्वर कालीमन्दिर के पश्चिम की ओर गंगातटवर्ती विशाल पुश्ते के ऊपर एक सुन्दर पुष्पवाटिका थी जिसमें अनेक प्रकार के वृक्ष, लता, फूल-पौधे आदि थे। इनकी मधुर सुगंध से चारों दिशाएँ सुरभित रहती थीं। श्रीजगदम्बा का पूजन कार्य न करते हुए भी श्रीरामकृष्णदेव उस समय प्रतिदिन वहाँ से पुष्पचयन करते तथा स्वयं माला बनाकर

भैरवी ब्राह्मणी का आगमन।

अपने हाथों से श्रीजगदम्बा को सजाया करते थे। उस बगीचे के मध्य मे गंगाजी से मन्दिर में जाने की 'चॉदनी' (ऊपर से ढका हुआ पक्का मण्डप), विस्तृत सीढियॉ एवं उत्तर की ओर पुश्ते के अन्तिम भाग मे महिलाओं के नहाने का एक पक्का घाट तथा नौबतखाना अभी भी विद्यमान है। पक्के घाट पर बकुल का एक विशाल वृक्ष होने के कारण, लोग उसे 'बकुलतला घाट' कहते थे।

श्रीरामकृष्णदेव एक दिन प्रातःकाल जब पुष्पचयन कर रहे थे, तब एक नाव 'बकुलतलाघाट' पर आई तथा गेरुआ वस्त्र पहनी हुई, बिखरे लम्बे केशयुक्त, भैरवीवेशधारिणी एक सुन्दरी रमणी नाव से उतरकर दक्षिणेश्वर के घाट की चाँदनी की ओर आई। प्रौढा होने पर भी सौन्दर्य उनके शरीर पर झलक रहा था। हमने श्रीरामकृष्णदेव से सुना है कि भैरवी की आयु उस समय लगभग चालीस वर्ष की थी। निकट आत्मीय को देखकर लोग जिस प्रकार विशेष आकर्षण का अनुभव करते है, भैरवी को देखकर उनको भी ठीक वैसा ही हुआ था तथा अपने निवास-स्थान पर लौटकर उन्होंने अपने भानजे हृदय को 'चॉदनी' से उन्हे बुला लाने के लिए कहा। उनका यह आदेश पाकर संकुचित मन से हृदय ने कहा, "वह रमणी अपरिचित है, बुलाने से भला वह क्यों आने लगी?" उत्तर में श्रीरामकृष्णदेव ने कहा, "मेरा नाम बताते ही वह चली आवेगी।" हृदय कहता था कि एक अपरिचित संन्यासिनी के साथ वार्तालाप करने के निमित्त मामाजी का इस प्रकार विशेष आग्रह देखकर वह आश्चर्यचकित हो गया; क्योंकि इससे पूर्व उनको ऐसा करते हुए उसने कभी नहीं देखा था।

पागल मामाजी के आदेश की उपेक्षा करना सम्भव नहीं है, यह जानकर हृदय ने चाँदनी में पहुँचकर देखा कि भैरवी ठीक उसी जगह पर बैठी हुई है। उसने उन्हें सम्बोधित कर कहा कि उसके ईश्वर-भक्त मामाजी उनके दर्शनप्रार्थी है। यह सुनकर बिना कोई प्रश्न किए भैरवी उसके साथ चलने के लिए उठ खड़ी हुई। यह देखकर वह और भी अधिक विस्मित हो गया।

श्रीरामकृष्णदेव के कमरे मे प्रविष्ट होते ही, उन्हें देखते ही भैरवी आनन्द तथा विस्मय से अधीर हो गईं और सहसा सजल नेत्र से कह

उठीं, "बाबा, तुम यहाँ हो! यह जानकर कि तुम गंगा तट पर रहते हो मै तुम्हें ढूँढ़ रही थी, इतने दिनों बाद अब तुम्हारा पता लगा!" श्रीरामकृष्णदेव ने पूछा, "माँ, मेरी बात तुम्हे कैसे विदित हुई?" भैरवी बोलीं, "तुम तीन व्यक्तियों से मुझे मिलना था, यह बात श्रीजगदम्बा की कृपा से पहले ही मुझको विदित हो गई थी। दो व्यक्तियों से पूर्व बंगाल में पहले ही भेट हो गई है, आज यहाँ पर तुमसे भी भेट हो गई।"

प्रथम दर्शन के अवसर पर श्रीरामकृष्णदेव से भैरवी की बातचीत।

तब श्रीरामकृष्णदेव भैरवी के निकट बैठकर, बालक जिस प्रकार आनन्दित हो अपने मन की बाते जननी के समक्ष व्यक्त करता है, ठीक उसी प्रकार अपने अलौकिक दर्शन, ईश्वरचर्चा के समय बाह्यज्ञान का लोप होना, गात्रदाह, नींद न आना, शारीरिक विकार आदि नित्यप्रति की बातों को उनसे बतलाते हुए बारम्बार यह पूछने लगे, "यह बताओ मुझे इस प्रकार क्यों होता रहता है? क्या मै सचमुच पागल हो गया हूँ? जगदम्बा को हृदय से पुकारने के कारण क्या वास्तव मे मुझे कठिन रोग हो गया है?" भैरवी उनकी बातों को सुनती हुई कभी जननी की तरह उत्तेजित, कभी उल्लसित तथा कभी करुणार्द्र हो उनको सान्त्वना देने के निमित्त बारम्बार कहने लगीं, "बाबा, कौन तुम्हें पागल कहता है? यह तुम्हारा पागलपन नहीं है, तुम्हारे भीतर महाभाव का उदय हुआ है, इसीलिए तुम्हारी ऐसी अवस्था हुई है। क्या इस अवस्था को किसी के लिए समझना सम्भव है? इसलिए लोग मनमानी बाते कहते रहते है। ऐसी अवस्था हुई थी एक तो श्रीमती राधिका की और दूसरे श्रीचैतन्य महाप्रभु की। यह बात भक्ति-शास्त्र मे विद्यमान है। मेरे पास वे सब पोथियाँ है, उनमें से मै तुम्हें यह बतलाऊँगी कि जिन लोगों ने ईश्वर को हृदय से पुकारा है, उन सभी की ऐसी अवस्था हुई है।" भैरवी ब्राह्मणी तथा अपने मामाजी को इस प्रकार सन्निकट आत्मीय की तरह वार्तालाप करते हुए देखकर हृदय के विस्मय की सीमा न रही!

श्रीरामकृष्णदेव तथा भैरवी का प्रथम वार्तालाप।

इस प्रकार बड़े आनन्द में कुछ समय बीतने के बाद बहुत विलम्ब

हुआ जानकर श्रीरामकृष्णदेव ने देवी का प्रसादी फलमूल, मक्खन, मिश्री आदि भैरवी ब्राह्मणी को जलपान के लिए दिया। साथ ही यह जानकर कि मातृभावसम्पन्ना ब्राह्मणी, पुत्रस्वरूप उनको पहले भोजन कराए बिना जलस्पर्श करना नहीं चाहती हैं, उन्होने उसमे से कुछ अंश स्वय ग्रहण किया। देवदर्शन तथा जलपान करने के पश्चात् ब्राह्मणी अपने गले मे लटकी हुई श्रीरघुवीर शिला के भोग के निमित्त अमनिया भण्डार से भिक्षास्वरूप आटा, चावल आदि लाकर पंचवटी के नीचे रसोई बनाने लगीं।

पचवटी में भैरवी को अपूर्व दर्शन।

रसोई बन जाने के बाद श्रीरघुवीर के सम्मुख उन सामग्रियों को रखकर ब्राह्मणी ने भोग लगाया तथा अपने इष्टदेव का चिन्तन करती हुई गहरे ध्यान मे निमग्न हो अभूतपूर्व दर्शन प्राप्त कर वे समाधिमग्न हो गई। उनका बाह्यज्ञान विलुप्त हो गया, दोनो नेत्रो से प्रेमाश्रुधारा बहने लगी। उसी समय इधर श्रीरामकृष्णदेव आकृष्ट होकर अर्धबाह्य दशा मे सहसा वहाँ उपस्थित हुए तथा दैवीशक्तिवश पूर्णाविष्ट हो ब्राह्मणी द्वारा निवेदित उन खाद्य वस्तुओ का भोजन करने लगे। तदनन्तर चेतना प्राप्त करने के पश्चात् ब्राह्मणी की जब आँखे खुलीं तथा बाह्यज्ञानरहित भावाविष्ट श्रीरामकृष्णदेव के इस प्रकार के आचरण के साथ अपने दर्शन का सादृश्य देखकर वे रोमाचित हो उठीं। तदनन्तर श्रीरामकृष्णदेव को बाह्य चेतना हुई तथा अपने आचरण के लिए क्षुब्ध होकर ब्राह्मणी से वे कहने लगे, "पता नही, आत्मविह्वल होकर मैं इस प्रकार के आचरण क्यों कर बैठता हूँ?" ब्राह्मणी तब जननी की तरह उन्हे धीरज देती हुई बोलीं, "बाबा, कोई बात नहीं है, यह कार्य तुमने नही किया है, तुम्हारे अन्दर जो विराजमान है, उन्होंने ही किया है; ध्यान मे निमग्न होकर मैने जो देखा है, उससे मुझे यह निश्चय हुआ है कि किसने ऐसा किया है और इसका कारण क्या है; मै यह भी जान गई हूँ कि अब मेरे लिए पहले की तरह बाह्यपूजन की आवश्यकता नहीं है। इतने दिनों के बाद मेरा पूजन सार्थक हुआ है!" यह कहकर किसी प्रकार का संशय किए ना ब्राह्मणी ने अवशिष्ट खाद्य-सामग्री को देवता का प्रसाद समझकर ण किया एवं श्रीरामकृष्णदेव के शरीर तथा मन में अधिष्ठित श्रीरघुवीर

का जाग्रत दर्शन प्राप्त कर प्रेमार्द्र हो अश्रुमोचन करती हुई अपनी उस दीर्घकाल से पूजित श्रीरघुवीर शिला को गंगागर्भ मे विसर्जित कर दिया।

श्रीरामकृष्णदेव एवं ब्राह्मणी मे परस्पर, प्राथमिक दर्शनकालीन प्रीति एवं आकर्षण दिनोदिन वर्धित होने लगे। श्रीरामकृष्णदेव के प्रति अत्यन्त स्नेहसम्पन्ना मुग्धहृदया संन्यासिनी दक्षिणेश्वर मे ही रह गई। आध्यात्मिक वार्तालाप मे मग्न रहने के कारण दोनों मे से किसी को भी समय का भान नहीं रहा। अपने आध्यात्मिक दर्शन तथा अवस्था-सम्बन्धी रहस्यों को अकपट भाव से कहकर श्रीरामकृष्णदेव नित्यप्रति नाना प्रकार के प्रश्न करने लगे एवं भैरवी तन्त्रशास्त्र से उनका समाधान कर एवं ईश्वर-प्रेम के प्राबल्य से अवतार पुरुषों की देह तथा मन मे किस प्रकार के लक्षण प्रकट होते है, भक्ति-ग्रन्थो से उन विषयों को सुनाकर उनके संशयों को छिन्न करने लगीं। इस प्रकार कुछ दिन पंचवटी मे दिव्यानन्द की धारा प्रवाहित होती रही।

पंचवटी में शास्त्रचर्चा।

छः-सात दिन इस प्रकार व्यतीत होने के पश्चात् श्रीरामकृष्णदेव के मन मे यह विचार आया कि ब्राह्मणी को वहाँ रखना उचित नहीं है; क्योंकि इससे काम-कांचनासक्त संसारी मानवों को अज्ञातवश पवित्र हृदय रमणी के सम्बन्ध मे नाना प्रकार के मिथ्या-अपवाद फैलाने का शायद अवसर प्राप्त हो। ब्राह्मणी से यह कहते ही वे इसकी यथार्थता समझ गई तथा गॉव के निकट एक स्थान मे रहकर दिन में नित्यप्रति कुछ समय के लिए श्रीरामकृष्णदेव से मिलने का संकल्प कर वे कालीमन्दिर छोड़कर चली गई।

भैरवी का देवमण्डल के घाट में रहने का कारण।

कालीमन्दिर के उत्तर की ओर, दक्षिणेश्वर ग्रामस्थित भागीरथी के तटवर्ती देवमण्डल के घाट पर ब्राह्मणी रहने लगीं* तथा उस गॉव की

---

* हृदय कहता था कि श्रीरामकृष्णदेव ने ही देवमण्डल के घाट पर रहने का परामर्श देकर ब्राह्मणी को मण्डलो के घर पर भेजा था। वहाँ श्री नवीनचन्द्र नियोगी की धर्मपरायणा पत्नी ने उनका स्वागत किया तथा घाट के मण्डल पर जब तक उनकी इच्छा हो रहने की अनुमति के साथ ही खटिया, चावल, दाल, घी तथा अन्यान्य आवश्यक वस्तुओ की व्यवस्था कर दी।

स्त्रियों से मिलकर वार्तालाप कर थोड़े-ही दिनों मे उनकी श्रद्धापात्री बन गईं, इसलिए वहाँ रहने तथा भिक्षा के सम्बन्ध में उन्हे कोई असुविधा न रही; एवं श्रीरामकृष्णदेव के पवित्र दर्शन से—लोकनिन्दा के भय के कारण—उन्हे एक दिन के लिए भी वंचित नहीं होना पडा। वे प्रतिदिन कुछ देर के लिए कालीमन्दिर मे जाकर श्रीरामकृष्णदेव के साथ वार्तालाप मे समय विताती थीं तथा गाँव की रमणियों से नाना प्रकार की भोजन-सामग्री संग्रह कर कभी कभी उनको भोजन कराने लगीं।*

श्रीरामकृष्णदेव अवतार हैं—भैरवी के हृदय में यह धारणा कैसे उत्पन्न हुई।

श्रीरामकृष्णदेव की बाते सुनकर इसके पूर्व ब्राह्मणी को ऐसा प्रतीत हुआ था कि असाधारण ईश्वरप्रेम के कारण ही उनको अलौकिक दर्शन प्राप्त होते रहे है तथा उनकी इस प्रकार की अवस्था उपस्थित हुई है। भगवच्चर्चा करते हुए भाव-समाधि मे निमग्न हो पुनः पुनः उनके बाह्यज्ञान का लोप हो जाना तथा कीर्तन मे उनकी आनन्द-विह्वलता को देखकर भैरवी के हृदय मे यह दृढ़ धारणा हुई कि वे साधारण साधक नहीं है। श्रीचैतन्यचरितामृत तथा श्रीचैतन्यभागवत आदि ग्रन्थों मे अनेक स्थलों पर महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव का जीवों के उद्धार के निमित्त पुनः शरीर धारण कर अवतीर्ण होने का जो संकेत विद्यमान है, श्रीरामकृष्णदेव को देखकर ब्राह्मणी के मन मे वे बाते बारम्बार उदित होने लगी। इस विदुषी ब्राह्मणी को इन ग्रन्थों मे महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव एवं श्रीनित्यानन्द के बारे मे जो बाते लिपिबद्ध देखने को मिली थीं, उनके साथ उन्हे श्रीरामकृष्णदेव के आचार-व्यवहार तथा अलौकिक दर्शनादि का सादृश्य दिखाई दिया। श्रीचैतन्यदेव के समान भावावेश मे स्पर्श करने पर दूसरे के मन में धर्मभाव जागृत करने की शक्ति उन्हें श्रीरामकृष्णदेव मे दिखाई दी। तथा ईश्वरविरह-विधुर श्रीचैतन्यदेव के शरीर में गात्रदाह होने पर स्रक्चन्दनादि जिन वस्तुओं से वह गात्रदाह प्रशमित होने की प्रसिद्धि है, श्रीरामकृष्णदेव के गात्रदाहप्रशमनार्थ उन वस्तुओं के प्रयोग से उन्हें भी तदनुरूप फल प्राप्त हुआ। $ इसलिए उनके मन में तब से यह दृढ धारणा हुई कि श्रीचैतन्यदेव

* गुरुभाव–पूर्वार्ध, अष्टम अध्याय देखिए।

$ गुरुभाव–उत्तरार्ध, प्रथम अध्याय देखिए।

तथा श्रीनित्यानन्द—ये दोनों जीवोद्धार के निमित्त श्रीरामकृष्णदेव के शरीर तथा मन को आश्रय कर पुनः पृथ्वी मे अवतीर्ण हुए है। शिऊड़ गॉव जाते समय श्रीरामकृष्णदेव ने अपने शरीर मे से किशोरवयस्क दो बालकों को जिस प्रकार बाहर आविर्भूत होते देखा था, उसका उल्लेख हम अन्यत्र कर चुके है। * श्रीरामकृष्णदेव के श्रीमुख से उस समय उक्त दर्शन की बात सुनकर श्रीरामकृष्णदेव के सम्बन्ध मे अपने निश्चय के प्रति दृढ़ विश्वास स्थापन कर ब्राह्मणी बोली, "इस समय नित्यानन्द के आवरण मे चैतन्यदेव का आविर्भाव हुआ है।"

विरक्त ब्राह्मणी को संसार के किसी व्यक्ति से कुछ आकांक्षा नही थी; अपने हृदय मे जो सत्य प्रतीत होता था, उसको व्यक्त करने पर लोकनिन्दा होगी अथवा उनको उपहासास्पद बनना पड़ेगा, इसकी भी उन्हे कोई चिन्ता नहीं थी। इसलिए श्रीरामकृष्णदेव-सम्बन्धी अपने निश्चय को सबके सम्मुख व्यक्त करने मे वे किंन्चिन्मात्र भी संकुचित नहीं हुई। सुना जाता है कि उसी समय एक दिन श्रीरामकृष्णदेव-पंचवटी के नीचे मथुरबाबू के साथ बैठे हुए थे। हृदय भी वहाँ था। वार्तालाप के प्रसंग मे श्रीरामकृष्णदेव अपने बारे मे ब्राह्मणी के निश्चय को मथुरबाबू से कहने लगे। उन्होने कहा, "वह कहती है कि अवतारों मे जो लक्षण होते है, वे इस शरीर तथा मन मे विद्यमान है! उसने बहुत से शास्त्रों का अध्ययन किया है और उसके पास अनेक ग्रन्थ भी है।" यह सुनकर मथुरबाबू हँसते हुए बोले, "बाबा, वे भले ही कुछ कहे, अवतार तो दस से अधिक नहीं है? अतः उनका कहना कैसे सत्य हो सकता है? किन्तु इसमे कोई सन्देह नहीं कि आप पर माँ काली की असीम कृपा है।"

जब वे इस प्रकार वार्तालाप कर रहे थे, एक संन्यासिनी उनकी ओर आती हुई दिखाई दी। मथुरबाबू ने श्रीरामकृष्णदेव से पूछा, "क्या ये वे ही है?" श्रीरामकृष्णदेव ने कहा, "हाँ।" उन लोगों ने देखा कि कहीं से एक थाली मिष्टान्न संग्रह कर, श्रीवृन्दावन मे नन्दरानी यशोदा जिस प्रकार गोपाल को भोजन कराने के लिए सप्रेम आतुर होती थी, ठीक उसी प्रकार तन्मयता के

मथुरबाबू के समक्ष भैरवी का श्रीरामकृष्णदेव को अवतार कहना।

* गुरुभाव–उत्तरार्ध, प्रथम अध्याय देखिए।

साथ अन्यमनस्क हो वे उन लोगों की ओर चली आ रही है। उनके समीप पहुँचकर मथुरबाबू की ओर दृष्टि पड़ते ही उन्होंने यत्नपूर्वक अपने भाव को रोक लिया तथा श्रीरामकृष्णदेव को भोजन कराने के निमित्त हृदय के हाथ मे मिष्टान्न की थाली दे दी। तब मथुरबाबू को दिखाते हुए श्रीरामकृष्णदेव ने उनसे कहा, "देखो तो माँ, तुम जो मेरे बारे मे कहा करती हो, आज मै इनसे उन बातों को कह रहा था; पर ये तो कहते है कि अवतार दस ही है।" मथुरबाबू ने उस समय संन्यासिनी को अभिवादन किया और इस बात को स्वीकार किया कि उन्होंने अवतार के बारे मे सचमुच यह बात कही थी। ब्राह्मणी ने उनको आशीर्वाद प्रदान कर कहा, "क्यों भला? श्रीमद्‌भागवत मे चौबीस अवतारों का वर्णन करने के पश्चात् व्यासदेव ने तो असंख्य बार श्रीहरि के अवतीर्ण होने की बात कही है? वैष्णवो के ग्रन्थों मे भी महाप्रभु के पुनः आविर्भाव का स्पष्ट उल्लेख है। इसके अतिरिक्त श्रीचैतन्यदेव के साथ (श्रीरामकृष्णदेव को दिखाकर) इनके शरीर तथा मन मे प्रकटित लक्षणो का विशेष सादृश्य भी देखने को मिलता है।" इस प्रकार अपने कथन का समर्थन करती हुई ब्राह्मणी बोली कि श्रीमद्‌भागवत तथा गौडीय वैष्णवाचार्यो के ग्रन्थों को पढे हुए पण्डित व्यक्तियो को उनकी यह बात अवश्य ही माननी पड़ेगी। उन व्यक्तियों के समक्ष वे अपने पक्ष को समर्थन करने के लिए प्रस्तुत है। ब्राह्मणी के इस कथन का उत्तर न दे पाने के कारण मथुरामोहन चुप रहे।

श्रीरामकृष्णदेव के सम्बन्ध मे ब्राह्मणी की अपूर्व धारणा क्रमशः कालीमन्दिर के लोगों को विदित हुई तथा इस विषय को लेकर एक चर्चा खडी हो गई। अन्यत्र विशद रूप से उसके परिणाम की आलोचना की गई है।* भैरवी ब्राह्मणी द्वारा सबके समक्ष इस प्रकार श्रीरामकृष्णदेव को देवता की तरह सम्मान प्रदान किए जाने पर भी उनके मन में किसी प्रकार का परिवर्तन उत्पन्न नहीं हुआ। किन्तु उस सिद्धान्त को सुनकर, यह जानने

पण्डित वैष्णवचरण के दक्षिणेश्वर आगमन का कारण।

* गुरुभाव-पूर्वार्ध, पचम तथा षष्ठ अध्याय, एव गुरुभाव-उत्तरार्ध, प्रथम अध्याय देखिए।

के निमित्त कि इस सम्बन्ध मे शास्त्रज्ञ व्यक्ति क्या अभिमत प्रकट करते है, समुत्सुक हो उन्होंने बालक की भॉति मथुरामोहन से उसकी व्यवस्था करने का अनुरोध किया। इस अनुरोध के फलस्वरूप ही वैष्णवचरण आदि पण्डितवर्ग का दक्षिणेश्वर कालीमन्दिर मे आगमन हुआ था। उन लोगों के सम्मुख ब्राह्मणी ने किस प्रकार अपने पक्ष का समर्थन किया था, उसका उल्लेख अन्यत्र किया गया है। ‡

---

‡ गुरुभाव-उत्तरार्ध, प्रथम अध्याय देखिए।

एकादश अध्याय

श्रीरामकृष्णदेव की तन्त्रसाधना

केवल युक्ति-तर्क की सहायता से ही ब्राह्मणी ने श्रीरामकृष्णदेव के सम्बन्ध में पूर्वोक्त सिद्धान्त प्रतिपादित नहीं किया था। पाठकों को स्मरण होगा कि श्रीरामकृष्णदेव के साथ प्रथम भेंट के समय उन्होंने यह कहा था कि श्रीरामकृष्णदेव आदि तीन व्यक्तियों से मिलकर उनके आध्यात्मिक जीवन के विकास के निमित्त उन्हे सहायता प्रदान करना है। श्रीरामकृष्णदेव से भेंट होने के बहुत दिन पूर्व ही उन्हें यह देव-आदेश प्राप्त हुआ था। अतः यह स्पष्ट है कि साधनजनित दिव्यदृष्टि से प्रेरित हो दक्षिणेश्वर मे आकर स्वल्पकालीन परिचय से ही उन्हे श्रीरामकृष्णदेव के सम्बन्ध मे इस प्रकार का अनुभव हुआ था। साथ ही दक्षिणेश्वर आने के पश्चात् ज्यों-ज्यों वे उनके साथ घनिष्ठ रूप से परिचित होती गईं, त्यों-त्यों उनके मन में श्रीरामकृष्णदेव को किस प्रकार से कहाँ तक सहायता प्रदान करना है, यह विषय भी पूर्ण रूप से प्रस्फुटित होने लगा। अतः श्रीरामकृष्णदेव के बारे मे लोगों की भ्रान्त-धारणा को दूर करने के प्रयास मे ही उन्होंने उस समय अपना समय नहीं दिया, अपितु शास्त्रानुसार साधनानुष्ठानों के द्वारा श्रीजगदम्बा की पूर्ण प्रसन्नता के अधिकारी बनकर श्रीरामकृष्णदेव जिससे दिव्यभाव में सुप्रतिष्ठित हो सकें, तदर्थ भी वे प्रयत्न करने लगीं।

साधनजनित दिव्य दृष्टि के द्वारा ब्राह्मणी को श्रीरामकृष्णदेव की स्थिति का यथार्थ अनुभव।

प्रवीण साधिका ब्राह्मणी को यह समझने में विलम्ब न लगा कि गुरुपरम्परागत, शास्त्र-निर्दिष्ट साधन-पथ का अवलम्बन कर केवल अनुराग के सहारे ईश्वरदर्शन के निमित्त अग्रसर होने के कारण ही श्रीरामकृष्णदेव को अपनी उन्नत दशा के बारे में यथार्थ धारणा नहीं हो पा रही है। अपने अपूर्व दर्शनों को मस्तिष्क-विकृति का परिणाम अथवा शारीरिक

विकारों को रोग मानकर श्रीरामकृष्णदेव बीच-बीच मे जो संशयाकुल हो रहे थे, उससे मुक्त करने के निमित्त ब्राह्मणी ने उस समय उन्हे तन्त्रोक्त साधन-मार्ग का अवलम्बन करने के लिए प्रोत्साहित किया, क्योंकि साधक को जिन क्रियाओं के अनुष्ठान से जो फल प्राप्त होंगे, तन्त्र में उन विषयों को लिपिबद्ध देखकर तथा अनुष्ठान के द्वारा स्वयं तदनुरूप फल प्राप्त कर उसके मन में यह दृढ धारणा होगी कि साधन के द्वारा मानव अन्तःराज्य की उच्च से उच्चतर भूमि मे ज्यों-ज्यों आरूढ़ होता रहता है, त्यों-त्यों उसे अनन्यसाधारण शारीरिक तथा मानसिक दशाओ की उपलब्धि होती जाती है। फलतः भविष्य मे श्रीरामकृष्णदेव के जीवन मे चाहे जिस प्रकार के असाधारण दर्शन क्यों न उपस्थित हों, उनसे किंचिन्मात्र भी विचलित न हो वे उन्हे सत्य तथा अवश्यम्भावी जानकर निश्चिन्त हृदय से गन्तव्य मार्ग की ओर बढ़ सकेंगे। ब्राह्मणी को यह विदित था कि इसी उद्देश्य से शास्त्र ने साधक को यह देखने का निर्देश प्रदान किया है कि गुरुवाक्य तथा शास्त्रवाक्य के साथ अपने जीवन के अनुभव तदनुरूप हो रहे है अथवा नही।

ब्राह्मणी ने श्रीरामकृष्णदेव को तन्त्रसाधना करने के लिए क्यो कहा?

यहाँ पर प्रश्न हो सकता है कि श्रीरामकृष्णदेव को अवतार पुरुष जानकर भी ब्राह्मणी पुनः क्यों उन्हे साधन मार्ग मे प्रवृत्त कराने के लिए उद्यत हुई? यह मानना पड़ता है कि ईश्वर-महिमा-सम्पन्न अवतारपुरुष सर्व प्रकार से पूर्ण है, इसलिए उनके सम्बन्ध में साधनादि चेष्टाओं की अनावश्यकता भी सर्वथा प्रतीत होती है। उत्तर मे यह कहा जा सकता है कि श्रीरामकृष्णदेव के सम्बन्ध मे इस प्रकार की महिमा या ऐश्वर्यज्ञान ब्राह्मणी के मन मे सर्वदा विद्यमान रहने पर स्वयं उनका मानसिक भाव भी सम्भवतः वैसा ही होता; किन्तु उनकी स्थिति कुछ और ही थी। यह पहले ही कहा जा चुका है कि प्रथम दर्शन के समय से ही ब्राह्मणी मे श्रीरामकृष्णदेव के प्रति अपत्य-स्नेह का उद्भव हुआ था। ऐश्वर्यज्ञान को विस्मृत कराकर प्रिय व्यक्ति के कल्याणार्थ प्रयास करने मे नियुक्त करनेवाली प्रीति-जैसी

श्रीरामकृष्णदेव अवतार हैं, यह जानकर भी ब्राह्मणी ने उनको साधना में किस प्रकार सहायता की थी।

और कोई दूसरी वस्तु इस संसार मे नहीं है। अतः यह स्पष्ट है कि अकृत्रिम प्रीति की प्रेरणा से ही उन्होंने श्रीरामकृष्णदेव को साधन मे प्रवृत्त किया था। देव-मानव, अवतारपुरुषों के जीवन के पर्यालोचन करने पर सर्वत्र यही देखने को मिलता है। हम यह देखते है कि अवतारों के साथ घनिष्ठरूप से सम्बद्ध व्यक्ति भी उनके अलौकिक ऐश्वर्यज्ञान से समय-समय पर स्तम्भित होने पर भी, दूसरे ही क्षण उनके उस रूप को विस्मृत कर प्रेम-मुग्ध हो उन्हें साधारण व्यक्ति की तरह अपूर्ण समझकर उनके हितचिन्तन में संलग्न हो जाते है। अतः श्रीरामकृष्णदेव के अलौकिक भावावेश तथा शक्ति के विकास को देखकर कभी-कभी विस्मित होकर भी, अपने प्रति श्रीरामकृष्णदेव की निष्कपट भक्ति, श्रद्धा तथा निर्भरता से ब्राह्मणी का हृदयस्थित कोमल-कठोर मातृस्नेह उद्वेलित हो उठता था तथा सब कुछ भूलकर श्रीरामकृष्णदेव को सुखी करने के निमित्त सब प्रकार से उनकी सहायता करने के लिए वे निरन्तर उत्साहित होती थीं।

श्रीरामकृष्णदेव को समस्त तपस्याओं के फल प्रदान करने के निमित्त ब्राह्मणी की उत्सुकता।

योग्य व्यक्ति को शिक्षा प्रदान करने का अवसर उपस्थित होने पर गुरु के हृदय में परम तृप्ति तथा आत्मप्रसन्नता स्वतः ही उदय होती है। अतः श्रीरामकृष्णदेव जैसे उत्तम अधिकारी को शिक्षा प्रदान करने का सुयोग प्राप्त कर ब्राह्मणी का हृदय आनन्द से परिपूर्ण हो उठा था। इसके अतिरिक्त श्रीरामकृष्णदेव के प्रति निर्मल वात्सल्यभाव विद्यमान रहने के कारण, उन्हें अपने आजीवन स्वाध्याय तथा तपस्या के फल को अल्प समय के अन्दर ही अनुभव करा देने के निमित्त सचेष्ट होना ब्राह्मणी के लिए कोई आश्चर्य की बात नहीं थी।

तन्त्रोक्त साधनाओं को आरम्भ करने के पूर्व तद्विषयक कर्तव्य के बारे मे श्रीजगदम्बा से पूछकर उनकी अनुमति प्राप्त करने के पश्चात् ही श्रीरामकृष्णदेव उसमे प्रवृत्त हुए थे—यह बात उनके श्रीमुख से कभी-कभी सुनने का हमे सौभाग्य प्राप्त हुआ है। अतः केवल ब्राह्मणी के प्रबल आग्रह से प्रेरित होकर ही वे उस विषय में प्रवृत्त नहीं हुए थे; अपितु साधनजनित योगदृष्टि के प्रभाव से उन्होंने उस समय यथार्थ मे यह अनुभव किया था कि शास्त्रीय प्रणाली का अवलम्बन कर श्रीजगन्माता

का साक्षात्कार करने का अवसर उनके लिए समुपस्थित हुआ है। इस प्रकार श्रीरामकृष्णदेव का एकनिष्ठ मन ब्राह्मणी द्वारा निर्दिष्ट साधनमार्ग में उस समय पूर्ण आग्रह के साथ अग्रसर हुआ था। उस आग्रह का परिमाण तथा उसकी तीव्रता को अनुभव करना हम जैसे व्यक्तियों के लिए सम्भव नहीं है; क्योंकि पार्थिव विभिन्न विषयों मे संलग्न हमारे हृदय के भीतर वह उपरति तथा एकाग्रता कहाँ है?—हृदय-समुद्र की विचित्र रंग-रसपूर्ण तरगों मे न तैरकर उसकी सतह को स्पर्श करने के निमित्त सर्वस्व त्यागकर, निमग्न होने का असीम साहस हममे कहॉ है?—'एकदम डूब जाओ', 'स्वयं अपने अन्दर डूब जाओ' कहकर श्रीरामकृष्णदेव वारम्बार जैसे हमे प्रोत्साहित किया करते थे, ठीक वैसे ही संसार के समस्त पदार्थ तथा अपने शरीर की माया-ममता का परित्याग कर आत्मस्वरूप मे विलीन हो जाने की सामर्थ्य हममे कहॉ है? हम जब यह सुनते है कि श्रीरामकृष्णदेव असहनीय वेदना से व्याकुल हो 'मॉ, दर्शन दे'—कहते हुए पंचवटी के नीचे गंगाजी की रेतीली धरती पर अपने मुँह को रगड़ते थे तथा पूरा दिन व्यतीत हो जाने पर भी उनके उस भाव का विराम नहीं होता था—तब ये सारी बाते हमारे कर्णकुहरों मे केवल प्रविष्ट मात्र होती है, किन्तु हृदय मे उसकी यथार्थता की कुछ भी उपलब्धि नहीं होती। और होने भी क्यो लगी? श्रीजगन्माता वास्तव मे है तथा सर्वस्व त्यागकर व्याकुल हो पुकारने पर अवश्य ही उनका दर्शन मिलता है—क्या हम इस बात पर श्रीरामकृष्णदेव की तरह सरल रूप से विश्वास करते है?

जगदम्बा का आदेश प्राप्त कर तान्त्रिक साधना में श्रीरामकृष्णदेव का अग्रसर होना तथा उनके साधनाग्रह का परिमाण।

काशीपुर मे रहते समय एक दिन श्रीरामकृष्णदेव ने साधनकालीन अपनी मानसिक व्याकुलता के परिमाण तथा तीव्रता का कुछ आभास प्रदान कर हमे चकित कर दिया था। उस समय हमने जो अनुभव किया था, पाठकों को हम कहॉ तक समझा सकेगे, हम कह नहीं सकते, फिर भी यहाँ पर हम उसका उल्लेख करेगे:—

ईश्वर-प्राप्ति के निमित्त स्वामी विवेकानन्दजी की अपरिमित व्याकुलता को उस समय हम स्वयं अपनी ऑखों से प्रत्यक्ष देख रहे थे। कानून की

काशीपुर के बगीचे में अपने साधन-कालीन आग्रह के सम्बन्ध में श्रीरामकृष्णदेव की उक्ति।

परीक्षा में बैठने के लिए परीक्षा-फीस जमा करने जब वे गए, उसके बाद किस प्रकार उनका ज्ञानोदय हुआ तथा उसी प्रेरणा से किस प्रकार व्याकुल हो वे केवल एक धोती पहने और नंगे पैर किसी उन्मत्त के समान कलकत्ता शहर के रास्ते पर दौड़ते हुए काशीपुर आकर श्रीगुरुदेव के चरणों में उपस्थित हुए एवं उन्मत्त की तरह अपने हृदय की वेदना निवेदित कर उनकी कृपा प्राप्त की तथा आहार-निद्रा त्यागकर उस समय वे किस प्रकार दिन-रात साधन-भजन, ध्यान-जप तथा ईश्वर-चर्चा करने लगे एवं साधन-सम्बन्धी असीम उत्साह से प्रेरित हो कैसे उनका कोमल हृदय उस समय वज्र के समान कठोर बन गया और अपनी माँ तथा भाइयों के असीम पारिवारिक कष्ट के प्रति एकदम उदासीन बना रहा तथा श्रीगुरु-प्रदर्शित साधनमार्ग में दृढ निष्ठा के साथ अग्रसर हो किस प्रकार एक के बाद दूसरा दर्शन प्राप्त करते हुए तीन-चार महीने की अवधि मे उन्होंने निर्विकल्प समाधि-सुख का प्रथम अनुभव किया—ये सारी घटनाएँ हमारी आँखों के सम्मुख अनुष्ठित हो हमे विस्मयाविष्ट कर रही थीं। श्रीरामकृष्ण-देव उस समय प्रतिदिन परमानन्दित हो स्वामीजी के उस अपूर्व अनुराग, व्याकुलता तथा साधन-सम्बन्धी उत्साह की बहुत प्रशंसा कर रहे थे। तब एक दिन अपने अनुराग तथा साधनोत्साह के साथ स्वामीजी के उन विषयों की तुलना करते हुए श्रीरामकृष्णदेव ने कहा था,—"नरेन्द्र का साधनोत्साह तथा अनुराग अत्यन्त अद्‌भुत है, किन्तु (अपने को दिखाते हुए) इसमें उस समय (साधन करते समय) साधनोत्साह तथा अनुराग का जो प्रबल स्रोत प्रवाहित हुआ था, उसकी तुलना में ये यत्किंचित् मात्र है—उसका चौथाई भी नहीं है!"—श्रीरामकृष्णदेव की इस बात को सुनकर हमारे अन्दर जो भावना उदित हुई थी, पाठकवृन्द के लिए यदि सम्भव हो सके तो कल्पना की सहायता से वे उसका अनुभव करें।

अस्तु, श्रीजगदम्बा के संकेतानुसार उस समय सर्वस्व विस्मृत हो श्रीरामकृष्णदेव साधन में निमग्न हुए तथा तन्त्र-साधना की आवश्यक भिन्न भिन्न सामग्रियों का संग्रह कर उनके प्रयोग-सम्बन्धी उपदेश प्रदान करती हुई प्रज्ञासम्पन्न, कार्यकुशल ब्राह्मणी उनकी सहायता के लिए विशेष

बिल्व वृक्ष

प्रयास करने लगीं। उन्होंने बड़े प्रयत्न से गंगाहीन प्रदेश से नरमुण्ड आदि पंचप्राणियों के मुण्ड* मंगवाए और मन्दिर के बगीचे के उत्तर सीमान्त में अवस्थित बिल्व वृक्ष के नीचे तथा श्रीरामकृष्णदेव के द्वारा अपने ही हाथ से लगाई हुई पंचवटी के नीचे दो वेदियाँ बनायी गईं‡ तथा आवश्यकतानुसार उन मुण्डनिर्मित दोनों आसनों मे से किसी एक पर बैठकर जप, पुरश्चरण तथा ध्यानादि करते हुए श्रीरामकृष्णदेव का समय

---

* इदानी श्रृणु देवेशि मुण्डसाधनमुत्तमम् ।
यत्कृत्वा साधका याति महादेव्या पर पदम् ।।५१।।
नर-महिष-मार्जार-मुण्डत्रय वरानने ।
अथवा परमेशानि नृमुण्डत्रयमादरात् ।।५२।।
शिवासर्पसारमेयवृषभाना महेश्वरि ।
नरमुण्ड तथा मध्ये पचमुण्डानि हीरितम् ।।५३।।
अथवा परमेशानि नराणा पचमुण्डकान् ।
तथा शत सहस्र वायुत लक्ष तथैव च ।।५४।।
नियुतञ्चाथवा कोटि नृमुण्डान् परमेश्वरि ।
नरमुण्ड स्थापयित्वा प्रोथयित्वा धरातले ।।५५।।
वितस्तिप्रमिता वेदीं तस्योपरि प्रकल्पयेत् ।
आयामप्रस्थतो देवि चतुर्हस्तौ समाचरेत् ।।५६।।

योगिनीतन्त्रम्—पञ्चमपटलः ।

‡ साधारणतया पंचमुण्डयुक्त एक आसन निर्माण कर साधकवर्ग जप, ध्यानादि करते रहते हैं, किन्तु श्रीरामकृष्णदेव ने इस प्रकार के दो मुण्डासनो की चर्चा हमसे की थी। उनमे से बिल्ववृक्ष के नीचे तीन नरमुण्ड तथा पचवटी के नीचे की वेदी मे पाँच प्रकार के जीवो के पाँच मुण्ड गाड़े गए थे। साधना में सिद्ध होने के कुछ दिन पश्चात् उन्होने उन मुण्डों को गगाजी में फेककर दोनों आसनो को तोड़ डाला था। साधना मे त्रिमुण्ड-आसन प्रशस्त माने जाने के कारण अथवा यह मानकर कि उस समय बिल्व वृक्ष के नीचे का स्थान अत्यन्त निर्जन रहने से विशेष क्रियाओ के अनुष्ठान के लिए वहाँ सुविधा प्राप्त हो सकेगी, सम्भवतः दो आसन स्थापित किए गए थे। यह भी हो सकता है कि बिल्व वृक्ष के समीप कम्पनी का बारुदखाना विद्यमान था और इसलिए वहाँ हवन आदि के निमित्त अग्नि प्रज्वलित करने की विशेष सुविधा न हो, इन्हीं विचारों से सम्भवतः दो मुण्डासन निर्मित किए गए थे।

व्यतीत होने लगा। कुछ महीने तक दिन-रात कैसे बीतते थे इसका अनुभव तक इन अद्भुत साधक तथा ब्राह्मणी को नहीं रहा। श्रीरामकृष्णदेव कहते थे, * "ब्राह्मणी दिन मे दूर-दूर तक विभिन्न स्थानों मे जाकर तन्त्रनिर्दिष्ट दुष्प्राप्य वस्तुओं का संग्रह किया करती थीं। रात में बिल्ववृक्ष के नीचे अथवा पंचवटी के नीचे सारी व्यवस्था करने के पश्चात् मुझे वह बुलाया करती थीं। तथा उन सब वस्तुओं के द्वारा श्रीजगदम्बा का पूजन कराने के उपरान्त मुझको जप-ध्यान मे निमग्न होने को कहती थी। किन्तु पूजन करने के बाद मेरे लिए जप करना प्रायः असम्भव हो जाता था, क्योंकि तब मेरा मन इतना तन्मय हो जाता था कि माला जपने मे प्रवृत्त होकर समाधिस्थ हो जाने के कारण इस क्रिया के शास्त्रनिर्दिष्ट फल को मै प्रत्यक्ष अनुभव किया करता था। इस तरह एक के बाद दूसरा दर्शन, अनुभव के अनन्तर अनुभव प्राप्त कर मैने न जाने उस समय कितने अद्भुत-अद्भुत दर्शन किए, जिनकी कोई सीमा नहीं है। प्रमुख प्रचलित चौसठ तन्त्रों मे जितने साधनों का उल्लेख है, ब्राह्मणी ने क्रमशः एक-एक कर मेरे द्वारा उन सबका अनुष्ठान कराया था। कठिन से कठिन साधन—जिनके अनुष्ठान करने मे अधिकाश साधक पथभ्रष्ट हो जाते है—माँ (श्रीजगदम्बा) की कृपा से मैं उन सभी साधनों में उत्तीर्ण हुआ था।"

पंचमुण्डो के द्वारा आसन-निर्माण तथा चौसठ तन्त्रो में वर्णित समस्त साधनो का अनुष्ठान।

"एक दिन मैने देखा कि ब्राह्मणी रात में कहीं से एक पूर्णयुवती सुन्दर रमणी को बुला लायी है तथा पूजन का आयोजन करने के पश्चात् उसे विवस्त्र करके देवी के आसन पर बैठाकर मुझसे कह रही है, 'बाबा, देवी-भाव से इनका पूजन करो।' पूजन समाप्त होने के बाद उसने कहा, 'बाबा, साक्षात् जगज्जननी ज्ञान से इनकी गोद मे बैठकर तन्मय हो जप करो।'— तब मै आतंकित होकर रोता हुआ माँ से (श्रीजगदम्बा से) कहने लगा, 'माँ, अपने शरणागत बालक को यह कैसी आज्ञा दे रही हो? तेरे इस दुर्बल सन्तान के लिए इस प्रकार

स्त्रियों के सम्बन्ध में देवी-ज्ञान की सिद्धि।

* श्रीरामकृष्णदेव के श्रीमुख से विभिन्न अवसरो पर हमे जो-जो बाते सुनने को मिली है, उनका सम्बद्धरूप से यहाँ उल्लेख किया जा रहा है।

में प्रतिष्ठित हो चुके हो, यही इस मत का (वीरभाव का) अन्तिम साधन है!' उसके कुछ दिन उपरान्त एक भैरवी को सवा रुपया दक्षिणा द्वारा प्रसन्न करने के पश्चात्, उनकी सहायता से कालीमन्दिर के सम्मुख स्थित मण्डप मे सबके समक्ष दिन मे 'कुलागार' पूजन का विधिवत् अनुष्ठान कर मैने वीरभाव के साधन को पूर्ण किया था। दीर्घकालव्यापी तन्त्रोक्त साधन करते समय स्त्री-जाति के प्रति मेरा मातृभाव जिस प्रकार अक्षुण्ण था, उसी प्रकार मै एक बूँद भी 'कारण' (तान्त्रिक क्रियाओं मे व्यवहृत मद्य) ग्रहण नहीं कर सका था।—'कारण' के केवल नाम या गन्ध से ही जगत्कारण की उपलब्धि कर मै विह्वल हो जाता था तथा 'योनि' शब्द को सुनते ही जगत्-योनि का उद्दीपन होने के कारण मै समाधिस्थ हो जाता था।"

श्रीगणेशजी के स्त्री-जाति के प्रति मातृ-ज्ञान के सम्बन्ध में श्रीरामकृष्णदेव की कहानी।

दक्षिणेश्वर मे रहते समय एक दिन श्रीरामकृष्णदेव ने रमणीमात्र के प्रति मातृभाव का उल्लेख कर एक पौराणिक कथा सुनाई थी कि सिद्ध ज्ञानियों के अधिनायक श्रीगणेशजी के हृदय मे इस प्रकार मातृ ज्ञान कैसे दृढ रूप से प्रतिष्ठित हुआ था। मदस्रावि-गजतुण्डधारी लम्बोदरदेव के प्रति इसके पूर्व हम लोगों की विशेष भक्ति-श्रद्धा नहीं थी। किन्तु श्रीरामकृष्णदेव के श्रीमुख से उस वृत्तान्त को सुनने के पश्चात्, तभी से हमे यह धारणा हुई है कि श्रीगणेशजी वास्तव मे ही समस्त देवताओं से पहले पूजन प्राप्त करने योग्य है।

किशोरावस्था मे एक दिन खेलते हुए गणेशजी की दृष्टि एक बिल्ली पर जा पड़ी, बाल्यचापल्यवश उसे नाना प्रकार के कष्ट देते हुए तथा मारपीट कर उन्होंने उसे घायल कर डाला। किसी प्रकार अपने प्राण बचाकर बिल्ली भाग गई। कुछ देर बाद गणेशजी अपनी माता श्रीपार्वती देवी के समीप पहुँचे। बड़े आश्चर्य से वे क्या देखते है कि उनकी माताजी के अंगों पर जगह-जगह पर मार के चिह्न दिखाई दे रहे हैं। माता की उस दशा को देखकर अत्यन्त व्यथित हो जब उन्होंने कारण पूछा, तब विषण्णता के साथ देवी ने उत्तर दिया, 'तुम्हीं तो मेरी इस दुरवस्था के कारण हो।' मातृभक्त गणेशजी यह सुनकर विस्मित तथा

अत्यन्त व्यथित हो आँखों मे आँसू भरकर बोले, 'यह क्या कह रही हो माँ, मैंने तुमको कब मारा? यह भी तो मै याद नहीं कर पा रहा हूँ कि मैंने ऐसा कोई दुष्कर्म किया हो जिससे तुम्हे अपने अबोध बालक के कारण इस प्रकार का कष्ट सहन करना पड़ा?' जगन्मयी देवी ने उत्तर दिया, 'तुम्हीं विचार कर देखो कि आज तुमने किसी प्राणी को मारा है या नही?' गणेशजी बोले, 'हाँ, अभी कुछ देर पहले मैंने एक बिल्ली को मारा है।' और फिर यह सोचकर गणेशजी रोने लगे कि शायद बिल्ली के मालिक ने ही मेरी माँ को इस प्रकार मारा होगा। तदनन्तर अनुतप्त बालक को स्नेहपूर्वक हृदय से लगाकर श्रीगणेशजननी बोलीं, 'तुम जो सोच रहे हो, वह बात नही है; तुम्हारे सम्मुख विद्यमान इस शरीर पर किसी ने हाथ भी नहीं उठाया है; किन्तु असल बात यह है कि मै ही बिल्ली आदि समस्त प्राणीरूप से इस संसार में विचरण कर रही हूँ। यही कारण है कि तुम्हारे मारने का चिह्न मेरे अंगों पर तुम्हे दिखाई दे रहा है। तुमने बिना जाने ऐसा किया है, इसलिए दुःखित न हो; किन्तु आज से इस बात को ध्यान मे रखना कि स्त्रीमूर्तिधारी सभी प्राणी मेरे अंश-सम्भूत है तथा पुरुष-मूर्ति विशिष्ट प्राणीवर्ग का जन्म तुम्हारे पिता के अंश से हुआ है—शिव तथा शक्ति को छोड़कर इस संसार मे और कुछ भी नहीं है।' गणेशजी ने माता के इस कथन को श्रद्धापूर्वक हृदयंगम कर लिया, यहाँ तक,कि विवाह का अवसर उपस्थित होने पर, यह सोचकर कि माँ के साथ ही विवाह करना पड़ेगा, वे विवाह-बन्धन में आबद्ध नहीं हुए। इस प्रकार गणेशजी सदा के लिए ब्रह्मचारी बने रहे तथा यह जगत् शिव-शक्त्यात्मक है—इस बात को अपने हृदय मे सदा धारण किए रहने के कारण, ज्ञानियों में वे सर्वाग्रगण्य बने।

गणेश तथा कार्तिकेय के जगत् के परिभ्रमण सम्बन्ध में आख्यायिका।

इस कथा को कहने के पश्चात् श्रीरामकृष्णदेव ने गणेशजी की महिमासूचक निम्नलिखित आख्यायिका का भी उल्लेख किया।— किसी समय श्रीपार्वतीदेवी ने अपने बहुमूल्य रत्नहार को दिखाकर गणेश तथा कार्तिकेय से कहा कि चतुर्दशभुवनात्मक इस जगत् की परिक्रमा कर तुम दोनों में से जो सबसे पहले मेरे समीप उपस्थित होगा, उसे मै यह रत्नहार प्रदान करूँगी।

मयूरवाहन कार्तिकेय अपने अग्रज के लम्बोदर स्थूल शरीर के गुरुत्व को सोचकर तथा उनके वाहन मूषक की मन्थर गति का स्मरण कर मुस्कराए और यह सोचकर कि 'रत्नहार मुझे ही मिलेगा।'—अपने मयूर पर सवार हो जगत् की प्रदक्षिणा करने को चल दिए। कार्तिकेय के जाने के बहुत देर बाद गणेश अपने आसन पर से उठे और ज्ञान नेत्र से शिवशक्त्यात्मक जगत् को श्रीहरपार्वती के शरीर में अवस्थित देखकर धीरे-धीरे उनकी परिक्रमा तथा वन्दना कर निश्चिन्त हृदय से बैठ गए। कुछ समय बाद कार्तिकेय लौटे। परन्तु श्रीपार्वतीजी ने वह हार गणपतिजी को ही प्रदान किया और उसे अत्यन्त स्नेह से उनके गले मे डाल दिया।

इस प्रकार गणेशजी के रमणीमात्र के प्रति मातृभाव का उल्लेख कर श्रीरामकृष्णदेव बोले, "मेरा भी रमणीमात्र के प्रति यही भाव है; इसलिए विवाहिता पत्नी के अन्दर श्रीजगदम्बा की मातृ-मूर्ति का साक्षात् दर्शन प्राप्त कर मैंने उसकी पूजा तथा चरण वन्दना की थी।

तन्त्र-साधना में श्रीरामकृष्णदेव की विशेषता।

रमणीमात्र के प्रति मातृ-ज्ञान को सब प्रकार से अक्षुण्ण रखकर तन्त्रानुसार वीरभाव के साधनों का अनुष्ठान किए जाने की बात किसी युग मे किसी भी साधक के द्वारा हमने नहीं सुनी है। वीरमतावलम्बी होकर साधक अब तक शक्ति का ग्रहण करते रहे है। तदर्थ वीरमत के आश्रयी सभी साधकों मे यह दृढ धारणा हो गई है कि शक्ति-ग्रहण किए बिना साधना मे सिद्धि या श्रीजगदम्बा की कृपा प्राप्त करना सर्वथा असम्भव है। अपनी पशु-वृत्ति तथा उस प्रकार की धारणा के वशीभूत होकर साधकवर्ग कभी-कभी परकीया-शक्ति तक को अंगीकार करने में नहीं हिचकते। इसीलिए लोग तन्त्र-शास्त्रनिर्दिष्ट वीराचार मत की निन्दा करते रहते हैं।

श्रीजगदम्बा की इच्छानुसार उक्त विशेषता का विकास।

युगावतार लोकोत्तर श्रीरामकृष्णदेव ने ही अपने बारे में बारम्बार हमसे इस बात को कहा है कि उन्होंने आजन्म कभी स्वप्न में भी स्त्री का ग्रहण नहीं किया। अतः जन्म भर मातृभावावलम्बी श्रीरामकृष्णदेव को वीरमत के साधनानुष्ठान में प्रवृत्त कराने मे श्रीजगदम्बा का गूढ़ अभिप्राय विद्यमान था, यह स्पष्ट रूप से सिद्ध होता है।

श्रीरामकृष्णदेव कहते थे कि किसी भी साधना में सफलता प्राप्त करने के लिए उन्हे तीन दिन से अधिक समय नहीं लगा। 'साधनविशेष को ग्रहण कर उसके फल को प्रत्यक्ष करने के निमित्त व्याकुलतापूर्ण हृदय से श्रीजगदम्बा से हठ करने पर तीन दिन मे ही मै सफल हो जाता था।' शक्तिग्रहण किए बिना वीराचार के साधनों मे इस प्रकार अल्प समय के अन्दर उनकी सफलता से स्पष्टतया यह प्रमाणित होता है कि पंच 'म'कार या स्त्री-ग्रहण उन अनुष्ठानों के आवश्यक अंग नहीं है। संयमरहित साधक अपने दुर्बल स्वभाव के वशीभूत होकर ही उस प्रकार का आचरण किया करता है। साधक द्वारा इस प्रकार किए जाने पर भी, तन्त्र ने उसे अभयदान किया है तथा पुनः पुनः अभ्यास के फलस्वरूप समय आने पर वह भी दिव्यभाव मे प्रतिष्ठित होगा, इस बात का उपदेश प्रदान किया है; इससे उस शास्त्र के परमकारुणिकत्व की ही पुष्टि होती है।

शक्तिग्रहण किए बिना श्रीरामकृष्णदेव की सिद्धि-प्राप्ति के द्वारा प्रमाणित तथ्य।

अतः ऐसा प्रतीत होता है कि जिन रूप-रसादि पदार्थों से प्रलुब्ध होकर साधारण मानव वारम्बार जन्म-मरणादि का अनुभव कर रहा है तथा ईश्वरप्राप्ति एवं आत्मज्ञान का अधिकारी नहीं बन पा रहा है, संयम की सहायता से पुनः पुनः प्रयास तथा चेष्टा के द्वारा उन वस्तुओं को ईश्वर की मूर्तिरूप से धारणा करने के निमित्त साधक को अभ्यस्त कराना ही तान्त्रिक क्रियाओं का लक्ष्य है। साधकों के संयम तथा समस्त भूतों मे ईश्वरदृष्टि के तारतम्य को ध्यान मे रखकर ही तन्त्रों मे पशु, वीर तथा दिव्य भावों का उल्लेख किया गया है एवं तदर्थ ही साधकों को प्रथम, द्वितीय या तृतीय भाव का अवलम्बन कर ईश्वरोपासना के लिए अग्रसर होने का उपदेश दिया गया है। किन्तु कठोर संयम को आधार बनाकर तन्त्रोक्त साधनों मे प्रवृत्त होने से ही फल का प्रत्यक्ष अनुभव हो सकता है, अन्यथा नहीं, इस बात को समय के प्रभाव से लोग प्रायः भूल चुके थे तथा उनके कुकर्मों के लिए तन्त्रशास्त्र को ही दोषी ठहराकर लोग उसकी निन्दा करने लगे थे। अतः उन अनुष्ठानों मे

तन्त्रोक्त अनुष्ठानो का लक्ष्य।

रमणीमात्र के प्रति पूर्णतया मातृभावापन्न श्रीरामकृष्णदेव की सफलता के द्वारा सच्चे साधकों को किस लक्ष्य की ओर चलना है, इस बात का निर्देश प्राप्त होने से जैसे उनका महान् उपकार हुआ है, ठीक उसी प्रकार तन्त्र-शास्त्र का प्रामाण्य सुप्रतिष्ठित होकर वह शास्त्र महिमान्वित हुआ है।

श्रीरामकृष्णदेव की तन्त्र-साधना का दूसरा कारण।

श्रीरामकृष्णदेव द्वारा उस समय तन्त्रोक्त रहस्यपूर्ण साधनों का अनुष्ठान तीन-चार वर्ष तक लगातार किए जाने पर भी, उन्होंने उसका आद्योपान्त विवरण हममें से किसी को भी कहा हो, ऐसा हमें विदित नहीं है। किन्तु साधनमार्ग में आगे बढ़ने के लिए हमें प्रोत्साहित करने के निमित्त कभी-कभी उन्होंने हम लोगों में से अनेक व्यक्तियों के निकट उन विषयों का थोड़ा-बहुत उल्लेख किया है अथवा व्यक्तिगत आवश्यकतानुसार किसी के द्वारा किन्हीं क्रियाओं का अनुष्ठान कराया है। यह बात स्पष्ट है कि तन्त्रोक्त क्रियाओं का अनुष्ठान कर उनके असाधारण फल को स्वयं अनुभव किए बिना, भविष्य में उनके पास आनेवाले विभिन्न स्वभाव के भक्तों की मानसिक स्थिति के अनुसार उनको साधनमार्ग की ओर सहज ही में अग्रसर कराना शायद उनके लिए सम्भव न हो सकेगा इसीलिए श्रीजगन्माता ने श्रीरामकृष्णदेव को उस मार्ग से सम्यक् प्रकार परिचित कराया था। शरणागत भक्तों को किस प्रकार तथा किस रूप से साधनमार्ग में वे अग्रसर कराते थे, अन्यत्र * इसका यत्किंचित् आभास दिया गया है; उसको देखने से हमारे पूर्वोक्त कथन की वास्तविकता को पाठक अनायास समझ सकेंगे। अतः यहाँ पर उसकी पुनरुक्ति अनावश्यक है।

तन्त्रोक्त साधन के समय श्रीरामकृष्णदेव के दर्शन तथा अनुभव।

साधनक्रियाओं के बारे में पूर्वोक्त रूप से कहने के अतिरिक्त तन्त्रोक्त साधनकालीन अपने अनेक दर्शन तथा अनुभवों को वे समय-समय पर हम लोगों से कहा करते थे। यहाँ पर उनमें से कुछ बतलाए जा रहे हैं :—

वे कहते थे कि तन्त्रोक्त साधन करते समय उनके पूर्वस्वभाव का

* गुरुभाव पूर्वार्ध, प्रथम तथा द्वितीय अध्याय देखिए।

समूल परिवर्तन हो चुका था। श्रीजगदम्बा कभी-कभी शिवारूप (सियारिन का रूप) धारण करती हैं, यह सुनकर तथा कुत्ते को भैरव का वाहन जानकर वे उस समय उनके उच्छिष्ट भोजन को पवित्र मानकर ग्रहण किया करते थे। तदर्थ उनके मन में किसी प्रकार का संशय उत्पन्न नहीं होता था।

सियारिन का उच्छिष्ट ग्रहण।

श्रीजगदम्बा के पादपद्मों में अपनी देह, मन तथा प्राणों की आहुति प्रदान कर उन्होंने उस समय अपने को भीतर तथा बाहर से ज्ञानाग्नि-परिव्याप्त देखा था।

अपने को ज्ञानाग्नि-परिव्याप्त देखना।

कुण्डलिनी जाग्रत हो जब मस्तक की ओर उठ रही थी उस समय 'मूलाधार' से 'सहस्रार' पर्यन्त कमलसमूह उर्ध्व-मुख तथा पूर्ण प्रस्फुटित हो रहे थे। एक के बाद दूसरा कमल ज्योंही प्रस्फुटित होता था, त्योंही उनका हृदय अपूर्व अनुभवों से पूर्ण हो जाता था*—श्रीरामकृष्णदेव ने उस समय यह सब प्रत्यक्ष अनुभव किया था। उन्होंने यह स्पष्ट देखा था कि एक ज्योतिर्मय दिव्य पुरुष 'सुषुम्ना' के बीच में से होकर उन कमलों के समीप उपस्थित हो जिह्वा-स्पर्श के द्वारा उनको प्रस्फुटित करा रहे हैं।

कुण्डलिनी जागरण का दर्शन।

किसी समय स्वामी विवेकानन्द जब ध्यान करने बैठते थे, तभी उनके सम्मुख एक बृहदाकार विचित्र ज्योतिर्मय त्रिकोण स्वतः उदय होता था तथा वह त्रिकोण उन्हें जीवित-जैसा प्रतीत होता था। एक दिन दक्षिणेश्वर आकर उन्होंने जब श्रीरामकृष्णदेव से इस बारे में कहा, तब श्रीरामकृष्णदेव बोले, "बहुत अच्छी बात है, तुझे ब्रह्मयोनि का दर्शन हो गया; बिल्ववृक्ष के नीचे साधना करते समय मैं भी इसी प्रकार देखा करता था तथा उससे प्रतिक्षण असंख्य ब्रह्माण्डों का प्रसव हो रहा है, ऐसा मुझे दिखाई देता था।'

ब्रह्मयोनि दर्शन।

ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत हमें जो पृथक् पृथक् ध्वनि सुनाई देती है वे ही सब एक साथ मिलकर एक विराट् प्रणव ध्वनि के रूप में प्रतिक्षण जगत् में

* गुरुभाव पूर्वार्ध, द्वितीय अध्याय देखिए।

सर्वत्र स्वतः उदित हो रही हैं—श्रीरामकृष्णदेव ने उस समय इसका अनुभव किया था। हममें से किसी-किसी का यह कहना है कि उस समय वे पशु-पक्षी आदि मनुष्येतर प्राणियों की ध्वनि के यथार्थ अर्थ को समझ सकते थे—यह बात उन लोगों ने श्रीरामकृष्णदेव के श्रीमुख से सुनी है। उस समय उन्होंने स्त्री-योनि में श्रीजगदम्बा को साक्षात् अधिष्ठित देखा था।

अनाहत ध्वनि श्रवण।

'कुलागार' में देवी का दर्शन।

उक्त साधनकाल के अन्त में श्रीरामकृष्णदेव ने अपने भीतर अणिमादि सिद्धि या विभूतियों के आविर्भाव का अनुभव किया था तथा अपने भानजे हृदय के परामर्शानुसार उनके प्रयोग करने के सम्बन्ध में कर्तव्य निर्धारण के लिए श्रीजगदम्बा के समीप जब वे उपस्थित हुए तो उन्होंने यह देखा कि वेश्या की विष्ठा की तरह वे अत्यन्त हेय तथा सर्वथा परित्याज्य हैं। वे कहते थे, "इस प्रकार के दर्शन के बाद से सिद्धियों का केवल नाम लेने से ही मुझे घृणा होने लगी थी।"

श्रीरामकृष्णदेव के अणिमादि सिद्धिकालीन अनुभव के प्रसंग में एक घटना का हमें स्मरण हो रहा है। एक दिन स्वामी विवेकानन्द को पंचवटी के नीचे एकान्त में बुलाकर उन्होंने कहा था, "देखो, मेरे अन्दर लोकप्रसिद्ध अष्टसिद्धियाँ विद्यमान हैं; किन्तु उनके कभी प्रयोग न करने का मैंने बहुत पहले से ही निश्चय कर लिया है—मुझे उनके प्रयोग की कोई आवश्यकता भी दिखाई नहीं दे रही है, तुझे धर्मप्रचार आदि अनेक कार्य करने हैं, अतः उन वस्तुओं को तुझे देने का ही मैंने निश्चय किया है—तू उन्हें ग्रहण कर।" इसके उत्तर में स्वामीजी ने पूछा, "यह बताइए कि क्या उन वस्तुओं से मुझे ईश्वर-प्राप्ति में कोई सहायता मिलेगी?" तदनन्तर श्रीरामकृष्णदेव के कथन से जब उन्हें यह विदित हुआ कि उनके द्वारा धर्मप्रचारादि कार्यों में कुछ अंश तक सहायता प्राप्त हो सकती है, किन्तु ईश्वर-प्राप्ति में वे कुछ भी सहायक न होंगी, तब वे उन्हें लेने के लिए प्रस्तुत नहीं हुए। स्वामीजी कहते थे कि उनके इस आचरण से श्रीरामकृष्णदेव उन पर विशेष प्रसन्न हुए थे।

अष्टसिद्धि के सम्बन्ध में स्वामी विवेकानन्द के साथ श्रीरामकृष्णदेव का वार्तालाप।

श्रीजगन्माता की मोहिनी-माया के दर्शन की आकांक्षा हृदय में उदित होने पर श्रीरामकृष्णदेव ने उस समय देखा था कि एक अपूर्व सुन्दरी रमणी गंगाजी के भीतर से निकलकर धीरे-धीरे पंचवटी के नीचे उपस्थित हुई। उन्होंने देखा कि वह पूर्ण गर्भवती है तथा वह उनके समक्ष ही एक सुन्दर पुत्र को प्रसव कर उसे स्नेहपूर्वक स्तनपान करा रही है; दूसरे क्षण ही उनको यह दिखाई दिया कि कठोर विकराल रूप धारण कर उस शिशु को निगलने के पश्चात् वह पुनः गंगाजी में प्रविष्ट हो गई।

मोहिनीमाया का दर्शन।

उपरोक्त दर्शनों के सिवाय श्रीरामकृष्णदेव ने उस समय दशभुजा से लगाकर द्विभुजा पर्यन्त इतनी देवीमूर्तियों का दर्शन किया था कि जिसकी कोई गणना नहीं है। उनमें से किसी किसी ने उनको नाना प्रकार से उपदेश भी प्रदान किए थे। वे सभी मूर्तियाँ अपूर्व सौन्दर्य-शाली थीं, किन्तु हमने उन्हें कहते सुना है कि श्रीराजराजेश्वरी या षोड़शी मूर्ति के सौन्दर्य के साथ उनके रूपों की कोई तुलना नहीं हो सकती। वे कहते थे, "षोड़शी या त्रिपुरा मूर्ति का सौन्दर्य मुझे ऐसा अद्भुत दीख पड़ा कि उसके शरीर से रूपलावण्य मानो सचमुच ही टपक रहा हो और चारों दिशाओं में फैल रहा हो!" इसके अतिरिक्त उस समय अनेक भैरव तथा देवी-देवता के दर्शन भी श्रीरामकृष्णदेव को प्राप्त हुए थे।

षोड़शी मूर्ति का सौन्दर्य।

तन्त्र-साधन के समय से श्रीरामकृष्णदेव के जीवन में नित्यप्रति इतने अलौकिक दर्शन तथा अनुभव उपस्थित हुए थे कि हम समझते हैं, उनका सम्यक् उल्लेख करना मनुष्य की सीमित शक्ति से बाहर की बात है।

तन्त्रोक्त साधन के समय से श्रीरामकृष्णदेव का सुषुम्ना द्वार पूर्ण-रूपेण उन्मुक्त हो जाने से बालक-जैसी स्थिति में उनके सुप्रतिष्ठित होने की बात हमने उनके श्रीमुख से सुनी है। उस समय के अन्त में प्रयास करने पर भी वे अपने शरीर पर पहनने का वस्त्र तथा यज्ञोपवीत नहीं रख पाते थे। वे कब कहाँ गिर जाते थे इसका उन्हें कोई ध्यान नहीं रहता

था। यह कहना ही पर्याप्त है कि श्रीजगदम्बा के श्रीचरणों में उनका मन सतत संलग्न रहने के कारण उन्हें अपने शरीर का ज्ञान न रहना इसका मुख्य कारण था। स्वेच्छा-पूर्वक उन्होंने कभी वैसा आचरण नहीं किया था अथवा अन्यान्य परमहंसों की तरह उन्होंने नग्न रहने का भी कभी अभ्यास नहीं किया था—यह भी हमने कई बार उनके श्रीमुख से सुना है।

तन्त्र-साधना की सिद्धि-दशा में श्रीरामकृष्णदेव का देहबोधराहित्य तथा बालकभाव का विकास।

श्रीरामकृष्णदेव कहते थे कि उक्त साधनाओं के उपरान्त समस्त पदार्थों में उनकी अद्वैत बुद्धि इस प्रकार प्रबल रूप से वर्धित हुई थी कि बाल्यावस्था से जिस वस्तु को वे हेय या तुच्छ समझते थे, वह भी उन्हें महान् पवित्र वस्तुओं के सदृश दिखाई देती थी! वे कहते थे, "तुलसीदल तथा मुनगे की पत्ती मुझे समान रूप से पवित्र अनुभव होती थी।"

इसी समय से आगे कुछ वर्षों तक श्रीरामकृष्णदेव की अंग-कान्ति इतनी अधिक वर्धित हुई थी कि लोग उनकी ओर सदा एकटक देखा करते थे। तदर्थ उनके अभिमानशून्य चित्त में इस प्रकार का असन्तोष उत्पन्न होता था कि वे उस दिव्य कान्ति के परिहार के निमित्त श्रीजगदम्बा के समीप बहुधा प्रार्थना करते हुए कहते थे, "माँ, मेरे लिए इस बाह्य रूप की किञ्चिन्मात्र भी आवश्यकता नहीं है, इसे लेकर तू मुझे आन्तरिक आध्यात्मिक रूप प्रदान कर।" यथासमय उनकी वह प्रार्थना पूर्ण हुई थी, जिसका उल्लेख अन्यत्र किया गया है।*

तन्त्र-साधना के समय श्रीरामकृष्णदेव की अंग-कान्ति।

तन्त्रोक्त साधना के समय ब्राह्मणी ने जिस प्रकार श्रीरामकृष्णदेव की सहायता की थी, श्रीरामकृष्णदेव ने भी आगे चलकर ठीक उसी प्रकार ब्राह्मणी के आध्यात्मिक जीवन की पूर्णता सम्पादन में विशेष सहायता प्रदान की थी। उनके द्वारा ऐसा न किए जाने पर, ब्राह्मणी के लिए दिव्य भाव में प्रतिष्ठित होना कभी सम्भव नहीं था,

भैरवी ब्राह्मणी श्रीयोग-माया की अंशसम्भूत थी।

* गुरुभाव-पूर्वार्ध, सप्तम अध्याय देखिए।

इस बात का आभास अन्यत्र दिया गया है।* ब्राह्मणी का नाम योगेश्वरी था तथा श्रीरामकृष्णदेव उन्हें श्रीयोगमाया की अंशसम्भूत कहकर निर्देश किया करते थे।

तन्त्र-साधन के प्रभाव से दिव्यशक्ति प्राप्त कर श्रीरामकृष्णदेव को एक और विषय की उपलब्धि हुई थी तथा श्रीजगदम्बा की कृपा से उनको यह विदित हुआ था कि भविष्य में अनेक व्यक्ति उनके समीप धर्मलाभ के निमित्त उपस्थित हो कृतार्थ होंगे। उनके परम अनुगत मथुरबाबू तथा हृदय आदि से उन्होंने अपनी इस उपलब्धि की चर्चा की थी। यह सुनकर मथुरबाबू ने कहा था, "बाबा, यह तो बहुत ही सुन्दर बात है; हम सब मिलकर आपके साथ आनन्द मनायेंगे।"

---

* गुरुभाव-पूर्वार्ध, अष्टम अध्याय देखिए।

द्वादश अध्याय

जटाधारी तथा वात्सल्यभाव की साधना

सन् १८६१ के अन्त में पुण्यवती रानी रासमणि की मृत्यु के बाद भैरवी श्रीमती योगेश्वरी का दक्षिणेश्वर कालीमन्दिर में आगमन हुआ था। तब से लगाकर सन् १८६३ के अन्त तक श्रीरामकृष्णदेव ने तन्त्रोक्त साधनों का अनुष्ठान किया था। हम पहले ही यह कह चुके हैं कि उस समय प्रारम्भिक काल से ही मथुरबाबू देवसेवा का पूर्ण अधिकार प्राप्त कर धन्य हुए थे। और उससे पहले ही बारम्बार परीक्षा कर देखने के फलस्वरूप मथुरबाबू को श्रीरामकृष्णदेव के अदृष्टपूर्व ईश्वरानुराग, संयम तथा त्याग-वैराग्य के सम्बन्ध में दृढ़ निश्चय हो चुका था। किन्तु आध्यात्मिकता के साथ ही साथ उनके अन्दर कभी-कभी उन्मत्ततारूप रोग का संयोग होता है या नहीं, इस बात का वे उस समय कोई निश्चय नहीं कर पाए थे। तन्त्र-साधन के समय उनके मन से यह संशय पूर्णरूपेण दूर हो गया था। इतना ही नहीं, अपितु अलौकिक विभूतियों का बारम्बार प्रकाश देखकर उस समय उनके मन में यह दृढ़ धारणा हुई थी कि उनकी इष्टदेवी उन पर प्रसन्न हो श्रीरामकृष्णदेव को अवलम्बन कर उनकी सेवाएँ ग्रहण कर रही हैं, उनके साथ रहकर सब प्रकार से उनकी रक्षा कर रही हैं एवं उनके प्रभुत्व तथा वैषयिक अधिकार को पूर्णतया अक्षुण्ण रखकर दिनोंदिन उन्हें विशेष रूप से मर्यादा तथा गौरव सम्पन्न बना रही हैं। मथुरबाबू उस समय जिस कार्य में हाथ लगाते थे, उसी में उन्हें यश मिलता था तथा श्रीरामकृष्णदेव की कृपा प्राप्त कर अपने को विशेष रूप से दैवसहाय-सम्पन्न अनुभव किया करते थे। इसलिए श्रीरामकृष्णदेव के साधनानुकूल द्रव्यों का संग्रह करने एवं उनके अभिप्रायानुसार देव-सेवा तथा अन्यान्य सत्कार्यों के लिए मथुरबाबू का उस समय पर्याप्त अर्थव्यय करना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी।

श्रीरामकृष्णदेव की कृपा प्राप्त कर मथुरबाबू के अनुभव तथा आचरण।

साधना की सहायता से श्रीरामकृष्णदेव में आध्यात्मिक शक्ति का नित्यप्रति जितना विकास हो रहा था, उनके श्रीचरणाश्रित मथुरबाबू के अन्दर भी उतना ही समस्त विषयों में बल, साहस तथा उत्साह बढ़ने लगा था। ईश्वर के प्रति पूर्ण विश्वास स्थापन करने के पश्चात् उनका आश्रय तथा कृपा प्राप्त कर भक्त अपने हृदय में जो अपूर्व उत्साह तथा शक्ति का अनुभव करते हैं, उस समय मथुरबाबू की अनुभूति भी ठीक वैसी ही हुई थी। किन्तु रजोगुणी संसारी मथुरबाबू की भक्ति, श्रीरामकृष्णदेव की सेवा तथा पुण्य कार्यों के अनुष्ठान तक में ही सीमित रहती थी, आध्यात्मिक राज्य के अन्दर प्रविष्ट हो गूढ़ रहस्यों को प्रत्यक्ष करने के निमित्त आगे नहीं बढ़ती थी। परन्तु ऐसा न होने पर भी मथुरबाबू ने अपने हृदय में यह निश्चित रूप से अनुभव किया था कि श्रीरामकृष्णदेव ही उनके बल, बुद्धि तथा भरोसा हैं, वे ही उनके इस जन्म तथा परजन्म के सहायक हैं एवं उनकी वैषयिक उन्नति तथा मर्यादा-प्राप्ति के मूल कारण भी वे ही हैं।

मथुरबाबू द्वारा 'अन्न-मेरु' व्रत का अनुष्ठान।

श्रीरामकृष्णदेव की कृपाप्राप्ति के द्वारा मथुरबाबू ने उस समय अपने को जो विशेष महिमान्वित अनुभव किया था, उसका परिचय उनके तत्कालीन कार्यों से हमें देखने को मिलता है। "रानी रासमणि का जीवनवृत्तान्त" नामक ग्रन्थ से पता चलता है कि उस समय (सन् १८६४ में) उन्होंने अत्यन्त व्ययसाध्य अन्नमेरु व्रत का अनुष्ठान किया था। हृदय कहता था कि उस व्रत के समय ब्राह्मण-पण्डितों को प्रचुर मात्रा में सोने-चाँदी के अतिरिक्त हजार मन चावल तथा हजार मन तिल दान किया गया था तथा सहचरी नामक प्रसिद्ध गायिका का कीर्तन, राजनारायणजी का 'चण्डी-गान' तथा धार्मिक नाटक आदि के द्वारा दक्षिणेश्वर कालीमन्दिर कुछ दिन के लिए उत्सव क्षेत्र में परिणत हुआ था। इन गायक-गायिकाओं के भक्तिरसपूर्ण संगीत सुनकर श्रीरामकृष्णदेव को बारम्बार भाव-समाधि में मग्न होते देख श्री मथुरानाथजी ने श्रीरामकृष्णदेव की परितृप्ति के तारतम्य को ही उन गायकों के गुणोत्कर्ष के आंकने का साधन माना था तथा उन लोगों को बहुमूल्य दुशाला, रेशमी वस्त्र तथा प्रचुर धन पारितोषिक के रूप में प्रदान किया था।

पूर्वोक्त व्रतानुष्ठान के कुछ काल पूर्व बर्दवान राज के प्रधान सभा-

पण्डित श्री पद्मलोचनजी के गभीर पाण्डित्य तथा अभिमानशून्यता की बात सुनकर श्रीरामकृष्णदेव उन्हें देखने गए थे। श्रीरामकृष्णदेव कहते थे कि 'अन्नमेरु' व्रत के उपलक्ष्य में आयोजित पण्डित-सभा में पद्मलोचनजी को लाने तथा उन्हें दान देने के निमित्त मथुरबाबू का विशेष आग्रह हुआ था। श्रीरामकृष्णदेव के प्रति उनकी अविचल भक्ति की बात सुनकर मथुरबाबू ने उनको आमन्त्रित करने के लिए हृदय को भेजा था। पर विभिन्न कारणों से उस आमन्त्रण को स्वीकार करना श्री पद्मलोचनजी के लिए सम्भव नहीं हुआ था। पण्डित पद्मलोचनजी की चर्चा हमने अन्यत्र विस्तारपूर्वक की है।*

वेदान्ती पण्डित पद्मलोचनजी के साथ श्रीरामकृष्णदेव की भेंट।

तान्त्रिक साधनानुष्ठान के पश्चात् श्रीरामकृष्णदेव वैष्णव मत के साधनों की ओर आकृष्ट हुए थे। निरीक्षण करने पर इसके कुछ स्वाभाविक कारण प्राप्त होते हैं। प्रथम तो यह कि भक्तिमती ब्राह्मणी वैष्णव तन्त्रोक्त पंचभावाश्रित साधनों में स्वयं पारंगत थीं तथा उन भावों में से किसी एक का आश्रय लेकर बहुत दिनों तक वे उसमें तन्मय रहती थीं। नन्दरानी श्रीयशोदा के भाव में तन्मय हो बालगोपाल-ज्ञान से श्रीरामकृष्णदेव को भोजन कराने की बात इससे पहले कही जा चुकी है। अतः वैष्णव मतानुकूल साधनों में श्रीरामकृष्णदेव को उत्साह प्रदान करना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। दूसरा कारण यह है कि वैष्णव कुल में जन्म लेने के कारण श्रीरामकृष्णदेव के लिए वैष्णवीय भाव साधना में अनुरक्त होना स्वाभाविक ही था। कामारपुकुर क्षेत्र में ये साधन विशेष रूप से प्रचलित रहने के कारण बाल्यावस्था से ही श्रीरामकृष्णदेव को उनके प्रति श्रद्धासम्पन्न होने का सुयोग प्राप्त था। तीसरा तथा सबसे अधिक विशिष्ट कारण यह है कि श्रीरामकृष्णदेव के भीतर आजीवन पुरुष तथा स्त्री इन दोनों स्वभावों का अदृष्टपूर्व संयोग देखने को मिलता था। उनमें से एक के प्रभाव के कारण वे सिंहसदृश निर्भीक विक्रमशाली, सब विषयों में कारणान्वेषी तथा कठोर

श्रीरामकृष्णदेव के वैष्णव मतानुकूल साधनों में प्रवृत्त होने के कारण।

* गुरुभाव उत्तरार्ध, द्वितीय अध्याय देखिए।

पुरुषप्रवर के रूप में दिखाई देते थे, तथा दूसरे का विकास होने पर ललना-सुलभ कोमल-कठोर स्वभावशील बनकर अपने हृदय से जगत् के समस्त पदार्थ तथा व्यक्तियों को वे देख रहे हैं तथा उनकी नापतौल कर रहे हैं, ऐसा प्रतीत होता था। इसी कारण से उनके लिए स्वभावतः ही कुछ विषयों के प्रति तीव्र अनुराग तथा कुछ के प्रति विराग उपस्थित होता था तथा भावावेश से अनेक दुःखों को सहर्ष स्वीकार करने को वे तैयार रहते थे, किन्तु भावरहित अवस्था में साधारण व्यक्ति की तरह कोई कार्य नहीं कर पाते थे।

वात्सल्य तथा मधुर भाव की साधना से पूर्व श्रीरामकृष्णदेव के अन्दर स्त्रीभाव का उदय।

साधना करते समय प्रथम चार वर्ष में भी श्रीरामकृष्णदेव ने वैष्णव-तन्त्रानुसार शान्त, दास्य तथा कभी-कभी श्रीकृष्णसखा सुदामा आदि व्रज-बालकों की भाँति सख्यभाव का अवलम्बन कर साधना में स्वयं प्रवर्तित हो सिद्धि प्राप्त की थी। श्रीरामचन्द्रगतप्राण महावीरजी को आदर्श के रूप में ग्रहण कर दास्यभक्ति का अवलम्बन करते हुए कुछ दिन तक उनकी अवस्थिति तथा जन्म से दुःख पानेवाली जनकनन्दिनी सीताजी के दर्शन-प्राप्ति आदि का उल्लेख इससे पहले किया जा चुका है। अतः वैष्णव-तन्त्रोक्त वात्सल्य तथा मधुर रसाश्रित मुख्य दोनों भावों की साधना में ही उस समय वे संलग्न हुए थे। यह देखने में आता है कि उस समय अपने को श्रीजगन्माता की सखी के रूप में चिन्तन कर चमर ले वे उनका विजन करने में नियुक्त रहते थे, शरत्कालीन देवीपूजन के समय मथुरबाबू के कलकत्तास्थित भवन में उपस्थित हो रमणी-सदृश वेशभूषा धारण कर वे कुलवधुओं के साथ देवी का दर्शन किया करते थे, तथा स्त्री-भाव के प्राबल्य से इस बात को भूल जाते थे कि वे स्वयं पुरुषदेहविशिष्ट हैं।* जिस समय हम लोगों ने दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्णदेव के समीप जाना प्रारम्भ किया था, उस समय भी कभी-कभी उनके अन्दर हमने स्त्री-भाव का उदय होते देखा है, किन्तु उस समय उनका वह भावावेश साधन-काल की तरह दीर्घस्थायी नहीं होता था और तदनुरूप होने की कोई आवश्यकता भी नहीं थी, क्योंकि स्त्री-पुरुषस्वभावानुकूल समस्त

* गुरुभाव-पूर्वार्ध, सप्तम अध्याय देखिए।

भावों तथा उन दोनों के अतीत अद्वैतभाव के अनुसार इच्छानुरूप अवस्थान करना श्रीजगदम्बा की कृपा से उस समय उनके लिए सहजसाध्य हो चुका था तथा उनके समीप में उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति के कल्याणार्थ उनमें से किसी भी भाव में अपनी इच्छानुसार जब तक चाहें वे अवस्थित रहते थे।

श्रीरामकृष्णदेव का मानसिक गठन किस प्रकार का था, तद्विषयक आलोचन।

श्रीरामकृष्णदेव की साधनकालीन महिमा को हृदयंगम करने के लिए पाठकों को कल्पना की सहायता से सर्वप्रथम अनुचिन्तन कर यह देखना होगा कि आजन्म उनका मन किस प्रकार असाधारण तत्व से गठित होकर संसार में कैसे नित्य विचरण करता था तथा आध्यात्मिक राज्य की प्रबल आँधी के कारण विगत आठ वर्षों में उसमें किस तरह के परिवर्तन उपस्थित हुए थे। हमने उनके श्रीमुख से सुना है कि सन् १८५६ में जब उन्होंने दक्षिणेश्वर कालीमन्दिर में सर्वप्रथम पदार्पण किया था तथा उसके बाद भी कुछ समय तक, उनके हृदय में यह सरल विश्वास विद्यमान था कि जिस प्रकार उनके पूर्वज सन्मार्ग में रहकर संसारयात्रा का निर्वाह करते रहे हैं, वे भी तदनुरूप आचरण करेंगे। आजन्म अभिमानशून्य उनके मन में एक बार भी यह बात उदित नहीं हुई कि वे संसार में अन्य किसी की अपेक्षा किसी अंश में महान् या विशेष गुणशाली हैं। किन्तु जब वे कार्य-क्षेत्र में अवतीर्ण हुए, तब उनकी असाधारण विशेषता पग-पग पर प्रकट होने लगी। कोई अपूर्व दैवशक्ति मानो प्रतिक्षण उनके साथ रहकर संसार के रूपरसादि प्रत्येक विषय की अनित्यता तथा तुच्छता को उज्ज्वल रूप से प्रदर्शित कर उनके नेत्रों के सम्मुख स्थापित करती हुई उन्हें सदा विशुद्ध मार्ग में परिचालित करने लगी। शुद्धसत्य के अन्वेषी तथा स्वार्थशून्य श्रीरामकृष्णदेव भी उसके इशारे पर चलने में शीघ्र ही अभ्यस्त हो गए। इससे यह स्पष्ट है कि पार्थिव किसी भोग्यवस्तु को प्राप्त करने की प्रबल अभिलाषा उनके मन में यदि विद्यमान होती तो उनके लिए कभी भी उस प्रकार का आचरण करना सम्भव नहीं होता।

समस्त विषयों में श्रीरामकृष्णदेव के आजन्म आचरण का स्मरण

करने पर पाठकों को पूर्वोक्त कथन हृदयंगम होगा। संसार में प्रचलित शिक्षा का अर्थ है 'दाल-रोटी प्राप्त कराने वाली शिक्षा'—यानी अर्थोपार्जन करना है, यह जानकर उन्होंने विद्याभ्यास नहीं किया, संसारयात्रा-निर्वाह में सहायता मिल सकेगी, यह सोचकर पुजारीपद को स्वीकार करने के पश्चात् उन्होंने यह अनुभव किया कि देवोपासना का लक्ष्य कुछ और ही है तथा ईश्वर-प्राप्ति के निमित्त वे उन्मत्त हो गए। सम्पूर्ण संयम के द्वारा ही ईश्वर-प्राप्ति होती है, यह समझकर विवाहित होने पर भी उन्होंने स्त्री-ग्रहण नहीं किया; संचय करने वाले व्यक्ति ईश्वर पर पूर्ण निर्भरशील नहीं होते हैं यह जानकर कांचनादि का तो कहना ही क्या, सामान्य पदार्थ तक संग्रह करने की भावना को उन्होंने अपने हृदय में जमने नहीं दिया—ऐसी अनेकानेक बातें श्रीरामकृष्णदेव के सम्बन्ध में कही जा सकती हैं। उन बातों की पर्यालोचना करने पर यह पता चलता है कि साधारण मानवों को मुग्ध करनेवाले संस्कार के बन्धन का उनके हृदय पर बचपन से हो कितना अल्प प्रभाव पड़ा था। इससे यह बात भी स्पष्ट प्रतीत होती है कि उनकी धारणाशक्ति इतनी प्रबल थी कि मानसिक पूर्वसंस्कार, उनके सम्मुख कभी सिर उठाकर उन्हें लक्ष्यभ्रष्ट नहीं कर पाते थे।

श्रीरामकृष्णदेव के मन में संस्कार का बन्धन कितना अल्प था।

इसके अतिरिक्त यह हम देख चुके हैं कि बाल्यावस्था से ही श्रीरामकृष्णदेव श्रुतिधर थे। किसी बात को केवल एक बार सुन लेने से वे उसकी आनुपूर्विक आवृत्ति कर सकते थे तथा सदा के लिए वह बात उनके मानसपटल पर अंकित हो जाती थी। बचपन में रामायण आदि के प्रवचन, संगीत तथा धार्मिक नाटक इत्यादि केवल एक बार सुन लेने व देख लेने के पश्चात् अपने साथियों को लेकर कामारपुकुर के गोष्ठ तथा मार्ग में वे किस प्रकार से उनकी पुनरावृत्ति किया करते थे, पाठकों को यह विदित ही है। अतः यह स्पष्ट है कि अदृष्टपूर्व सत्यानुराग, श्रुतिधरत्व तथा सम्पूर्ण धारणारूप दैवी सम्पदाओं को अपनाकर ही श्रीरामकृष्णदेव साधक-जीवन में प्रविष्ट हुए थे। अनुराग, धारणा आदि जिन गुणों को

साधना में प्रवृत्त होने के पूर्व श्रीरामकृष्णदेव का मन किस प्रकार गुणसम्पन्न था।

साधारण साधक जीवनपर्यन्त प्रयास के बाद भी सहज में प्राप्त नहीं कर पाते हैं, वे उन गुणों को आधार बनाकर साधन-राज्य की ओर अग्रसर हुए थे। अतः अल्प समय के अन्दर साधन राज्य में उनके लिए अत्यधिक फल प्राप्त कर लेना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। साधना करते समय कठिन साधनाओं में प्रवृत्त हो उन्होंने तीन दिन के भीतर सिद्धि प्राप्त कर ली थी, उनसे इस बात को सुनकर कभी-कभी हम जो विस्मित या आश्चर्यचकित होते रहे हैं, उसका कारण यह था कि उनकी असाधारण मानसिक गठन को उस समय हम किंचिन्मात्र भी हृदयंगम नहीं कर पाए थे।

श्रीरामकृष्णदेव की असाधारण मानसिक गठन के सम्बन्ध में दृष्टान्त तथा आलोचन।

श्रीरामकृष्णदेव के जीवन की कुछ घटनाओं के उल्लेख से पाठक हमारी पूर्वोक्त बात को भलीभाँति समझ सकेंगे। साधनकालीन प्रारम्भिक अवस्था में नित्यानित्यवस्तुविचारपूर्वक श्रीरामकृष्णदेव ने 'रुपया मिट्टी, मिट्टी रुपया'—यह कहते हुए मिट्टी के साथ कुछ मुद्राओं को ज्योंही गंगाजी में डाल दिया, त्योंही उसके साथ जो कांचनासक्ति मानव-मन के अन्तःस्तलपर्यन्त अपना अधिकार विस्तार कर अवस्थित है, वह सदा के लिए उनके हृदय से समूल उत्पाटित हो गंगाजी में विसर्जित हो गई। साधारण लोग जहाँ जाने पर फिर स्नानादि किए बिना अपने को शुद्ध नहीं मानते हैं, उस जगह को जिस समय उन्होंने अपने हाथ से साफ किया, तत्क्षण ही जन्मगत जाति के अभिमान को त्याग कर सदा के लिए उनके मन में यह दृढ़ धारणा उत्पन्न हो गई कि समाज में जिन लोगों को अस्पृश्य माना जाता है, उनसे वे किसी भी अंश में श्रेष्ठ नहीं हैं। अपने को जगदम्बा की सन्तान समझकर जब श्रीरामकृष्णदेव ने यह सुना कि वे ही 'स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु' हैं, उसी समय स्त्रीजाति में से किसी को भी भोगलालसामयी दृष्टि से देखकर दाम्पत्य-सुख को प्राप्त करने के निमित्त फिर कभी वे आगे न बढ़ सके।—इन विषयों की पर्यालोचना करने पर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि असाधारण धारणा शक्ति के बिना उन्हें कभी उस प्रकार की फलप्राप्ति नहीं हो सकती थी। उनके जीवन की उन घटनाओं को सुनकर हम जो विस्मित होते हैं अथवा सहसा विश्वास

नहीं कर पाते हैं, इसका कारण यह है कि उस समय जब हम अपने हृदय की ओर दृष्टि डालते हैं, तब हमें यह दिखाई देता है कि उक्त रूप से मिट्टी के साथ मुद्राओं को सहस्र बार जल में विसर्जित करने पर भी हमारी धनाकांक्षा दूर नहीं हो सकती, हजार बार अशुद्ध स्थानों को साफ करने पर भी हमारे मन का अभिमान धुल नहीं सकता तथा रमणी-रूप में जगज्जननी के प्रकट होने की बात को जन्म भर सुनने पर भी कार्यक्षेत्र में रमणीमात्र के प्रति मातृज्ञान का उदय होना हमारे लिए सम्भव नहीं है ! हमारी धारणा-शक्ति पूर्वकृत कर्म-संसार के साथ सर्वथा बेड़ी की तरह जकड़ी रहने के कारण प्रयास करने पर भी हमें उन विषयों में श्रीरामकृष्णदेव की तरह सफलता नहीं मिल सकती। संयमरहित, धारणाशून्य, पूर्वसंस्कारप्रबल मन को लेकर हम ईश्वरप्राप्ति के निमित्त साधन-राज्य में अग्रसर होते हैं, इसीलिए उनकी तरह हमें फलप्राप्ति नहीं हो पाती है।

इस संसार में चार-पाँच सौ वर्ष के भीतर श्रीरामकृष्णदेव के सदृश एक-आध भी अपूर्व शक्ति-विशिष्ट मन का आविर्भाव होता है या नहीं, यह निश्चित-रूप से नहीं कहा जा सकता। संयमनिपुण, धारणाकुशल पूर्वसंस्कारवर्जित वह मन ईश्वरप्राप्ति के निमित्त अदृष्टपूर्व अनुराग तथा व्याकुलता के कारण आठ वर्ष तक आहार-निद्रा त्याग कर श्रीजगन्माता के पूर्ण दर्शन प्राप्त करने के निमित्त सचेष्ट रहते हुए कितना शक्तिसम्पन्न बन चुका था तथा सूक्ष्म दृष्टि की सहायता से उसे किस प्रकार के दर्शन प्राप्त हुए थे, हम-जैसे व्यक्तियों के मन के लिए इन बातों की कल्पना तक करना सर्वथा असम्भव है।

श्रीरामकृष्णदेव के आदेशानुसार मथुरबाबू की साधुसेवा।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि रानी रासमणि के निधन के बाद दक्षिणेश्वर के कालीमन्दिर में श्रीजगदम्बा की सेवा-सम्बन्धी कोई त्रुटि दिखाई नहीं आने पाई। श्रीरामकृष्ण गतप्राण मथुरामोहन का इस सेवा के निमित्त व्यय करने में किसी प्रकार के संकोच की बात तो दूर रही, बहुधा श्रीरामकृष्णदेव के निर्देशानुसार वे निर्धारित राशि से कहीं अधिक व्यय किया करते थे। देव-देवियों की सेवा के अतिरिक्त साधुओं की सेवा में उनका

विशेष अनुराग था; क्योंकि श्रीरामकृष्णदेव के श्रीचरणाश्रित मथुरबाबू उनकी शिक्षानुसार साधु-भक्तों को ईश्वर के ही रूप समझा करते थे। इसलिए यह देखने में आता है कि उस समय जब श्रीरामकृष्णदेव ने साधु-भक्तों को अन्नदान करने के अतिरिक्त उनकी देहरक्षा के निमित्त वस्त्र, कम्बल आदि, तथा नित्य काम में आनेवाली वस्तु कमण्डलु आदि दान करने की व्यवस्था के लिए कहा था, तब उस कार्य को सुचारु रूप से सम्पन्न करने के लिए उन वस्तुओं को खरीदकर कालीमन्दिर के एक कमरे में रखा दिया तथा कर्मचारियों को यह आदेश दिया कि उस नवीन भण्डार की वस्तुओं का वितरण श्रीरामकृष्णदेव के आदेशानुसार होगा। फिर उसके कुछ दिन बाद सभी सम्प्रदायों के साधु-भक्तों के लिए साधनानुकूल वस्तुओं को प्रदान करने के पश्चात् उन लोगों को भोजन कराने की अभिलाषा भी श्रीरामकृष्णदेव के हृदय में उदित हुई। कहना न होगा, मथुरामोहन ने उसकी भी पूरी व्यवस्था कर दी थी।* सम्भवतः सन् १८६३-६४ में ही मथुरामोहन ने श्रीरामकृष्णदेव के अभिप्रायानुसार इस प्रकार साधु-सेवा की यथोचित व्यवस्था की थी। इसी कारण रानी रासमणि के कालीमन्दिर की अद्भुत अतिथि-सेवा की बात सर्वत्र साधु-भक्तों में प्रचारित हो गई थी। यद्यपि रानी रासमणि के रहते ही तीर्थपर्यटनकारी साधु-परिव्राजकों को यह बात विदित थी कि मार्ग में दो-चार दिन विश्राम लेने के लिए कालीमन्दिर में व्यवस्था है, फिर भी उक्त प्रसंग के बाद से उसकी ख्याति चारों ओर अधिक रूप से फैल जाने से सभी सम्प्रदाय के विशिष्ट साधुगण वहाँ उपस्थित हो, आतिथ्य स्वीकार कर परितृप्त होकर मन्दिर के सेवा-संचालक को आशीर्वाद देते हुए गन्तव्य स्थान की ओर चले जाते थे। इस प्रकार समागत विशिष्ट साधुओं का विवरण हमें जहाँ तक श्रीरामकृष्णदेव के श्रीमुख से सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, उसका हमने अन्यत्र उल्लेख किया है।† केवल 'जटाधारी' नामक जिस रामायतपन्थी साधु से श्रीरामकृष्णदेव ने राम-मंत्र की दीक्षा ली थी तथा जिन्होंने 'श्रीरामललाँ' नामक श्रीरामचन्द्रजी का बालविग्रह उन्हें प्रदान किया था, दक्षिणेश्वर कालीमन्दिर में उनके आगमन-काल

---

* गुरुभाव-उत्तरार्ध, द्वितीय अध्याय देखिए।

† गुरुभाव-उत्तरार्ध, द्वितीय अध्याय देखिए।

को अवगत कराने के निमित्त यहाँ पर उसका पुनरुल्लेख किया जा रहा है। सम्भवतः सन् १८६४ में वे श्रीरामकृष्णदेव के समीप पधारे थे।

श्रीरामचन्द्रजी के प्रति 'जटाधारी' के अद्भुत अनुराग तथा प्रेम की बातें श्रीरामकृष्णदेव के मुखारविन्द से हमें बहुधा सुनने को मिली हैं। बालक रामचन्द्र की मूर्ति ही उनके लिए अत्यधिक प्रिय थी। दीर्घकाल पर्यन्त उस मूर्ति की सेवा करने के फलस्वरूप उनका मन भाव-राज्य में प्रविष्ट हो इस प्रकार अन्तर्मुखी तथा तन्मय हो चुका था कि दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्णदेव के समीप आने के पूर्व ही उन्हें यह स्पष्ट दिखाई देने लगा था कि श्रीरामचन्द्रजी का ज्योतिर्मय बालविग्रह सचमुच उनके सम्मुख आविर्भूत हो उनकी पुनीत भक्ति-सेवा को स्वीकार कर रहे हैं। प्रारम्भिक अवस्था में कभी-कभी कुछ क्षण के लिए उन्हें इस प्रकार का दर्शन होता था और उस समय वे आनन्दमग्न हो जाते थे। तदनन्तर ज्यों-ज्यों वे साधनाक्षेत्र में अधिक अग्रसर होने लगे, वह दर्शन भी उनके लिए उतना ही घनीभूत होकर दीर्घस्थायी तथा क्रमशः प्रतिदिन दिखाई देनेवाले अन्यान्य विषयों के रूप में परिणत हो गया था। इस प्रकार बाल-श्रीरामचन्द्रजी उनके नित्य सहचर-जैसे बन चुके थे। जिनको अवलम्बन कर उनके जीवन में इस सौभाग्य का उदय हुआ था, उन्हीं 'रामलला' विग्रह की सेवा में संलग्न रहकर जटाधारी भारत के विभिन्न तीर्थों का पर्यटन करते हुए उस समय दक्षिणेश्वर कालीमन्दिर में आकर उपस्थित हुए थे।

जटाधारी का आगमन।

रामलला की सेवा में नियुक्त जटाधारी ने इस बात को कभी किसी से व्यक्त नहीं किया था कि उन्हें बालकरूप रामचन्द्रजी की भावघन मूर्ति का सर्वदा दर्शन होता रहता है। लोगों को केवल इतना ही ज्ञात था कि एक धातु-निर्मित बालविग्रह की सेवा अत्यन्त निष्ठा के साथ वे करते रहते हैं। किन्तु भाव-राज्य के अद्वितीय अधीश्वर श्रीरामकृष्णदेव की दृष्टि, उनके साथ प्रथम भेंट के समय ही स्थूल यवनिका के व्यवधान को भेदकर अन्तरस्थित निगूढ़ रहस्य तक पहुँच चुकी थी। इसलिए प्रथम

जटाधारीजी के साथ श्रीरामकृष्णदेव का घनिष्ट सम्बन्ध।

दर्शन से ही जटाधारी के प्रति वे श्रद्धाशील हो गए थे और उन्हें आवश्यक द्रव्यादि सानन्द प्रदान कर उनके समीप प्रतिदिन पर्याप्त समय तक रहते हुए उन्होंने भक्तिपूर्वक उनकी सेवा-परिपाटी का निरीक्षण किया था। जटाधारी को जिस श्रीरामचन्द्रजी की भावघन दिव्यमूर्ति का सर्वदा दर्शन होता रहता था उसी भावघन मूर्ति के दर्शन प्राप्त होने के कारण ही श्रीरामकृष्णदेव ने इस प्रकार का व्यवहार किया था, इस बात का उल्लेख अन्यत्र किया गया है।* इस प्रकार जटाधारी के साथ श्रीरामकृष्णदेव का सम्बन्ध क्रमशः विशेष श्रद्धापूर्ण घनिष्ठता के रूप में परिणत हुआ था।

रमणी-भाव के उदय से श्रीरामकृष्णदेव का वात्सल्य-भाव की साधना में प्रवृत्त होना।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि श्रीरामकृष्णदेव के अन्दर उस समय रमणीभाव का उदय हुआ था तथा उस भाव में बहुत दिन तक वे तन्मय थे। मन की प्रबल प्रेरणा के फलस्वरूप अपने को श्रीजगदम्बा की नित्यसहचरी समझकर बहुधा स्त्री-वेश में रहना, पुष्पमालादि बनाकर उनकी वेश-भूषा सजाना, बहुत देर तक चमर से व्यजन करना, मथुरबाबू के द्वारा नए नए गहने बनवाकर उन्हें पहनाना, तथा उनकी तृप्ति के निमित्त उनके सम्मुख नृत्यगीत आदि में उनका अधिकांश समय व्यतीत होता था। जटाधारी के साथ वार्तालाप के प्रसंग में श्रीरामचन्द्रजी के प्रति भक्ति-प्रीति पुनः उद्दीप्त होने के कारण उन्हें उस समय उनकी भावघन मूर्ति का दर्शन प्राप्त हुआ तथा रमणीभाव के प्राबल्य से उनका हृदय वात्सल्यरस में पूर्ण हो उठा। माँ अपने शिशुपुत्र को देखकर जिस अपूर्व प्रीति तथा प्रेमाकर्षण का अनुभव करती है, उस समय वे भी उक्त शिशुमूर्ति के प्रति तदनुरूप आकर्षण अनुभव करने लगे। उस प्रेमाकर्षण ने ही उस समय जटाधारी के बाल-विग्रह के समीप उनको बैठाकर यह अनुभव तक नहीं होने दिया कि समय किस प्रकार व्यतीत हो रहा है। स्वयं उनसे ही हमने सुना है कि वह उज्ज्वल देवशिशु अपनी मधुर बालचेष्टाओं द्वारा उनको मुग्ध कर प्रतिदिन सारे समय के लिए अपने समीप उन्हें पकड़ रखने का प्रयास करता था, उन्हें बिना देखे व्याकुल हो उनकी राह देखा करता था तथा कहना न मानकर उनके साथ जहाँ तहाँ जाने को उद्यत हो उठता था।

* गुरुभाव-उत्तरार्ध, द्वितीय अध्याय देखिए।

श्रीरामकृष्णदेव का प्रयत्नपरायण मन कभी किसी कार्य को आधा सम्पन्न कर शान्त नहीं होता था। स्थूल कार्यों में प्रकटित उनका वह स्वभाव, सूक्ष्म भावराज्य के विषयों में भी उसी प्रकार दृष्टिगोचर होता था। यह देखा जाता था कि स्वाभाविक प्रेरणा से भावविशेष के द्वारा उनका हृदय ओतप्रोत हो जाने पर, उसकी चरम सीमा तक की उपलब्धि किए बिना वे निश्चिन्त नहीं हो पाते थे। उनके इस प्रकार के स्वभाव की बात को सुनकर सम्भवतः कोई कोई पाठक यह सोचने लगे—'वास्तव में ऐसा करना कहाँ तक उचित है? हृदय में किसी भाव के उदय होते ही उसके हाथ का खिलौना बनकर उसके पीछे दौड़ने से मनुष्य का क्या कभी कल्याण हो सकता है? दुर्बल मानवों के हृदय में अच्छे तथा बुरे सभी प्रकार के भाव जब निरन्तर उदित होते रहते हैं, ऐसी स्थिति में श्रीरामकृष्णदेव का उस प्रकार का स्वभाव चाहे वह उन्हें विपथगामी भले ही न करे, फिर भी साधारण मानवों के लिए कभी अनुकरणीय नहीं हो सकता। केवल अच्छे भावों का ही हृदय में उदय होगा, अपने ऊपर इतना विश्वास रखना मानवों के लिए कभी उचित नहीं है। अतः संयमरूपी लगाम के द्वारा भावरूपी घोड़ों को सदा नियंत्रित रखना ही मनुष्यों का लक्ष्य होना चाहिए।'

किसी भाव के उदय होने पर उसकी चरम उपलब्धि के निमित्त उनके प्रयास तथा इस प्रकार का आचरण कहाँ तक उचित है, तत्सम्बन्धी आलोचन।

पूर्वोक्त बातों को युक्तियुक्त मानने पर भी इसके उत्तर में हमें कुछ कहना है। इस बात को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि काम-कांचनासक्त भोगलोलुप मानव-मन के लिए अपने ऊपर इतना विश्वास रखना वास्तव में कभी भी उचित नहीं है। अतः साधारण मानवों के लिए भाव-संयम की आवश्यकता के बारे में किसी प्रकार का सन्देह करना नितान्त अदूरदर्शी व्यक्तियों के द्वारा ही सम्भव है। परन्तु वेदादि में यह कहा गया है कि ईश्वरकृपा से, विरले किसी साधक को संयम भी, श्वास-प्रश्वास की भाँति सहज तथा स्वाभाविक हो जाता है। उस समय उसका मन काम-कांचन के आकर्षण से पूर्णतया मुक्त होकर केवल अच्छे

श्रीरामकृष्णदेव के सदृश निर्भरशील साधक के लिए भावसंयम अनावश्यक है—उसका कारण।

भावों की निवासभूमि में परिणत होता है। श्रीरामकृष्णदेव कहते थे कि श्रीजगदम्बा के प्रति सम्पूर्ण निर्भरशील इस प्रकार के मानव के हृदय में उस समय उनकी कृपा से कोई बुरी भावना अपना मस्तक उठाकर अपना प्रभुत्व स्थापन करने में समर्थ नहीं हो पाती—"माँ (श्रीजगदम्बा) उसके पैर को कभी बेताल नहीं होने देतीं।" उस प्रकार अवस्थाप्राप्त मानव यदि उस समय अपने हृदयगत प्रत्येक मनोभाव पर विश्वास करने लगे तो उससे दूसरों का अनिष्ट होना तो दूर रहा, प्रत्युत उनका विशेष कल्याण ही साधित होता है; क्योंकि देहाभिमानयुक्त जिस तुच्छ अहंकार की प्रेरणा से स्वार्थी बनकर संसार के समग्र भोगसुखाधिकार की प्राप्ति तक को हम पर्याप्त नहीं मानते हैं, अपने हृदय की वह तुच्छ अहंकार ईश्वर के विराट् अहंकार के अन्दर सर्वथा विसर्जित हो जाने के कारण उस समय उस व्यक्ति के लिए स्वार्थ-सुख की खोज करना एकदम असम्भव हो जाता है। इसलिए विराट् ईश्वर की सर्वकल्याणकारी इच्छा ही उस समय उसके हृदय में दूसरों के कल्याण के निमित्त विविध रूप में उदित होती रहती है। अथवा इस प्रकार अवस्थाप्राप्त साधक उस समय—'मैं यन्त्र हूँ, तुम यन्त्री हो'—इस बात को सर्वदा अपने हृदय में यथार्थरूप से अनुभव कर अपनी हृद्गत भावों को निश्चित रूप से विराट् पुरुष ईश्वर का ही अभिप्राय मानते हुए उनकी प्रेरणानुसार कार्य करने में किंचिन्मात्र भी संकुचित नहीं होता है। फलतः यह देखने में आता है कि उनके उन आचरणों से दूसरों का महान् कल्याण ही होता है। श्रीरामकृष्णदेव की तरह अनन्यसाधारण महापुरुषों के अन्दर जीवन के उषाकाल में ही वह अवस्था उपस्थित होती है। अतः इस प्रकार के पुरुषों के जीवन-इतिहास की आलोचना करने पर हमें यह दिखाई देता है कि कुछ भी ऊहापोह किए बिना वे अपनी-अपनी हृद्गत भावनाओं पर विश्वास स्थापन कर बहुधा कार्यक्षेत्र में अग्रसर होते रहते हैं। विराट् इच्छाशक्ति के साथ अपनी तुच्छ इच्छा को सर्वदा अभिन्न रखकर साधारण मानवों की मन-बुद्धि के अगोचर विषयों को वे उस समय सदा अनुभव तथा धारण करने में समर्थ होते हैं; क्योंकि विराट् मन के अन्दर सूक्ष्म भावों के रूप में उक्त विषय-समूह पहले से ही अभिव्यक्त रहते हैं।

साथ ही सदा सम्पूर्ण रूप से विराट् इच्छा के अनुगत होने के कारण वे

इस प्रकार स्वार्थ तथा भयरहित हो जाते हैं कि कैसे किसके द्वारा उनके तुच्छ शरीर का ध्वंस होगा, इस बात तक को पहले से जान लेने पर भी, उन वस्तु, व्यक्ति तथा विषयों के प्रति विरागसम्पन्न न होकर उल्टे उस कार्य को सम्पादित करने में परम प्रीतिपूर्वक वे उनकी यथासाध्य सहायता करते रहते हैं। यहाँ पर कुछ दृष्टान्तों के उल्लेख द्वारा पाठक इस बात को भलीभाँति हृदयंगम कर सकेंगे। देखिए—जनकनन्दनी सीताजी को निष्पाप जानते हुए भी श्रीरामचन्द्रजी ने होतव्यता समझकर उनको वन में छोड़ दिया था। पुनः अपने प्राणों से भी प्रिय अनुज लक्ष्मणजी के वर्जन करने पर अपना लीलासंवरण अवश्यम्भावी है, यह जानकर भी उन्होंने उस कार्य का अनुष्ठान किया था। यदुवंश के ध्वंस होने की बात को पहले से जानते हुए भी श्रीकृष्ण ने उसे रोकने का किंचिन्मात्र प्रयास न कर, जिससे वह घटना यथासमय उपस्थित हो, तदनुरूप आचारण किया था। अथवा व्याध के हाथों से अपना निधन जानकर भी जब वह समय उपस्थित हुआ, तब वृक्ष के पत्तों की आड़ में सारा शरीर छिपाकर वे अपने आरक्तिम चरणयुगल को इस प्रकार से रखे रहे कि उसे देखते ही व्याध ने पक्षी के भ्रम से तीक्ष्ण बाण निक्षेप कर दिया था। तदनन्तर अपने भ्रम के लिए अनुतप्त व्याध को आशीर्वाद एवं सान्त्वना प्रदान कर योगावलम्बनपूर्वक उन्होंने अपना शरीर छोड़ा था।

ऐसे साधक अपने शरीर-त्याग की बात जानकर भी उद्विग्न नहीं होते हैं, उक्त विषयक दृष्टान्त।

चण्डाल का आतिथ्य स्वीकार करने पर परिनिर्वाण-प्राप्ति की बात को पहले से जानते हुए भी महामहिम बुद्धदेव उसे स्वीकार कर आशीर्वाद तथा सान्त्वना के द्वारा दूसरों की घृणा तथा निन्दा के हाथों से उसकी रक्षा करने के पश्चात् उस पद पर आरूढ़ हुए थे। साथ ही स्त्रीजाति को संन्यास ग्रहण करने की अनुमति प्रदान करने से उनका प्रचारित धर्म शीघ्र कलुषित हो जायगा, यह ज्ञात होने पर भी उन्होंने अपनी पूज्य मौसी गौतमी को प्रव्रज्या लेने का आदेश प्रदान किया था।

ईसा का शिष्य ' जुडास ' धन के लोभ से उन्हें शत्रुओं के हाथों में समर्पण करेगा एवं उसी से उनका शरीरान्त होगा, इस बात को जानकर भी ईश्वरावतार ईसा ने उसके प्रति समान रूप से स्नेहप्रदर्शन

करते हुए जन्म भर उसके कल्याण के निमित्त अपने को नियुक्त कर रखा था।

ऐसे साधकों के हृदय में स्वार्थमयी वासना का उदय नहीं होता।

अवतार पुरुषों का तो कहना ही क्या है, सिद्ध जीवन्मुक्त पुरुषों के जीवन का आलोचन करने पर भी इस प्रकार की बहुत-सी घटनाएँ देखने को मिलती हैं। अवतार पुरुषों के जीवन में एक ओर असाधारण उद्यमशीलता तथा दूसरी ओर विराट् इच्छा पर उनकी पूर्ण निर्भरता का सामंजस्य समझने के लिए यह मानना पड़ता है कि विराट् इच्छा का अनुमोदन करने के कारण ही उनके अन्दर उद्यम का विकास होता रहता है, अन्यथा नहीं। इससे यह स्पष्ट है कि ईश्वरेच्छा के पूर्ण अनुगामी पुरुषों के स्वार्थ-संस्कार-समूह एकदम विनष्ट हो जाने से उनका मन ऐसी एक पवित्र भूमि में उपस्थित होता है, जहाँ उसमें शुद्धता के अतिरिक्त स्वार्थमयी भावनाएँ कभी भी उदित नहीं होतीं तथा उस अवस्था में पहुँचे हुए साधक निश्चिंतता के साथ अपनी हृद्गत भावनाओं पर विश्वास स्थापन कर उनकी प्रेरणा से कर्मों का अनुष्ठान करते हुए कभी भी दोष के भागी नहीं बनते। श्रीरामकृष्णदेव के इस प्रकार के आचरण साधारण व्यक्तियों के लिए अनुकरणीय न होने पर भी, पूर्वोक्त असाधारण अवस्थाप्राप्त साधकों को, उनके जीवन के संचालन में, विशेष आलोक प्रदान करते रहेंगे—इसमें कोई सन्देह नहीं। उस अवस्था में पहुँचे हुए पुरुषों की आहार-विहारादि सम्बन्धी सामान्य स्वार्थवासना* की तुलना शास्त्रों में भुने हुए बीज के साथ की गयी है। जैसे अग्नि से वृक्ष-लतादि के बीज दग्ध हो जाते हैं और फलस्वरूप उनकी जीवनी-शक्ति नष्ट हो जाने के कारण फिर वैसे वृक्ष-लतादि उत्पन्न नहीं होते हैं, ठीक उसी प्रकार उन पुरुषों की सांसारिक वासनाएँ संयम तथा ज्ञानाग्नि में दग्ध हो जाने से पुनः कभी उन्हें भोगतृष्णा की ओर आकृष्ट कर विपथगामी नहीं कर पाती हैं। हमें इस विषय को समझाने के निमित्त श्रीरामकृष्णदेव कहते थे कि पारस पत्थर के स्पर्श से लोहे की तलवार जब स्वर्णमय हो जाती है, तब उसका हिंसाक्षम आकार रहने पर भी उसके द्वारा फिर कभी हिंसाकार्य होना सम्भव नहीं होता।

उपनिषद्कार ऋषियों का कथन है कि इस प्रकार के अवस्थाप्राप्त

साधक सत्यसंकल्प होते हैं, यानी उनके हृदय में जो संकल्प उदित होते हैं, वे सत्य ही होते हैं, मिथ्या कभी नहीं होते। 'भावमुख' अवस्था में प्रतिष्ठित श्रीरामकृष्णदेव के हृदय में जो भाव उदित होते थे, बारम्बार परीक्षा के द्वारा उनकी सत्यता की उपलब्धि न होने पर, ऋषियों के पूर्वोक्त कथन पर हम कभी भी विश्वास नहीं कर पाते। हमने यह देखा है कि जब किसी भोज्य-पदार्थ के ग्रहण करते समय श्रीरामकृष्णदेव का मन संकुचित होता था, तब खोज करने पर यह विदित हो जाता था कि वह पदार्थ पहले से ही दूषित हो चुका था; इसी प्रकार किसी व्यक्ति से ईश्वरी चर्चा करने में प्रवृत्त हो उनका मुँह बन्द हो जाने से यह प्रमाणित हो जाता था कि वास्तव में वह व्यक्ति उसका पूर्ण अनधिकारी था; किसी व्यक्ति के सम्बन्ध में इसी जन्म में उसे पूर्ण धर्मलाभ होगा अथवा अल्प, उन्हें इस तरह की उपलब्धि जब होती थी, तभी यथार्थ में वह सत्य सिद्ध होती थी; किसी को देखकर उनके मन में विशेष किसी भाव या देवदेवियों के रूपों का उदय होने पर यह देखा जाता था कि वह व्यक्ति उक्त भाव या उस देवता का अनुगत साधक था; हृद्गत भाव की प्रेरणानुसार जब किसी से वे कुछ कह देते थे, तब उनके उस कथन से विशेष आलोक प्राप्त कर उसका जीवन एकदम परिवर्तित हो जाता था—ऐसी कितनी ही बातें उनके सम्बन्ध में उद्धृत की जा सकती हैं।

ऐसे साधक सत्यसंकल्प होते हैं, श्रीरामकृष्णदेव के जीवन में तदनुरूप दृष्टान्त।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि जटाधारी के आगमन के समय श्रीरामकृष्णदेव अपने हृद्गत भाव की प्रेरणा से बहुधा अपने को स्त्रीजनोचित देह-मन-सम्पन्न रूप से धारणा कर तदनुरूप कार्यों का अनुष्ठान करते थे तथा श्रीरामचन्द्रजी के सुमधुर बाल्यरूप के दर्शन प्राप्त होने के कारण श्रीरामकृष्णदेव के अन्दर उनके प्रति वात्सल्यभाव का उदय हुआ था। अपने कुलदेव श्रीरघुवीरजी की विधिवत् सेवा-पूजा सम्पन्न करने के निमित्त बहुत पूर्व से ही वे राममन्त्र की दीक्षा ले चुके थे, किन्तु

जटाधारी से दीक्षा लेकर श्रीरामकृष्णदेव की वात्सल्यभाव की साधना तथा उसमें सिद्धिलाभ।

उनके प्रति प्रभु के अतिरिक्त और किसी भाव से वे आकृष्ट नहीं हुए थे। उस समय श्रीरामचन्द्र के प्रति पूर्वोक्त नवीन भाव की उपलब्धि होने के कारण गुरुदेव के श्रीमुख से यथाशास्त्र उस भाव-साधना के निमित्त उपयुक्त मन्त्र-दीक्षा लेकर उसकी चरमावस्था के साक्षात्कार के लिए वे व्यग्र हो उठे थे। राममन्त्र—श्रीरामचन्द्रजी की बालमूर्ति के मन्त्र— में पूर्णकाम जटाधारी को जब यह विदित हुआ, तब उन्होंने सानन्द उनको अपने इष्टमन्त्र में दीक्षित किया एवं श्रीरामकृष्णदेव उस मन्त्र की सहायता से उनके प्रदर्शित मार्ग का अवलम्बन कर साधना में निमग्न हो कुछ ही दिन के भीतर निरन्तर श्रीरामचन्द्रजी की बाल-मूर्ति का दिव्य दर्शन प्राप्त करने में समर्थ हुए। वात्सल्यभावानुसार निरन्तर उस दिव्य मूर्ति के ध्यान में तन्मय हो उन्होंने यह अनुभव किया कि—

"जो राम दशरथ का बेटा, वही राम घट-घट में लेटा।
वही राम जगत् पसेरा, वही राम सबसे न्यारा॥"

अर्थात् श्रीरामचन्द्रजी केवल दशरथजी के ही पुत्र नहीं हैं, किन्तु प्रत्येक शरीर को आश्रय कर जीवनरूप से प्रकटित हैं। साथ ही इस प्रकार अन्तर में प्रविष्ट हो जगत्रूप से नित्य अभिव्यक्त रहने पर भी जागतिक समस्त पदार्थों से वे पृथक् हैं, मायारहित निर्गुणस्वरूप में नित्य विराजमान हैं। श्रीरामकृष्णदेव उपरोक्त दोहे की प्रायः आवृत्ति किया करते थे।

श्रीरामकृष्णदेव को जटाधारी का 'रामलला' नामक विग्रह-प्रदान।

श्रीराममन्त्र की दीक्षाप्रदान करने के अतिरिक्त, जटाधारी 'रामलला' नामक जिस बाल-विग्रह की उस समय तक अत्यन्त निष्ठापूर्वक सेवा किया करते थे, उसे उन्होंने श्रीरामकृष्णदेव को दे दिया, क्योंकि उस जाग्रतमूर्ति ने तब से श्रीरामकृष्णदेव के समीप रहने का उनसे अपना अभिप्राय व्यक्त किया था। जटाधारी तथा श्रीरामकृष्णदेव के साथ उक्त विग्रह के अपूर्व लीलाविलासों का अन्यत्र विस्तारपूर्वक उल्लेख किया गया है।* इसलिए अभी उनकी चर्चा अनावश्यक है।

वात्सल्यभाव की परिपुष्टि तथा चरमोत्कर्ष की प्राप्ति के निमित्त श्रीरामकृष्णदेव जिस समय उक्त प्रकार से साधना में प्रवृत्त हुए थे उस समय

* गुरुभाव-उत्तरार्ध, द्वितीय अध्याय देखिए।

योगेश्वरी नामक भैरवी ब्राह्मणी की दक्षिणेश्वर में उनके समीप अवस्थिति की बात इससे पहले ही कही जा चुकी है। हमने श्रीरामकृष्णदेव के श्रीमुख से सुना है कि वैष्णवतन्त्रोक्त पंचभावाश्रित साधनों में भी वे विशेष विज्ञ थीं। वात्सल्य तथा मधुरभाव के साधन के समय श्रीरामकृष्णदेव को उनसे विशेष कोई सहायता प्राप्त हुई थी अथवा नहीं, इस सम्बन्ध में कोई बात हमने स्पष्टतया उनसे नहीं सुनी है। फिर भी वात्सल्यभाव में आरूढ़ हो ब्राह्मणी प्रायः श्रीरामकृष्णदेव का गोपालरूप ही दर्शन कर उनकी सेवा किया करती थीं—यह बात श्रीरामकृष्णदेव के श्रीमुख से तथा हृदयराम के निकट सुनने के पश्चात् हमें ऐसा प्रतीत होता है कि बालगोपाल मूर्ति में वात्सल्यभाव का आरोप कर उसकी चरम उपलब्धि करते समय एवं मधुरभाव के साधनकाल में श्रीरामकृष्णदेव को सम्भवतः उनसे कुछ न कुछ सहायता अवश्य प्राप्त हुई होगी। कम से कम इस बात को अवश्य स्वीकार किया जा सकता है कि विशेष कोई सहायता न मिलने पर भी ब्राह्मणी को उन साधनों में तत्पर देखकर तथा उनके मुख से उन साधनों की प्रशंसा सुनने के फलस्वरूप श्रीरामकृष्णदेव के हृदय में उन भाव-साधनों के प्रति प्रबल इच्छा का उद्भव होना स्वाभाविक था।

वैष्णवमत की साधना के समय श्रीरामकृष्णदेव को भैरवी ब्राह्मणी से कितनी सहायता प्राप्त हुई थी।

त्रयोदश अध्याय

मधुरभाव का सार तत्व

स्वयं साधक हुए बिना साधक-जीवन के इतिहास को समझना अत्यन्त कठिन है; क्योंकि साधना सूक्ष्म भावराज्य की बात है। वहाँ के रसादि विषयों की मनोहारिणी स्थूल मूर्तियाँ दृष्टिगोचर नहीं होतीं, वस्तु तथा व्यक्तियों को अवलम्बन कर उपस्थित होनेवाली घटनाओं में की विचित्र परम्पराएँ दिखाई नहीं देतीं अथवा रागद्वेषादि-द्वन्द्व से व्याकुल मानव-मन, प्रवृत्ति की प्रेरणा से विचलित हो भोगसुख को हस्तगत करने के निमित्त दूसरों को पीछे हटाने के लिए जो प्रयत्न करता रहता है तथा विषयविमुग्ध संसार जिसे वीरता व महत्ता के नाम से पुकारा करता है—तदनुरूप उन्मत्तता तथा उद्यमादि का वहाँ किंचिन्मात्र भी विकास नहीं है। वहाँ साधक का अपना हृदय तथा हृद्गत जन्म-जन्मान्तर के अनन्त संस्कारप्रवाह विद्यमान हैं। और हैं केवल बाह्यवस्तु तथा व्यक्तिविशेष के संघर्ष से उत्पन्न होनेवाले साधक के उच्च भाव तथा लक्ष्य के प्रति आकर्षण और उस भाव में चित्त की एकाग्रता स्थापन एवं लक्ष्य की ओर अग्रसर होने के लिए अपने प्रतिकूल संस्कारों के साथ दृढ़ संकल्पसहित साधक का अनन्त संग्राम। और हैं, बाह्य विषयों से क्रमशः नितान्त विमुख होकर अन्तर्मुखी बनने के पश्चात् साधक के मन की अपने आप में तल्लीनता, अन्तर्राज्य के अधिकाधिक गहन प्रदेश में प्रविष्ट हो सूक्ष्मतर भावस्तरों की उपलब्धि एवं अन्त में अपने अस्तित्व के गहनतम प्रदेश में पहुँचकर, जहाँ से समस्त भाव तथा अहंज्ञान की उत्पत्ति हुई है और जिसे आश्रय कर वे नित्य अवस्थित हैं, उस 'अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययमेकमेवाद्वितीयम्' वस्तु की उपलब्धि तथा उसके साथ एकीभूत होकर अवस्थिति। तदनन्तर संस्कारसमूह पूर्णतया क्षीण होकर जब तक मन का संकल्पविकल्पात्मक धर्म सदा के लिए नष्ट

साधक के कठोर अन्तःसंग्राम तथा लक्ष्य।

नहीं हो जाता है तब तक के लिए जिस मार्ग का अवलम्बन कर साधक-मन को पूर्वोक्त अद्वय वस्तु की उपलब्धि हुई थी, विलोम-भाव से उसी मार्ग के द्वारा समाधि-अवस्था से पुनः लौटकर बाह्य जगत् का अनुभव होता रहता है। इस प्रकार समाधि से बाह्य जगत् की उपलब्धि की ओर तथा वहाँ से समाधि-अवस्था में पुनः पुनः साधक-मन का आवागमन होता रहता है। साथ ही सृष्टि के प्राचीनतम युग से लगाकर आज तक के जागतिक आध्यात्मिक इतिहास में ऐसे कुछ साधकों की बातें लिपिबद्ध हैं जिनके लिए पूर्वोक्त समाधि-अवस्था ही स्वाभाविक निवास-भूमि थी और यह देखा जाता है कि उन लोगों ने साधारण मानवों के कल्याणार्थ किसी प्रकार बलपूर्वक कुछ दिन के लिए संसार में, बाह्य जगत् की उपलब्धि-भूमि में अपने को आबद्ध कर रखा था। श्रीरामकृष्णदेव के साधन-इतिहास से जितने ही हम परिचित होंगे, उतना ही हमें यह विदित होगा कि वे पूर्वोक्त श्रेणी के अन्तर्गत थे। उनके 'लीलाप्रसंग' के आलोचन के द्वारा यदि हम लोगों के अन्दर इस प्रकार की धारणा उत्पन्न न हो तो यह समझना चाहिए कि लेखक की त्रुटि ही इसके लिए उत्तरदायी है; क्योंकि बारम्बार वे हमसे यह कह गए हैं—"छोटीमोटी एक आध वासना को बलपूर्वक धारण कर उसके सहारे मैं अपने मन को तुम लोगों के लिए नीचे की ओर लाता रहा हूँ!—अन्यथा अखण्ड के साथ मिलित तथा एकीभूत हो रहने की उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है।"

असाधारण साधकों के अन्दर निर्विकल्प समाधि में अवस्थित रहने की स्वतःप्रवृत्ति। श्रीरामकृष्णदेव उक्त श्रेणी के साधकों के अन्तर्गत हैं।

समाधि-अवस्था में उपलब्ध अखण्ड अद्वय वस्तु को प्राचीन ऋषियों में से किसी किसी ने सर्व भावों का अभाव या 'शून्य', और किसी किसी ने सर्व भावों की सम्मिलन-भूमि यानी 'पूर्ण' कहकर निर्देश किया है। किन्तु इस प्रकार कहने पर भी सभी का कथन एक ही है; क्योंकि सभी ने उसको उत्पत्ति तथा लय का स्थान माना है। भगवान् बुद्ध ने जिसे सर्व भावों की निर्वाण-भूमि—शून्य वस्तु कहा है, भगवान् शंकर ने उसे ही सर्व

'शून्य' तथा 'पूर्ण' रूप से निर्दिष्ट वस्तु एक ही पदार्थ है।

भावों को सम्मिलन-भूमि—पूर्ण वस्तु कहकर शिक्षा प्रदान की है। परवर्ती बौद्धाचार्यों के अभिमतों को छोड़कर उन दोनों की आलोचना के द्वारा यह बात सिद्ध होती है।

शून्य या पूर्ण रूप से उपलक्षित अद्वैतभावभूमि को ही उपनिषद् तथा वेदान्त में भावातीत अवस्था कहकर निर्देश किया गया है; क्योंकि उसमें सम्यक् रूप से प्रतिष्ठित होने पर साधक का मन सगुण ब्रह्म या ईश्वर के सृजन, पालन तथा संहारादि लीलाजनित समग्र भावभूमि का सीमा का अतिक्रमण कर निर्गुण ब्रह्म में लीन हो जाता है। अतः यह स्पष्ट है कि ससीम मानव-मन आध्यात्मिक राज्य में प्रविष्ट हो शान्त, दास्यादि जिन पंचभावों का आश्रय कर ईश्वर के साथ नित्य सम्बद्ध होता है, उन सभी भावों से अद्वैतभाव एक पृथक् अपार्थिव वस्तु है। पृथ्वी के लोग, इहलोक तथा परलोक में प्राप्त सर्व प्रकार के भोग-सुख के प्रति सम्पूर्णतया उदासीन हो पवित्रता के बल पर जब देवताओं की अपेक्षा उच्च पद को प्राप्त करते हैं, तभी उन्हें उस भाव की उपलब्धि होती है एवं समस्त संसार तथा उसके सृष्टि-स्थिति-प्रलयकर्ता ईश्वर जिसमें नित्य प्रतिष्ठित हैं, उस भाव की सहायता से उस निर्गुण ब्रह्मवस्तु का साक्षात्कार कर वे कृतकृत्य हो जाते हैं।

अद्वैतभाव का स्वरूप।

अद्वैतभाव तथा उसके द्वारा उपलब्ध निर्गुण ब्रह्म की बात को छोड़ देने पर आध्यात्मिक राज्य में शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा मधुररूप पंच भावों का प्रकाश देखने को मिलता है। उनमें से प्रत्येक की साध्य वस्तु ईश्वर या सगुण ब्रह्म है। अर्थात् साधन-परायण मानव, नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वभाववान्, सर्वशक्तिमान्, सर्वनियन्ता ईश्वर के प्रति उन भावों में से किसी एक भाव का आरोप कर उनके साक्षात्कार के निमित्त अग्रसर होता है एवं सर्वान्तर्यामी, सर्वभावाधार ईश्वर भी उसके चित्त की एकाग्रता तथा एकनिष्ठा को देखकर उसके भाव की परिपुष्टि के निमित्त उक्त भावानुरूप शरीर धारण कर उसे दर्शन देकर कृतार्थ करते हैं! इसी प्रकार विभिन्न युगों में ईश्वर के नाना प्रकार भावमय चिद्घन मूर्ति धारण एवं यहाँ तक

शान्त आदि पंचभाव तथा उनकी साध्य वस्तु ईश्वर।

कि स्थूल मनुष्य-विग्रह धारण कर अवतीर्ण हो साधकों के अभीष्ट को पूर्ण करने की बातें शास्त्रों के अध्ययन से विदित होती हैं।

शान्त आदि पंच भावों का स्वरूप। जीव को वे किस प्रकार से उन्नत बनाते हैं।

संसार में जन्म लेने के पश्चात् मानव जिन भावों का अवलम्बन कर अन्यान्य मानवों के साथ नित्य सम्बद्ध रहता है, शान्त, दास्य आदि पंच भाव उन पार्थिव भावों के ही सूक्ष्म तथा शुद्ध स्वरूप हैं। यह देखने में आता है कि हम लोग पिता, माता, पति, पत्नी, सखा, सखी, प्रभु, भृत्य, पुत्र, कन्या, राजा, प्रजा, गुरु, शिष्य आदि के साथ पृथक्-पृथक् प्रकार के विशेष सम्बन्ध की उपलब्धि करते रहते हैं तथा किसी प्रकार की शत्रुता न रहने पर साधारण लोगों के साथ श्रद्धापूर्ण शान्त व्यवहार करना हम अपना कर्तव्य समझते हैं। भक्तिमार्ग के आचार्यों ने उन्हीं सम्बन्धों को शान्त आदि पंच श्रेणियों में विभक्त किया है तथा अधिकारी भेद से उनमें से किसी एक को मुख्यतया अवलम्बन कर ईश्वर के प्रति आरोप करने का उपदेश प्रदान किया है, क्योंकि शान्त आदि पंच भावों के साथ जीव नित्य परिचित रहने के कारण उसके सहारे ईश्वर के साक्षात्कार के निमित्त अग्रसर होना उसके लिए सुगम हो जाता है। इतना ही नहीं, प्रवृत्तिमूलक उक्त प्रकार सम्बन्धाश्रित भाव की प्रेरणा से उसके चित्त में रागद्वेषादि वृत्तियाँ उदित होकर, इससे पूर्व संसार में उन वृत्तियों ने उसको नाना प्रकार के कुकर्मों के अनुष्ठान में नियुक्त कर रखा था, ईश्वरार्पित सम्बन्ध के आश्रय से उसके चित्त में उन वृत्तियों का उदय होने पर भी उनका प्रबल वेग ईश्वर-साक्षात्काररूप लक्ष्य की ओर ही उसे अग्रसर कराता रहेगा। जैसे—समस्त दुःखों के कारण-स्वरूप हृद्रोग काम उसे ईश्वर-दर्शन की कामना में नियुक्त रखेगा, उक्त दर्शन के प्रतिकूल वस्तु तथा व्यक्तियों पर उसका क्रोध प्रयुक्त होगा, साध्य-वस्तु ईश्वर के अपूर्व प्रेम-सौन्दर्य के सम्भोग-लोभ में वह उन्मत्त तथा मुग्ध हो जावेगा एवं ईश्वर के पुण्य दर्शन प्राप्त कर कृतकृत्य होनेवाले व्यक्तियों की अपूर्व धर्मश्री देखकर उसे प्राप्त करने के लिए वह व्याकुल हो उठेगा।

शान्त, दास्य आदि पंच भावों को इस प्रकार ईश्वर के प्रति प्रयोग

करने की शिक्षा जीव को एक ही समय में अथवा किसी एक ही व्यक्ति द्वारा प्राप्त नहीं हुई है। युगयुगान्तर के विभिन्न महापुरुषों ने इस संसार में जन्म लेकर उनमें से किसी एक-दो या उससे भी अधिक भावों की सहायता से ईश्वर-प्राप्ति के निमित्त स्वयं प्रयत्नशील हो प्रेमपूर्वक उन्हें अपनाकर उनके प्रति उस आचरण के करने की शिक्षा दी है। उन आचार्यों के अलौकिक जीवन की आलोचना करने पर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि प्रेम ही भाव-साधना के मूल में विद्यमान है तथा ईश्वर के उन्नत या अनुन्नत साकाररूप के प्रति ही वह प्रेम सदा प्रयुक्त होता रहा है; क्योंकि यह देखने में आता है कि मानव जब तक अद्वैत-भाव की उपलब्धि नहीं कर पाता है, तभी तक वह ईश्वर के किसी न किसी ससीम साकार रूप की कल्पना व उपलब्धि करने में समर्थ होता है।

प्रेम ही भाव-साधना का उपाय है तथा ईश्वर का साकार रूप ही उसका अवलम्बन है।

प्रेम के स्वभाव की पर्यालोचना से यह स्पष्ट जाना जाता है कि वह दोनों प्रेमिकों के ऐश्वर्यज्ञानमूलक भेद की उपलब्धि को क्रमशः दूर कर देता है। भावसाधना में तत्पर साधकों के हृदय से धीरे-धीरे वह ईश्वर के असीम ऐश्वर्यज्ञान को तिरोहित कर उन्हें उनके भावानुरूप प्रेमास्पदमात्र के रूप में ईश्वर की धारणा करने के लिए नियुक्त करता है। अतः यह देखा जाता है कि उक्त मार्ग के साधक प्रेम के द्वारा ईश्वर को पूर्णतया अपना समझकर उनके प्रति प्रेमपूर्ण हठ, अनुरोध, गर्व तथा तिरस्कारादि करने में किंचिन्मात्र भी नहीं हिचकते। साधकों के लिए ईश्वर के ऐश्वर्यज्ञान को विस्मृत कराकर केवल उनके प्रेम तथा माधुर्य की उपलब्धि कराने में पूर्वोक्त पंच भावों में से जो भाव जितना समर्थ है, उस मार्ग में उस भाव को उतना ही श्रेष्ठ माना जाता है। तदनुसार शान्त आदि पंचभावों के तारतम्य का निर्णय कर भक्तिमार्ग के आचार्यों ने मधुरभाव को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया है। किन्तु उनमें से प्रत्येक भाव ही साधकों को ईश्वर-साक्षात्कार कराने में समर्थ है, इस बात को सभी आचार्यों ने मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया है।

प्रेम के द्वारा ऐश्वर्यज्ञान का लोप तथा उसी से समस्त भावों का परिमाण-निरूपण।

आध्यात्मिक इतिहास के अध्ययन से हमें विदित होता है कि उक्त पंचभावों में प्रत्येक की चरम परिपुष्ट-अवस्था में साधक आत्मविस्मृत हो केवल अपने प्रेमास्पद के सुख से सुखी बना रहता है तथा विरह होने पर उसके चिन्तन में तन्मय हो कभी-कभी वह अपने अस्तित्व तक को भूल बैठता है। श्रीमद्भागवत आदि भक्तिग्रन्थों के पढ़ने से यह पता चलता है कि व्रजगोपिकाओं को केवल अपने अस्तित्व-ज्ञान का ही विस्मरण नहीं हो जाता था, अपितु कभी-कभी वे अपने को अपने प्रेमास्पद श्रीकृष्ण का रूप समझकर उपलब्धि किया करती थीं। जीव-कल्याणार्थ शरीर त्याग करते समय ईसा को जो उत्कट यातनाएँ भोगनी पड़ी थीं, उसके चिन्तन में तन्मय हो किन्हीं किन्हीं साधक-साधिकाओं के उन-उन अंगों से रुधिर निकलने की बात ईसाई धर्मग्रन्थों में प्रसिद्ध है।* अतः यह स्पष्ट है कि शान्त आदि पंचभावों में से प्रत्येक की चरम परिपुष्ट अवस्था में साधक अपने प्रेमास्पद के चिन्तन में सम्पूर्ण रूप से तन्मय हो जाता है तथा प्रेम के प्राबल्य से उनके साथ सम्मिलित तथा एकीभूत हो अद्वैतभाव की उपलब्धि करता रहता है। श्रीरामकृष्णदेव के अलौकिक साधक-जीवन से भी हमें इस विषय में अद्भुत आलोक प्राप्त हुआ है। भाव-साधना में अग्रसर हो प्रत्येक भाव की चरम परिपुष्टि होते ही अपने प्रेमास्पद के साथ वे तन्मय हो गए थे तथा अपने अस्तित्व तक से एकदम विस्मृत हो उन्होंने अद्वैतभाव की उपलब्धि की थी।

शान्त आदि प्रत्येक भाव की सहायता से चरमावस्था में अद्वैत-भाव की उपलब्धि के विषय में भक्तिशास्त्र तथा श्रीरामकृष्णदेव के जीवन से प्राप्त होनेवाली शिक्षा।

प्रश्न हो सकता है कि शान्त, दास्य आदि भावों के अवलम्बन से मानव-मन के लिए सर्वभावातीत अद्वैत वस्तु की उपलब्धि कैसे हो सकती है? क्योंकि कम से कम दो व्यक्तियों की उपलब्धि के बिना उसमें किसी भी भाव की उत्पत्ति, स्थिति तथा परिपुष्टि कहीं भी दिखाई नहीं देती।

यह बात सत्य है। किन्तु चाहे कोई भी भाव क्यों न हो, वह

* Vide Life of St. Francis of Assisi and St. Catharine of Sienna.

जितना ही परिपुष्ट होता है, उतना ही अपना प्रभाव विस्तार कर साधक के मन से अन्यान्य समस्त विरोधी भावों को क्रमशः दूर करता रहता है। तदनन्तर जब उसकी चरम परिपुष्टि हो जाती है, तब साधक के समाहित अन्तःकरण, ध्यानकालीन पूर्वपरिदृष्ट 'तुम' (सेव्य), 'मैं' (सेवक) तथा उन दोनों के मध्यवर्ती दास्य आदि सम्बन्ध से कभी कभी विस्मृत हो केवल 'तुम' शब्द-निर्दिष्ट सेव्य वस्तु के साथ प्रेम के द्वारा एकत्व को प्राप्त कर अचल रूप से अवस्थान करता रहता है। भारत के प्रमुख आचार्यों का कथन है कि मानव-मन को कभी भी 'तुम', 'मैं' तथा उन दोनों के मध्यवर्ती भावरूप सम्बन्ध की युगपत् उपलब्धि नहीं होती। एक क्षण में वह 'तुम' शब्द से निर्दिष्ट वस्तु तथा दूसरे क्षण 'मैं' शब्द वाच्य पदार्थ का अनुभव करता है और उन दोनों पदार्थों के बीच निरन्तर शीघ्रता के साथ परिभ्रमण करने के लिए उसकी बुद्धि में एक भावरूप सम्बन्ध परिस्फुटित हो उठता है। उस समय ऐसा प्रतीत होने लगता है मानो वह उनको तथा उनके मध्यवर्ती उस सम्बन्ध को युगपत् प्रत्यक्ष कर रहा है। परिपुष्ट भाव के प्रभाव से मन की चंचलता नष्ट हो जाने पर क्रमशः वह पूर्वोक्त बात को हृदयंगम करने में समर्थ होता है। ध्यान करते समय इस प्रकार से मन जितना ही वृत्तिरहित होता जाता है, उतना ही क्रमशः उसे यह अनुभव होने लगता है कि एक अद्वय पदार्थ को दो ओर से दो प्रकार से देखकर ही अब तक 'तुम' और 'मैं' रूपी दो पदार्थों की वह कल्पना करता रहा है।

शान्त आदि पंच भावों के द्वारा अद्वैत भाव की प्राप्तिविषयक शंका तथा उसकी मीमांसा।

शान्त, दास्य आदि भावों में से प्रत्येक भाव पूर्ण परिपुष्ट हो मानव-मन को पूर्वोक्तरूप से अद्वय वस्तु की उपलब्धि कराने में कितने साधकों के लिए कितने समय तक प्रयास की आवश्यकता हुई थी, यह सोचकर हमें विस्मित होना पड़ता है। शास्त्ररूप आध्यात्मिक-इतिहास के अध्ययन से यह पता चलता है कि विभिन्न युगों में उन भावों में से भिन्न-भिन्न भाव मानव-मन के लिए उपासना के प्रधान अवलम्बनीय विषय बने थे तथा उनके

विभिन्न युगों में भिन्न-भिन्न भाव-साधनों का प्राबल्य-निर्देश।

द्वारा ही उन युगों के विशिष्ट साधकों ने ईश्वर तथा उनमें से विरले किसी किसी ने अखण्ड अद्वय ब्रह्मवस्तु की उपलब्धि की थी। यह देखा जाता है कि वैदिक तथा बौद्ध युग में प्रधान रूप से शान्तभाव का, उपनिषद् युग में शान्तभाव की चरम परिपुष्टि में अद्वैतभाव एवं दास्य तथा ईश्वर के पितृभाव का, रामायण तथा महाभारत के युग में शान्त तथा निष्काम कर्म-युक्त दास्यभाव का, तान्त्रिक युग में ईश्वर के मातृभाव तथा मधुरभाव के कुछ अंशों का और वैष्णवयुग में सख्य, वात्सल्य तथा मधुरभाव का चरम विकास हुआ था।

शान्त आदि पंचभावों की पूर्ण परिपुष्टि के विषय में भारत तथा भारत के अतिरिक्त अन्यान्य देशों में दृष्टि-गोचर होने वाले तथ्य।

भारतीय आध्यात्मिक इतिहास में इस प्रकार अद्वैतभाव के साथ शान्त आदि पंचभावों का पूर्ण विकास दिखाई देने पर भी, अन्यान्य देशों के धर्मसम्प्रदायों में केवल शान्त, दास्य तथा ईश्वर के पितृभाव ही देखने को मिलते हैं। यहुदी, ईसाई तथा मुसलमानों के धर्मसम्प्रदायों में राजर्षि सॉलोमन के सख्य तथा मधुरभावात्मक गीतों का प्रचार रहने पर भी, वे लोग उनके भावों को ग्रहण करने में असमर्थ हो विभिन्न अर्थ की कल्पना किया करते हैं। मुसलमान धर्म के अन्तर्गत सूफी सम्प्रदाय में सख्य तथा मधुरभाव का अधिकांश प्रचलन रहने पर भी मुसलमान लोग इस प्रकार की ईश्वर-उपासना को कुरानविरोधी समझते हैं। कैथलिक ईसाइयों में ईसा मसीह की माता 'मेरी' की प्रतिमा का अवलम्बन कर जगन्मातृत्व का पूजन प्रकारान्तर से प्रचलित रहने पर भी, ईश्वर के मातृभाव के साथ उसका प्रत्यक्ष संयोग न रहने के कारण, भारत में प्रवर्तित जगज्जननी के पूजन की भाँति वह फलप्रद हो साधक को अखण्ड सच्चिदानन्द की उपलब्धि तथा रमणीमात्र के प्रति ईश्वरीय विकास को प्रत्यक्ष कराने में समर्थ नहीं हुआ है। कैथॅलिक सम्प्रदाय के मातृभाव का वह प्रवाह फल्गु नदी की तरह बीच में ही अन्तर्हित हो गया है।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि किसी भी भाव का अवलम्बन कर साधक का मन जब इश्वर के प्रति आकृष्ट होता है, तब वह क्रमशः उस भाव में तन्मयता प्राप्त कर बाह्य जगत् से विमुख हो स्वयं अपने

आप में डूब जाता है; इस प्रकार मग्न होते समय उसके मानसिक पूर्व-संस्कार उस मार्ग में बाधा उपस्थित करते हुए उसको स्व-स्वरूप में मग्न नहीं होने देते, तथा पुनः बहिर्मुखता की ओर प्रेरित करने का प्रयास करते हैं। अतः प्रबलपूर्वसंस्कार विशिष्ट मानव-मन के लिए किसी एक भाव में तन्मय होना भी बहुधा एक जन्म के प्रयास से सम्भव नहीं हो पाता है। ऐसी स्थिति में पहले वह निरुत्साहित तथा बाद में उद्यमरहित हो एवं तदनन्तर विश्वास को खोकर बाह्य जगत् के रूप-रसादि भोगों को ही सार वस्तु मान बैठता है तथा पुनः उसको प्राप्त करने के लिए तीव्रगति से दौड़ता रहता है। इसलिए भावप्राप्ति के बारे में बाह्यविषयविमुखता, प्रेमास्पद के ध्यान में तन्मयता तथा भावजन्य उल्लास को ही साधक के लिए लक्ष्य की ओर अग्रसर होने का एकमात्र परिमाण बतलाया गया है।

साधक के भाव की गहराई कैसे मालूम होती है।

किसी भी भाव में तन्मयता प्राप्त करने के निमित्त अग्रसर हो जिन्होंने कभी अन्तर्निहित पूर्वसंस्कारों की प्रबल बाधाओं का सामना नहीं किया है, उनके लिए साधक-हृदय के अन्तःसंग्राम की बात को हृदयंगम करना सम्भव नहीं है; जिन्हें उस स्थिति के सम्मुखीन होना पड़ा है, केवल वे ही इस बात को समझ सकते हैं कि कितने कष्ट उठाने के पश्चात् मानव-जीवन में भावतन्मयता का उदय होता है और वे ही श्रीरामकृष्णदेव को अल्प समय के अन्दर क्रमशः सर्व भावों में अदृष्टपूर्व तन्मयता प्राप्त करते हुए देखकर विमुग्ध हो यह धारणा कर सकते हैं कि साधारण मनुष्य के लिए उस अवस्था पर पहुँचना उनकी शक्ति के बाहर की बात है।

सर्व भावों में श्रीरामकृष्णदेव को सिद्धि-लाभ करते हुए देखकर मन में उत्पन्न होनेवाली धारणा।

साधारण मानव-मन के लिए भावराज्य के सूक्ष्म तत्व बुद्धिगोचर न होने के कारण ही क्या अवतारस्वरूप से प्रसिद्ध धर्मवीरों के साधन-इतिहास सम्यक्रूप से लिपिबद्ध नहीं हुए हैं? क्योंकि उनके सम्बन्ध में जो कुछ बातें उपलब्ध हैं, उनको पढ़ने से यह पता चलता है कि साधन-मार्ग में प्रविष्ट होते समय उनके विषयवैराग्य तथा त्याग की बातें एवं साधना

पूर्वसंस्कारों को दूर करने के लिए उनके मानसिक संग्राम की बात लिपिबद्ध करते समय ग्रन्थकार ने स्थूल बाह्यघटना की भाँति 'मार' के साथ उनके युद्धवृत्तान्त की अवतारणा की है।

भगवान् ईसा के साधन-इतिहास के बारे में कोई भी बात प्रायः लिपिबद्ध नहीं है। उनकी बारह वर्ष पर्यन्त अवस्था की कुछ घटनाओं का वर्णन कर ग्रंथकारों ने, तीस वर्ष की आयु में 'जॉन' नामक सिद्ध पुरुष से अभिषेक ग्रहण कर जनहीन मेरुप्रान्त में चालीस दिन पर्यन्त उनकी ध्यान-तपस्या एवं उस स्थल पर 'शैतान' के द्वारा प्रलोभित हो विजय प्राप्त करने के पश्चात् वहाँ से उनके लौटने तथा लोककल्याण के लिए नियुक्त होने की बातों का ही उल्लेख किया है। तदनन्तर वे केवल तीन वर्ष तक स्थूल शरीर में अवस्थित थे। अतः उन्होंने अपनी बारह वर्ष की आयु से तीस वर्ष तक का समय कैसे व्यतीत किया, इसका कुछ भी पता नहीं चलता है।

इस सम्बन्ध में ईसा के चरित्र का विवेचन।

भगवान् शंकराचार्य के जीवन में, घटनाओं का बहुधा धारावाहिक परिचय प्राप्त होने पर भी उनके आन्तरिक साधन-इतिहास के बारे में जगह-जगह अनुमान पर ही निर्भर रहना पड़ता है।

भगवान् श्रीचैतन्यदेव के साधन-इतिहास की बहुत सी घटनाएँ लिपिबद्ध मिलने पर भी उनके कामगन्धरहित श्रेष्ठ ईश्वर-प्रेम की बात श्रीराधाकृष्ण के प्रणयविरहादि का आश्रय कर 'रूपक' के सहारे वर्णित होने के कारण, साधारण लोग उसको यथार्थ रूप से हृदयंगम नहीं कर पाते हैं। किन्तु इस बात को अवश्य मानना पड़ेगा कि धर्मवीर श्रीचैतन्यदेव तथा उनके मुख्य मुख्य साथियों ने सख्य, वात्सल्य तथा विशेषकर मधुरभाव के प्रारम्भ से प्रायः उसके चरम विकास पर्यन्त साधक के हृदय में जो जो अवस्थाएँ क्रमशः उपस्थित होती रहती है, 'रूपक' के सहारे उनका वर्णन जहाँ तक किया जा सकता है, अत्यन्त विशद रूप से लिपिबद्ध किया है। उन तीनों भावों में से प्रत्येक भाव की चरम अवस्था में साधक का मन अपने प्रेमास्पद के साथ एकत्व

इस सम्बन्ध में श्रीचैतन्यदेव के चरित्र का विवेचन; मधुर भाव के चरण तत्व के बारे में श्रीरामकृष्णदेव।

का अनुभव कर अद्वय-वस्तु में लीन हो जाता है—इस चरम तत्व को ही केवल उन्होंने व्यक्त नहीं किया है, बल्कि उसका सामान्य संकेत प्रदान करने पर भी उसको हीन अवस्था कहकर साधक को उससे सतर्क रहने का उपदेश दिया है। श्रीरामकृष्णदेव के अलौकिक जीवन तथा अदृष्टपूर्व साधन-इतिहास के द्वारा वर्तमान युग में उस चरम तत्व की विशद शिक्षा हमें प्राप्त हुई है तथा इस बात को भी हम भलीभाँति समझने में समर्थ हुए हैं कि संसार के समस्त सम्प्रदायों के सभी धर्ममत, साधक-मन को एक ही लक्ष्य की ओर ले जाते हैं। उनके जीवन से शिक्षाप्रद अन्यान्य बातों के अतिरिक्त उनकी कृपा से केवल पूर्वोक्त विषय का ज्ञान प्राप्त कर हमारी आध्यात्मिक दृष्टि का जो विस्तार हुआ है तथा उससे जो समन्वय का आभास प्राप्त हुआ है, उसके लिए निस्सन्देह हम सदैव उनके ऋणी हैं।

मधुरभाव तथा वैष्णवाचार्यगण।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि आध्यात्मिक जगत् के लिए मधुरभाव ही श्रीचैतन्यदेव आदि वैष्णवाचार्यों की प्रधान देन है। यदि वे मार्गदर्शन न करते तो ईश्वर-प्राप्ति के लिए उस भाव का अवलम्बन कर इतने लोग कभी शान्ति तथा विमल आनन्द के अधिकारी न हो सकते। भगवान् श्रीकृष्ण के जीवन में वृन्दावन-लीला का निरर्थक अनुष्ठान नहीं हुआ था, इस बात को उन्हीं आचार्यों ने सर्वप्रथम अनुभव कर दूसरों को समझाने का प्रयास किया है। भगवान् चैतन्यदेव का यदि आविर्भाव न होता तो श्रीवृन्दावन सामान्य वनमात्र ही बना रहता।

वृन्दावनलीला के ऐतिहासिकत्व के सम्बन्ध में आपत्ति तथा उसकी मीमांसा।

पाश्चात्य का अनुकरण कर बाह्य घटनाओं को लिपिबद्ध करने में सदैव प्रयत्नशील वर्तमान युग के ऐतिहासिक टीकाकार यह कह सकते हैं कि तुम जिस वृन्दावनलीला की बातें कर रहे हो, वह वास्तव में अनुष्ठित हुई थी, इसका कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है; अतः तुम्हारा हँसना-रोना, भाव-महाभाव आदि निराधार हैं। इसके उत्तर में वैष्णवाचार्यगण यह कह सकते हैं कि पुराणों के आधार पर हम जो कुछ कह रहे हैं, वह वास्तव में असत्य है, इस बात का तुम्हारे पास ही संशयरहित कौन-सा

प्रमाण है ? तुम्हारे इतिहास के द्वारा निःसन्दिग्ध रूप से उस अत्यन्त प्राचीन युग का द्वारोद्घाटन हुआ है, इसका हमें जब तक कोई प्रमाण नहीं मिलता, तब तक हम यही कहेंगे कि तुम्हारा संशय ही शून्य पर प्रतिष्ठित है। साथ ही यह बात भी है कि यदि किसी समय तुम इस प्रकार के प्रमाण प्रस्तुत कर दो तो भी उनसे हमारे विश्वास की हानि ही क्या होगी ? नित्य-वृन्दावन में श्रीभगवान् की नित्य-लीला का किंचिन्मात्र स्पर्श तक करना उसके लिए कभी सम्भव न होगा। भावराज्य की वह रहस्यलीला सदा समान रूप से सत्य बनी रहेगी। चिन्मय धाम में चिन्मय राधेश्याम की उस अपूर्व प्रेमलीला को यदि देखने की अभिलाषा हो तो सर्वप्रथम सम्पूर्णतया कामगन्धरहित बनो तथा श्रीराधारानी की सखियों में से किसी के पादपद्मों के अनुगत होकर निःस्वार्थ रूप से सेवा करना सीखो। उस समय तुम्हें यह स्पष्ट दिखाई देगा कि तुम्हारे हृदय में श्रीहरि की लीलाभूमि श्रीवृन्दावन चिरप्रतिष्ठित है तथा तुम्हारे साथ उस प्रकार की लीलाओं का नित्य अभिनय हो रहा है।

वृन्दावनलीला को जानने के लिए भावरूप-इतिहास को समझना पड़ेगा—इस सम्बन्ध में श्रीरामकृष्णदेव की उक्ति।

भावराज्य की सत्यता की उपलब्धि कर बाह्य घटना रूप अवलम्बन को विस्मृत होते तथा शुद्ध भावरूप इतिहास की आलोचना करने की शिक्षा जिन्हें प्राप्त नहीं हुई है, उनके लिए श्रीवृन्दावनलीला की सत्यता तथा उसके माधुर्य का उपभोग कदापि सम्भव नहीं है। श्रीरामकृष्णदेव इस लीला की बातों को अत्यन्त उत्साह के साथ कहते हुए जब यह देखते थे कि उनके समीप आए हुए अंग्रेजी शिक्षित नवयुवकों के लिए वह रुचिकर नहीं हो रही है, तब वे उनसे यही कहते थे, "वृन्दावनलीला में श्रीकृष्ण के प्रति श्रीराधारानी के हृदय का जो आकर्षण था, उसे क्यों नहीं देखते, उसको देखो तथा यह अनुभव करो कि ईश्वर के प्रति उस प्रकार का आकर्षण होने पर, तब कहीं उनकी प्राप्ति होती है! यह देखो कि गोपियाँ पति-पुत्र, कुल-शील, मान-अपमान, घृणा-लज्जा, लोकभय, समाजभय आदि सब कुछ त्यागकर श्रीकृष्ण के निमित्त किस प्रकार उन्मत्त हो उठी थीं! इस प्रकार आचरण करने की जब सामर्थ्य होती है, तभी भगवान् की प्राप्ति होती है।" वे

यह भी कहते थे—"कामगन्धशून्य हुए बिना महाभावमयी श्रीराधारानी के भाव को समझना सम्भव नहीं है। सच्चिदानन्दघन श्रीकृष्ण के दर्शनमात्र से ही गोपियों के हृदय में कोटिशः रमणसुख से भी अधिक आनन्द उपस्थित हो उनकी देहबुद्धि विलुप्त हो जाती थी--तुच्छ देह के रमण की बात क्या उस समय उनके मन में कभी उदित हो सकती है? श्रीकृष्ण के अंग की दिव्य ज्योति उनके शरीर को स्पर्श कर रोम-रोम में रमणसुख से कहीं अधिक आनन्द का उन्हें अनुभव कराती थी!"

स्वामी विवेकानन्दजी ने किसी समय श्रीरामकृष्णदेव के समीप श्रीराधाकृष्ण की वृन्दावनलीला के ऐतिहासिकत्व के सम्बन्ध में शंका उठाई थी तथा उसके मिथ्या होने का प्रतिपादन किया था। तब श्रीरामकृष्णदेव ने उनसे कहा था, "अच्छा, मैंने यह मान लिया कि श्रीराधा नाम की कोई गोपी कभी विद्यमान नहीं थीं—किसी प्रेमी साधक ने शायद राधाचरित्र की कल्पना की है। किन्तु उस चरित्र की कल्पना करते समय उस साधक को श्रीराधाभाव में एकदम तन्मय हो जाना पड़ा था, इस बात को तो मानते हो न? तब तो उस समय अपने को भूलकर उस साधक का स्वयं राधा बन जाना तथा वृन्दावनलीला के अभिनय का भी उसी प्रकार स्थूल रूप से सम्पन्न होना तो स्वतः ही प्रमाणित होता है।"

वास्तव में श्रीवृन्दावन में अनुष्ठित भगवान् की प्रेमलीला के सम्बन्ध में सैकड़ों शंकाएँ उपस्थित किए जाने पर भी श्रीचैतन्यदेव आदि वैष्णवाचार्यों द्वारा प्रथम आविष्कृत तथा उनके विशुद्ध पवित्र जीवन को आश्रय कर प्रकाशित मधुरभावसम्बन्ध सदा ही सत्य बना रहेगा, सर्वदा ही उसके अधिकारी साधक अपने को रमणी रूप में चिन्तन करते हुए श्रीभगवान् को अपने पतिस्वरूप में देखकर उनके पुनीत दर्शन से कृतार्थ होते रहेंगे और उस भाव की चरम अवस्था में वे शुद्ध अद्वय ब्रह्म-स्वरूप में प्रतिष्ठित होंगे।

श्रीभगवान् के प्रति पतिभाव स्थापित कर साधनमार्ग में अग्रसर होना स्त्री-जाति के लिए स्वाभाविक तथा सहजसाध्य होने पर भी पुरुष-शरीरधारियों के लिए वह अस्वाभाविक-जैसा प्रतीत होता है। अतः अनायास ही यह बात मन में उदित होती है कि भगवान् श्रीचैतन्यदेव ने लोगों में इस प्रकार के विपरीत साधन का प्रवर्तन क्यों किया?

इसका उत्तर यह है कि युगावतारों के सभी कार्य लोककल्याण के निमित्त ही अनुष्ठित होते हैं। तदर्थ ही भगवान् श्रीचैतन्यदेव के द्वारा पूर्वोक्त साधनमार्ग का प्रवर्तन हुआ था। साधकवर्ग आध्यात्मिक राज्य में जिस आदर्श की उपलब्धि के लिए दीर्घकाल से व्यग्र हो रहे थे, उस विषय को ध्यान में रखकर ही वे उस समय मधुरभावरूप मार्ग की ओर उनको अग्रसर करा रहे थे। अन्यथा अपने कल्याण के निमित्त उक्त भाव-साधन में नियुक्त हो ईश्वरावतार नित्यमुक्त श्रीगौरांगदेव ने उस पूर्णादर्श को जनसमाज में प्रतिष्ठित किया हो, यह बात नहीं है। श्रीरामकृष्णदेव कहते थे, "हाथी के बाहर के दाँत जिस प्रकार शत्रु पर आक्रमण करने तथा भीतर के दाँत खाद्य पदार्थ का चर्वण कर अपने शरीर के पोषण के लिए रहते हैं, ठीक उसी प्रकार श्रीगौरांगदेव के भीतर तथा बाहर दो प्रकार के भाव विद्यमान थे। बाहर मधुरभाव के सहारे वे लोककल्याण साधन करते थे और भीतर अद्वैतभाव से प्रेम की चरम परिपुष्ट अवस्था को प्राप्त कर ब्रह्मभाव में प्रतिष्ठित हो स्वयं भूमानन्द का अनुभव करते थे।"

श्रीचैतन्यदेव द्वारा पुरुष-जाति को मधुरभाव के साधन में प्रवृत्त कराने का कारण।

पुरातत्वविदों का कथन है कि बौद्धयुग के अन्त में 'वज्रयान' मार्ग तथा उस मत के आचार्यों का इस देश में अभ्युदय हुआ था। उन लोगों ने यह प्रचार किया था कि निर्वाण प्राप्त करने के निमित्त मानव-मन जब वासनाओं के हाथ से प्रायः मुक्त हो ध्यान की सहायता से महाशून्य में लीन होने को अग्रसर होता है, तब 'निरात्मा' नामक देवी उसके सम्मुख उपस्थित हो उसे उस कार्य से रोककर अपने अंग में संलग्न कर रखती हैं तथा साधक को उस समय अपने स्थूल शरीर की उपलब्धि न रहने पर भी सूक्ष्म शरीरधारी उसे इन्द्रियजनित सब प्रकार के भोग-सुख की सार-समष्टिका वे नित्य उपभोग कराती रहती हैं। स्थूल विषय-भोग के त्याग से भावराज्य के सूक्ष्म निरवच्छिन्न भोग-सुख की प्राप्ति रूप उनके प्रचारित मत का आगे चलकर विकृत होना तथा निरन्तर स्थूल

हमारे देश की तात्कालिक आध्यात्मिक स्थिति तथा श्रीचैतन्यदेव ने किस प्रकार उसे उन्नत किया था।

भोगसुख की प्राप्ति ही धर्मानुष्ठान का उद्देश्य बनना और उससे देश में अधिक रूप से व्यभिचार की वृद्धि होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। भगवान् श्रीचैतन्यदेव के आविर्भाव के समय हमारे देश के अशिक्षित लोग इस प्रकार विकृत बौद्ध धर्म मतों का अवलम्बन कर विभिन्न सम्प्रदायों में विभक्त थे। तन्त्रोक्त मार्ग के विकार के फलस्वरूप अधिकांश उच्चवर्ण के लोगों में श्रीजगदम्बा के सकाम पूजन तथा उपासना के द्वारा असाधारण विभूति तथा भोगसुखप्राप्ति रूप मत का प्रचलन था। साथ ही उस समय जो यथार्थ साधक थे, वे भी आध्यात्मिक-राज्य में भाव की सहायता से निरवच्छिन्न आनन्द को प्राप्त करने के निमित्त प्रयत्नशील होकर भी उचित मार्ग की खोज नहीं कर पा रहे थे। भगवान् श्रीचैतन्यदेव ने स्वयं आचरण कर अद्भुत त्याग तथा वैराग्य के महान् आदर्श को उनके सम्मुख सर्वप्रथम प्रतिष्ठित किया। तदनन्तर शुद्ध पवित्र हो अपने को प्रकृति समझ कर पतिरूप से ईश्वर का भजन करने से सूक्ष्म भावराज्य में निरन्तर दिव्यानन्द को यथार्थतः प्राप्त करने में जीव समर्थ होता है, इस बात की सत्यता को उन्होंने उन लोगों के समक्ष प्रतिपादित किया तथा स्थूलदृष्टि-सम्पन्न साधारण मानव में ईश्वर के नाममाहात्म्य का प्रचार कर उन्हें श्रीहरिनाम के जप तथा उच्च संकीर्तन में नियुक्त किया। इस प्रकार उनकी कृपा से पथभ्रष्ट, लक्ष्यच्युत तथा अधिक रूप से विकृत बौद्ध सम्प्रदायों को पुनः आध्यात्मिक मार्ग में उन्नति प्राप्त करने का अवसर मिला। विकृत वाममार्गावलम्बियों के द्वारा सर्वप्रथम प्रकट रूप से विरुद्धाचरण किए जाने पर भी, बाद में श्रीचैतन्यदेव के अलौकिक जीवनादर्श के अद्भुत आकर्षण से त्यागशील बनकर निष्काम भाव से पूजन करते हुए श्रीजगन्माता के दर्शन के लिए वे प्रयत्नशील होने लगे। इसलिए भगवान् श्रीचैतन्यदेव के जीवन-वृत्तान्त को लिपिबद्ध करने में प्रवृत्त हो किसी किसी ग्रन्थकार ने स्पष्टतया यह लिखा है कि उनके अवतीर्ण होने के समय शून्यवादी बौद्धमतावलम्बियों ने भी आनन्द मनाया था। *

सच्चिदानन्दघन श्रीकृष्ण ही एकमात्र पुरुष हैं एवं जगत् के स्थूल सूक्ष्म सभी पदार्थ तथा प्रत्येक जीव उनकी महाभावमयी प्रकृति के अंश-सम्भूत होने के कारण उनकी पत्नीस्वरूप हैं। इसलिए यदि जीव शुद्ध

* श्रीचैतन्यमंगल नामक ग्रन्थ देखिए।

पवित्र बनकर पतिभाव से भलीभाँति उनकी उपासना में प्रवृत्त हो तो उनकी कृपा से उसके लिए सद्गति, मुक्ति तथा निरवच्छिन्न आनन्द की प्राप्ति होती है—यही श्रीचैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रचारित मधुरभाव का सार तत्व है। महाभाव के अन्दर समस्त भावों का एकत्र समावेश है। मुख्य गोपी श्रीराधा महाभाव-स्वरूपा हैं तथा अन्यान्य प्रत्येक गोपिका में महाभाव के अन्तर्गत अन्तर्भावों में से एक-दो या उससे अधिक भाव विद्यमान हैं। इसलिए व्रज-गोपिकाओं के भावों का अनुकरण कर साधन में प्रवृत्त होने से उन अन्तर्भावों को साधक करतलगत करने में समर्थ होता है तथा अन्त में महाभावोत्थ महानन्द के आभास को प्राप्त कर धन्य हो जाता है। इस तरह महाभावस्वरूपा × श्रीराधारानी के भाव के अनुचिन्तन में मग्न हो अपनी सुखकामना को एकदम त्यागकर सब प्रकार से श्रीकृष्ण के सुख में सुखी होना ही इस मार्ग में साधक का परम लक्ष्य है।

मधुर भाव का सार तत्त्व।

सामाजिक विधान के अनुसार विवाहित नायक-नायिकाओं का पारस्परिक प्रेम—जाति, कुल, शील, लोकभय, समाजभय आदि विभिन्न कारणों के द्वारा नियन्त्रित होता रहता है। अतः नायक-नायिका उन कारणों की सीमा के अन्दर विभिन्न कर्तव्यों का ध्यान रखते हुए पारस्परिक सुखविधान के निमित्त यथाशक्ति त्याग किया करते हैं। विवाहित नायिका सामाजिक कठोर नियमों का यथावत् पालन करने में प्रवृत्त हो बहुधा नायक के प्रति अपने प्रेम-सम्बन्ध को भूलने या कम करने में संकुचित नहीं होती। किन्तु स्वाधीन नायिका का प्रेमसम्बन्धी आचरण दूसरे ही प्रकार का है। प्रेम के प्राबल्य से वह नायिका बहुधा उन नियमों को पददलित करने तथा समाज

स्वाधीन नायिका का सर्वग्रासी प्रेम ईश्वर पर आरोप करना पड़ेगा।

× कृष्णस्य सुखे पीडाशङ्कया निमिषस्यापि असहिष्णुतादिकं यत्र स रूढो महाभावः। कोटिब्रह्माण्डगतं समस्तसुखं यस्य सुखस्य लेशोऽपि न भवति, समस्तवृश्चिकसर्पादिदंशकृतदुःखमपि यस्य दुःखस्य लेशो न भवति, एवम्भूते कृष्णसंयोगवियोगयोः सुखदुःखे यतो भवतः सः अधिरूढः महाभावः। अधिरूढस्यैव मोदन मादन इति द्वौ रूपौ भवतः। इत्यादि— श्री विश्वनाथ चक्रवर्तीकृत भक्तिग्रन्थावली।

प्रदत्त अपने सामाजिक अधिकार को पूर्णतया त्यागकर नायक के साथ सायुज्य प्राप्त करने में संकुचित नहीं होती। वैष्णवाचार्यों ने इस प्रकार सर्वग्रासी प्रेमसम्बन्ध को ईश्वर पर आरोप करने का उपदेश दिया है एवं तदर्थ ही यह वर्णन किया है कि आयान घोष की विवाहित पत्नी होकर भी वृन्दावनेश्वरी श्रीराधिका श्रीकृष्णप्रेम में सर्वस्वत्यागिनी बनी थीं।

मधुरभाव अन्य समस्त भावों के समष्टिस्वरूप तथा उससे भी अधिक है।

वैष्णवाचार्यों ने मधुरभाव को शान्त आदि अन्य चार भावों के सार समष्टिस्वरूप तथा उससे भी अधिक माना है; क्योंकि प्रणयिनी नायिका क्रीतदासी की भाँति अपने प्रियतम की सेवा करती है, सखी की तरह समस्त स्थितियों में उनको सुपरामर्श प्रदान कर उनके सुख में सुखी तथा दुःख में दुःखी होती है, माता के सदृश सर्वदा उनके शरीर-मन-पोषण तथा मंगलकामना में नियुक्त रहती है और उसी प्रकार अपने को सर्वथा भूलकर प्रियतम के कल्याणसाधन तथा मनोविनोदन में संलग्न हो उनके चित्त को अपूर्व शान्ति से आप्लावित करती रहती है! जो नायिका इस प्रकार प्रेम में आत्मविस्मृत हो प्रियतम के कल्याण तथा सुखसाधन के निमित्त सब प्रकार से दत्तचित्त होती है, उसी का प्रेम सर्वश्रेष्ठ है एवं भक्तिशास्त्र में उसी को 'समर्था' प्रणयिनी कहा है। स्वार्थसम्बन्धयुक्त प्रेम को 'समञ्जसा' तथा 'साधारणी' रति के नाम से निर्देश किया गया है। 'समञ्जसा' रतिसम्पन्न नायिका प्रियतम के सुख की तरह स्वात्मसुख की ओर भी समानरूप से ध्यान रखती है तथा 'साधारणी' रतिशालिनी नायिका केवल अपने ही सुख के निमित्त नायक को प्रिय समझती है।

मधुरभाव की सहायता से श्रीचैतन्यदेव द्वारा लोककल्याण साधन।

विषयसुख को विषवत् परित्याग कर जीवन को नियन्त्रित करने तथा प्रेम का आश्रय लेकर श्रीकृष्णप्रिया की जगह खड़े होने की शिक्षा तथा नाममाहात्म्य के प्रचार द्वारा भगवान् श्रीचैतन्यदेव ने उस समय हमारे देश से व्यभिचार को दूर करने तथा कल्याणसाधन करने का प्रयास किया था। फलतः उनके भाव तथा उपदेशों से था पथभ्रष्ट लोगों को मार्गदर्शन, समाजविच्युतों [illegible]न्दित

नवीन समाज-बन्धन, जाति से बहिष्कृत व्यक्तियों को भगवद्भक्तरूप जाति तथा समस्त सम्प्रदायों को त्याग-वैराग्य का महान् आदर्श प्राप्त होने के कारण सभी का विशेष कल्याण हुआ था। इतना ही नहीं, किन्तु श्रीजगत्पति के तीव्र ध्यान तथा अनुचिन्तन से पवित्रहृदय साधकों के लिए साधारण नायक-नायिकाओं के प्रणय तथा मिलनजनित 'अष्टसात्विक विकार'* नामक मानसिक तथा शारीरिक विकारसमूह वास्तव में उपस्थित होते हैं, इस बात को श्रीचैतन्यदेव के अलौकिक जीवन के द्वारा निःसन्दिग्ध रूप से प्रमाणित कर वैष्णव सम्प्रदाय में प्रचारित मधुरभाव ने उस समय अलंकारशास्त्र को आध्यात्मिकशास्त्रों के अंगीभूत किया था, कुवाक्यों को उच्च आध्यात्मिकभाव में रंगकर साधक-मन के लिए उपभोग्य तथा उन्नतिप्रद बनाया था तथा शान्तभाव के अनुष्ठान के लिए अवश्य-त्याज्य काम, क्रोधादि को, श्रीभगवान् में अपनापन स्थापित करने के पश्चात्, उनके निमित्त तथा उन्हीं पर प्रयोग करने की शिक्षा प्रदान कर साधनमार्ग को सुगम बना दिया था।

वेदान्तवादी किस तरह मधुरभाव के साधन को साधकों के लिए कल्याण-प्रद मानते हैं।

पाश्चात्य शिक्षाप्राप्त वर्तमान युग के नवीन सम्प्रदाय की दृष्टि में पुरुषदेहधारियों के लिए मधुरभाव अस्वाभाविक तथा विरुद्ध प्रतीत होने पर भी वेदान्तवादियों के लिए उसका उचित मूल्य निर्धारण करने में विलम्ब नहीं लगता है। उनको यह दिखाई देता है कि भावसमूह ही दीर्घकालीन अभ्यास के फलस्वरूप मानव-मन में दृढ़संस्कार के रूप में परिणत होता है तथा जन्म-जन्मान्तर के संस्कारों से ही मानव को एक अद्वय ब्रह्मवस्तु की जगह इस विचित्र जगत् का अनुभव होता रहता है। यह जगत् नहीं है—इस प्रकार की धारणा करने में, ईश्वरानुग्रह से जब वह वास्तव में समर्थ होगा, तभी यह जगत् उसकी दृष्टि से ओझल हो जाएगा। जगत् विद्यमान है, ऐसा चिन्तन करने के कारण ही मानव के समक्ष जगत् अवस्थित है। मैं पुरुष हूँ, अपने बारे में इस प्रकार का चिन्तन करने के

* ये चित्तं तनुञ्च क्षोभयन्ति ते सात्विकाः। ते अष्टौ स्तम्भ स्वेदः रोमाञ्च-स्वरभेद वेपथु-वैवर्णाश्रुप्रलयाः इति। ते धूमायिता ज्वलितादीप्ताउद्दीप्ता दीप्ता इति पञ्चविधा यथोत्तरसुखदा स्युः।—आकरग्रन्थ।

फलस्वरूप ही मुझे पुरुषभाव की प्रतीति होती है, तथा अन्य लोग अपने को स्त्रीरूप से धारणा करने के कारण ही स्त्रीभाव को प्राप्त किए हुए हैं। साथ ही हम यह देखते हैं कि मानव के हृदय में जब कोई भाव प्रबल हो उठता है, उस समय वह विपरीत भावों को पूर्णतया आच्छादित कर क्रमशः उन्हें विनष्ट कर देता है। अतः ईश्वर पर मधुरभावरूप सम्बन्ध का आरोप कर उसके प्राबल्य से साधक के हृदयस्थित अन्यान्य भावों के आच्छादन तथा क्रमशः उनको दूर करने के प्रयास को वेदान्तवादी काँटे से पैर में चुभे हुए दूसरे काँटे को निकालने का प्रयास-जैसा मानते हैं। 'मैं देही हूँ'—इस प्रकार की अनुभूति ही मानव-मन के अन्य समस्त संस्कारों का मुख्य अवलम्बन है तथा उस देह के संयोग से 'मैं पुरुष या स्त्री हूँ'—इस तरह का संस्कार ही सबसे प्रबल है। श्रीभगवान् पर पतिभाव का आरोप कर 'मैं स्त्री हूँ'—यह चिन्तन करते हुए साधक अपने 'पुरुषभाव' को भूलने में समर्थ होने के बाद 'मैं स्त्री हूँ' इस भाव को भी सहज ही में परित्याग कर भावातीत अवस्था में उपस्थित हो सकता है, यह कहना ही पर्याप्त है। अतः मधुरभाव की सिद्धि होने पर साधक के लिए भावातीत भूमि के निकटतम स्थल में पहुँचने की बात वेदान्तवादी दार्शनिकों को सर्वथा विदित है।

श्रीराधाभाव को प्राप्त करना ही मधुर भाव के साधन का चरम लक्ष्य है।

यहाँ पर प्रश्न हो सकता है कि क्या राधाभाव की प्राप्ति ही साधक का चरम लक्ष्य है? इसके उत्तर में यही कहना है कि वैष्णव गोस्वामियों ने इस समय उस बात को अस्वीकार कर सखी-भाव की प्राप्ति को ही साध्य तथा महाभावस्वरूपा श्रीराधिका के भाव को प्राप्त करना साधकों के लिए असाध्य कहकर प्रचार किया है; किन्तु ऐसा करने पर भी प्रतीत होता है कि श्रीराधाभाव को प्राप्त करना ही साधक का चरम लक्ष्य है; क्योंकि यह देखा जाता है कि सखीवृन्द तथा श्रीराधिका के भाव में गुणगत किसी प्रकार की भिन्नता नहीं है, केवल परिमाणगत भिन्नता विद्यमान है। यह देखने में आता है कि श्रीराधारानी की तरह सखीवर्ग भी सच्चिदानन्दघन श्रीकृष्ण का पतिभाव से ही भजन करती थीं तथा श्रीराधिका के साथ मिलन होने पर श्रीकृष्ण को सबसे अधिक आनन्दित

होते हुए देखकर उनको सुखी करने के निमित्त ही श्रीराधाकृष्ण के मिलन के लिए सर्वदा वे प्रयत्नशील रहती थीं। साथ ही यह देखने को मिलता है कि श्रीरूप, श्रीसनातन, श्रीजीव आदि प्रत्येक प्राचीन वैष्णवाचार्य श्रीवृन्दावन में रहकर मधुरभाव की परिपुष्टि के लिए अलग-अलग श्रीकृष्ण-विग्रह की सेवा करते हुए अपना जीवन व्यतीत करने पर भी, उन श्रीविग्रहों के साथ श्रीराधारानी की मूर्ति प्रतिष्ठित कर सेवा करने का उन्होंने प्रयास नहीं किया है। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि ऐसा न करने का कारण यह है कि सम्भवतः वे अपने को राधास्थानीय समझते थे।

वैष्णवतन्त्रोक्त मधुरभाव का जो विस्तृत आलोचन करना चाहते हैं, वे श्रीरूप, श्रीसनातन तथा श्रीजीव आदि प्राचीन वैष्णवाचार्यों के श्रीग्रन्थों का एवं श्री विद्यापति-चण्डीदास आदि वैष्णव कवियों के पूर्वराग, दान, मान, माथुर-लीलासम्बन्धी * पदावलियों का अवलोकन करें। मधुर-भाव के साधन में प्रवृत्त हो श्रीरामकृष्णदेव ने उसमें जो चरमोत्कर्ष प्राप्त किया था, वह सुगमता के साथ समझा जा सके, तदर्थ ही यहाँ पर संक्षेप में उसके सारांश की विवेचना की गई है।

---

* जब भगवान् श्रीकृष्ण सदा के लिए वृन्दावन छोड़ मथुरा चले गए, तब वृंदावन की गोपियों को अत्यन्त विरह-दुःख हुआ था। गोपियों के इन विरह-दुःख के गीतों को 'माथुर-गीत' कहते हैं, क्योंकि इनका मथुरा से सम्बन्ध है।

चतुर्दश अध्याय

श्रीरामकृष्णदेव की मधुरभावसाधना

बाल्यावस्था से ही श्रीरामकृष्णदेव के भाव-तन्मयतापूर्ण आचरण।

श्रीरामकृष्णदेव के शुद्ध और एकाग्र चित्त में जब जिस भाव का उदय होता था, उस समय उसी भाव में कुछ काल के लिए वे तन्मय हो जाते थे। उस समय वह भाव उनके हृदय पर पूर्ण आधिपत्य स्थापन कर अन्यान्य भावों को विलुप्त कर देता था तथा उनके शरीर को परिवर्तित कर उस भाव के प्रकाशानुरूप यन्त्र-जैसा बना डालता था। हमने सुना था कि बाल्यावस्था से ही उनका स्वभाव इस प्रकार का था तथा दक्षिणेश्वर में जब हम आने जाने लगे थे, उस समय हमको इसका नित्य परिचय मिलता था। हम यह देखते थे कि संगीतादि के श्रवण अथवा अन्य किसी कारण से उनका मन जब किसी भावविशेष में तन्मय हो जाता था, उस समय यदि कोई सहसा अन्य भाव के संगीत या वार्तालाप करने में प्रवृत्त होता तो उससे उन्हें असह्य यातना होती थी। किसी लक्ष्य की ओर प्रवाहित चित्तवृत्तियों की गति अकस्मात् अवरुद्ध हो जाने के कारण ही उन्हें उस प्रकार का कष्ट होता था, इतना कहना ही पर्याप्त है। किसी एक भाव की तरंग में निमग्न चित्तवृत्ति समन्वित मन को महामुनि पतंजलि ने सविकल्प समाधिस्थ कहकर निर्देश किया है तथा भक्ति ग्रन्थों में उस समाधि को भाव-समाधि कहा गया है। अतः यह देखा जाता है कि श्रीरामकृष्णदेव का मन उस प्रकार समाधि में आजीवन अवस्थित रहने में समर्थ था।

साधन में प्रवृत्त होने के समय से उनके मन के पूर्वोक्त स्वभाव ने एक अपूर्व पृथक् मार्ग का अवलम्बन किया था; क्योंकि यह देखने में आता है कि उस समय उनका मन पहले की भाँति कुछ क्षण के लिए किसी भाव में अवस्थित रहने के पश्चात् अन्य किसी भाव में मग्न नहीं होता था; किन्तु किसी भी भाव में आविष्ट होने पर, जब तक उसकी

चरम सीमा में उपस्थित हो अद्वैत भाव के आभास की उपलब्धि नहीं हो जाती थी, तब तक उसी का अवलम्बन कर सतत अवस्थित रहता था। दृष्टान्त-स्वरूप यह कहा जा सकता है कि जब तक वे दास्यभाव की चरम सीमा में नहीं पहुँचे थे, तब तक मातृभाव की उपलब्धि के लिए अग्रसर नहीं हुए थे तथा मातृभावसाधन की चरम उपलब्धि किए बिना वात्सल्य आदि भावों के साधन में वे प्रवृत्त नहीं हुए थे। उनके साधनकालीन इतिहास की पर्यालोचना करने पर सर्वत्र ही ऐसा दिखाई देता है।

साधनकाल में उनके मन के उक्त स्वभाव का परिवर्तन।

ब्राह्मणी के आगमन के समय श्रीरामकृष्णदेव का मन ईश्वर के मातृभाव के अनुचिन्तन में निमग्न था। सांसारिक समस्त प्राणी तथा पदार्थों में, विशेष कर स्त्री-मूर्तियों के अन्दर उस समय वे श्रीजगदम्बा के प्रकाश को साक्षात् दर्शन कर रहे थे। अतः ब्राह्मणी को देखकर ही क्यों उन्होंने मातृसम्बोधन किया था तथा समय-समय पर बालक की भाँति गोद में बैठकर उनके हाथों से भोज्यपदार्थों को क्यों ग्रहण किया था, यह स्पष्ट समझा जा सकता हैं। हमने हृदय से सुना है कि ब्राह्मणी उस समय कभी-कभी व्रजगोपिकाओं के भाव में आविष्ट हो जब मधुरभावात्मक गीत गाने लगतीं, तब श्रीरामकृष्णदेव कह देते थे कि यह भाव मुझे अच्छा नहीं लगता है और फिर उस भाव को त्याग कर मातृभावात्मक पद ही गाने के लिए वे उनसे अनुरोध किया करते थे। इस प्रकार श्रीरामकृष्णदेव की मानसिक स्थिति का यथार्थ परिचय पाकर ब्राह्मणी भी तत्काल उनकी प्रीति के निमित्त श्रीजगदम्बा के दासीभाव को अंगीकार कर गाने प्रारम्भ करती थीं अथवा गोपाल के प्रति नन्दरानी यशोदा के हृदय के गम्भीर उच्छ्वासपूर्ण संगीतों को गाने लगती थीं। यह बात अवश्य है कि पूर्वोक्त घटना श्रीरामकृष्णदेव के मधुरभाव की साधना में प्रवृत्त होने के बहुत दिन पूर्व की है। इससे यह सिद्ध होता है कि उनके हृदय में 'भीतर एक प्रकार का तथा बाहर दूसरे प्रकार का भाव' कभी भी विद्यमान नहीं था।

साधनकाल से पूर्व श्रीरामकृष्णदेव को मधुर भाव अच्छा नहीं लगता था।

इस घटना के कुछ वर्ष उपरान्त श्रीरामकृष्णदेव का मन किस प्रकार

परिवर्तित होकर वात्सल्यभाव के साधन में अग्रसर हुआ था, यह बात पहले ही कही जा चुकी है। अतः मधुरभाव-साधन की ओर अग्रसर होकर वे जिन आचरणों में रत हुए थे, अब हम उन्हें उद्धृत करने का प्रयास करेंगे।

श्रीरामकृष्णदेव के साधन कभी शास्त्रविरोधी नहीं हुए। इससे प्रमाणित होने वाले तथ्य।

श्रीरामकृष्णदेव के चरित्र पर विचार करने से यह पता चलता है कि हम जिसे 'निरक्षर' कहते हैं, प्रायः पूर्णतया तदनुरूप होते हुए भी—उन्होंने आजीवन किस तरह शास्त्र-मर्यादा की रक्षा की थी। गुरु ग्रहण करने से पूर्व केवल अपने हृदय की प्रेरणा से वे जिन साधनों में प्रवृत्त हुए थे, उनकी वे साधनाएँ कभी शास्त्र-विरोधी न होकर शास्त्र अनुगत ही थीं। 'भीतर एक प्रकार का तथा बाहर दूसरे प्रकार का भाव' न रखकर शुद्ध पवित्र हृदय से ईश्वरप्राप्ति के निमित्त व्याकुलता उत्पन्न होने पर ही ऐसा हुआ करता है. इसके द्वारा हमें इसी बात का स्पष्ट परिचय मिलता है। घटना का ऐसा होना विचित्र नहीं है; क्योंकि थोड़ा विचार करने से ही यह पता चलता है कि शास्त्रसमूह की रचना इसी रूप में हुई है। सत्य वस्तु को प्राप्त करने के लिए महापुरुषों की चेष्टा तथा उपलब्धियाँ ही बाद में लिपिबद्ध होकर 'शास्त्र' के रूप में परिणत हुई हैं। अस्तु, निरक्षर श्रीरामकृष्णदेव को शास्त्रनिर्दिष्ट उपलब्धियों का यथार्थ अनुभव होने के कारण शास्त्रसमूह की सत्यता ही विशेष रूप से प्रमाणित हुई है। स्वामी विवेकानन्दजी ने इस बात का निर्देश प्रदान कर कहा है—"शास्त्रों की सत्यता को प्रमाणित करने के लिए ही अब की बार श्रीरामकृष्णदेव का निरक्षर बनकर आविर्भाव हुआ है।"

स्वभावतः शास्त्रमर्यादा की रक्षा के दृष्टान्तस्वरूप विशेष विशेष भावों की प्रेरणा से श्रीरामकृष्णदेव के विभिन्न वेश धारण करने की बातों का हम यहाँ पर उल्लेख कर सकते हैं। उपनिषद् के द्वारा ऋषियों ने कहा है—'तपसो वाप्यलिङ्गात्' * सिद्धि प्राप्त करना सम्भव नहीं है। श्रीरामकृष्णदेव के जीवन में भी हमें यह देखने को मिलता है कि वे जब

* मुण्डकोपनिषद्, ३।२।४; अर्थ—संन्यास के लिंग या चिह्न (यथा गैरिकादि) धारण किए बिना केवल तपस्या के द्वारा आत्मदर्शन नहीं होता।

जिस भाव के साधन में प्रवृत्त होते थे, उस समय हृदय की प्रेरणा से पहले से ही उस भाव के अनुकूल वेशभूषा या बाह्य चिह्नों को धारण किया करते थे। जैसे—तन्त्रोक्त मातृभाव में सिद्धि-प्राप्ति के निमित्त उन्होंने रक्तवस्त्र, विभूति, सिन्दूर तथा रुद्राक्षादि धारण किए थे; वैष्णव तन्त्रोक्त भावों के साधन के समय गुरुपरम्परा प्रसिद्ध 'भेक्' (त्यागी वैष्णववेश) या तदनुकूल वेश धारणकर श्वेत वस्त्र,

श्रीरामकृष्णदेव द्वारा स्वभावतः शास्त्रमर्यादा की रक्षा के दृष्टान्त—साधनकालीन नामभेद तथा वेशधारण।

श्वेत चन्दन, तुलसी की कण्ठी आदि से उन्होंने अपने अंगों को विभूषित किया था। वेदान्तोक्त अद्वैतभाव में सिद्ध होने के लिए उन्होंने शिखा-सूत्र परित्याग कर काषायवस्त्र धारण किया था। जिस प्रकार विभिन्न पुरुष-भाव के साधनों के समय उन्होंने विविध पुरुष वेशों को धारण किया था, उसी प्रकार स्त्रीजनोचित भावों के साधनकाल में स्त्रियों की वेशभूषा के द्वारा अपने को सुसज्जित करने में वे कभी संकुचित नहीं हुए थे। श्रीराम-कृष्णदेव ने बारम्बार हमको यह शिक्षा दी है कि घृणा, लज्जा, भय तथा जन्मगत जाति, कुल, शील आदि अष्टपाशों का त्याग किए बिना कोई कभी ईश्वर को प्राप्त नहीं कर सकता। उस शिक्षा का शरीरमनवाणी से अपने जीवन में उन्होंने स्वयं कहाँ तक पालन किया था, इस बात का परिचय उनके साधनकालीन वेशभूषा से लगाकर उनके प्रत्येक कार्य का मनन करने से स्पष्टतया अनुभव किया जा सकता है।

मधुरभाव के साधन में प्रवृत्त हो श्रीरामकृष्णदेव स्त्रीजनोचित वेश-भूषा धारण करने के लिए व्यग्र हो उठे थे एवं परम भक्त मथुरामोहन उनके इस अभिप्राय को जानकर कभी बहुमूल्य बनारसी साड़ी और कभी लहँगा, ओढ़नी तथा चोली इत्यादि के द्वारा उन्हें सुसज्जित कर सुखी हुए थे। साथ ही 'बाबा' के (श्रीरामकृष्णदेव के) रमणीवेश को सर्वांगसम्पूर्ण बनाने के निमित्त

मधुरभाव के साधन में प्रवृत्त हो श्रीरामकृष्णदेव का स्त्री-वेशधारण।

मथुरबाबू ने घूँघराले केशों का एक टोप तथा कुछ स्वर्णालंकार से भी उनको विभूषित किया था। हमने विश्वस्तसूत्र से सुना है कि भक्तिमान् मथुरामोहन के इस दान के फलस्वरूप दुष्ट व्यक्तियों को श्रीरामकृष्णदेव के

कठोर त्याग में लांछन लगाने का अवसर प्राप्त हुआ था; किन्तु श्रीरामकृष्णदेव तथा मथुरामोहन उन बातों की ओर किंचिन्मात्र भी ध्यान न देकर अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर हुए थे। 'बाबा' की परितृप्ति से मथुरामोहन अपने प्रयत्न को निरर्थक न मानकर परम सुखी हुए थे और श्रीरामकृष्णदेव उन वेशभूषाओं को धारण कर श्रीहरि की प्रेमैकलोलुपा व्रजरमणियों के भाव में क्रमशः इस प्रकार निमग्न हुए थे कि उनका पुरुषत्वबोध भी समूल नष्ट होकर उनकी बोलचाल, उनका कार्यकलाप, इतना ही नहीं, उनके विचार भी स्त्रियों के समान हो गए थे। श्रीरामकृष्णदेव से हमने सुना है कि मधुरभाव के साधन के समय छः महीने तक रमणीवेश धारणकर उन्होंने अवस्थान किया था।

स्त्री-वेश के धारण से श्रीरामकृष्णदेव का प्रत्येक आचरण स्त्री-जाति की भाँति होना।

श्रीरामकृष्णदेव के अन्दर स्त्री और पुरुष—इन दोनों भावों के विचित्र समावेश का हम अन्यत्र उल्लेख कर चुके हैं। अतः स्त्री-वेश धारण करने के कारण उनके मन में उस समय रमणीभाव का उदय होना कोई विचित्र बात नहीं है। किन्तु उस भाव की प्रेरणा से उनका वार्तालाप, चलना-फिरना, हास्य, कटाक्ष एवं शरीर-मन का प्रत्येक आचरण आदि बिलकुल स्त्रियों जैसे होने लगेंगे, इसकी कभी किसी ने कल्पना तक नहीं की थी। किन्तु उस समय वास्तव में उन असम्भव घटनाओं के होने की बात हमने प्रायः श्रीरामकृष्णदेव तथा हृदयराम से सुनी है। दक्षिणेश्वर में आते जाते परिहासपूर्वक उनको स्त्रीचरित्र का अभिनय करते हुए हमने अनेक बार देखा है। उस समय वह इतना सर्वांगसम्पूर्ण होता था कि स्त्रियाँ भी उसे देखकर आश्चर्यचकित हो जाती थीं।

मथुरबाबू के घर की रमणियों के साथ श्रीरामकृष्णदेव का सखीभाव का आचरण।

मधुरभाव के साधन के समय श्रीरामकृष्णदेव कभी-कभी रानी रासमणि के जानबाजार स्थित भवन में जाकर श्री मथुरमोहन के घर के स्त्री-समाज में ही उठते-बैठते थे। अन्तःपुर में रहनेवाली महिलाएँ उनके कामगन्धरहित पवित्र चरित्र से परिचित रहने के कारण उनको पहले से ही देवता के सदृश देखा करती थीं। उस समय रमणी की तरह उनके चाल-चलन एवं अकृत्रिम स्नेह तथा

परिचर्या से मुग्ध होकर वे उन्हें इस प्रकार अपना समझने लगी थीं कि उनके सम्मुख लज्जा, संकोच आदि रखना उनके लिए सम्भव नहीं था।* श्रीरामकृष्णदेव के श्रीमुख से हमने सुना है कि श्री मथुरामोहन की पुत्रियों में से किसी के पति का उस समय जानबाजार के भवन में आगमन होता था तो वे स्वयं अपने हाथों से उस पुत्री के केशविन्यास तथा वेशभूषा आदि करने के पश्चात् उसे पति के मनोरंजन के विभिन्न उपायों की शिक्षा देकर सखी की भाँति उसका हाथ पकड़कर उसके पति के समीप उसे पहुँचा आया करते थे। वे कहते थे, 'उस समय वे पुत्रियाँ भी मुझे अपनी सखी समझकर किंचिन्मात्र भी संकुचित नहीं होती थीं।'

रमणीवेश धारण करने पर श्रीरामकृष्णदेव को पुरुषरूप से पहचानना कठिन था।

हृदयराम कहा करता था—"इस प्रकार रमणियों के बीच रहते समय श्रीरामकृष्णदेव को सहसा पहचानना उनके नित्यपरिचित आत्मीयवर्ग के लिए भी कठिन था। मथुरबाबू ने उस समय किसी दिन मुझे अन्तःपुर में ले जाकर पूछा था—'बताओ, इनमें तुम्हारे मामाजी कौन-से हैं?' इतने दिन एक साथ रहने तथा नित्यप्रति उनकी सेवा करने पर भी उस समय एकाएक मैं उनको पहचान नहीं पाया! दक्षिणेश्वर में रहते समय मामाजी जब प्रति दिन प्रातःकाल हाथ में टोकनी लेकर पुष्पचयन करते थे, तब हमने विशेष ध्यानपूर्वक देखा है कि चलते समय रमणियों की भाँति उनका बाँया पैर स्वतः आगे बढ़ता चला जाता था। ब्राह्मणी कहती थीं—"इस प्रकार उनको (श्रीरामकृष्णदेव को) पुष्पचयन करते हुए देखकर मुझे कभी-कभी भास होता था कि ये साक्षात् श्रीराधिका ही हैं। उस समय पुष्पचयन करने के पश्चात् वे बड़ी सुन्दर माला बनाकर प्रतिदिन श्रीराधागोविन्दजी को पहनाया करते थे तथा कभी-कभी श्रीजगदम्बा को सजाकर श्रीकात्यायनीदेवी के समीप व्रजगोपिकाओं की भाँति श्रीकृष्ण को पतिरूप में प्राप्त करने के निमित्त करुण प्रार्थना किया करते थे।"

इस प्रकार श्रीजगदम्बा की सेवा-पूजा सम्पन्न करने के पश्चात्

* गुरुभाव-पूर्वार्ध, सप्तम अध्याय देखिए।

श्रीकृष्णदर्शन तथा उनको अपने वल्लभरूप से प्राप्त करने की अभिलाषा से श्रीरामकृष्णदेव उस समय अनन्यचित्त हो श्रीयुगल-पादपद्मों की सेवा में रत हुए थे एवं साग्रह प्रार्थना तथा प्रतीक्षा में दिन व्यतीत कर रहे थे। चाहे दिन हो या रात, किसी भी समय उनकी हार्दिक व्याकुल प्रार्थना का विराम नहीं होता था तथा इस तरह दिन, पक्ष, महीना बीत जाने पर भी अविश्वासजनित निराशा कभी भी उपस्थित हो उन्हें अपनी प्रतीक्षा से तनिक भी विचलित नहीं कर पाती थी। क्रमशः वह प्रार्थना आकुल क्रन्दन में एवं वह प्रतीक्षा उन्मत्त की भाँति उत्कण्ठा तथा चंचलता में परिणत होने के कारण उनके आहार-निद्रादि विलुप्त हो चुके थे। और, विरह का तो कहना ही क्या है ?—अत्यन्त प्रियजनों के साथ सदा सब प्रकार से सम्मिलित होने की असीम लालसा विभिन्न बाधा-विघ्नों के द्वारा प्रतिरुद्ध होने पर हृदय-मन का मथन करने वाली, शरीर तथा इन्द्रियों को विकलित करने वाली जो अवस्था उपस्थित होती है, उस प्रकार का उन्हें विरह था। वह विरह—उनमें केवल विशेष यातना के कारण-स्वरूप मानसिक विकार के रूप में ही प्रकट होकर शान्त नहीं हो गया था, किन्तु साधनकालीन पूर्वानुभूत अत्यन्त दुस्सह शारीरिक ताप तथा सन्तप्तता के रूप में पुनः प्रादुर्भूत हुआ था। श्रीरामकृष्णदेव के श्रीमुख से हमने सुना है कि श्रीकृष्णविरह के प्रबल प्रभाव से उस समय उनके शरीर के रोमकूपों से समय समय पर रक्त की बूँदें टपका करती थीं, शरीर की ग्रन्थियाँ भग्नप्राय तथा शिथिल दिखाई देती थीं एवं हृदय की असह्य यातना से इन्द्रियवर्ग के अपने-अपने कार्यों से एकदम विरत हो जाने के कारण शरीर कभी-कभी मृत जैसा निश्चेष्ट तथा संज्ञाशून्य होकर पड़ा रहता था।

मधुरभाव के साधन में रत होने पर श्रीरामकृष्णदेव के आचरण तथा उनके शारीरिक विकार।

हम लोग देह के साथ नित्यसम्बद्ध मानव हैं, एक देह के प्रति दूसरे देह के आकर्षण को ही हम 'प्रेम' समझते हैं। अथवा अत्यन्त प्रयास के फलस्वरूप स्थूल देह-बुद्धि से कुछ ऊपर उठकर देहविशेष के आश्रय से प्रकटित गुणसमष्टि के प्रति आकर्षण रूप से उसका अनुभव होने पर उसे 'अतीन्द्रिय प्रेम' की आख्या प्रदान कर उसके यशोगान

करने लगते हैं। किन्तु इस बात को समझने में देर नहीं लगती कि कविकुलवन्दित हम लोगों का वह अतीन्द्रिय प्रेम स्थूल देह-बुद्धि तथा सूक्ष्म भोगलालसारहित नहीं है। श्रीरामकृष्णदेव के जीवन में प्रकटित यथार्थ अतीन्द्रिय प्रेम के साथ उसकी तुलना करने पर वह प्रेम अत्यन्त तुच्छ, हेय तथा निस्सार प्रतीत होता है।

श्रीरामकृष्णदेव के अतीन्द्रिय प्रेम के साथ हमारी उक्तविषयक धारणा की तुलना।

भक्तिग्रन्थों के वर्णनानुसार केवल श्रीराधारानी ने ही अपने जीवन में यथार्थ अतीन्द्रिय प्रेम की पराकाष्ठा का अनुभव कर उसका पूर्ण आदर्श जगत् में स्थापित किया है। लज्जा, घृणा, भय त्यागकर लोकभय, समाजभय, जाति, कुल, शील, पदमर्यादा तथा अपनी देह के भोगसुख तक से पूर्णतया विस्मृत हो, भगवान् श्रीकृष्ण के सुख में ही एकमात्र सुखानुभव करने का उनके सदृश दूसरे किसी का उल्लेख भक्तिशास्त्रों में नहीं मिलता है। इसलिए शास्त्र का कहना है कि श्रीराधारानी के कृपाकटाक्ष के बिना जगत् में भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन मिलना कदापि सम्भव नहीं है, क्योंकि सच्चिदानन्दघनविग्रह भगवान् श्रीकृष्ण, श्रीराधारानी के प्रेम में सर्वथा आबद्ध रहकर उन्हीं की इच्छानुसार भक्तों की मनोभिलाषा को पूर्ण कर रहे हैं। अतः यह स्पष्ट है कि उनके कामगन्धरहित प्रेम के अनुरूप अथवा उसी प्रकार का प्रेम लाभ हुए बिना कोई कभी ईश्वर की पतिभाव से प्राप्ति तथा मधुरभाव के परिपूर्ण माधुर्य की उपलब्धि करने में समर्थ नहीं हो सकता। भक्तिशास्त्रों के इस कथन का यही तात्पर्य है।

श्रीराधारानी के अतीन्द्रिय प्रेम के सम्बन्ध में भक्ति ग्रन्थों का वर्णन।

श्रीराधाप्रेम की दिव्य महिमा, मायास्पर्शवर्जित परमहंसाग्रगण्य श्रीशुकदेवादि मुनिवर्ग के द्वारा पुनः पुनः कीर्तित होने पर भी जीवन में उसकी उपलब्धि किस प्रकार हो सकती है, इस बात को भारत का जनसमूह बहुत समय तक नहीं समझ सका था। गौड़ीय वैष्णवाचार्यों का यह कथन है कि उसको समझाने के निमित्त ही श्रीभगवान् को श्रीराधारानी के साथ एकीभूत

श्रीराधारानी के अतीन्द्रिय प्रेम को समझाने के लिए ही श्रीगौरांगदेव का आविर्भाव।

होकर एकाधार में या एक शरीर का अवलम्बन कर पुनः अवतीर्ण पड़ा था। अन्तःकृष्ण बहिर्गौर रूप से प्रकटित श्रीगौरांगदेव ही मधुर भाव के प्रेमादर्श को प्रतिष्ठित करने के लिए आविर्भूत श्रीभगवान् के वह अपूर्व विग्रह हैं। श्रीराधारानी के शरीर तथा मन में श्रीकृष्णप्रेम से जो लक्षण प्रकट होते थे, पुरुषशरीरधारी होने पर भी श्रीगौरांगदेव के अन्दर ईश्वर-प्रेम के प्राबल्य से उन लक्षणों को आविर्भूत होते देखकर ही वैष्णवाचार्यों ने उन्हें श्रीराधारानी कहकर निर्देश किया था। अतः यह स्पष्ट है कि श्रीगौरांगदेव अतीन्द्रिय प्रेम के द्वितीय दृष्टान्तस्वरूप हैं।

श्रीरामकृष्णदेव द्वारा श्रीराधारानी की उपासना तथा दर्शन लाभ।

श्रीराधारानी की कृपा के बिना श्रीकृष्ण दर्शन असम्भव जानकर श्रीरामकृष्णदेव उस समय तद्गत चित्त हो उनकी उपासना में प्रवृत्त हुए थे एवं उनकी प्रेमघन मूर्ति के स्मरण, मनन तथा ध्यान में निरन्तर मग्न रहकर अविच्छिन्न रूप से उनके श्रीचरणों में उन्होंने अपने हृदय की व्याकुल उत्कण्ठा निवेदित की थी। फलतः अविलम्ब ही श्रीराधारानी का दर्शन प्राप्त कर वे कृतार्थ हुए थे। अन्यान्य देव-देवियों के दर्शन के समय इससे पूर्व उन्होंने जैसा अनुभव किया था, उस समय भी ठीक तदनुरूप उस मूर्ति को अपने अन्दर सम्मिलित होते हुए उन्होंने अनुभव किया था। वे कहते थे, "श्रीकृष्णप्रेम में सर्वस्व विसर्जित करने वाली निरुपम पवित्रोज्ज्वल मूर्ति की महिमा तथा मधुरिमा का वर्णन करना असम्भव है। श्रीराधारानी की अंगकान्ति को मैंने 'नाग केसर' पुष्प के केसरों की भाँति गौरवर्ण देखा था।"

अपने को श्रीराधारानी रूप से श्रीरामकृष्णदेव का अनुभव तथा उसका कारण।

उक्त दर्शन के उपरान्त कुछ दिन तक श्रीरामकृष्णदेव ने अपने को श्रीराधारानी रूप से निरन्तर उपलब्ध किया था। श्रीराधारानी की श्रीमूर्ति तथा उनके चरित्र के गम्भीर चिन्तन में अपने पृथक् अस्तित्व का ज्ञान एकदम विस्मृत हो जाने के कारण ही उनकी इस प्रकार की अवस्था हुई थी। अतः निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि उनका मधुरभावोत्थ ईश्वर-प्रेम उस समय परिवर्धित होकर श्रीराधारानी के प्रेम के

करने लग अत्यन्त गहरा हो उठा था। उसका फल भी वैसा ही देखने को मिला था। पूर्वोक्त दर्शन के अनन्तर श्रीराधारानी तथा श्रीगौरांगदेव की तरह उनमें भी मधुरभाव की पराकाष्ठाजनित महाभाव के लक्षण प्रकट होने लगे थे। वैष्णवाचार्यों के ग्रन्थों में महाभाव-अवस्था में प्रकट होने वाले लक्षणसमूह लिपिबद्ध हैं। वैष्णवतन्त्रों में निपुण भैरवी ब्राह्मणी तथा वैष्णवचरण आदि शास्त्रज्ञ साधकों ने श्रीरामकृष्णदेव के श्रीअंगों में महाभाव की प्रेरणा से उन लक्षणों के आविर्भाव को देखकर स्तम्भित हो उन्हें हार्दिक श्रद्धा तथा सम्मान अर्पण किया था। महाभाव का उल्लेख कर श्रीरामकृष्णदेव ने कई बार हमसे यह कहा था कि "उन्नीस प्रकार के भाव जब एक आधार में प्रकट होते हैं तो उसे महाभाव कहा जाता है—यह बात भक्तिशास्त्रों में विद्यमान है। साधन के द्वारा एक-एक भाव की सिद्धि में ही मनुष्य का जीवन व्यतीत हो जाता है! (अपने शरीर को दिखाते हुए) यहाँ पर एकाधार में उन उन्नीस प्रकार के भावों का एकत्र पूर्ण प्रकाश है।*

---

* श्रीजीवगोस्वामी आदि वैष्णवाचार्यों ने 'रागात्मिका भक्ति' के निम्न-लिखित विभागों का निर्देश किया है—
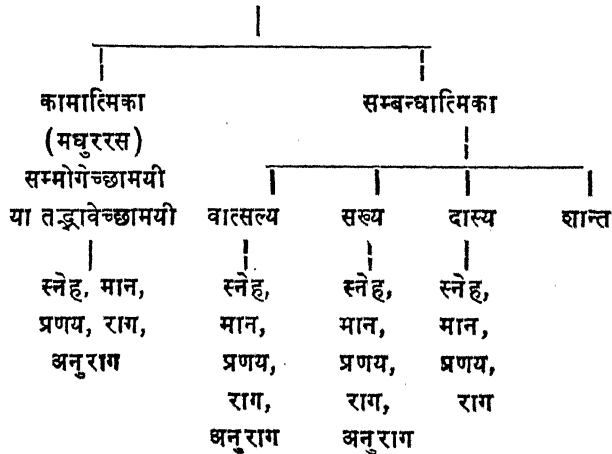
कामात्मिका तथा सम्बन्धात्मिका—इन दोनों प्रकार की भक्तियों के पूर्व-कथित उन्नीस प्रकार के अन्तर्भावों का महाभाव में एकत्र समावेश होता है। श्रीरामकृष्णदेव ने यहाँ पर उसी का निर्देश किया है।

श्रीकृष्णविरह की दुस्सह यातना से श्रीरामकृष्णदेव के रोमविवरों से रुधिर निकलने की बात का इससे पूर्व ही हमने उल्लेख किया है—महाभाव की पराकाष्ठा-अवस्था में ही उनकी वह स्थिति उत्पन्न हुई थी। प्रकृतिभाव के चिन्तन में वे तब इतने तन्मय हो चुके थे कि स्वप्न अथवा भ्रमवश भी अपने बारे में उन्हें कभी पुरुष-ज्ञान का उदय नहीं होता था एवं स्त्री-शरीर की भाँति समस्त कार्यों में उनके शरीर तथा इन्द्रियसमूह स्वतः ही प्रवृत्त होने लगे थे। हमने स्वयं उनके श्रीमुख से सुना है कि स्वाधिष्ठान चक्र वाले भाग के सभी रोमकूपों से उन दिनों उनका प्रतिमास नियत समय पर शोणितस्राव होता था तथा स्त्री-शरीर की तरह प्रत्येक बार तीन दिन तक वह जारी रहता था! उनके भानजे हृदयराम ने हमसे कहा है कि उन्होंने अपनी आँखों से उसे देखा है तथा पहनने के वस्त्र कहीं खराब न हो जायँ, इसलिए श्रीरामकृष्णदेव को उस समय कौपीन धारण करते हुए भी उसने देखा है!

प्रकृतिभाव के कारण श्रीरामकृष्णदेव के शरीर के अद्भुत परिवर्तन।

वेदान्तशास्त्र की शिक्षा है कि मानव के मन के द्वारा उसका शरीर वर्तमान आकार में परिणत हुआ है—'मन इस शरीर की सृष्टि करता है'—तथा तीव्र इच्छा या वासना की सहायता से उसके जीवन के प्रत्येक क्षण में वह उसे तोड़-मरोड़कर नवीन रूप से निर्माण करता रहता है। शरीर के ऊपर मन के इस प्रकार के प्रभुत्व की बात को सुनकर हम उसे यथार्थ रूप से समझने व उसकी धारणा करने में समर्थ नहीं हो पाते हैं; क्योंकि जिस प्रकार की तीव्र वासना उपस्थित होने पर मन अन्य समस्त विषयों से प्रत्यावृत्त हो विषयविशेष में केन्द्रित होता है तथा अपूर्व शक्ति प्रकट करता है, उतना हम किसी भी विषय को प्राप्त करने के लिए उस प्रकार की तीव्र वासना का कभी अनुभव नहीं करते हैं। इतना कहना ही पर्याप्त है कि विषय-विशेष की उपलब्धि के निमित्त तीव्र वासना से अल्पकाल के भीतर ही श्रीरामकृष्णदेव के शरीर के इस प्रकार से परिवर्तन होने के कारण, वेदान्त

मानसिक भाव के प्राबल्य से उनके शारीरिक उक्त प्रकार परिवर्तन को देखकर यह जाना जाता है कि "मन इस शरीर की सृष्टि करता है।"

की पूर्वोक्त बात ही विशेष रूप से प्रमाणित होती है। पद्मलोचन आदि प्रख्यात पण्डितों ने श्रीरामकृष्णदेव की आध्यात्मिक उपलब्धियों को सुनने के पश्चात् वेद-पुराणादि में लिपिबद्ध पूर्व-पूर्व युगों के सिद्ध ऋषियों की उपलब्धियों के साथ उनकी तुलना करते हुए कहा था, "आपकी उपलब्धियाँ वेद-पुराणादि को अतिक्रमण कर बहुत दूर तक आगे बढ़ चुकी हैं।" मानसिक भावों के प्राबल्य से श्रीरामकृष्णदेव के शारीरिक परिवर्तनों का मनन करने पर स्तम्भित हो यही कहना पड़ता है कि उनके शारीरिक विकारों ने शरीर सम्बन्धी ज्ञान-राज्य की सीमा का उल्लंघन कर उसमें अपूर्व युगान्तर लाने की सूचना दी है।

श्रीरामकृष्णदेव को श्रीकृष्ण का दर्शनलाभ।

अस्तु, उस समय श्रीरामकृष्णदेव ने पतिभाव से अद्भुत ईश्वर-प्रेम के परिशुद्ध तथा घनीभूत होने से उपरोक्त रूप से श्रीराधारानी की कृपा का अनुभव किया था तथा उस प्रेम के प्रभाव से अल्पकाल बाद ही उनको सच्चिदानन्दघनविग्रह श्रीकृष्ण का पुनीत दर्शन प्राप्त हुआ था। उनकी मूर्ति भी अन्य मूर्तियों की भाँति उनके श्रीअंगों में मिल चुकी थी। उक्त दर्शन-प्राप्ति के दो-तीन महीने बाद परमहंस श्रीमत् तोतापुरी का आगमन हुआ था तथा उन्होंने वेदान्त-प्रणीत अद्वैतभाव की साधना में उनको नियुक्त किया था। अतः स्पष्ट है कि मधुरभाव की साधना में सिद्ध होने के पश्चात् कुछ समय तक उस भाव के सहारे ईश्वर-चिन्तन करते हुए श्रीरामकृष्णदेव ने कालयापन किया था। उनके श्रीमुख से हमने सुना है कि उस समय श्रीकृष्ण के चिन्तन में एकदम तन्मय होकर अपने पृथक् अस्तित्वबोध को भूलकर उन्होंने कभी अपने को श्रीकृष्णरूप से अनुभव किया था और कभी आब्रह्मस्तम्बपर्यन्त सभी का श्रीकृष्णविग्रह के रूप में दर्शन किया था। दक्षिणेश्वर में उनके समीप जब हम आने जाने लगे थे, उस समय एक दिन बगीचे से घास का एक फूल उठाकर अत्यन्त प्रसन्नता के साथ हमारे निकट आकर उन्होंने कहा था, "उस समय (मधुरभाव के साधन के समय) प्रायः मुझे जो श्रीकृष्ण का दर्शन होता था, उनके शरीर का रंग इस फूल के रंग के समान था।"

अपने अन्तरस्थित प्रकृतिभाव की प्रेरणा से यौवन के प्रारम्भ में

श्रीरामकृष्णदेव के हृदय में एक प्रकार की वासना का उदय होता था।

यौवन के प्रारम्भ में श्रीरामकृष्णदेव के हृदय में प्रकृति बनने की लालसा।

व्रजगोपिकाएँ स्त्री-शरीर में जन्म लेकर प्रेम के द्वारा सच्चिदानन्दविग्रह श्रीकृष्ण को प्राप्त हुई थीं, यह जानकर श्रीरामकृष्णदेव यह सोचते थे कि यदि उनका जन्म स्त्री-शरीर को ग्रहण कर हुआ होता तो वे भी गोपिकाओं की भाँति श्रीकृष्ण के भजन तथा दर्शन से धन्य हो जाते। इस प्रकार अपने पुरुषशरीर को श्रीकृष्ण-प्राप्ति के निमित्त बाधक समझकर वे उस समय यह कल्पना किया करते थे कि भविष्य में यदि फिर मुझे जन्म लेना पड़े तो मैं किसी ब्राह्मण के घर परमरूपवती दीर्घकेशी बाल-विधवा होऊँगा तथा श्रीकृष्ण के सिवाय अन्य किसी को पति नहीं समझूँगा! साधारणतया जीवनयापन करने की व्यवस्था रहेगी, कच्ची झोपड़ी के निकट दो-एक एकड़ जमीन रहेगी—जिसमें अपने हाथों से दो-चार तरह की सब्जी लगाकर उसके द्वारा अपना निर्वाह करूँगा और मेरी देखरेख के लिए एक वृद्धा रहेगी तथा एक गाय भी होगी, जिसे मैं स्वयं दुह सकूँगा एवं सूत कातने के लिए एक चरखा भी रहेगा। इससे भी आगे बढ़कर बालक यह कल्पना किया करता था कि दिन में घर का कामकाज करने के पश्चात् वह उस चरखे पर सूत कातता हुआ श्रीकृष्णसम्बन्धी भजन गाता रहेगा तथा सायंकाल के बाद उस गाय के दूध से बने हुए मोदक आदि लेकर श्रीकृष्ण को अपने हाथों से भोजन कराने के निमित्त एकान्त में बैठकर व्याकुलता के साथ वह रोता रहेगा। भगवान् श्रीकृष्ण भी इस आचरण से प्रसन्न होकर गोपवेश धारण कर सहसा वहाँ उपस्थित हो उन वस्तुओं को ग्रहण करेंगे तथा दूसरों की दृष्टि बचाकर इस प्रकार प्रतिदिन उनके समीप आते-जाते रहेंगे। श्रीरामकृष्णदेव के मन की यह वासना उस तरह पूर्ण न होने पर भी, मधुरभाव के साधन के समय पूर्वोक्त प्रकार से सिद्ध हुई थी।

मधुरभाव में अवस्थित रहते समय श्रीरामकृष्णदेव के और एक दिव्य दर्शन का उल्लेख कर हम प्रस्तुत विषय का उपसंहार करेंगे। उस समय विष्णु-मन्दिर के बरामदे में बैठकर वे एक दिन श्रीमद्भागवत की कथा सुन रहे थे। सुनते-सुनते भावाविष्ट हो उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण की

ज्योतिर्मय मूर्ति का दर्शन किया। तदनन्तर उन्होंने देखा कि उस मूर्ति के पादपद्मों से रस्सी की तरह एक ज्योति निकलकर सर्वप्रथम उसने श्रीमद्भागवत को स्पर्श किया एवं तदुपरान्त उनके वक्षःस्थल में संलग्न होकर उन तीनों वस्तुओं को कुछ देर के लिए उसने एक साथ संयुक्त कर रखा।

'भागवत, भक्त और भगवान्--तीनों एक हैं तथा एक ही तीन हैं'--इस तरह का दर्शन।

श्रीरामकृष्णदेव कहते थे कि इस प्रकार के दर्शन से उनके मन में यह दृढ़ धारणा हुई थी कि भागवत, भक्त और भगवान्—ये तीनों भिन्न रूप से प्रकट रहते हुए भी एक ही हैं अथवा एक ही पदार्थ के तीन रूप हैं। "भागवत (शास्त्र), भक्त और भगवान्—तीनों एक हैं तथा एक ही तीन है।"

पंचदश अध्याय

श्रीरामकृष्णदेव की वेदान्तसाधना

मधुरभावसाधना में सिद्ध होने के पश्चात् श्रीरामकृष्णदेव उस समय भाव-साधना की चरमभूमि पर उपस्थित हुए थे। अतः उनके अपूर्व साधन की बातों को लिपिबद्ध करने से पूर्व उनकी तत्कालीन मानसिक स्थिति की आलोचना करना उचित प्रतीत होता है।

श्रीरामकृष्णदेव की तत्कालीन मानसिक स्थिति का विवेचन-- (१) काम-कांचनत्याग का दृढ़ संकल्प।

हम यह देख चुके हैं कि किसी भी भाव-साधना में सिद्ध होने के लिए सांसारिक रूपरसादि भोग्य विषयों को दूर से परित्याग कर उसके अनुष्ठान में साधक को प्रवृत्त होना पड़ता है। सिद्धभक्त श्रीतुलसीदासजी का यह कहना कि—'जहाँ राम तहाँ काम नहिं' * —वास्तव में सत्य है। श्रीरामकृष्णदेव का अदृष्टपूर्व साधन-इतिहास पूर्णतया इस बात का साक्षी है। काम-कांचन-त्यागरूप आधार पर दृढ़प्रतिष्ठ होकर ही वे भाव-साधना में अग्रसर हुए थे तथा उससे तिलमात्र भी विचलित न होने के कारण जब जिस भाव-साधना में वे प्रवृत्त हुए, अपने जीवन में उसे आयत्त करने में अति अल्प समय के भीतर ही वे सफल हुए। अतः यह स्पष्ट है कि काम-कांचन की प्रलोभनभूमि की सीमा से बहुत दूर हटकर उनका मन उस समय निरन्तर अवस्थित रहता था।

विषयकामना को त्यागकर निरवच्छिन्न रूप से नौ वर्ष तक ईश्वर-प्राप्ति के निमित्त सचेष्ट होने के कारण अभ्यास-योग के द्वारा उनका मन उस समय ऐसी स्थिति पर पहुँच चुका था कि ईश्वर के सिवाय और

---

* 'जहाँ राम तहाँ काम नहिं, जहाँ काम नहिं राम।
तुलसी कबहूँ होत नहिं, रवि रजनी इक ठाम॥'
—श्रीतुलसीदासकृत दोहा

किसी विषय का स्मरण-मनन उनके लिए विषवत् प्रतीत होता था।

(२) नित्यानित्य वस्तु-विवेक तथा इहामुत्र-फलभोग के प्रति वैराग्य।

शरीर, मन तथा वाणी के द्वारा ईश्वर को ही सारात्सार तथा परात्पर वस्तु रूप से सर्वथा धारणा करने के फलस्वरूप इहलोक या परलोक में उसके अतिरिक्त और किसी वस्तु की प्राप्ति के लिए वे एकदम उदासीन तथा निस्पृह हो चुके थे।

रूपरसादि बाह्य वस्तु तथा शारीरिक सुखदुःखादि को विस्मृत कर अभीष्ट विषय के एकाग्र चिन्तन में उनका मन उस समय इतना अभ्यस्त हो चुका था कि केवल साधारण प्रयास से वह सम्पूर्णतया समाहृत हो ध्येय विषय में तन्मयता प्राप्त कर आनन्दानुभव किया करता था। दिन, महीना तथा वर्ष क्रमशः व्यतीत हो जाने पर भी उनके उस आनन्द का किंचिन्मात्र भी विराम नहीं होता था एवं ईश्वर के अतिरिक्त और कोई वस्तु प्राप्तव्य है या हो सकती है, क्षण भर के लिए भी उनके मन में इस तरह की चिन्ता का उदय नहीं होता था।

(३) शमदमादि षट्-सम्पत्ति तथा मुमुक्षुत्व।

अन्त में श्रीरामकृष्णदेव के हृदय में जगत्कारण के प्रति 'गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्'—इस प्रकार तीव्र अनुराग, विश्वास तथा निर्भरता असीम थी। इसकी सहायता से उस समय वे अपने को केवल प्रेम-सम्बन्ध से ही ईश्वर के साथ नित्ययुक्त नहीं देखते थे, किन्तु माँ के प्रति बालक की भाँति ईश्वर के प्रति नितान्त अनुराग के फलस्वरूप साधक जिस प्रकार सदा उनको अपने समीप देख पाता है, उनकी मधुर वाणी को सर्वदा सुनकर कृतार्थता का अनुभव करता है एवं उनके सुदृढ़ हाथों के द्वारा सुरक्षित होकर संसार में निरन्तर निर्भयपूर्वक विचरण करने में समर्थ होता है—इस बात के बहुसंख्यक प्रमाण पाकर, जीवन के छोटे-बड़े सभी कार्यों को श्रीजगदम्बा के आदेश तथा संकेत के अनुसार निडर हो सम्पन्न करने में उनका मन उस समय सम्पूर्ण रूप से अभ्यस्त हो चुका था।

(४) ईश्वरनिर्भरता तथा दर्शन-जनित भय-शून्यता।

प्रश्न हो सकता है कि जगत्कारण को इस प्रकार स्नेहमयी जननी

की भाँति सर्वदा अपने समीप पाकर भी श्रीरामकृष्णदेव पुनः साधनों में क्यों प्रवृत्त हुए? जिनकी प्राप्ति के लिए साधकगण योग-तपस्यादि का अनुष्ठान करते हैं, उनको परम आत्मीयरूप से प्राप्त करने के पश्चात् पुनः साधन की क्या आवश्यकता है? इसका उत्तर यद्यपि एक बार इसके पूर्व एक दृष्टि से दिया जा चुका है, तथापि इस सम्बन्ध में और भी एक-दो बातें कहना वांछित हैं। श्रीरामकृष्णदेव के श्रीचरणों के समीप बैठकर उनके साधनकालीन इतिहास को सुनते हुए एक दिन हमारे मन में भी यह प्रश्न उदित हुआ था और उसे व्यक्त करने में भी हम संकुचित नहीं हुए थे। उस समय हमारे प्रश्न के उत्तर में उन्होंने जो कुछ कहा था उसे हम यहाँ पर उद्धृत करते हैं : श्रीरामकृष्णदेव ने कहा था, "समुद्र के किनारे सदा निवास करने वाले व्यक्ति के मन में जिस प्रकार कभी-कभी यह देखने की जिज्ञासा होती है कि रत्नाकर के गर्भ में कितने प्रकार के रत्न हैं, ठीक उसी प्रकार माँ को प्राप्त कर एवं माँ के निकट सर्वदा रहते हुए भी अनन्तभावमयी अनन्तरूपिणी माँ को विभिन्न भाव तथा विभिन्न रूप से देखने की तब मेरी इच्छा होती थी। उनको विशेष किसी भाव से देखने की अभिलाषा होने पर तदर्थ व्याकुल हो मैं उनसे हठ किया करता था। करुणामयी माँ भी उस समय अपने उस भाव के दर्शन या उपलब्धि के लिए जो कुछ आवश्यक होता था, उसकी व्यवस्था कर तथा मेरे द्वारा उसे सम्पन्न कराकर उस भाव से मुझे दर्शन देती थीं। इसी तरह मैंने विभिन्न मतों का साधन किया था।"

ईश्वर-दर्शन के पश्चात् श्रीरामकृष्णदेव साधन में क्यों प्रवृत्त हुए?—इस सम्बन्ध में उनका कथन।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि मधुरभाव में सिद्धि प्राप्त करने के पश्चात् श्रीरामकृष्णदेव भाव-साधना की चरम भूमि पर पहुँचे थे। तदनन्तर ही उनके हृदय में सर्वभावातीत वेदान्त-प्रसिद्ध अद्वैत-भाव के साधन की प्रबल प्रेरणा उपस्थित हुई थी। श्रीजगदम्बा की इच्छा से वह प्रेरणा उनके जीवन में कैसे उपस्थित हुई थी एवं किस तरह उन्होंने उस समय श्रीजगन्माता के निर्गुण निराकार निर्विकल्प तुरीय रूप की साक्षात् उपलब्धि की थी, अब हम उसी का उल्लेख करेंगे।

श्रीरामकृष्णदेव जब अद्वैत-भाव के साधन में प्रवृत्त हुए थे, उस

समय उनकी वृद्धा माँ दक्षिणेश्वर के काली-मन्दिर में निवास कर रही थीं।

श्रीरामकृष्णदेव की जननी का गंगातट पर निवास करने का संकल्प तथा दक्षिणेश्वर में आगमन।

ज्येष्ठ पुत्र रामकुमारजी की मृत्यु के पश्चात् अन्य दो पुत्रों की ओर दृष्टि निबद्ध कर शोकार्ता जननी ने किसी तरह धैर्य धारण किया था। किन्तु उसके कुछ ही दिन बाद लोग जब यह प्रचार करने लगे कि उनका कनिष्ठ पुत्र गदाधर पागल हो गया है, तब उनके दुःख की कोई सीमा न रही। पुत्र को घर लिवा लाकर नाना प्रकार की चिकित्सा तथा शान्ति-कर्मादि के अनुष्ठान से उनके उस भाव के कथंचित् उपशम होने पर कुछ आशान्वित हो वृद्धा जननी ने उसका विवाह किया। किन्तु विवाह के पश्चात् दक्षिणेश्वर लौटने पर गदाधर की अवस्था जब पुनः वैसी ही होने लगी, तब वृद्धा जननी अपने को सम्हाल न सकीं—पुत्र के आरोग्य के निमित्त धरना देकर वे पड़ी रहीं! तदनन्तर महादेवजी के दैव-आदेश से उनको यह विदित हुआ कि उनके पुत्र को दिव्योन्माद हुआ है; उससे कुछ आश्वस्त होकर भी उसके कुछ दिन बाद संसार की आसक्ति त्यागकर वे दक्षिणेश्वर में पुत्र के समीप पहुँचीं एवं जीवन के शेष दिनों को गंगातट पर व्यतीत करने का उन्होंने दृढ़ निश्चय किया; क्योंकि जिनके लिए एवं जिन्हें लेकर संसार-यात्रा का निर्वाह करना है, वे ही यदि संसार से विदा ले लें तथा उन्हें त्यागकर चल दें तो फिर उनके लिए वृद्धावस्था में उसमें लिप्त रहने की आवश्यकता ही क्या है? श्रीमथुरबाबू के 'अन्नमेरु' व्रत की चर्चा इससे पूर्व हम कर चुके हैं। श्रीरामकृष्णदेव की माताजी उस अवसर पर दक्षिणेश्वर के कालीमन्दिर में उपस्थित हुई थीं और तब से लेकर बारह वर्ष, शरीरान्तपर्यन्त वे पुनः कभी कामारपुकुर नहीं गईं। अतः जटाधारी द्वारा श्रीरामकृष्णदेव को 'राम'-मन्त्र की दीक्षा एवं उनके मधुरभाव तथा वेदान्तभाव के साधन दक्षिणेश्वर में उनकी माताजी की अवस्थिति के समय ही सम्पन्न हुए थे, इसमें कोई सन्देह नहीं।

श्रीरामकृष्णदेव की माता के निर्लोभ एवं उदार स्वभाव के बारे में यहाँ पर हम एक घटना का उल्लेख करना चाहते हैं। यह घटना उनके दक्षिणेश्वर-आगमन के कुछ दिन बाद की है। यह पहले ही कहा जा

चुका है कि उस समय कालीमन्दिर में मथुरबाबू का अटूट प्रभाव था एवं मुक्तहस्त से वे विभिन्न सत्कार्यों का अनुष्ठान तथा प्रचुर मात्रा में अन्नदान कर रहे थे। श्रीरामकृष्णदेव के प्रति उनकी प्रीति तथा भक्ति की कोई सीमा नहीं थी, इसलिए जिससे उनकी शारीरिक सेवा में किसी प्रकार की त्रुटि न हो, तदर्थ व्यवस्था करने के लिए वे गुप्त रूप से सदा सचेष्ट थे; किन्तु श्रीरामकृष्णदेव के कठोर त्याग को देखकर स्पष्टतया उनसे यह उन्हें तब तक कहने का साहस नहीं हुआ था। इसलिए एक दिन एक ऐसी जगह पर खड़े होकर जहाँ से श्रीरामकृष्णदेव सुन सकें मथुरबाबू ने हृदयराम से इस बात का परामर्श किया कि वे श्रीरामकृष्णदेव के नाम कुछ भूसम्पत्ति लिख देना चाहते हैं। इस बात को सुनते ही श्रीरामकृष्णदेव उन्मत्त की तरह यह कहते हुए—'साले, तू मुझे विषयी बनाना चाहता है'—उनको मारने दौड़े थे। अतः मन में अभिलाषा रहने पर भी उसे कार्य में परिणत करने का अवसर मथुरामोहन को प्राप्त नहीं हो सका था। श्रीरामकृष्णदेव की माताजी का वहाँ आगमन होने पर उन्होंने उचित अवसर समझकर वृद्धा चन्द्रादेवी को 'दादी' सम्बोधन से प्रसन्न किया। वे प्रति दिन उनके समीप आते और विभिन्न विषयों पर सलाह परामर्श करते। इस प्रकार क्रमशः वे उनके विशेष प्रियपात्र हो गए। तदनन्तर एक दिन समय पाकर वे उनसे यह आग्रह करने लगे,—"दादी, तुमने तो कभी मेरी कोई सेवा स्वीकार नहीं की। यदि तुम वास्तव में मुझे अपना समझती हो तो अपनी इच्छानुसार स्वयं मुझसे कुछ माँग लो।" मथुरामोहन की उस बात से सरलहृदय वृद्धा अत्यन्त विचलित हो उठीं; क्योंकि बहुत सोचने-विचारने पर भी उन्हें किसी प्रकार का कोई अभाव प्रतीत नहीं हुआ, इसलिए क्या माँगना चाहिए, यह वे निश्चित न कर सकीं। बाध्य होकर उनको यह कहना पड़ा—"बेटा, तुम्हारे प्रेम से इस समय मुझे तो कोई अभाव नहीं है। जब किसी वस्तु की आवश्यकता होगी, तब मैं स्वयं माँग लूँगी।" यह कहकर वृद्धा ने अपना सन्दूक खोलकर मथुरामोहन से कहा, "यह देखो, मेरे पास पहनने के इतने कपड़े बचे हुए हैं और तुम्हारे प्रेम से यहाँ पर मुझे भोजन आदि का तो कोई भी कष्ट नहीं है, सारी व्यवस्था

श्रीरामकृष्णदेव की जननी की लोभशून्यता।

तो तुमने कर ही दी है और तुम्हीं सब कुछ कर रहे हो; फिर तुम्हीं बताओ मैं क्या माँगूं?" किन्तु मथुरबाबू सहज में माननेवाले नहीं थे, "अपनी इच्छानुसार कुछ माँगो"––यह कहते हुए वे बारम्बार अनुरोध करने लगे। तब श्रीरामकृष्णदेव की जननी को एक अभाव का स्मरण हो आया, हँसती हुई वे बोलीं, "यदि तुम्हारी इच्छा कुछ देने की ही है तो इस समय मेरे पास तमाखू नहीं है, मुझे एक आने की तमाखू ला दो।" इस बात को सुनकर विषयी मथुरामोहन की आँखें डबडबा उठीं। उनको प्रणाम कर वे बोले, "ऐसी माता न हो, तो क्या कभी इस प्रकार के त्यागशील पुत्र का जन्म सम्भव है?" यह कहकर उन्होंने उनके कथनानुसार तमाखू मँगा दिया।

हलधारी का पूजा-कार्य छोड़ना तथा अक्षय का आगमन।

श्रीरामकृष्णदेव के वेदान्तसाधना में प्रवृत्त होने के समय उनके चचेरे भाई हलधारी दक्षिणेश्वर के मन्दिर में श्रीराधागोविन्दजी की सेवा में नियुक्त थे। श्रीरामकृष्णदेव से आयु में बड़े होने के कारण तथा श्रीमद्भागवत आदि शास्त्रों में कुछ व्युत्पत्ति रहने से अहंकार के वशीभूत होकर वे कभी-कभी उनकी निन्दा किया करते थे एवं उनके आध्यात्मिक दर्शन तथा अवस्थाओं को मस्तिष्क का विकार कहा करते थे। इससे कुछ क्षुब्ध होकर श्रीरामकृष्णदेव उनकी बातों को श्रीजगदम्बा से निवेदन कर कैसे बारम्बार आश्वस्त होते थे––इन बातों का उल्लेख इससे पहले किया जा चुका है। हलधारी के तीव्र निन्दात्मक वाक्यों से खिन्न होकर भावाविष्ट अवस्था में उनको किसी समय एक सौम्यमूर्ति का दर्शन हुआ था तथा 'भावमुख' अवस्था में रहने का देव-आदेश प्राप्त हुआ था। सम्भवतः उन्हें वह दर्शन उनके वेदान्त-साधन में प्रवृत्त होने के कुछ दिन पूर्व प्राप्त हुआ था एवं मथुरबाबू के साधन के समय उनको स्त्रीवेश धारण कर रमणी की भाँति रहते हुए देखकर ही हलधारी ने आत्मज्ञानशून्य कहकर उनकी भर्त्सना की थी। परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीमत् तोतापुरीजी के दक्षिणेश्वर आगमन तथा अवस्थान के समय हलधारी कालीमन्दिर में रहते थे तथा समय-समय पर उनके साथ शास्त्रचर्चा किया करते थे, यह हमने स्वयं श्रीरामकृष्णदेव के श्रीमुख से सुना है। श्रीमत् तोतापुरी तथा हलधारी के इस प्रकार अध्यात्म-

रामायण की चर्चा के समय एक दिन श्रीरामकृष्णदेव को श्रीसीता तथा अनुज लक्ष्मणजी के साथ भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का दिव्य दर्शन हुआ था। सम्भवतः सन् १८६५ के अन्त में श्रीमत् तोतापुरीजी दक्षिणेश्वर पधारे थे। उसके कुछ ही महीनों बाद शारीरिक अस्वस्थता के कारण हलधारी ने कालीमन्दिर के कार्य से अवकाश ग्रहण किया था तथा उनके स्थान पर श्रीरामकृष्णदेव के भतीजे अक्षय की नियुक्ति हुई थी।

भावसमाधि में सिद्ध श्रीरामकृष्णदेव का अद्वैत-भाव के साधन में प्रवृत्त होने का कारण।

भक्तों का यह स्वभाव है कि वे कभी सायुज्य या निर्वाणमुक्ति प्राप्त करने का प्रयास नहीं करते। शान्त, दास्यादि भावविशेष का अवलम्बन कर प्रेम की महिमा तथा मधुरिमा के आस्वादन के लिए ही वे सदा सचेष्ट रहते हैं। 'स्वयं चीनी बन जाने से कोई लाभ नहीं है माँ, मैं तो चीनी खाना पसन्द करता हूँ,'— देवीभक्त श्रीरामप्रसादजी का यह कथन सदा ही भक्तहृदय के स्वाभाविक उच्छ्वास के रूप में प्रसिद्ध है। अतः भावसाधना की चरम सीमा में पहुँचकर भावातीत अद्वैतावस्था की प्राप्ति के निमित्त श्रीरामकृष्णदेव का प्रयास, लोगों को कुछ विपरीत-सा प्रतीत हो सकता है। किन्तु इस प्रकार सोचने के पूर्व हमें यह स्मरण करना चाहिए कि श्रीरामकृष्णदेव उस समय स्वतः प्रवृत्त होकर किसी कार्य को नहीं कर पाते थे। श्रीजगदम्बा के बालक श्रीरामकृष्णदेव, तब उन पर पूर्णतया निर्भर हो उनकी ओर दृष्टि निबद्ध कर दिन व्यतीत कर रहे थे तथा वे जैसे उनको घुमा फिरा रही थीं, परमान्दित हो वैसे ही वे चल-फिर रहे थे। इसलिए जगन्माता भी उनके सम्पूर्ण भार को स्वीकार कर अपने उद्देश्यविशेष के साधन के निमित्त श्रीरामकृष्णदेव के अगोचर अदृष्टपूर्व अभिनव आदर्श के अनुरूप उनका निर्माण कर रही थीं। समस्त साधनों के अन्त में श्रीरामकृष्णदेव ने श्रीजगदम्बा के उस उद्देश्य की उपलब्धि की थी एवं उसे हृदयंगम कर अपने जीवन के अवशिष्ट काल में माँ के साथ प्रेम के द्वारा एकीभूत हो उनके लोककल्याणसाधनरूप महान् दायित्व को अपना समझते हुए आनन्दपूर्वक निभाया था।

और एक प्रकार से विचार करने पर भी यह भलीभाँति अनुभव किया जा सकता है कि मधुरभाव के साधन के अनन्तर श्रीरामकृष्णदेव के

अद्वैतभाव का साधन युक्तियुक्त था। भाव तथा भावातीत——ये दोनों राज्य परस्पर कार्य-कारणसम्बन्ध से सदा बँधे हुए हैं, क्योंकि भावातीत अद्वैतराज्य का भूमानन्द ही सीमाबद्ध होकर भावराज्य के दर्शन-स्पर्शनादि सम्भोगानन्द के रूप में अभिव्यक्त है। अतः मधुरभाव की पराकाष्ठा प्राप्त कर भावराज्य की चरमभूमि में पहुँचने के पश्चात् भावातीत अद्वैत-भूमि के अतिरिक्त उनका मन और किस ओर अग्रसर हो सकता था?

भावसाधना की चरम अवस्था में अद्वैतभाव को प्राप्त करने का प्रयास युक्तियुक्त है।

श्रीजगदम्बा की इच्छानुसार ही श्रीरामकृष्णदेव अद्वैतभाव के साधन में अग्रसर हुए थे; निम्ननलिखित घटना से हमें इस बात का स्पष्ट परिचय मिलता है——

गंगासागर में स्नान तथा पुरुषोत्तम क्षेत्र में श्रीजगन्नाथदेव के साक्षात्-प्रकाश के दर्शन के निमित्त उस समय मध्य भारत से यथेच्छ भ्रमण करते हुए परिव्राजकाचार्य श्रीमत् तोतापुरीजी बंगदेश में आकर उपस्थित हुए थे। पुण्यतोया नर्मदा के तट पर दीर्घकाल तक एकान्तवास करते हुए भजन-साधन में निमग्न रहकर उन्होंने इससे पूर्व निर्विकल्प-समाधि-मार्ग से ब्रह्मसाक्षात्कार किया था, यह बात वहाँ के प्राचीन साधुवर्ग अभी तक कहते हैं। ब्रह्मज्ञ बनने के बाद उनके मन में कुछ दिन तक यथेच्छ परिभ्रमण करने का संकल्प हुआ तथा उसकी प्रेरणा से वे पूर्व भारत में आकर तीर्थाटन करते रहे। आत्माराम पुरुषों के लिए समाधि के अतिरिक्त काल में बाह्य जगत् की उपलब्धि होने पर भी ब्रह्मरूप से उसका उन्हें अनुभव होता रहता है। मायाकल्पित जगत् के अन्तर्गत विशेष विशेष व्यक्ति, देश, काल तथा पदार्थों में न्यूनाधिक रूप से ब्रह्म के प्रकाश की उपलब्धि करते हुए वे उस समय देवस्थान, तीर्थ तथा साधुदर्शन में प्रवृत्त होते हैं। अतः ब्रह्मज्ञ तोतापुरीजी के लिए तीर्थदर्शन में प्रवृत्त होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। पूर्वोक्त दोनों तीर्थों का दर्शन कर भारत के वायव्य की ओर लौटते समय उनका दक्षिणेश्वर में आगमन हुआ था। तीन दिन से अधिक किसी जगह उनके ठहरने का नियम नहीं था, इसलिए कालीमन्दिर में तीन दिन रहने का

श्रीमत् तोतापुरीजी का आगमन।

ही उन्होंने निश्चय किया था। उनके ज्ञान की पूर्णता सम्पादन तथा अपने बालक को उनके द्वारा वेदान्त श्रवण कराने के लिए ही श्रीजगदम्बा की प्रेरणा से उनका वहाँ आगमन हुआ था,—इस बात को तब तक वे हृदयंगम नहीं कर पाए थे।

श्रीरामकृष्णदेव तथा तोतापुरीजी का प्रथम सम्भाषण एवं वेदान्त-साधन के बारे में श्रीराम-कृष्णदेव को देव-आदेश प्राप्ति।

श्रीतोतापुरीजी कालीमन्दिर में आकर सर्वप्रथम घाट पर अवस्थित विशाल 'चाँदनी' के नीचे पधारे थे। श्रीरामकृष्णदेव उस समय वहाँ पर अन्यमनस्क हो एक ओर बैठे हुए थे। उनके तपोदीप्त भावोज्ज्वल मुखमण्डल पर दृष्टि पड़ते ही श्रीमत् तोतापुरीजी उनकी ओर आकृष्ट हुए तथा अपने मन में उन्होंने यह अनुभव किया कि ये सामान्य पुरुष नहीं हैं—वेदान्तसाधन के लिए इस प्रकार उत्तम अधिकारी बहुत कम देखने में आते हैं। तन्त्रप्राण बंगदेश में वेदान्त के इस प्रकार के अधिकारी विद्यमान हैं, यह सोचकर वे अत्यन्त विस्मित हुए तथा श्रीरामकृष्णदेव को भलीभाँति निरीक्षण करने के पश्चात् स्वतः प्रेरित होकर उन्होंने पूछा, "तुम उत्तम अधिकारी प्रतीत हो रहे हो, क्या तुम वेदान्तसाधन करना चाहते हो?"

जटाजूटधारी दीर्घकाय नग्न संन्यासी के इस प्रश्न को सुनकर श्रीराम-कृष्णदेव ने उत्तर दिया, "करने न करने के बारे में मैं कुछ भी नहीं जानता—मेरी माँ सब कुछ जानती हैं, उनका आदेश मिलने पर कर सकता हूँ।"

श्रीमत् तोतापुरी—"तो फिर जाओ, अपनी माँ से पूछकर मुझे जवाब दो; क्योंकि दीर्घकाल तक मैं यहाँ पर नहीं ठहरूँगा।"

श्रीरामकृष्णदेव उस बात का और कोई उत्तर न देकर धीरे-धीरे श्रीजगदम्बा के मन्दिर में उपस्थित हुए एवं भावाविष्ट हो उन्होंने श्रीजग-न्माता की इस वाणी को श्रवण किया,—"जाओ सीखो, तुम्हें सिखाने के लिए ही संन्यासी का यहाँ आगमन हुआ है।"

अर्धबाह्य भावाविष्ट अवस्था में हर्षोत्फुल्ल होकर तब श्रीरामकृष्णदेव श्री तोतापुरीजी के समीप उपस्थित हुए तथा उन्होंने अपनी माँ के इस देव-आदेश को उनसे निवेदित किया। मन्दिर में प्रतिष्ठित देवी को ही

श्रीरामकृष्णदेव प्रेमवश इस प्रकार मातृ सम्बोधन कर रहे हैं, यह जानकर श्रीमत् तोतापुरीजी उनकी बाल-सदृश सरलता से मुग्ध अवश्य हुए, किन्तु उनका यह आचरण, अज्ञता व कुसंस्कारजनित है, ऐसी उन्हें धारणा हुई। अतः हम यह अनुभव कर सकते हैं कि इस प्रकार के सिद्धान्त के फलस्वरूप उस समय उनके ओष्ठ पर करुणा तथा व्यंगमिश्रित मन्दहास्य उत्पन्न हुआ होगा; क्योंकि श्रीमत् तोतापुरी की तीक्ष्ण बुद्धि वेदान्तप्रतिपादित कर्मफलप्रदाता ईश्वर के अतिरिक्त और किसी देव-देवी के सम्मुख सिर नहीं झुकाती थी एवं ब्रह्मध्यानपरायण संयमी साधक के लिए इस प्रकार ईश्वर के अस्तित्व-मात्र में श्रद्धापूर्ण विश्वास के अतिरिक्त स्वयं कृपाप्रार्थी बनकर उनकी भक्ति तथा उपासनादि करने की कोई आवश्यकता है, इस बात को स्वीकार नहीं करती थी तथा त्रिगुणात्मिका ब्रह्मशक्ति माया भ्रम मात्र है, ऐसी धारणा कर तोतापुरीजी उसके व्यक्तिगत अस्तित्व को मानना या उसकी प्रसन्नता के निमित्त उपासनादि करना अनावश्यक समझते थे। फलतः अज्ञान के बन्धन से मुक्त होने के निमित्त पुरुषार्थ के अवलम्बन के बिना साधक के लिए ईश्वर या शक्तिसमन्वित ब्रह्म से याचना व सहायता प्रार्थना करने की किंचिन्मात्र भी उपयोगिता को वे हृदय से अनुभव नहीं करते थे एवं लोग भ्रान्त संस्कारवश ही ऐसा किया करते हैं, यह उनका मत था।

श्रीजगदम्बा के सम्बन्ध में श्रीमत् तोतापुरी की धारणा।

अस्तु, उनसे दीक्षा लेकर ज्ञानमार्ग के साधन में प्रवृत्त होने पर श्रीरामकृष्णदेव के हृदय के पूर्वोक्त संस्कार शीघ्र ही दूर हो जायेंगे, यह सोचकर तोतापुरीजी उस समय उनसे और कुछ न कहकर अन्य बातों की चर्चा करने लगे तथा उन्होंने कहा—वेदान्तसाधन में उपदिष्ट व प्रवृत्त होने से पूर्व उन्हें शिखा-सूत्र त्यागकर यथाशास्त्र संन्यास ग्रहण करना पड़ेगा। श्रीरामकृष्णदेव इस बात को स्वीकार करने में कुछ संकोच का अनुभव करते हुए बोले—यदि गुप्त रूप से वह कार्य हो सकता हो तो उन्हें कुछ भी आपत्ति नहीं है। किन्तु प्रकट रूप से उसका आचरण कर उनकी शोक सन्तप्ता वृद्धा जननी के हृदय में चोट पहुँचाने के लिए वे कदापि

श्रीरामकृष्णदेव के गुप्त-रूप से संन्यास ग्रहण करने का अभिप्राय तथा उसका कारण।

समर्थ नहीं होंगे। यह सुनकर तोतापुरी उनके अभिप्राय को समझ गए और बोले, "ठीक है, शुभ मुहूर्त उपस्थित होने पर मैं तुमको गुप्त रूप से ही दीक्षा प्रदान करूँगा।"—यह कहकर पंचवटी के नीचे आकर उन्होंने अपना आसन बिछाया।

श्रीरामकृष्णदेव द्वारा संन्यास-दीक्षा ग्रहण करने के पूर्ववर्ती कार्यों का सम्पादन।

तदनन्तर शुभ दिन जानकर श्रीमत् तोतापुरी ने श्रीरामकृष्णदेव को पितृ पुरुषों की तृप्ति के लिए श्राद्धादि-क्रिया सम्पन्न करने का आदेश दिया एवं यह कार्य सम्पन्न होने पर शिष्य की अपनी आत्मा की तृप्ति के निमित्त उन्होंने विधिवत् पिण्डदान कराया; क्योंकि संन्यासदीक्षा ग्रहण के समय से साधक भू आदि समस्त लोकों की प्राप्ति की आशा व अधिकार पूर्णतया त्याग देते हैं, इसीलिए शास्त्र ने उससे पूर्व उनको स्वयं अपना प्रेत-पिण्ड प्रदान कर देने का निर्देश किया है।

श्रीरामकृष्णदेव ने जब जिनको गुरुरूप में वरण किया है, उस समय निःसंकोच भाव से उनके समीप आत्मसमर्पण कर उनके आदेशों का अपार विश्वास के साथ पालन किया है। अतः इतना कहना ही पर्याप्त है कि श्रीमत् तोतापुरी उस समय उनको जो कुछ करने को कह रहे थे, अक्षरशः वे उसका अनुष्ठान कर रहे थे। श्राद्धादि पूर्वकृत्य सम्पन्न करने के अनन्तर वे संयत होकर पंचवटीस्थित अपने साधनकुटीर में गुरुदेव द्वारा निर्दिष्ट द्रव्यों का संग्रह कर आनन्दपूर्वक शुभ मुहूर्त की प्रतीक्षा करने लगे।

तदनन्तर रात्रि व्यतीत होकर शुभ ब्राह्म-मुहूर्त के उदय होने पर गुरुदेव एवं शिष्य दोनों उस कुटीर में उपस्थित हुए। पूर्वकृत्य सम्पन्न करने के बाद होमाग्नि प्रज्वलित की गई तथा ईश्वरार्थ सर्वस्व-त्यागरूप जो व्रत सनातन काल से गुरुपरम्परा द्वारा प्रचलित है और जिसने भारत को अभी तक ब्रह्मज्ञ-पदवी में सुप्रतिष्ठित कर रखा है, उस त्यागव्रत का अवलम्बन करने से पूर्व उच्चारण किए जानेवाले मन्त्रों की पवित्र-गम्भीर ध्वनि से पंचवटी का उपवन गूँज उठा। पुण्यसलिला भागीरथी के स्नेहपूर्ण कम्पित वक्षस्थल पर उस ध्वनि के सुखमय स्पर्श ने मानो नवीन जीवन का संचार किया एवं युगयुगान्तर का अलौकिक साधक दीर्घकाल पश्चात्

पुनः भारत तथा समग्र जगत् के बहुजनहिताय सर्वस्वत्यागरूप व्रत ले रहे हैं—इसे संसार को सुनाने के लिए ही मानो भागीरथी आनन्दकलध्वनि करती हुई दिगन्त की ओर प्रवाहित होने लगीं।

गुरुदेव मन्त्रपाठ करने में प्रवृत्त हुए; शिष्य एकाग्र चित्त से उनका अनुसरण कर उन वाक्यों का उच्चारण करते हुए अग्नि में आहुति प्रदान करने को प्रस्तुत हुए। सर्वप्रथम प्रार्थना-मन्त्रों का उच्चारण किया गया—

संन्यास ग्रहण करने के पहले प्रार्थना मन्त्र।

"परब्रह्मतत्व मुझे प्राप्त हो। परमानन्द-लक्षणोपेत वस्तु मुझे प्राप्त हो। अखण्डैकरस मधुमय ब्रह्म वस्तु मुझमें प्रकट हो। ब्रह्मविद्या के साथ नित्य वर्तमान रहनेवाले हे परमात्मन्! देव-मनुष्यादि तुम्हारी समस्त सन्तानों में मैं तुम्हारा विशेष करुणा-पात्र बालक सेवक हूँ। हे संसाररूप दुःस्वप्नहारिन् परमेश्वर! द्वैतप्रतिभासरूप मेरे समस्त दुःस्वप्नों का विनाश करो। हे परमात्मन्! मैं अपनी समस्त प्राण-वृत्तियों को तुम्हारे अन्दर आहुति प्रदान कर सर्व इन्द्रियों का निरोध करके त्वदेकचित्त हो रहा हूँ। हे सर्वप्रेरक देव! ज्ञान-प्रतिबन्धक मेरे समस्त मालिन्य को विदूरित कर मुझमें असम्भावना-विपरीतभावनादिरहित तत्वज्ञान का विकास करो। सूर्य, वायु, सभी नदियों के स्निग्ध निर्मल-वारि, व्रीहियवादि शस्य, वनस्पतिवर्ग तथा जगत् के सम्पूर्ण पदार्थ तुम्हारे निर्देशानुसार अनुकूल रूप से प्रकाशित होकर मुझे तत्वज्ञान प्राप्त करने में सहायता करें। हे ब्रह्मन्! तुम्हीं जगत् में विशेष शक्तिमान् तथा विभिन्न रूपों से प्रकट होकर विद्यमान हो। शरीर तथा मन की शुद्धि के द्वारा तत्वज्ञान को धारण करने की योग्यता प्राप्ति के निमित्त मैं अग्निरूप तुम्हारे अन्दर आहुति प्रदान कर रहा हूँ—तुम मुझ पर प्रसन्न होओ।"*

संन्यास ग्रहण के पहले होनेवाले विरजा होम का सारार्थ।

तदनन्तर विरजा होम प्रारम्भ हुआ—"पृथ्वी, आप, तेज, वायु तथा आकाश रूप से मुझमें अवस्थित पंचभूत शुद्ध हों; आहुति के प्रभाव से रजोगुणजनित मालिन्य से विमुक्त होकर मैं ज्योतिःस्वरूप बन सकूँ—स्वाहा।"

"मुझमें अवस्थित प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान आदि वायु-

* त्रिसुपर्ण मन्त्र का भावार्थ।

विभूषित होकर श्रीरामकृष्णदेव श्रीमत् तोतापुरीजी से उपदेश ग्रहण करने के निमित्त उपविष्ट हुए।

तदनन्तर ब्रह्मज्ञ तोतापुरीजी वेदान्तप्रसिद्ध 'नेति नेति' उपाय का अवलम्बन कर श्रीरामकृष्णदेव को ब्रह्मस्वरूप में अवस्थित होने के लिए प्रोत्साहित करने लगे। उन्होंने कहा—

श्रीरामकृष्णदेव को ब्रह्मस्वरूप में अवस्थित होने के लिए श्रीमत् तोतापुरीजी की प्रेरणा।

नित्य शुद्ध-बुद्ध मुक्तस्वभाव, देश कालादि द्वारा सर्वदा अपरिच्छिन्न एकमात्र ब्रह्मवस्तु ही सदा सत्य है। अघटन-घटन-पटीयसी माया अपने प्रभाव से उनको नाम-रूप के द्वारा खण्डितवत् प्रतीत कराने पर भी वे वास्तव में कभी उस प्रकार नहीं हैं; क्योंकि समाधि-अवस्था में मायाजनित देश-काल या नाम रूप की किंचिन्मात्र भी उपलब्धि नहीं होती है। अतः नाम-रूप की सीमा के भीतर जो कुछ अवस्थित है, वह कभी नित्य नहीं हो सकता, उसको दूर से त्याग दो। नाम-रूप के दृढ़ पिंजर को सिंह-विक्रम से भेदकर निकल आओ। अपने में अवस्थित आत्मतत्व के अन्वेषण में डूब जाओ। समाधि के सहारे उसमें अवस्थित रहो; ऐसा करने पर देखोगे कि उस समय नामरूपात्मक जगत् न जाने कहाँ विलुप्त हो चुका है, उस समय तुच्छ अहंज्ञान विराट् में लीन व स्तब्ध हो जावेगा तथा अखण्ड सच्चिदानन्द को अपना स्वरूप समझकर साक्षात् रूप से प्रत्यक्ष कर सकोगे। "जिस ज्ञान का अवलम्बन कर एक व्यक्ति दूसरे को देखता व जानता है या दूसरे की बातों को सुनता है, वह 'अल्प' या तुच्छ है—उसमें परमानन्द नहीं है; किन्तु जिस ज्ञान में अवस्थित होकर एक व्यक्ति दूसरे को नहीं देखता है, नहीं जानता है या दूसरे की वाणी को इन्द्रियगोचर नहीं करता है—वही 'भूमा' या महान् है, उसके सहारे परमानन्द में अवस्थिति होती है। जो सदा सबके अन्दर विज्ञातारूप से विराजमान हैं, उनको किस मन-बुद्धि द्वारा जाना जा सकता है?"

श्रीमत् तोतापुरीजी ने उपर्युक्त प्रकार से विभिन्न युक्ति तथा सिद्धान्त-

---

और कुछ लोगों का कथन है कि श्रीरामकृष्णदेव के परमभक्त सेवक श्रीमथुरामोहनजी ने ही सर्वप्रथम उनको उस नाम से अभिहित किया था। पहला अभिमत ही हमें समीचीन प्रतीत होता है।

वाक्यों की सहायता से उस दिन श्रीरामकृष्णदेव को समाधिस्थ करने का प्रयास किया था। हमने स्वयं श्रीरामकृष्णदेव से सुना है कि तोतापुरीजी उस दिन मानो अपने जीवन भर की साधनालब्ध उपलब्धियों को उनके हृदय में प्रविष्ट कराकर उन्हें तत्काल ही अद्वैत भाव में समाधिस्थ कराने के लिए सन्नद्ध हो उठे थे। वे कहते थे, "दीक्षा प्रदान करने के पश्चात् न्यांगटा (तोतापुरीजी) नाना प्रकार के सिद्धान्तवाक्यों का उपदेश देने लगा तथा उसने मन को सब प्रकार से निर्विकल्प कर आत्मचिन्तन में निमग्न हो जाने को कहा। किन्तु मेरी स्थिति ऐसी हुई कि जब मैं ध्यान करने बैठा, उस समय प्रयत्नपूर्वक भी मैं अपने मन को निर्विकल्प कर न सका यानी नाम-रूप की सीमा से मुक्त न कर सका। अन्य समस्त विषयों से सहज में मन परावृत्त हुआ, किन्तु तत्काल ही उसमें श्रीजगदम्बा की चिरपरिचित चिद्घनोज्ज्वल मूर्ति प्रदीप्त तथा जाग्रत रूप से समुदित होकर सब प्रकार के नाम रूप परित्याग की बात को एक साथ विस्मृत कराने लगीं। सिद्धान्तवाक्यों को सुनने के पश्चात् ध्यान के लिए बैठकर जब बारम्बार ऐसा होने लगा, तब निर्विकल्प समाधि के सम्बन्ध में मैं प्रायः निराश हो उठा एवं आँखें खोलकर मैंने न्यांगटा से कहा, 'मुझसे यह सम्भव नहीं है, मन को पूर्णतया निर्विकल्प कर आत्मचिन्तन करने में मैं असमर्थ हूँ।' न्यांगटा उस समय अत्यन्त उत्तेजित होकर तीव्र तिरस्कार करता हुआ बोला, 'क्यों नहीं होगा?'—यह कहकर कुटिया के अन्दर चारों ओर देखने लगा एवं एक काँच के टुकड़े पर दृष्टि पड़ते ही उसने उसे उठा लिया तथा सुई की तरह उसके तीक्ष्ण अग्रभाग को मेरी भौंहों के बीच में बलपूर्वक गड़ाकर बोला, 'इस बिन्दु में अपने मन को समेट लो।' तब पुनः दृढ़संकल्प हो मैं ध्यान करने बैठा तथा श्रीजगदम्बा की मूर्ति पहले की भाँति मन में उदित होते ही ज्ञान को खड्ग के रूप में कल्पना कर उसके द्वारा उस मूर्ति को मैंने मन ही मन दो टुकड़े कर डाला, फिर मेरे मन में और कोई विकल्प न रहा; तीव्र गति से मेरा मन समग्र नाम-रूप-राज्य के परे चला गया और मुझे समाधि लग गई।"

श्रीरामकृष्णदेव के मन को निर्विकल्प करने का प्रयास विफल होने पर तोतापुरीजी का आचरण तथा श्रीरामकृष्णदेव की निर्विकल्प समाधि।

इस प्रकार से श्रीरामकृष्णदेव के समाधिस्थ होने पर श्रीतोतापुरीजी बहुत देर तक उनके समीप बैठे रहे। तदनन्तर चुपचाप वे बाहर निकल* आए एवं उनके अज्ञात में कोई कुटिया के अन्दर जाकर उनसे छेड़छाड़ न करे, इसलिए उन्होंने दरवाजे में ताला लगा दिया। तदुपरान्त कुटिया से कुछ ही दूरी पर पंचवटी के नीचे अपने आसन पर बैठकर दरवाजा खोल देने के लिए श्रीरामकृष्णदेव के आह्वान की वे प्रतीक्षा करने लगे।

श्रीरामकृष्णदेव को यथार्थ में निर्विकल्प समाधि हुई है अथवा नहीं, इस विषय में श्रीतोतापुरीजी की परीक्षा तथा उनका विस्मय।

दिन बीतने के बाद रात्रि आई---फिर दिन हुआ, रात हुई। इसी तरह तीन दिन बीत गए, किन्तु श्रीरामकृष्णदेव ने श्रीतोतापुरीजी को दरवाजा खोलने के लिए नहीं बुलाया। तब विस्मय तथा उत्सुकता से तोतापुरीजी स्वयं आसन छोड़कर उठ खड़े हुए और शिष्य की स्थिति को जानने के लिए किवाड़ खोलकर कुटिया में प्रविष्ट हुए। भीतर जाकर उन्होंने देखा कि श्रीरामकृष्णदेव को वे जैसे बैठे छोड़ गए थे, ठीक उसी तरह वे बैठे हुए हैं, शरीर में प्राण का चिह्न तक नहीं है, किन्तु उनका मुखमण्डल प्रशान्त, गम्भीर तथा ज्योतिःपूर्ण है! उनको यह विदित हो गया कि शिष्य बाह्य जगत् के सम्बन्ध में सम्पूर्ण मृतप्राय बन चुका है--निवात-निष्कम्प-प्रदीप की भाँति उनका चित्त ब्रह्म में लीन होकर अवस्थान कर रहा है।

समाधिरहस्यवेत्ता तोतापुरीजी स्तम्भित होकर यह सोचने लगे---"मैं जो कुछ देख रहा हूँ, क्या वास्तव में यह सत्य है---चालीस वर्ष तक कठोर साधना करने पर मुझे अपने जीवन में जिस वस्तु की उपलब्धि हुई है, क्या इस महापुरुष ने सचमुच एक ही दिन के अन्दर उस पर अपना अधिकार जमा लिया है?" संशयान्वित होकर तोतापुरीजी पुनः परीक्षा करने में प्रवृत्त हुए, अत्यन्त तत्परता के साथ शिष्य के शरीर पर प्रकटित लक्षणों की वे पर्यालोचना करने लगे। हृदय स्पन्दित हो रहा है या नहीं, नाक द्वारा श्वासोच्छ्वास हो रहा है या नहीं, इस बात की विशेष रूप से उन्होंने परीक्षा की। धीर अचंचल काष्ठखंड की तरह अटल रूप से अवस्थित शिष्यशरीर का उन्होंने बारम्बार स्पर्श किया। किन्तु उससे कोई विकार, वैलक्षण्य अथवा चेतना का संचार नहीं हुआ!

तब विस्मय तथा आनन्द से विह्वल होकर तोतापुरीजी चिल्लाकर कह उठे—

"यह क्या दैवी माया—यह तो सचमुच समाधि ही है! वेदान्तोक्त ज्ञानमार्ग का चरम फल-निर्विकल्प समाधि और वह भी एक दिन के भीतर!—भगवान् की यह कैसी अद्भुत माया है!"

श्रीमत् तोतापुरी द्वारा श्रीरामकृष्णदेव की समाधि भंग करने की चेष्टा।

तदनन्तर समाधि से शिष्य को व्युत्थित करने के निमित्त तोतापुरीजी विभिन्न प्रकार की प्रक्रियाएँ करने लगे एवं उनके 'हरिः ॐ' शब्द से पंचवटी के जल-स्थल-आकाश गूँज उठे।

शिष्य-प्रेम में मुग्ध होकर तथा निर्विकल्प भूमि में शिष्य को दृढ़-प्रतिष्ठित करने की आकांक्षा से श्रीमत् तोतापुरीजी वहाँ पर किस प्रकार दिन व्यतीत करने लगे थे एवं श्रीरामकृष्णदेव की सहायता से कैसे अपने आध्यात्मिक जीवन को उन्होंने सर्वांगसम्पूर्ण किया था, इसका हमने अन्यत्र * विस्तारपूर्वक वर्णन किया है, अतः अभी यहाँ पर उसका उल्लेख नहीं कर रहे हैं।

लगातार ग्यारह महीने तक दक्षिणेश्वर में रहने के पश्चात् श्रीमत् तोतापुरीजी भारत के वायव्य की ओर चल दिए। ठीक इस घटना के बाद ही श्रीरामकृष्णजी के मन में निरन्तर निर्विकल्प अद्वैत भूमि में रहने के दृढ़-संकल्प का उदय हुआ। किस तरह उन्होंने उस संकल्प को कार्यरूप में परिणत किया था—जीवकोटि के अन्तर्गत साधकों का तो कहना ही क्या, अवतार-सदृश उच्च अधिकारी वर्ग भी दीर्घकाल तक जिस घनीभूत अद्वैतावस्था में नहीं रह पाते हैं, निरवच्छिन्न-रूप से उस भूमि में छः महीने तक उन्होंने कैसे अवस्थान किया था—तथा उस समय एक साधु पुरुष कालीमन्दिर में उपस्थित होकर, श्रीरामकृष्णदेव के द्वारा आगे चलकर विशेष रूप से लोककल्याण साधित होगा, यह जानकर छः महीने तक वहाँ रहकर विभिन्न उपायों से उन्होंने किस तरह उनके शरीर की रक्षा की थी, इसका विवरण हमने अन्यत्र † दिया है। अतः श्रीरामकृष्णदेव की सहायता से उस समय मथुरबाबू के जीवन में जो विशेष घटना उपस्थित हुई

---

* गुरुभाव-पूर्वार्ध, अष्टम अध्याय देखिए।

† गुरुभाव-पूर्वार्ध, द्वितीय अध्याय देखिए।

थी, उसी का उल्लेख कर हम इस अध्याय का उपसंहार करना चाहते हैं।

श्रीरामकृष्णदेव द्वारा जगदम्बादासी को कठिन व्याधि से आरोग्य करना।

श्रीरामकृष्णदेव के भीतर नाना प्रकार की दैवी-शक्तियों का दर्शन पाकर पहले ही से उनके प्रति श्रीमथुरामोहन की श्रद्धा-भक्ति विशेष रूप से वर्धित हुई थी। उस समय की एक घटना के द्वारा उनकी वह भक्ति और भी अधिक रूप से अटल हुई थी तथा सदा के लिए वे श्रीरामकृष्णदेव के शरणागत बन गए थे।

मथुरामोहनजी की द्वितीय पत्नी श्रीमती जगदम्बादासी इस समय संग्रहणी रोग से आक्रान्त हुईं। रोग क्रमशः इतना अधिक बढ़ गया कि कलकत्ते के प्रसिद्ध वैद्य, डॉक्टर आदि उनके उपचार के सम्बन्ध में पहले संशयान्वित तथा बाद में हताश हो गए।

हमने श्रीरामकृष्णदेव से सुना है कि मथुरामोहनजी देखने में रूपवान् थे, किन्तु गरीब घराने में उनका जन्म हुआ था। उनको रूपवान् देखकर ही रानी रासमणि ने सर्वप्रथम उनके साथ अपनी तीसरी पुत्री श्रीमती करुणामयी का विवाह किया था तथा उस पुत्री के देहान्त हो जाने पर पुनः उन्होंने अपनी छोटी पुत्री श्रीमती जगदम्बादासी के साथ उनका विवाह कर दिया था। अतः विवाह के बाद ही श्रीमथुरामोहनजी की स्थिति में परिवर्तन हुआ था और वे स्वयं अपनी बुद्धिमत्ता तथा कार्यकुशलता के द्वारा क्रमशः अपनी सास के प्रियपात्र हो गए थे। तदनन्तर रानी रासमणि की मृत्यु के पश्चात् किस तरह रानी की जमीन-जायदाद आदि की देखभाल करने में उनको एकाधिपत्य प्राप्त हुआ था, यह हम पहले ही पाठकों से कह चुके हैं।

जगदम्बादासी के कठिन रोग से मथुरामोहनजी का न केवल प्रियतमा पत्नी से ही वियोग होने जा रहा था, अपितु उसके साथ ही साथ उनकी सास की सम्पत्ति से भी उनके पूर्वोक्त अधिकार का नष्ट हो जाना अनिवार्य था। अतः उनकी तत्कालीन मानसिक अवस्था के सम्बन्ध में अधिक कहना अनावश्यक है।

रोगी की स्थिति को देखकर जब वैद्य-डाक्टर जवाब दे गए, तब मथुरामोहन व्याकुल होकर दक्षिणेश्वर पहुँचे तथा कालीमन्दिर में श्रीजगन्माता

को प्रणाम कर श्रीरामकृष्णदेव को ढूँढ़ने के लिए पंचवटी पहुँचे। उनकी उस समय की उन्मत्त-जैसी अवस्था देखकर श्रीरामकृष्णदेव ने यत्नपूर्वक उन्हें अपने समीप बैठाया और उसका कारण पूछा। तब मथुरामोहन उनके चरणों में गिर पड़े और आँखों में आँसू भरकर गद्गद् कण्ठ से सारी बातें निवेदन कर अत्यन्त दीनता के साथ कहने लगे, "मेरा जो कुछ होतव्य है, वही होने जा रहा है; किन्तु बाबा, मुझे तुम्हारी सेवा के अधिकार से भी वंचित होना पड़ेगा, अब मैं तुम्हारी सेवा न कर सकूँगा।"

मथुरामोहन को इस प्रकार दुःखित देखकर श्रीरामकृष्णदेव का हृदय करुणार्द्र हो उठा। भावाविष्ट होकर उन्होंने मथुरामोहन से कहा, "घबराने की कोई बात नहीं है, तुम्हारी पत्नी अवश्य स्वस्थ हो जायगी।" विश्वाससम्पन्न मथुरामोहन श्रीरामकृष्णदेव को साक्षात् देवतासदृश समझते थे, अतः उस दिन उनकी अभय वाणी से जीवन प्राप्त कर वहाँ से वे चल दिए। तदनन्तर जानबाजार स्थित भवन में पहुँचकर उन्होंने देखा कि जगदम्बादासी की कठिन स्थिति में एकाएक परिवर्तन हो चुका है। श्रीरामकृष्णदेव कहते थे, "उस दिन से जगदम्बादासी का रोग धीरे-धीरे घटने लगा और उसके उस रोग का भोग (अपना शरीर दिखाकर) इस देह पर होता रहा, उसके आरोग्य होने के पश्चात छः महीने तक उदर-रोग तथा विभिन्न तरह से मुझे कष्ट उठाना पड़ा था।"

एक दिन श्रीरामकृष्णदेव ने अपने प्रति मथुरामोहन की अद्भुत प्रेमपूर्णसेवा का वर्णन करते हुए हमसे उपरोक्त घटना का उल्लेख कर कहा था, "मथुर ने क्या वैसे ही चौदह वर्ष तक सेवा की थी? माँ ने (अपना शरीर दिखाकर) इसके अन्दर से नाना प्रकार की अद्भुत वस्तुओं का उसे दर्शन कराया था, इसीलिए उसने इतनी सेवा की थी।"

षोड़श अध्याय

वेदान्तसाधनासम्बन्धी अवशिष्ट बातें तथा इस्लामधर्मसाधना

जगदम्बादासी को कठिन बीमारी से आरोग्य करने के कारण, अथवा अद्वैत-भावभूमि में निरन्तर अवस्थान करने के निमित्त सतत छः महीने तक श्रीरामकृष्णदेव ने जो अलौकिक प्रयास किया था, तदर्थ उनके दृढ़ स्वास्थ्य को धक्का लग चुका था और वे कई महीनों तक रोगग्रस्त रहे थे। हमने उनसे सुना है कि उस समय उनको विकट आंव-दस्त का रोग हो गया था। उनके भानजे हृदयराम उनकी सेवा में नियुक्त थे एवं उनको स्वस्थ तथा रोगमुक्त करने के निमित्त श्री मथुरामोहन ने प्रसिद्ध वैद्य गंगाप्रसाद सेन की चिकित्सा तथा पथ्य आदि की विशेष व्यवस्था कर दी थी। किन्तु शरीर के इस प्रकार व्याधिग्रस्त होने पर भी श्रीराम-कृष्णदेव का देहज्ञानविवर्जित मन जिस तरह अपूर्व शान्ति तथा निरवच्छिन्न आनन्द में मग्न रहता था, वह अवर्णनीय है। सामान्य उद्दीपनमात्र से* शरीर, व्याधि तथा संसार के समस्त विषयों से पृथक् होकर उनका मन एकदम निर्विकल्प भूमि में आरूढ़ हो जाता था एवं ब्रह्म, आत्मा या ईश्वर का स्मरण होते ही अन्यान्य समस्त बातों को भूलकर तन्मय हो कुछ काल के लिए उनके मन को अपने पृथक् अस्तित्व का ज्ञान तक नहीं रहता था। अतः यह स्पष्ट है कि रोग के प्रकोप से उनके शरीर में [illegible]हनीय यातना होने पर भी, उन्हें उसकी सामान्यतया उपलब्धि आ[illegible]ी। किन्तु कभी-कभी रोग के कष्ट से उनका मन उच्च भाव-अधिक[illegible]रकर शरीर में अभिनिविष्ट हो जाया करता था, यह बात रो[illegible] श्रीमुख से सुनी है। श्रीरामकृष्णदेव कहते थे कि उस

श्रीरामकृष्णदेव की कठिन व्याधि तथा उस समय उनके अपूर्व मानसिक आचरण।

* मथुरामोहन [illegible]र्ध, द्वितीय अध्याय देखिए।

समय उनके समीप वेदान्तमार्ग में विचरण करनेवाले साधकाग्रगण्य परमहंसों का आगमन हुआ था एवं 'नेति नेति', 'अस्ति-भाति-प्रिय', 'अयमात्मा ब्रह्म' इत्यादि वेदान्तप्रसिद्ध तत्वों की विचारध्वनि से उनका निवासस्थान निरन्तर गूँजता रहता था। * उन उच्च तत्वों के विचार के समय जब वे लोग किसी बात की मीमांसा नहीं कर पाते थे, तब श्रीरामकृष्णदेव को ही स्वयं मध्यस्थ होकर उसका निर्णय करना पड़ता था। अतः यह कहना ही पर्याप्त है कि साधारण व्यक्ति की तरह रोग के कष्ट से निरन्तर पीड़ित रहने पर उनके लिए कठोर दार्शनिक विचार-विमर्श में इस प्रकार सर्वदा सम्मिलित होना कभी भी सम्भव नहीं था।

अद्वैत भाव में प्रतिष्ठित होने के उपरान्त श्रीरामकृष्णदेव को दर्शन प्राप्त होना तथा उसके फलस्वरूप उनको उपलब्धियाँ।

हमने अन्यत्र यह कहा है कि निर्विकल्प भूमि में अवस्थान करते समय उसके अन्तिम भाग में श्रीरामकृष्णदेव को एक विचित्र दर्शन या उपलब्धि हुई थी। उन्हें 'भावमुख' अवस्था में रहने का तीसरी बार आदेश प्राप्त हुआ था। + 'दर्शन' कहकर इस विषय का उल्लेख किए जाने पर भी वह घटना वास्तव में उनकी हार्दिक उपलब्धि से सम्बन्धित थी। इस बात को पाठक स्वयं समझ लें; क्योंकि पहले दो बार की तरह श्रीरामकृष्णदेव ने उस समय किसी दृष्ट-मूर्ति के मुख से उस बात को श्रवण नहीं किया था। किन्तु तुरीय, अद्वैत तत्व में एकदम एकीभूत हो अवस्थित न रहकर जब उनका मन उस तत्व से कथंचित् पृथक् होकर सगुण विराट् ब्रह्म या श्रीजगदम्बा के अंशरूप से अपने को प्रत्यक्ष कर रहा था, उस समय उस विराट् ब्रह्म के विराट्-मन में उस प्रकार के भाव या इच्छा की विद्यमानता की ही उन्होंने साक्षात् उपलब्धि की थी। × उस उपलब्धि से उनके मन में अपने जीवन की भावी आवश्यकता भी सम्यक् रूप से प्रस्फुटित हो उठी थी; क्योंकि उनके अन्दर शरीररक्षा की लेशमात्र आकांक्षा न रहते हुए भी श्रीजगदम्बा की विचित्र इच्छा से बारम्बार

* गुरुभाव-उत्तरार्ध, द्वितीय अध्याय देखिए।

+ साधकभाव अष्टम अध्याय देखिए।

× गुरुभाव-पूर्वार्ध, तृतीय अध्याय देखिए।

'भावमुख' अवस्था में रहने का आदेश प्राप्तकर श्रीरामकृष्णदेव ने यह अनुभव किया था कि अपना कोई प्रयोजन न रहने पर भी भगवल्लीला की आवश्यकता के लिए उन्हें अपने शरीर की रक्षा करनी होगी तथा यह जानकर ही कि सर्वदा ब्रह्म में अवस्थान करने पर शरीर का रहना असम्भव है, उनको इस प्रकार का आदेश प्राप्त हुआ है। पूर्वजन्म की घटनाओं का स्मरण कर श्रीरामकृष्णदेव उसी समय यह भलीभाँति समझ चुके थे कि वे नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-स्वभाववान उच्च अधिकारसम्पन्न अवतार-पुरुष हैं, वर्तमान युग की धर्मग्लानि को दूर कर लोककल्याणसाधन के निमित्त ही उन्हें शरीरधारण तथा तपस्यादि का अनुष्ठान करना पड़ा है। साथ ही इस बात को भी उन्होंने उस समय हृदयंगम किया था कि किसी विशेष उद्देश्य के साधन के निमित्त ही श्रीजगदम्बा ने बाह्य-ऐश्वर्य आडम्बर शून्य ब्राह्मण कुल में निरक्षर रूप से अब की बार उनको आविर्भूत कराया है एवं उनकी जीवित अवस्था में यद्यपि अल्पसंख्यक लोग ही उस लीला-रहस्य को समझ सकेंगे, फिर भी उनके शरीर तथा मन के द्वारा जगत् में जिस आध्यात्मिक प्रबल तरंग का उदय होगा, वह सर्वथा अमोघ होगी तथा उससे अनन्तकाल तक लोगों का कल्याण होता रहेगा।

ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने के पूर्व साधकों के लिए पूर्वजन्म की घटनाओं के स्मरण-सम्बन्धी शास्त्रीय बातें।

इस प्रकार की असाधारण उपलब्धियाँ श्रीरामकृष्णदेव के लिए किस तरह उपस्थित हुई थीं, यह समझने के लिए हमें कुछ शास्त्रवाक्यों की ओर ध्यान देना पड़ेगा। शास्त्रों का कथन है कि अद्वैत भाव की सहायता से ज्ञानस्वरूप में पूर्ण रूप से अवस्थित होने के पूर्व साधकों को पूर्वजन्म की घटनाओं का स्मरण होता है। * अथवा उस भाव की परिपक्व अवस्था में साधकों की स्मृति ऐसी परिणत दशा में उपस्थित होती है कि इसके पूर्व जहाँ पर जिस तरह जितनी बार शरीर धारण कर उन लोगों ने जो कुछ सुकृत-दुष्कृतों का अनुष्ठान किया था, उन सारी बातों का उन्हें स्मरण होने लगता है। फलतः संसार की समस्त वस्तुओं की नश्वरता तथा रूप रसादि विषयों के पीछे

* 'संस्कारसाक्षात्करणात् पूर्वजातिज्ञानम्'—पातंजलसूत्र, विभूतिपाद,

छोड़ने से बारम्बार एक ही तरह जन्म लेने की विफलता सम्यक्रूपेण प्रकट होने के कारण उन लोगों के मन में तीव्र वैराग्य का उदय होता है। और उस वैराग्य के सहारे उनका हृदय सब तरह की वासना से एकदम मुक्त हो जाता है।

ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् साधकों की एवं प्रकार योगविभूति तथा संकल्पसिद्धि के सम्बन्ध में शास्त्रीय सिद्धान्त।

उपनिषद् * का कहना है कि इस प्रकार से पुरुष सिद्ध-संकल्प होते हैं तथा उनको देव, पितृ आदि जिस लोक के देखने की जब इच्छा होती है, तभी वे समाधिबल से उन लोकों का साक्षात् दर्शन करने में समर्थ होते हैं। महामुनि पतंजलि ने स्वरचित योगशास्त्र में इस विषय का उल्लेख कर कहा है कि ऐसे पुरुषों में सर्व प्रकार की विभूति या योगैश्वर्यों का स्वतः ही उदय होता है। पंचदशीकार सायन माधव × ने इस तरह के पुरुषों की वासनाशून्यता तथा योगैश्वर्य प्राप्ति—इन दोनों में सामंजस्य स्थापित करते हुए यह कहा है कि इस प्रकार विचित्र ऐश्वर्यों को प्राप्त करने पर भी उनके हृदय में लेशमात्र वासना न रहने के कारण वे कभी भी उन शक्तियों का प्रयोग नहीं करते। संसार में जैसी स्थिति में रहते हुए मनुष्य को ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होती है, उस ज्ञान को प्राप्त करने के पश्चात् भी वह उसी हालत में दिन व्यतीत करता रहता है, क्योंकि सब प्रकार से चित्त वासनाशून्य होने के कारण, समर्थ होता हुआ भी वह उस स्थिति को बदलना किंचिन्मात्र भी आवश्यक नहीं समझता। केवल

---

* छांदोग्य उपनिषद्, अष्टम प्रपाठक। द्वितीय खण्ड।

× ग्रन्थकर्ता के समय में प्रायः यह धारणा थी कि पंचदशी केवल एक ही व्यक्ति द्वारा लिखी गई थी जिनका नाम 'सायन' वेदटीकाकार था। इन्हीं का दूसरा नाम माधव था जो कि एक प्रख्यात वेदान्त के नाम से प्रसिद्ध थे। यह धारणा बाद के अन्वेषणों द्वारा सत्य सिद्ध नहीं हुई। अब विश्वास यह है कि केवल एक ही ग्रंथकार ने नहीं बल्कि ग्रंथकारद्वय भारती कृष्णतीर्थ तथा विद्यारण्य (माधव) ने इस ग्रन्थ को तैयार किया था।

(इस सम्बन्ध में अधिक विवरण के लिए देखिए: विवरणप्रमेयसंग्रहः— एस. एस. सूर्यनारायण शास्त्रीकृत–१९४१ संस्करण की भूमिका, पृष्ठ १०–१४)

अधिकारी पुरुषवर्ग * ही पूर्णतया ईश्वरेच्छाधीन रहकर 'बहुजन हिताय' कभी-कभी उन शक्तियों का प्रयोग किया करते हैं।

पूर्वोक्त शास्त्रीय बातों को ध्यान में रखते हुए श्रीरामकृष्णदेव के तत्कालीन जीवन का पर्यवेक्षण करने पर उनकी उस समय की विचित्र अनुभूतियों को, सम्यक्‌रूपेण न होने पर भी अधिकांश रूप से समझा जा सकता है। इस प्रकार पर्यवेक्षण द्वारा हमें यह विदित होता है कि हृदय से सब कुछ भगवच्चरणों में समर्पण करने के फलस्वरूप सब प्रकार की वासनाओं से मुक्त होने के कारण ही इतने अल्प समय के अन्दर श्रीरामकृष्णदेव के लिए ब्रह्मज्ञान की निर्विकल्प भूमि में आरूढ़ तथा दृढ़-प्रतिष्ठित होना सम्भव हुआ था। साथ ही पूर्वजन्म के वृत्तान्तों को जानकर उन्होंने उस समय यह स्पष्ट अनुभव किया था कि पूर्व-पूर्व युगों में 'श्रीराम' तथा 'श्रीकृष्ण' रूप से आविर्भूत होकर जिन्होंने लोक-कल्याणसाधन किया था, वे ही वर्तमान युग में पुनः शरीर धारण कर 'श्रीरामकृष्ण' के रूप में आविर्भूत हुए हैं। लोककल्याणसाधन के निमित्त परवर्ती जीवन में उनके भीतर विचित्र विभूतियों का नित्य प्रकाश दिखाई देने पर भी क्यों हम उन्हें अपने शरीर तथा मन की तृप्ति के लिए कभी उन दिव्य शक्तियों का प्रयोग करते हुए नहीं देखते हैं एवं किस तरह वे संकल्पमात्र से ही उन आध्यात्मिक तत्वों को प्रत्यक्ष करने की शक्ति दूसरों के अन्दर जागृत करने में समर्थ होते थे तथा पृथ्वी के समस्त देशों में दिनोंदिन क्यों उनके दिव्य प्रभाव का अपूर्व आधिपत्य विस्तृत हो रहा है—इन विषयों को भी हम भलीभाँति अनुभव कर सकते हैं।

पूर्वोक्त शास्त्रीय बातों के अनुसार श्रीरामकृष्ण-देव के जीवन का पर्य-वेक्षण करने पर उनकी अपूर्व उपलब्धियों का कारण समझा जा सकता है।

अद्वैतभाव में दृढ़प्रतिष्ठ होकर भावराज्य में अवरोहण करते समय श्रीरामकृष्णदेव ने इस प्रकार अपने जीवन की भूत तथा भावी अवस्थाओं की सम्यक् उपलब्धि की थी। किन्तु वे उपलब्धियाँ उनके भीतर सहसा

* लोककल्याणसाधन के निमित्त विशेष अधिकार या शक्ति को लेकर आविर्भूत होनेवाले पुरुष।

श्रीरामकृष्णदेव के भीतर पूर्वोक्त उपलब्धियाँ एक साथ उपस्थित न होने का कारण।

एक ही दिन में उपस्थित हुई हों, ऐसा प्रतीत नहीं होता। हमारी धारणा है कि भावभूमि में अवरोहण करने के पश्चात् एक वर्ष के अन्दर उन्हें उन विषयों की यथार्थ उपलब्धि हुई थी। श्रीजगन्माता ने उस समय उनकी आँखों के सामने से एक के बाद दूसरे आवरण को हटाकर क्रमशः स्पष्टतया उनको इन विषयों से परिचित कराया था। वे सब उपलब्धियाँ उनके मन में एक साथ क्यों नहीं उपस्थित हुईं, इसके कारण के सम्बन्ध में हमें यह कहना पड़ेगा कि अद्वैतभाव में अवस्थित रहकर उस समय वे निरन्तर गम्भीर ब्रह्मानन्द में निमग्न थे। अतः उनका मन जब तक बाह्यवृत्तियों की ओर अग्रसर नहीं हुआ था, तब तक उनके लिए न तो उन विषयों की उपलब्धि करने का अवसर था और न उस प्रकार की अभिलाषा का ही उदय हुआ था। साधन के प्रारम्भ में श्रीरामकृष्णदेव ने श्रीजगन्माता से जो यह प्रार्थना की थी—"माँ, मुझे क्या करना चाहिए यह मैं कुछ भी नहीं जानता हूँ, तू मुझे जो सिखायेगी, मैं वही सीखूँगा"—वह भी उस समय इस प्रकार से पूर्ण हुई थी।

अद्वैतभाव को प्राप्त करना ही समस्त साधनों का लक्ष्य है—श्रीरामकृष्णदेव को इस प्रकार की उपलब्धि।

अद्वैतभावभूमि में आरूढ़ होकर श्रीरामकृष्णदेव को उस समय और एक विषय की भी उपलब्धि हुई थी। उन्होंने यह हृदयंगम किया था कि अद्वैत भाव में सुप्रतिष्ठित होना ही समस्त साधनों का चरम लक्ष्य है, क्योंकि भारत में प्रचलित समस्त मुख्य धर्मसम्प्रदायों के मतानुसार साधन कर उन्होंने इससे पूर्व यह अनुभव किया था कि प्रत्येक साधन ही उक्त भूमि की ओर साधक को अग्रसर करता रहता है। इसलिए अद्वैत भाव के विषय में पूछने पर बारम्बार वे हमसे यही कहा करते थे—"वह तो अन्तिम बात है, रे, अन्तिम बात; ईश्वरप्रेम की चरम परिणति में स्वतः ही वह भाव साधक के जीवन में आकर उपस्थित होता है; समस्त मतों के अनुसार ही उसे अन्तिम बात समझनी चाहिए एवं जितने मत हैं उतने ही पथ हैं।"

इस प्रकार से अद्वैतभाव की उपलब्धि कर श्रीरामकृष्णदेव के हृदय

में असीम उदारता का विकास हुआ था। ईश्वर-प्राप्ति को ही मानव-जीवन का लक्ष्य मानकर जो शिक्षा प्रदान करते हैं, उन समस्त सम्प्रदायों के प्रति उस समय उनकी अपूर्व सहानुभूति का उदय हुआ था। किन्तु उस प्रकार की उदारता तथा सहानुभूति सम्पूर्णतया उनकी निजी सम्पत्ति हैं एवं इससे पूर्व किसी भी युग में उच्च कोटि का कोई भी साधक उनकी तरह पूर्णरूप से उस वस्तु को प्राप्त करने में समर्थ नहीं हुआ था, इस बात को सर्वप्रथम वे नहीं समझ पाए थे। दक्षिणेश्वर के कालीमन्दिर तथा प्रसिद्ध तीर्थों में विभिन्न सम्प्रदायों के प्रवीण साधकों से मिलकर क्रमशः उन्हें इस बात की उपलब्धि हुई थी। किन्तु तब से किसी को धर्म के विषय में पक्षपात करते हुए देखते ही उन्हें महान् कष्ट होता था तथा उस हीनबुद्धि को दूर करने के लिए वे सर्वथा सचेष्ट होते थे।

उनसे पूर्व अन्य किसी ने पूर्णरूप से पूर्वोक्त भाव की उपलब्धि नहीं की थी।

अद्वैतविज्ञान में प्रतिष्ठित होकर उस समय श्रीरामकृष्णदेव का हृदय किस प्रकार उदार बना था, तत्कालीन एक घटना से हमें उसका पता चलता है। हम देख चुके हैं कि उक्त भाव-साधन में सिद्ध होने के पश्चात् श्रीरामकृष्णदेव का शरीर कुछ महीनों तक रोगाक्रान्त रहा था, उस रोग से मुक्त होने के बाद उल्लिखित घटना उपस्थित हुई थी।

अद्वैतविज्ञान में प्रतिष्ठित श्रीरामकृष्णदेव की मानसिक उदारता का दृष्टान्त--उनका इस्लाम-धर्म साधन।

गोविन्दराय नामक एक सज्जन उस समय से कुछ काल पूर्व धर्मालोचना में प्रवृत्त हुए थे। हृदयराम के कथनानुसार जाति के वे क्षत्रिय थे। सम्भवतः फारसी तथा अरबी भाषा पर उनका विशेष अधिकार था। धर्मसम्बन्धी नाना प्रकार के मतों की आलोचना कर तथा विभिन्न सम्प्रदायों के साथ मिलने के बाद इस्लाम धर्म के उदार सिद्धान्त से आकृष्ट हो उन्होंने विधिवत् दीक्षा ली थी। किन्तु इस्लाम धर्म को ग्रहण करने पर भी धर्मपिपासु गोविन्दरायजी उसकी सामाजिक पद्धति का कहाँ तक अनुसरण करते थे, यह कहना कठिन है। फिर भी हमने सुना है कि दीक्षा लेने के पश्चात् कुरान पाठ

तथा तदनुसार साधन-भजन करने में वे अत्यन्त उत्साह के साथ संलग्न हुए थे। गोविन्दरायजी प्रेमी व्यक्ति थे। ऐसा प्रतीत होता है कि उनके हृदय पर सूफी सम्प्रदाय की प्रचलित शिक्षा एवं भाव की सहायता से ईश्वरोपासना की रीति का गहरा प्रभाव पड़ा था; क्योंकि इस सम्प्रदाय के दरवेशों की भाँति वे उस समय दिन रात भाव-साधना में नियुक्त रहते थे।

सूफी गोविन्दरायजी का आगमन।

उस समय गोविन्दरायजी किसी एक दिन दक्षिणेश्वर के कालीमन्दिर में उपस्थित हुए एवं साधनोपयोगी स्थान समझकर पंचवटी की शान्तिप्रद छाया में आसन लगाकर वे कुछ काल तक वहीं रहे। रानी रासमणि के कालीमन्दिर में उस समय हिन्दू साधुओं की तरह मुसलमान फकीरों का भी समादर किया जाता था तथा जाति-धर्म-सम्बन्धी बिना किसी भेदभाव के वहाँ पर समस्त सम्प्रदाय के त्यागियों के लिए समान रूप से आतिथ्य-सत्कार की व्यवस्था थी। अतः वहाँ रहते समय गोविन्दरायजी को भिक्षा के निमित्त कहीं जाना नहीं पड़ता था, वे सदा इष्टचिन्तन में निमग्न हो आनन्दपूर्वक दिन व्यतीत किया करते थे।

गोविन्दराय के साथ वार्तालाप कर श्रीरामकृष्णदेव का संकल्प।

प्रेमी स्वभाववाले गोविन्दराय को देखकर श्रीरामकृष्णदेव उनके प्रति आकृष्ट हुए एवं उनके साथ वार्तालाप में प्रवृत्त हो उनके सरल विश्वास तथा प्रेम को देखकर वे मुग्ध हुए। इस तरह श्रीरामकृष्णदेव का मन इस्लाम धर्म की ओर झुकने लगा और वे सोचने लगे—'यह भी तो ईश्वर-प्राप्ति का एक मार्ग है, अनन्तलीलामयी माँ इस मार्ग के द्वारा भी कितने ही व्यक्तियों को अपना श्रीपादपद्म प्रदान कर कृतकृत्य कर रही हैं; वे किस प्रकार से इस मार्ग के सहारे अपने आश्रितों को कृतार्थ करती हैं, मुझे यह देखना होगा, गोविन्दराय से दीक्षा लेकर मैं भी इस भाव का साधन करूँगा।'

ज्योंही श्रीरामकृष्णदेव के मन में इस विचार का उदय हुआ, त्योंही उसे कार्यरूप में परिणत करने को वे उद्यत हुए। उन्होंने गोविन्दराय से अपने अभिप्राय को व्यक्त किया तथा उनसे दीक्षा लेकर विधिवत् इस्लाम धर्म के साधन में प्रवृत्त हुए। श्रीरामकृष्णदेव कहते थे, "तब मैं 'अल्ला' मन्त्र का जप किया करता था, मुसलमानों की तरह लाँग

खोलकर धोती पहनता था, त्रिसन्ध्या नमाज पढ़ता था और उस समय मेरे मन से हिन्दुत्व का भाव एकदम विलुप्त हो जाने के कारण हिन्दू देव-देवियों को प्रणाम करना तो दूर रहा, उनके दर्शन करने तक की प्रवृत्ति नहीं होती थी। इस प्रकार तीन दिन बीतने के बाद मुझे उस मत का साधन-फल सम्यक् रूप से हस्तगत हुआ था।" इस्लाम धर्म के साधन के समय श्रीरामकृष्णदेव को सर्वप्रथम लम्बी दाढ़ीयुक्त एक गम्भीर ज्योतिर्मय पुरुषप्रवर का दिव्य दर्शन प्राप्त हुआ था। तदनन्तर सगुण विराट् ब्रह्म की उपलब्धि के पश्चात् तुरीय निर्गुण ब्रह्म में उनका मन लीन हो चुका था।

गोविन्दराय से दीक्षा लेकर उस साधन में श्रीरामकृष्णदेव का सिद्धि लाभ।

हृदय कहता था कि इस्लाम धर्म के साधन के समय श्रीराम-कृष्णदेव को मुसलमानों के समान खान-पान करने की इच्छा हुई थी। मथुरामोहनजी की विनीत प्रार्थना से ही वे उस कार्य से विरत हुए थे। बाल-स्वभाव श्रीराम-कृष्णदेव की इच्छा कम से कम आंशिक रूप से पूर्ण न होने पर वे कभी शान्त नहीं होंगे, यह सोचकर मथुरामोहनजी ने उस समय एक मुसल-मान रसोइया लाकर उसके निर्देशानुसार एक ब्राह्मण के द्वारा मुसलमानी रीति से रसोई कराकर श्रीरामकृष्णदेव को भोजन कराया था। इस साधन के समय श्रीरामकृष्णदेव ने एक बार भी कालीमन्दिर के अन्दर पैर नहीं रखा था। उसके बाहर मथुरामोहनजी की कोठी में वे रहा करते थे।

इस्लाम धर्म के साधन के समय श्रीरामकृष्णदेव के आचरण।

वेदान्त-साधन में सिद्धि प्राप्त करने के पश्चात् श्रीरामकृष्णदेव के हृदय में अन्यान्य धर्मसम्प्रदायों के प्रति किस प्रकार सहानुभूति उत्पन्न हुई थी, पूर्वोक्त घटना से इस बात को समझा जा सकता है एवं एकमात्र वेदान्तविज्ञान पर निर्भर-शील होकर ही भारत के हिन्दू तथा मुसलमान परस्पर सहानुभूतिसम्पन्न तथा भ्रातृभाव में निबद्ध हो सकते हैं, यह बात भी हृदयंगम होती है। अन्यथा श्रीरामकृष्णदेव के कथनानुसार 'हिन्दू तथा

भारत की हिन्दू तथा मुसलमान जाति के अन्दर समय आने पर भ्रातृभाव का उदय होगा, श्रीरामकृष्णदेव के

इस्लाम मत के साधन के द्वारा इस बात का अनुभव होता है।

मुसलमानों के अन्दर मानो पर्वत जैसा व्यवधान विद्यमान है—इतने दिन तक एक साथ रहते हुए भी परस्पर के चिन्तन, धार्मिक विश्वास तथा आचरण एक दूसरे के लिए दुर्ज्ञेय बने हुए हैं।' वह पहाड़ एक दिन अवश्य अन्तर्हित होगा तथा दोनों प्रेमपूर्वक आपस में गले लगेंगे, युगावतार श्रीरामकृष्णदेव के इस्लाम धर्म का साधन क्या इसी बात का परिचायक है?'

निर्विकल्प भूमि में प्रतिष्ठित होने के फलस्वरूप उस समय द्वैतभूमि की सीमा में अवस्थित विषय तथा व्यक्तियों को देखकर बहुधा श्रीरामकृष्णदेव में एकाएक अद्वैतस्मृति प्रबुद्ध हो उठती थी तथा वे तुरीयभाव में लीन हो जाते थे। संकल्प के बिना ही सामान्य उद्दीपन मात्र से हमने उन्हें ऐसा होते देखा है। अतः यह कहना ही पर्याप्त है कि संकल्प मात्र से उस समय उनके लिए उस भूमि में आरूढ़ होना कोई विशेष बात नहीं थी। इससे यह भी स्पष्ट अनुभव किया जा सकता है कि अद्वैत भाव के साथ उनका कितना हार्दिक संयोग विद्यमान था। यहाँ पर इस प्रकार की कुछ घटनाओं का उल्लेख करने पर पाठक स्वयं यह समझ सकेंगे कि उनके हृदय में वह भाव कितना गहरा तथा व्यापक था।

परवर्ती समय में श्रीरामकृष्णदेव के मन में अद्वैत स्मृति कहाँ तक प्रबल रूप से विद्यमान थी।

दक्षिणेश्वर कालीमन्दिर का विशाल बगीचा वर्षा के समय तृणाच्छादित रहने के कारण मालियों के लिए शाकसब्जी आदि बोने में बहुत अड़चन होती थी। इसलिए उस समय घसियारों को घास काट ले जाने की अनुमति दे दी गई थी। एक दिन एक वृद्ध घसियारे को बिना मूल्य घास लेने का आदेश मिलने पर वह दिन भर सानन्द उस कार्य में नियुक्त रहने के पश्चात् सायंकाल गठरी बाँधकर बेचने के लिए बाज़ार जाने को तैयार हो रहा था। श्रीरामकृष्णदेव ने देखा कि लोभ के वशीभूत होकर उसने इतनी घास काट ली है कि उस बोझ को ले जाना वृद्ध के लिए कभी सम्भव न था। किन्तु गरीब घसियारे का उधर कोई ध्यान न था; उस बड़े बोझ को

उक्त विषयक कुछ दृष्टान्त—१) वृद्ध घसियारा।

सिर पर रखने के लिए वह बारम्बार नाना प्रकार से प्रयास कर रहा था पर बोझ को उठा नहीं पा रहा था। यह देखकर श्रीरामकृष्णदेव भावाविष्ट हो गए और यह सोचने लगे कि—"भीतर पूर्ण ज्ञान-स्वरूप आत्मा के विद्यमान रहते हुए भी बाहर ऐसी निर्बुद्धिता, इतना अज्ञान! हे राम, तुम्हारी यह क्या विचित्र लीला है।"—और इस प्रकार कहते हुए वे समाधिस्थ हो गए।

२) घायल पतिंगा।

इसी प्रकार एक दिन श्रीरामकृष्णदेव ने देखा कि एक पतिंगा उड़ता हुआ चला आ रहा है और उसके मलद्वार में एक लम्बी सींक बिंधी हुई है। किसी दुष्ट बालक ने ऐसा किया है, ऐसा सोचकर पहले उन्हें दुःख हुआ। किन्तु दूसरे ही क्षण भावाविष्ट होकर "हे राम, तुमने स्वयं ही अपनी यह दुर्दशा की है"—यह कहते हुए खिलखिलाकर वे इस प्रकार हँसने लगे कि चारों ओर हँसी गूँज उठी।

३) पददलित नवीन दूर्वादल।

कालीमन्दिर के बगीचे का कोई स्थान नवीन दूर्वादल से समाच्छन्न होकर किसी समय परम रमणीय हो गया था। श्रीरामकृष्णदेव उसे देखते हुए भावावेश से ऐसे तन्मय हो गए कि उन्होंने उस स्थान को सर्वथा अपना अंग-जैसा अनुभव किया था। उस समय सहसा एक व्यक्ति उसके ऊपर होकर अन्यत्र जाने लगा। इससे असह्य वेदना अनुभव कर वे एकदम व्याकुल हो उठे। उस घटना का उल्लेख कर उन्होंने हमसे कहा था, "छाती पर पैर रखकर किसी के चले जाने से कष्टानुभव होता है, उस समय मुझे भी ठीक उसी प्रकार का कष्ट हुआ था। इस प्रकार की भावावस्था बहुत ही वेदनादायक है, छः घण्टे तक मुझमें वह स्थायी हुई थी, उससे मैं घबड़ा उठा था।"

कालीमन्दिर के चाँदनी समन्वित विशाल घाट पर खड़े होकर श्रीरामकृष्णदेव एक दिन गंगाजी का दर्शन कर रहे थे। उस समय घाट पर दो नावें लगी हुई थीं, तथा मल्लाह लोग किसी विषय को लेकर आपस में झगड़ रहे थे। झगड़ा क्रमशः बढ़ गया तथा सबल व्यक्ति ने दुर्बल की पीठ पर बहुत जोर से तमाचा जड़ दिया। इससे श्रीरामकृष्णदेव चीखकर रो उठे। उनका वह व्याकुल क्रन्दन कालीमन्दिर में हृदयराम के

कानों में सहसा प्रविष्ट होने के कारण शीघ्र ही वहाँ आकर उसने देखा कि उनकी पीठ आरक्त हो उठी है तथा सूज गई है। क्रोध से अधीर होकर हृदयराम बारम्बार कहने लगा, "मामाजी, मुझे बता दो कि तुमको किसने मारा है, मैं उसका सिर फोड़ दूँ।" तदनन्तर श्रीरामकृष्णदेव के कुछ शान्त होने पर जब उसने यह सुना कि मल्लाहों के झगड़े के फलस्वरूप उनकी पीठ पर चोट का वेदनाप्रद निशान अंकित हुआ है, तब वह स्तम्भित होकर सोचने लगा कि क्या यह भी कभी सम्भव हो सकता है? इस घटना को श्री गिरीशचन्द्र घोष ने श्रीरामकृष्णदेव के श्रीमुख से सुनकर हमें बताया था। श्रीरामकृष्णदेव के सम्बन्ध में इस प्रकार की अनेक घटनाओं* के उल्लेख किए जा सकते हैं।

४) नाव पर दो मल्लाहों के आपसी झगड़े में श्रीरामकृष्णदेव को अपने शरीर पर चोट का अनुभव।

---

* गुरुभाव-पूर्वार्ध, द्वितीय अध्याय देखिए।

सप्तदश अध्याय

जन्मभूमिदर्शन

लगभग छः महीने तक कष्ट पाने के पश्चात् अन्त में श्रीरामकृष्णदेव का शरीर रोगमुक्त हुआ तथा उनका मन 'भावमुख' हो द्वैताद्वैतभूमि में रहने को प्रायः अभ्यस्त हो गया। फिर भी उनका शरीर तब तक पहले की भाँति स्वस्थ तथा सबल नहीं हो पाया। अतः वर्षा ऋतु में गंगाजी का जल नमकीन हो जाने से पीने योग्य विशुद्ध जल के अभाव से पुनः उनको पेट की बीमारी हो सकती है, ऐसा सोचकर मथुरबाबू आदि सभी ने यह निश्चय किया कि कुछ दिन के लिए उनका कामारपुकुर जाना श्रेयस्कर होगा। यह बात सम्भवतः सन् १८६७ की है। मथुरबाबू की सहधर्मिणी भक्तिमती जगदम्बादासी को यह विदित था कि श्रीरामकृष्णदेव के कामारपुकुर की घरेलू स्थिति शिवजी के ससार की तरह चिर अभावयुक्त है। अतः वहाँ जाकर 'बाबा' को जिससे किसी वस्तु के लिए कष्ट न उठाना पड़े, तदर्थ वे आवश्यकीय समस्त वस्तुओं को एकत्रित कर उनके साथ देने की उपयुक्त व्यवस्था करने लगीं।* तदनन्तर शुभ मुहूर्त के आने पर श्रीरामकृष्णदेव कामारपुकुर के लिए रवाना हुए। हृदय तथा भैरवी ब्राह्मणी भी उनके साथ गए। किन्तु उनकी वृद्धा जननी ने गंगातट पर निवास करने का जो संकल्प किया था, उसमें अटल रहकर वे दक्षिणेश्वर में ही रहीं।

भैरवी ब्राह्मणी तथा हृदय के साथ श्रीरामकृष्णदेव का कामारपुकुर गमन।

इधर लगभग आठ वर्ष तक श्रीरामकृष्णदेव कामारपुकुर नहीं गए थे, अतः उनको देखने के निमित्त उनके आत्मीय जनों का उत्कण्ठित होना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। कभी स्त्री-वेश धारण कर वे 'हरि हरि' रट रहे हैं, कभी संन्यासी बन गए हैं और कभी 'अल्ला अल्ला' पुकार रहे हैं—उनके सम्बन्ध में इस प्रकार की विभिन्न बातें बीच-बीच में उन

* गुरुभाव-उत्तरार्ध, प्रथम अध्याय देखिए।

लोगों के कान में पहुँचती थीं। अतः आत्मीय जनों का उत्सुक होना स्वाभाविक था। किन्तु जब श्रीरामकृष्णदेव उनके समीप पहुँचे, तो उनका सारा सन्देह दूर हो गया। उन्होंने देखा कि वे पहले जैसे थे, वैसे ही अब भी हैं। उनकी वह सरलता, प्रेमपूर्ण-हास-परिहास, कठोर सत्यनिष्ठा, धर्मपरायणता,

श्रीरामकृष्णदेव को उनके आत्मीय जनों ने किस दृष्टि से देखा था।

हरिनाम में मत्त होकर आत्मविह्वल होना—ये सब कुछ पहले की तरह उनमें पूर्णतया विद्यमान हैं। हाँ, उनमें केवल इतना अवश्य हो गया है कि किसी अदृष्टपूर्व अनिर्वचनीय दिव्य-आवेश से उनका शरीर तथा मन ऐसा समुद्भासित हो गया है कि सहसा उनके सम्मुख उपस्थित होने तथा वे जब तक स्वयं वार्तालाप प्रारम्भ न करें, तब तक उनके साथ तुच्छ सांसारिक विषयों की आलोचना करने में उन लोगों को महान् सकोच प्रतीत होने लगा था। इसके अतिरिक्त उन्हें और एक विषय का भी विशेष प से अनुभव हुआ था उन्होंने यह अनुभव किया था कि उनके समीप रहने पर सारी सांसारिक चिन्ताएँ न जाने कहाँ दूर होकर उनके हृदय में एक निश्चल आनन्द को धारा प्रवाहित होती रहती है तथा श्रीरामकृष्णदेव से अलग होते ही पुनः उनके समीप उपस्थित होने के लिए एक अज्ञात आकर्षण के द्वारा प्रबलरूप से वे आकृष्ट होते रहते हैं। अस्तु, बहुत दिनों के बाद उनके आने से उस अभावयुक्त परिवार में आनन्द की सीमा न रही। महिलाओं के निर्देशानुसार सुखवर्धन के निमित्त नववधू को लाने के लिए श्रीरामकृष्णदेव की ससुराल जयरामवाटी में आदमी भेजा गया। इस बात को जानकर श्रीरामकृष्णदेव ने उस सम्बन्ध में अपनी न कोई विशेष सम्मति दी और न आपत्ति ही की। विवाह के बाद नववधू को केवल एक बार पतिदेव के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ था; क्योंकि वधू की आयु जब सात वर्ष की थी, उस समय कुल की रीति के अनुसार श्रीरामकृष्णदेव को एक दिन जयरामवाटी जाना पड़ा था; किन्तु उस समय वे नितान्त बालिका थीं, अतः उस घटना के सम्बन्ध में उन्हें इतना ही स्मरण था कि जिस दिन हृदय के साथ श्रीरामकृष्णदेव उनके नैहर पहुँचे थे, उस दिन मकान के किसी एकान्त स्थान में भी छिपकर रहना उनके लिए सम्भव न हो सका था। कहीं से अनेक कमल के फूल लाकर हृदय ने

उनको ढूँढ़ निकाला था एवं लज्जा तथा भय से उनके नितान्त संकुचित होने पर भी उसने उनके पादपद्मों की पूजा की थी। उस घटना के प्रायः छः वर्ष बाद जब उनकी आयु तेरह वर्ष की थी, उस समय सर्वप्रथम उनको कामारपुकुर लाया गया था एवं वे एक महीने तक वहाँ रही थीं। किन्तु तब श्रीरामकृष्णदेव तथा उनकी जननी दक्षिणेश्वर में रहने के कारण उन दोनों के दर्शन का सौभाग्य उन्हें प्राप्त नहीं हुआ था। उसके प्रायः छः महीने पश्चात् पुनः ससुराल आकर डेढ़ महीने तक वहाँ रहने पर भी पूर्वोक्त कारण से उनमें से किसी के साथ उनकी भेंट नहीं हो पायी थी। वहाँ से उनके नैहर लौटने के चार महीने बाद ही पुनः यह समाचार पहुँचा कि श्रीरामकृष्णदेव का आगमन हुआ है, उनको कामारपुकुर जाना है। उसके छः-सात महीने पहले उन्होंने चतुर्दश वर्ष में पदार्पण किया था। अतः यह कहा जा सकता है कि विवाह के बाद यही उनके लिए प्रथम पतिदर्शन था।

श्रीमाँ का कामारपुकुर आगमन।

अब की बार कामारपुकर में श्रीरामकृष्णदेव ने छः-सात महीने तक निवास किया था। उनके बचपन के मित्रगण तथा गाँव के परिचित स्त्री-पुरुष आदि सभी लोग पहले की भाँति उनसे मिलकर उनके सुख-सम्पादन के लिए लालायित थे। श्रीरामकृष्णदेव भी बहुत दिनों के बाद उन्हें देखकर आनन्दित हुए। दीर्घ समय तक कठोर परिश्रम करने के उपरान्त अवसर मिलने पर मननशील बुद्धिमान् लोग जिस प्रकार बालक-बालिकाओं के लक्ष्यहीन निरर्थक खेल-कूद आदि में सम्मिलित हो आनन्दानुभव किया करते हैं, कामारपुकुर के स्त्री-पुरुष आदि सभी के साधारण सांसारिक जीवन के साथ सम्मिलित होकर श्रीरामकृष्णदेव को भी उस समय ठीक वैसा ही आनन्द प्राप्त हुआ था। फिर भी यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि इस जीवन की नश्वरता का अनुभव कर जिससे वे लोग संसार में रहते हुए भी क्रमशः संयत होने तथा सभी विषयों में ईश्वर पर निर्भरशील बनने की शिक्षा प्राप्त कर सकें, इस ओर उनका सर्वदा विशेष ध्यान था। खेल-कूद, हास-परिहास के माध्यम से वे जिस तरह हमें निर-

आत्मीयवर्ग तथा बचपन के मित्रों के साथ श्रीरामकृष्णदेव के तत्कालीन आचरण।

न्तर उन विषयों की शिक्षा प्रदान करते थे, तदनुसार हम पूर्वोक्त बात का अनुमान कर सकते हैं।

उनमें से किसी किसी व्यक्ति की आध्यात्मिक उन्नति के सम्बन्ध में श्रीरामकृष्णदेव का कथन।

साथ ही उस छोटे-से गाँव में अत्यन्त साधारण रूप से संसार-यात्रा का निर्वाह करते हुए किसी किसी को धर्मजीवन में आशातीत रूप से अग्रसर होते देख उसे ईश्वर की अचिन्त्य महिमा समझकर वे मुग्ध हुए थे। इस सम्बन्ध में एक घटना का बारम्बार वे हमसे उल्लेख किया करते थे। श्रीरामकृष्णदेव कहते थे कि उस समय एक दिन भोजन करने के पश्चात् वे अपने घर पर आराम कर रहे थे। पड़ोस की कुछ महिलाएँ उनके दर्शन के लिए आई थीं तथा उनके समीप बैठकर उनसे धर्मसम्बन्धी बातें कर रही थीं। उस समय सहसा उन्हें भावावेश हुआ और वे यह अनुभव करने लगे कि मानो मीनरूप धारण कर अत्यन्त आनन्दपूर्वक सच्चिदानन्द-सागर में कभी वे डूब रहे हैं और कभी ऊपर को उछल रहे हैं तथा कभी नाना प्रकार से तैरते हुए खेल रहे हैं। बातें करते हुए बहुधा वे इस प्रकार से भावाविष्ट हो जाते थे, अतः उन महिलाओं ने उधर कुछ भी ध्यान नहीं दिया तथा जो प्रसंग चल रहा था, उसी के अनुसार अपने अपने अभिमत प्रकट करती हुई वे कोलाहल करने लगीं। उनमें से एक ने ऐसा करने से उन्हें मना किया तथा जब तक श्रीरामकृष्णदेव का भावावेश भंग न हो, तब तक शान्त होकर बैठने को कहा। उन्होंने कहा, 'वे (श्रीरामकृष्णदेव) इस समय मीनरूप से सच्चिदानन्द सागर में तैर रहे हैं, अतः शोर मचाने से उनके उस आनन्द में बाधा पँहुचेगी।' अधिकांश महिलाओं को उनकी उस बात पर विश्वास नहीं हुआ, फिर भी वे चुप रहीं। श्रीरामकृष्णदेव का भावावेश भंग होने पर जब इस सम्बन्ध में उनसे पूछा गया, तब वे बोले, "इन महिला का कहना सत्य है। आश्चर्य है, इन्हें इस बात का पता कैसे चला!"

कामारपुकुर के नरनारियों का नित्यप्रति जीवन उस समय श्रीरामकृष्णदेव के लिए अधिकांश रूप से नवीन-जैसा प्रतीत होने लगा था, यह बात स्पष्ट है। बहुत दिनों के बाद विदेश से लौटनेवाले व्यक्ति को स्वदेश का प्रत्येक व्यक्ति तथा विषय जिस प्रकार नवीन दिखाई देते

हैं, श्रीरामकृष्णदेव की स्थिति भी प्रायः वैसी ही हुई थी, क्योंकि केवल आठ वर्ष तक जन्मभूमि से दूर रहने पर भी उतने समय के भीतर श्रीरामकृष्णदेव के हृदय में साधन की प्रबल आँधी प्रवाहित होकर उसने उनके हृदय को आमूल परिवर्तित कर दिया था। उस समय वे अपने को तथा समस्त जगत् को भूल चुके थे तथा दूर से भी अत्यन्त दूर— देशकाल की सीमा से बाहर जाकर पुनः वहाँ से उस ओर लौटते समय सर्व भूतों के प्रति ब्रह्मदृष्टिसम्पन्न हो वहाँ लौटने के पश्चात् उन्होंने समस्त व्यक्तियों तथा विषयों को अपूर्व नवीन रूप से अवलोकन किया था। चिन्ताश्रेणियों की परम्परा से ही हमें काल की अनुभूति तथा उसकी दीर्घता-स्वल्पता आदि की उपलब्धि होती रहती है, यह बात दर्शन-प्रसिद्ध है। इसलिए स्वल्पकाल के भीतर हृदय में अनेक चिन्ताओं के उदय तथा लय होने से, हमारे लिए वह काल सुदीर्घ-जैसा प्रतीत होता है। पूर्वोक्त आठ वर्ष के भीतर श्रीरामकृष्णदेव के हृदय में कितनी विपुल चिन्ताराशियों का उदय हुआ था, यह विचार कर हम आश्चर्यचकित हो जाते हैं। अतः उस काल का उन्हें एक युग के सदृश अनुभव होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

श्रीरामकृष्णदेव को कामारपुकुर निवासियों का नवीन-जैसे प्रतीत होने का कारण।

श्रीरामकृष्णदेव ने कामारपुकुर में स्त्री-पुरुषों को किस प्रकार अद्भुत प्रेम बन्धन में आबद्ध किया था, यह सोचकर हम विस्मित हो जाते हैं। गाँव के जमींदार लाहा बाबुओं से लगाकर ब्राह्मण, लुहार, बढ़ई, बनिया आदि सभी जाति के पड़ोसियों के परिवार उनके साथ श्रद्धापूर्ण प्रेमसम्बन्ध से बँधे हुए थे। श्रीयुत धर्मदास लाहा की सरलस्वभाव भक्तिमती विधवा भगिनी प्रसन्न, उसका पुत्र श्रीरामकृष्णदेव का बाल्यसखा गयाविष्णु लाहा, सरल विश्वासी श्रीनिवास शांखरी, पाइनों के घर की भक्तिपरायणा महिलाएँ, श्रीरामकृष्णदेव की 'भिक्षा माता' लुहारपुत्री धनी आदि की भक्ति-प्रीति की बातें श्रीरामकृष्णदेव अत्यन्त प्रेम के साथ बहुधा हमसे कहा करते थे और हम भी सुनकर मुग्ध हो जाते थे। ये लोग प्रायः सर्वदा उनके समीप

जन्मभूमि के साथ श्रीरामकृष्णदेव का सदा प्रेमसम्बन्ध।

उपस्थित रहते थे। घरेलू या वैषयिक कार्यों में व्यस्त रहने के कारण जिन लोगों के लिए इस प्रकार रहना सम्भव नहीं होता, वे भी सुबह, मध्याह्न अथवा सायंकाल जब उन्हें अवकाश मिलता, वहाँ आकर उपस्थित होते। महिलाएँ उनको भोजन कराकर परम परितृप्त होती थीं, और इसलिए वे नाना प्रकार की भोजनसामग्री अपने साथ लाकर उनके समीप उपस्थित होती थीं। ग्रामवासियों के इस प्रकार मधुर आचरण तथा आत्मीय जनों के बीच रहकर भी श्रीरामकृष्णदेव निरन्तर किस तरह दिव्य भावावेश में रहा करते थे, इसका हमने अन्यत्र आभास प्रदान किया है। *

श्रीरामकृष्णदेव द्वारा अपनी पत्नी के प्रति कर्तव्यपालन प्रारम्भ करना।

कामारपुकुर आकर श्रीरामकृष्णदेव उस समय एक महान् कर्तव्य-पालन में तत्पर हुए थे। अपनी पत्नी के आने न आने के सम्बन्ध में उदासीन रहते हुए भी, जब वे उनकी सेवा करने के निमित्त कामारपुकुर आकर उपस्थित हुईं तब उनको शिक्षा-दीक्षा प्रदान कर श्रीरामकृष्णदेव उनके कल्याणसाधन के लिए प्रवृत्त हुए थे। श्रीरामकृष्णदेव को विवाहित जानकर किसी समय उनसे आचार्य तोतापुरीजी ने कहा था, "इससे हानि ही क्या है? पत्नी के समीप रहने पर भी जिसके त्याग, वैराग्य, विवेक और विज्ञान सर्वथा अक्षुण्ण बने रहते हैं, उसी को यथार्थ रूप से ब्रह्म में प्रतिष्ठित माना जाता है; स्त्री और पुरुष दोनों को ही जो समान आत्मा के रूप में सर्वदा देखने तथा तदनुरूप उनके साथ आचरण करने में समर्थ हैं, उन्हीं को वास्तविक ब्रह्मविज्ञान की प्राप्ति हुई है; स्त्री-पुरुषों में भेददृष्टिसम्पन्न अन्य व्यक्ति भले ही साधक क्यों न हो, फिर भी ब्रह्मविज्ञान से वे बहुत दूर हैं।" श्रीमत् तोतापुरीजी का पूर्वोक्त कथन श्रीरामकृष्णदेव की स्मृति में उदित होने के कारण उससे प्रेरित हो वे दीर्घकालव्यापी साधनलब्ध अपने विज्ञान की परीक्षा तथा निज सहधर्मिणी के कल्याणसाधन में संलग्न हुए थे।

कर्तव्यरूप से निर्धारित होने के पश्चात् कभी किसी कार्य की उपेक्षा करना या उसे अधूरा छोड़ रखना श्रीरामकृष्णदेव के स्वभावविरुद्ध था, अतः इस विषय में भी वैसा ही हुआ था। इहलोक तथा परलोक सम्बन्धी सभी विषयों में उनके प्रति सम्पूर्णतया निर्भरशील बालिका

---

* गुरुभाव-उत्तरार्ध, प्रथम अध्याय देखिए।

पत्नी को शिक्षा देने में अग्रसर हो उस विषय को अधूरा छोड़कर वे निवृत्त नहीं हुए थे। देवता, गुरु तथा अतिथि आदि की सेवा एवं घरेलू कार्यों में जिससे वे दक्ष बन सकें, अर्थ का सद्व्यय कर सकें तथा सर्वोपरि ईश्वर में सर्वस्व समर्पण कर देशकाल तथा पात्रानुसार सबके साथ उचित आचरण करने की योग्यता प्राप्त कर सकें,* इन विषयों की ओर तभी से उनका विशेष ध्यान था। अखण्ड ब्रह्मचर्यसम्पन्न अपने आदर्श जीवन को सामने रखकर पूर्वोक्त रूप से शिक्षा प्रदान करने का परिणाम कहाँ तक तथा किस प्रकार हुआ था, हमने अन्यत्र इसका आभास प्रदान किया है। अतः यहाँ पर संक्षेप में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि श्रीरामकृष्णदेव के कामगन्धविवर्जित विशुद्ध प्रेम को प्राप्त कर सर्वथा परितृप्त हो श्रीमाँ साक्षात् इष्टदेव के रूप में श्रीरामकृष्णदेव के आजीवन पूजन तथा उनके श्रीचरणों का अनुसरण कर अपने जीवन का निर्माण करने में समर्थ हुई थीं।

उस विषय में श्रीरामकृष्णदेव को कहाँ तक सफलता प्राप्त हुई थी।

पत्नी के प्रति कर्तव्यपालन में तत्पर श्रीरामकृष्णदेव को यथार्थ रूप से समझना उस समय भैरवी ब्राह्मणी के लिए बहुधा सम्भव न हो सका था। श्रीमत् तोतापुरीजी से मिलकर श्रीरामकृष्णदेव के संन्यास लेते समय उन्होंने उस कार्य से उनको विरत करने का प्रयास किया था।† उनको ऐसा प्रतीत हुआ था कि संन्यासी बनकर अद्वैत तत्त्व के साधन में अग्रसर होने पर श्रीरामकृष्णदेव के हृदय से ईश्वरप्रेम समूल विनष्ट हो जावेगा। इस तरह की ही कोई आशंका इस समय भी उनके मन में उदित हुई थी। उन्होंने सम्भवतः यह सोचा होगा कि अपनी पत्नी के साथ इस प्रकार घनिष्ट रूप से मिलने के फलस्वरूप श्रीरामकृष्णदेव के ब्रह्मचर्य को हानि पहुँच सकती है। किन्तु श्रीरामकृष्णदेव पहले की तरह अब की बार भी ब्राह्मणी के उपदेशानुसार आचरण नहीं कर सके थे। अतः निस्सन्देह ब्राह्मणी इससे नितान्त क्षुभित हुई थीं।

पत्नी के प्रति श्रीरामकृष्णदेव का उक्त प्रकार आचरण देखकर ब्राह्मणी की आशंका तथा उसकी प्रतिक्रिया।

---

* गुरुभाव-पूर्वार्ध, द्वितीय तथा चतुर्थ अध्याय देखिए।

† गुरुभाव-पूर्वार्ध, द्वितीय अध्याय देखिए।

किन्तु इतने ही से वह विषय समाप्त नहीं तरह का बुद्धिभ्रम हो रहा है, तो
आत्ममर्यादा में धक्का लगने के कारण क्रमश के लिए वहाँ और रहना उचित
था एवं उसके परिणामस्वरूप कुछ काल के न विचारसम्पन्न विवेकशील
उनकी श्रद्धा कुछ उठ सी भी गई थी। हमने ेक्षण में प्रवृत्त होते हैं, तब
कभी स्पष्टतया वे उस विषय को व्यक्त भी कर दे ी मालिन्य उनके समक्ष
व्यक्ति के द्वारा आध्यत्मिक विषय पर उनके समीप ा है—ब्राह्मणी के लिए
पश्चात् यदि वह श्रीरामकृष्णदेव से उस बात को पूछ था। श्रीरामकृष्णदेव
जानना चाहता तो ब्राह्मणी उसी समय क्रोधित होकर की आलोचना कर
"वह और क्या कहेगा? उसे तो मैंने ही ज्ञान प्रदान कि तदर्थ मन ही मन
सामान्य कारण से तथा कभी-कभी बिना कारण ही ध भक्तिपूर्वक अपने
नाराज हो जाती थीं। फिर भी श्रीरामकृष्णदेव उनके इस त्र को चन्दन-
या व्यवहार से विचलित न होकर उनके प्रति पहले की भाँ किया और
किया करते थे। उनके निर्देशानुसार श्रीमाँ भी ब्राह्मणी को यत होकर
मानकर भक्ति तथा प्रीति के साथ उनकी सेवा में सदा नियुक्त ए रवाना
तथा कभी भी उनके किसी कार्य या कथन का प्रतिवाद नहीं करती थ श्चात्

अभिमान, अहंकार की वृद्धि होने से विवेकी पुरुष का भी बुद्धि
हो जाया करता है। इसलिए उस अहंकार को पग-पग पर प्रति त

अभिमान, अहंकार से ब्राह्मणी का बुद्धिनाश।

होते देखकर ही मानव को उसके अवश्यम्भावी विपरीत फल की धारणा होती है तथा उसको परित्याग कर अपने कल्याणसाधन करने का उसे अवसर प्राप्त होता है। विदुषी साधिका ब्राह्मणी के लिए भी तब ऐसा ही हुआ था। अहंकार के वशीभूत हो जहाँ जैसा आचरण करना चाहिए, वहाँ उस प्रकार आचरण करने में असमर्थ होकर, उस समय एक दिन उन्होंने एक महान् अनर्थ उपस्थित कर दिया था—

उक्तविषयक घटना।

श्रीनिवास शांखारी का उल्लेख इससे पहले ही हम कर चुके हैं। उच्च जाति में उनका जन्म न होने पर भी भगवद्भक्ति में श्रीनिवास अनेक ब्राह्मणों की अपेक्षा श्रेष्ठ थे। श्रीरघुवीर के प्रसाद ग्रहण करने के निमित्त एक दिन वे श्रीरामकृष्णदेव के समीप उपस्थित हुए। भक्त श्रीनिवास के आगमन से श्रीरामकृष्णदेव तथा उनके परिवार के सभी लोग अत्यन्त

पत्नी को शिक्षा देने में अग्रसर ह

नहीं ह्मणी भी उनकी श्रद्धा-भक्ति देखकर बड़ी

उस विषय में श्रीराम- सेत्र सम्बन्धी विभिन्न चर्चाएँ होती रहीं एवं

कृष्णदेव को कहाँ तक उ श्रीनिवासजी प्रसाद पाने बैठे। भोजन

सफलता प्राप्त हुई थी। प्रथा के अनुसार जब वे अपनी जूठन उठाने

मना किया और कहा, 'उसे पड़ा रहने दीजिए,

प्राप्त कर सकें,* इन f। '' ब्राह्मणी के बारम्बार इस प्रकार कहने से

अखण्ड ब्रह्मचर्यसम्पन्न और बाद में अपने घर चले गए।

रूप से शिक्षा प्रदान गाँवों में सामाजिक नियमों की अवहेलना से बहुधा

था, हमने अन्यत्र स्थित हो जाता है तथा उसके फलस्वरूप दलबन्दी भी

इतना ही कहन होने लगती है। उस समय भी प्रायः वही स्थिति

विशुद्ध प्रेम को थ हृदय उत्पन्न हुई, क्योंकि ब्राह्मण की पुत्री होकर

में श्रीरामकृष्ण भैरवी श्रीनिवास की जूठन साफ करेंगी, इस

कर अपने ज विषय को लेकर श्रीरामकृष्णदेव के दर्शन के

पत्नी आई हुई गाँव की ब्राह्मण-कन्याएँ घोर आपत्ति करने लगीं।

से समझ भैरवी ब्राह्मणी उनकी उस बात को मानने के लिए प्रस्तुत न हुई।

...ः बात बढ़ने लगी तथा श्रीरामकृष्णदेव के भानजे हृदय के कानों तक यह बात पँहुची। साधारण विषय को लेकर इस प्रकार महान् अशान्ति होने की सम्भावना देखकर हृदय ने ब्राह्मणी को उस कार्य से विरत करना चाहा पर उन्होंने उसे स्वीकार नहीं किया। फलतः ब्राह्मणी के साथ हृदय का घोर कलह होने लगा। हृदय ने उत्तेजित होकर कहा, "ऐसा करने से तुम्हें हम घर में नहीं रहने देंगे।' ब्राह्मणी भी शान्त होने वाली नहीं थीं, वे बोलीं, "इससे हानि ही क्या होगी? शीतला के घर में * मनसा × सोती रहेगी।" तब घर के और लोगों ने मध्यस्थ होकर अत्यन्त विनम्रतापूर्वक ब्राह्मणी को उस कार्य से निरस्त कर उस विवाद को शान्त किया।

अभिमानिनी ब्राह्मणी उस दिन निरस्त अवश्य हुईं, किन्तु उस घटना से उनके हृदय में बहुत चोट पँहुची। क्रोध का उपशम होने पर शान्तिपूर्वक चिन्तन करने से उन्हें अपना भ्रम विदित हुआ तथा वे

* अर्थात् देवमन्दिर में।

× ब्राह्मणी ने इस प्रकार क्रोधित सर्प के साथ अपनी तुलना की है।

सोचने लगीं कि वहाँ पर उनको जब इस तरह का बुद्धिभ्रम हो रहा है, तो ऐसी स्थिति में उनके लिए वहाँ और रहना उचित नहीं है। सत्-असत् विचारसम्पन्न विवेकशील साधक जब आत्म-समीक्षण में प्रवृत्त होते हैं, तब उनके चित्त का कोई भी मालिन्य उनके समक्ष आत्मगोपन नहीं कर पाता है—ब्राह्मणी के लिए भी उस समय ऐसा ही हुआ था। श्रीरामकृष्णदेव के प्रति अपने भावपरिवर्तन की आलोचना कर उसके मूल में भी उन्हें अपना ही दोष दिखाई दिया, तदर्थ मन ही मन वे अत्यन्त अनुतप्त हुईं। इसके कुछ दिन बाद एक दिन भक्तिपूर्वक अपने हाथों से विविध पुष्पों की माला बनाकर तथा श्रीरामकृष्णदेव को चन्दन-अर्चित कर उन्होंने श्रीगौरांग-बुद्धि से उनका मनोहर शृंगार किया और उनके समीप आन्तरिक रूप से क्षमायाचना की। तदनन्तर संयत होकर मन-प्राण ईश्वर में समर्पण कर कामारपुकुर से वे काशीधाम के लिए रवाना हुईं। छः वर्ष तक श्रीरामकृष्णदेव के साथ निरन्तर रहने के पश्चात् ब्राह्मणी ने उनसे विदा ली।

अपना भ्रम विदित होने पर ब्राह्मणी को अपराध की आशंका तथा अनुतप्त होकर क्षमायाचनापूर्वक उनकी काशी यात्रा।

इस प्रकार विभिन्न रूप से कामारपुकुर में प्रायः सात महीने व्यतीत करने के अनन्तर सम्भवतः सन् १८६८ के अक्टूबर-नवम्बर मास में श्रीरामकृष्णदेव पुनः दक्षिणेश्वर वापस आए। उनका शरीर उस समय पहले की भाँति स्वस्थ तथा सबल हो गया था। वहाँ लौटने के कुछ ही दिन बाद उनके जीवन में एक विशेष घटना उपस्थित हुई थी। अब हम पाठकों से उसी का उल्लेख करेंगे।

श्रीरामकृष्णदेव का कलकत्ता वापस आना।

अष्टादश अध्याय

तीर्थदर्शन तथा हृदयराम का वृत्तान्त

मथुरबाबू को उस समय भारत के उत्तर-पश्चिम में स्थित पुण्य तीर्थों के दर्शन की अभिलाषा हुई थी। उनके परिवारवर्ग तथा गुरुपुत्र आदि अनेक व्यक्तियों का उनके साथ चलना निश्चय हुआ। सपत्नीक मथुरामोहन श्रीरामकृष्णदेव को साथ चलने के लिए विशेषरूप से अनुरोध करने लगे। फलतः वृद्धा जननी* तथा भानजे हृदयराम को साथ लेकर श्रीरामकृष्णदेव उनके साथ चलने को सम्मत हुए।

श्रीरामकृष्णदेव की तीर्थ-यात्रा का निश्चय होना।

तदनन्तर शुभ दिन देखकर श्रीरामकृष्णदेव तथा अन्य सबको साथ लेकर मथुरबाबू २७ जनवरी १८६८ को रवाना हुए। श्रीरामकृष्णदेव की तीर्थयात्रा के सम्बन्ध में बहुतसी बातें अन्यत्र× कही गयी हैं। अतः हृदय से इस विषय में हमने जो कुछ सुना है, केवल उसी का यहाँ पर उल्लेख किया गया है।

तीर्थयात्रा का समय निरूपण।

हृदय के कथनानुसार सौ से भी अधिक व्यक्तियों को साथ लेकर मथुरबाबू उस समय तीर्थयात्रा करने निकले थे। द्वितीय श्रेणी का एक तथा तृतीय श्रेणी के तीन डब्बे रेलवे कम्पनी से रिजर्व करा लिए गए थे तथा ऐसी व्यवस्था की गई थी कि कलकत्ते से काशी के बीच में कहीं भी उन चारों डब्बों को अपनी इच्छानुसार कटवाकर मथुरबाबू दो-चार दिन रह सकते थे।

तीर्थयात्रा की व्यवस्था।

वैद्यनाथ धाम में पहुँचकर दर्शन तथा पूजनादि के निमित्त मथुर-

---

* किसी किसी का कहना है कि श्रीरामकृष्णदेव की जननी उनके साथ तीर्थयात्रा करने नहीं गई थीं। किन्तु हृदयराम का कथन उससे भिन्न था।

× गुरुभाव-उत्तरार्ध, तृतीय अध्याय देखिए।

बाबू वहाँ कुछ दिन रुके थे। उस जगह एक विशेष घटना हुई थी। वहाँ के एक गरीब मुहल्ले के स्त्री-पुरुषों की दुर्दशा देखकर श्रीरामकृष्णदेव का हृदय करुणार्द्र हो उठा था एवं मथुरबाबू से कहकर उन्होंने एक दिन उन लोगों को भोजन कराकर प्रत्येक को एक-एक वस्त्र प्रदान किया था।*

श्री वैद्यनाथजी का दर्शन तथा दरिद्र-सेवा।

वैद्यनाथ से श्री मथुरामोहनजी सीधे काशीधाम पहुँचे। मार्ग में कोई उल्लेखनीय घटना नहीं हुई। केवल काशीधाम के निकट किसी स्थान पर कार्यवश गाड़ी से नीचे उतरकर श्रीरामकृष्णदेव तथा हृदयराम के चढ़ने से पहिले ही गाड़ी छूट चुकी थी। तदर्थ अत्यन्त व्यग्र होकर मथुरामोहनजी ने काशीधाम से 'तार' द्वारा यह समाचार भिजवाया कि उसके बाद आनेवाली दूसरी गाड़ी से उनको भिजवाने की व्यवस्था की जावे। किन्तु दूसरी गाड़ी के लिए उन्हें रुकना नहीं पड़ा था। रेलवे के विशिष्ट अधिकारी श्रीयुत राजेन्द्रलाल वन्द्योपाध्याय किसी कार्य की देखभाल के लिए उसके कुछ देर बाद ही एक 'स्पेशल' (Special) गाड़ी में वहाँ गए थे। उन्हें उस परिस्थिति में देखकर उन्होंने अपनी गाड़ी में बैठाकर उनको काशीधाम में उतार दिया था। राजेन्द्रबाबू कलकत्ता के बागबाजार में रहते थे।

मार्ग में विघ्न।

काशीधाम पहुँचकर मथुरबाबू ने केदारघाट पर एक साथ संलग्न दो मकान किराये पर लिए थे। पूजन, दान इत्यादि समस्त विषयों में मुक्तहस्त होकर उन्होंने अर्थव्यय किया था।+ मकान से बाहर अन्यत्र कहीं जाते समय चाँदी के छत्र तथा आसासोंटा आदि लेकर उनके आगे-पीछे नौकरों को जाते हुए देखकर लोगों ने उनको राजा-महाराजा समझा था।

वहाँ रहते समय श्रीरामकृष्णदेव प्रायः प्रतिदिन छोटी नाव में बैठकर श्रीविश्वनाथजी के दर्शन करने जाते थे। हृदय उनके साथ रहता था। वहाँ जाते जाते ही श्रीरामकृष्णदेव भावाविष्ट हो जाया करते थे, देव-दर्शन के समय का तो कहना ही क्या है! इस प्रकार सभी देवस्थानों में उनका भावावेश होने पर भी श्री

केदारघाट में अवस्थिति तथा श्रीविश्वनाथजी का दर्शन।

* गुरुभाव-पूर्वार्ध, सप्तम अध्याय देखिए।

+ गुरुभाव-उत्तरार्ध, तृतीय अध्याय देखिए।

केदारनाथजी के मन्दिर में वे अधिक भावाविष्ट होते थे।

देवस्थानों के अतिरिक्त श्रीरामकृष्णदेव काशीधाम के प्रसिद्ध साधुओं के दर्शन करने जाते थे। उस समय भी हृदय साथ रहता था। इस प्रकार वे कई बार परमहंसाग्रगण्य श्रीयुत त्रैलंगस्वामीजी के दर्शन करने गए थे। स्वामीजी तब मौन धारण कर मणिकर्णिका घाट पर रहते थे। प्रथम दर्शन के दिन स्वामीजी ने अपनी नास की डब्बी श्रीरामकृष्णदेव के सम्मुख प्रस्तुत कर उनका स्वागत तथा उन्हें सम्मान प्रदर्शन किया। श्रीरामकृष्णदेव ने उनके इन्द्रिय तथा शारीरिक अवयवों की गठन को देखकर हृदय से कहा था, 'इनमें यथार्थ परमहंस के लक्षण विद्यमान हैं, ये साक्षात् विश्वेश्वर हैं।' स्वामीजी ने उस समय मणिकर्णिका के समीपवर्ती एक घाट को पक्का बनवाने का संकल्प किया था। श्रीराम-कृष्णदेव के अनुरोध से हृदय ने कुदाल के द्वारा कुछ मिट्टी वहाँ डालकर उस कार्य में सहायता की थी। तदनन्तर एक दिन श्रीरामकृष्णदेव ने स्वामीजी को मथुरामोहनजी के निवासस्थान पर आमन्त्रित कर उन्हें अपने हाथों से खीर खिलायी थी।

श्रीरामकृष्णदेव तथा श्री त्रैलंगस्वामी।

पाँच-सात दिन काशीधाम में रहने के पश्चात् मथुरामोहनजी के साथ प्रयागधाम जाकर श्रीरामकृष्णदेव ने त्रिवेणी-संगम में स्नान तथा वहाँ तीन रात निवास किया था। शास्त्रीय विधान के अनुसार वहाँ पर श्रीरामकृष्णदेव के अतिरिक्त मथुरबाबू आदि सभी ने अपना मस्तक मुण्डित कराया था। श्रीरामकृष्णदेव ने कहा था, "मेरे लिए इसकी आवश्यकता नहीं है।" प्रयाग से मथुरामोहनजी पुनः काशीधाम वापस आए थे तथा एक पक्ष तक वहाँ रहकर श्रीवृन्दावन दर्शन के लिए आगे बढ़े थे।

श्रीप्रयागधाम में श्रीराम-कृष्णदेव का आगमन।

श्रीवृन्दावन में मथुरबाबू निधुवन के समीप किसी मकान में रहे थे। काशीधाम की भाँति वहाँ भी उन्होंने मुक्त हस्त से दान किया था तथा सपत्नीक देवस्थानों का दर्शन कर प्रत्येक मन्दिर में कुछ गिन्नी भेंट की थीं। निधुवन के अतिरिक्त श्रीरामकृष्णदेव ने राधाकुण्ड, श्यामकुण्ड तथा गिरिराज गोवर्धन का दर्शन किया था। गोवर्धन में भावाविष्ट होकर वे गिरिशृंग पर चढ़ गए थे। वहाँ पर उन्होंने प्रख्यात साधक-साधिकाओं के

भी दर्शन किए थे तथा निधुवन में गंगामाता के दर्शन से वे परम परितुष्ट हुए थे। उनके अंगों के लक्षण को दिखाकर उन्होंने हृदय से कहा था, "इन्हें विशेष उच्च अवस्था की प्राप्ति हुई है।"

लगभग पन्द्रह दिन वृन्दावन में रहकर मथुरबाबू आदि सभी लोग पुनः काशीधाम वापस आए तथा विश्वनाथजी के विशेष वेश के दर्शन के निमित्त बंगला सन् १२७५ (सन् १८६८ ई.) के वैशाख तक वहाँ रहे। उस समय वहाँ पर श्रीरामकृष्णदेव ने स्वर्णमयी अन्नपूर्णा प्रतिमा का दर्शन किया था।

काशीधाम में प्रत्यावर्तन तथा अवस्थिति।

काशीधाम में योगेश्वरी नाम की भैरवी ब्राह्मणी के साथ श्रीरामकृष्ण-देव का पुनः साक्षात्कार हुआ था एवं चौंसठ योगिनी नामक मुहल्ले में उनके निवासस्थान पर भी वे कई बार गए थे। ब्राह्मणी वहाँ पर मोक्षदा नाम की एक महिला के साथ निवास कर रही थीं। उसकी भक्ति श्रद्धा को देखकर श्रीरामकृष्णदेव परितृप्त हुए थे। वृन्दावन जाते समय भैरवी ब्राह्मणी भी श्रीराम-कृष्णदेव के साथ वहाँ गई थीं। उन्होंने ब्राह्मणी से वृन्दावन में रहने के लिए कहा था। हृदय कहता था कि श्रीरामकृष्णदेव के वहाँ से लौटने के कुछ दिन बाद वृन्दावन में ब्राह्मणी का देहान्त हो गया।

काशीधाम में ब्राह्मणी का दर्शन तथा ब्राह्मणी की अन्तिम बात।

वृन्दावन में रहते समय श्रीरामकृष्णदेव को वीणावादन श्रवण करने की इच्छा हुई थी। किन्तु उस समय वहाँ पर कोई वीणावादक उपस्थित न रहने के कारण वह बात कार्यान्वित नहीं हो पायी थी। काशीधाम वापस आने पर पुनः उनके मन में वह इच्छा उदित हुई तथा श्रीयुत महेशचन्द्र सरकार नामक एक प्रवीण वीणावादक के घर पर हृदय के साथ उपस्थित होकर उनसे वीणा बजाने के लिए उन्होंने अनु-रोध किया। महेशबाबू काशी के मदनपुरा नामक मुहल्ले में रहते थे। श्रीरामकृष्णदेव के अनुरोध से उन्होंने उस दिन परम आनन्दित होकर बहुत देर तक वीणा वादन किया था। वीणा की मधुर झंकार सुनते ही श्रीराम-कृष्णदेव भावाविष्ट हो गए, तदनन्तर अर्ध-बाह्यदशा उपस्थित होने पर वे श्रीजगदम्बा से प्रार्थना करने लगे—'माँ, मुझे होश में ला दो, मैं

वीणावादक महेशजी के समीप गमन।

अच्छी तरह से वीणा सुनना चाहता हूँ।' इस प्रकार प्रार्थना करने के पश्चात् उनके लिए बाह्य-भावभूमि में रहना सम्भव हो सका था तथा आनन्द के साथ वीणावादन श्रवण करते हुए बीच-बीच में उसके सुर के साथ अपना कण्ठस्वर मिलाकर उन्होंने गाना गाया था। अपराह्ण के पाँच बजे से रात के आठ बजे तक इस प्रकार आनन्दपूर्वक समय व्यतीत होने के बाद महेश बाबू के विशेष आग्रह से वहाँ पर कुछ जलपान कर वे मथुरबाबू के पास आए थे। तब से महेश बाबू प्रतिदिन श्रीरामकृष्णदेव के दर्शनार्थ आते थे। श्रीरामकृष्णदेव कहते थे कि वीणावादन करते हुए वे एकदम विह्वल हो जाते थे।

काशीधाम से श्रीयुत मथुरबाबू ने गयाधाम जाने की आकांक्षा प्रकट की; किन्तु श्रीरामकृष्णदेव की उस विषय में विशेष आपत्ति* रहने के कारण वे उस संकल्प को त्यागकर सीधे कलकत्ता वापस आ गए। हृदय के कथनानुसार इस प्रकार चार महीने तक तीर्थाटन करने के बाद बंगला सन् १२७५ (सन् १८६८ ई.) ज्येष्ठ मास के मध्य में श्रीरामकृष्णदेव मथुरबाबू के साथ दक्षिणेश्वर वापस आ गए। वृन्दावन से श्रीरामकृष्णदेव अपने साथ राधाकुण्ड-श्यामकुण्ड का रज लाए थे। दक्षिणेश्वर लौटने के पश्चात् कुछ रज पंचवटी के चारों ओर बिखेरकर अवशिष्ट रज को अपनी साधनकुटीर में स्वयं अपने हाथों से गाड़कर उन्होंने यह कहा था, "आज से यह स्थान वृन्दावन के सदृश देवभूमि में परिणत हो गया है।" हृदय कहता था कि उसके कुछ ही दिन बाद विभिन्न स्थानों से वैष्णव, गोस्वामी तथा भक्तों को मथुरबाबू के द्वारा आमन्त्रित कराकर उन्होंने पंचवटी में एक महोत्सव का आयोजन किया था। मथुरबाबू ने उस समय गोस्वामियों को सोलह रुपये तथा वैष्णव भक्तों को एक एक रुपये की दक्षिणा प्रदान की थी।

दक्षिणेश्वर में प्रत्यावर्तन तथा उनका आचरण।

तीर्थदर्शन से लौटने के कुछ दिन बाद हृदय की पत्नी का देहान्त हो गया। उस घटना से उसका मन कुछ काल के लिए संसार के प्रति उदासीन हो गया। हम यह पहले ही कह चुके हैं कि हृदय भावुक नहीं था। अपनी छोटी-सी गृहस्थी की उन्नति साधन कर यथासम्भव भोगसुख

* गुरुभाव-उत्तरार्ध, सप्तम अध्याय देखिए।

में समय व्यतीत करना ही उसके जीवन का आदर्श था। श्रीरामकृष्णदेव के निरन्तर संग के फलस्वरूप उसके हृदय में कभी-कभी उच्च भावों के उदय होने पर भी, अधिक समय के लिए वे स्थायी नहीं हो पाते थे। भोग-वासना का कोई अवसर उपस्थित होते ही वह सब कुछ भूलकर उसके पीछे दौड़ने लगता तथा जब तक उसे प्राप्त नहीं कर लेता, तब तक उसके मन में दूसरी चिन्ता का उदय नहीं होता था। इसलिए श्रीरामकृष्णदेव के समग्र साधन, हृदय के दक्षिणेश्वर में रहते समय अनुष्ठित होने पर भी उसके लिए उन्हें देखने या समझने का बहुत कम अवसर प्राप्त हुआ था। फिर भी हृदय का अपने मामाजी के प्रति यथार्थ प्रेम था तथा उन्हें जब जैसी सेवा की आवश्यकता होती थी, तभी उस कार्य को वह अत्यन्त यत्नपूर्वक किया करता था। फलतः हृदय के अन्दर साहस, बुद्धि तथा कार्यकुशलता का विशेष विकास हुआ था। साथ ही प्रख्यात साधकों से अपने मामाजी की अलौकिकता को सुनकर तथा उनमें दैवी शक्तियों का प्रकाश देखकर उसके मन में विशेष बल-संचार भी हुआ था। उसकी यह धारणा हुई थी कि मामाजी जब उसके लिए प्राणों से भी प्रिय हैं तथा सेवा के द्वारा जब उनके विशेष कृपापात्र बनने का उसे सौभाग्य प्राप्त हुआ है, तब आध्यात्मिक राज्य के फलसमूह भी एक प्रकार से उसकी मुट्ठी में ही हैं। जब वह उन फलों को प्राप्त करना चाहेगा, तभी उसके मामाजी दैवी शक्ति के प्रभाव से उसे प्राप्त करा देंगे। अतः परलोक के सम्बन्ध में उसे चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं है। कुछ दिन गार्हस्थ्य-सुख भोगने के पश्चात् फिर वह परलोक के विषय में ध्यान देगा। पत्नीवियोगविधुर हृदय तब यह सोचने लगा कि अब उसके लिए वह समय उपस्थित हुआ है। पहले की अपेक्षा अब अधिक निष्ठा के साथ श्रीजगदम्बा के पूजन में उसने अपना चित्त संलग्न किया तथा वस्त्र एवं यज्ञोपवीत उतारकर कभी-कभी वह ध्यान करने लगा तथा उसे भी श्रीरामकृष्णदेव की तरह आध्यात्मिक उपलब्धियाँ प्राप्त हो सकें, तदर्थ वह उनसे विशेष आग्रह करने लगा। श्रीरामकृष्णदेव ने उससे कहा कि इसकी कोई आवश्यकता नहीं है, उनकी सेवा से ही उसे सब फलों की प्राप्ति होगी तथा वे दोनों ही यदि भगवद्भाव में विभोर होकर आहार-

हृदय की पत्नी का देहान्त तथा उसका वैराग्य।

निद्रा आदि शारीरिक चेष्टाओं को भूल बैठें, तो कौन किसे सम्हालेगा। परन्तु उसने उनकी बातों की ओर ध्यान नहीं दिया। तब विवश होकर श्रीरामकृष्णदेव बोले, "माँ की जो इच्छा है, वही होगी; मेरी इच्छा से हो ही क्या सकता है !—माँ ने ही मेरी बुद्धि पर कृपा करके इस स्थिति में लाकर मुझे नाना प्रकार की अद्भुत उपलब्धियाँ प्राप्त करायी हैं—माँ की इच्छा होने पर तुझे भी वह स्थिति अवश्य प्राप्त होगी।"

इस वार्तालाप के कुछ ही दिन बाद पूजन तथा ध्यान करते समय हृदय को ज्योतिर्मय देवमूर्तियों के दर्शन तथा अर्धबाह्यभाव होने लगे।

हृदय का भावावेश।

मथुरबाबू ने एक दिन हृदय को इस प्रकार भावाविष्ट देखकर श्रीरामकृष्णदेव से कहा, 'बाबा, हृदु को यह क्या होने लगा है?" तब श्रीरामकृष्णदेव उन्हें समझाकर बोले, "हृदय का यह ढोंग नहीं है—किञ्चित् दर्शन के निमित्त उसने व्याकुल होकर माँ से प्रार्थना की थी, इसीलिए उसे ऐसा हो रहा है। इस प्रकार दिखा-समझाकर माँ पुनः उसको शान्त कर देगी।" मथुरबाबू ने कहा, "बाबा, यह सब तुम्हारा ही खेल है, तुमने ही हृदय की यह अवस्था उत्पन्न की है, तुम्हीं अब उसके चित्त को शान्त कर दो—हम दोनों नन्दी-भृंगी की भाँति तुम्हारे समीप रहेंगे, सेवा करेंगे, हम लोगों के लिए ऐसी अवस्था की क्या आवश्यकता है?"

मथुरबाबू से श्रीरामकृष्णदेव के इस प्रकार कथोपकथन के कुछ दिन बाद एक दिन रात्रि में श्रीरामकृष्णदेव को पंचवटी की ओर जाते हुए

हृदय का अद्भुत दर्शन।

देखकर, कदाचित् उन्हें आवश्यकता हो यह समझकर, हृदय लोटा तथा अंगोछा लेकर उनके पीछे पीछे जाने लगा। इस प्रकार जाते समय हृदय को एक विचित्र दर्शन प्राप्त हुआ। उसने देखा कि श्रीरामकृष्णदेव स्थूल रक्त-मांस देहधारी पुरुष नहीं हैं, उनके शरीर से निकलनेवाली अपूर्व ज्योति से पंचवटी आलोकित हो उठी है तथा चलते समय उनके ज्योतिर्मय चरणयुगल पृथ्वी का स्पर्श न करते हुए शून्य पर चल रहे हैं। शायद दृष्टि-भ्रम से ऐसा दिखाई दे रहा है, यह सोचकर हृदय बारम्बार अपनी आँखों को मलकर चारों ओर की वस्तुओं का निरीक्षण करने के पश्चात् पुनः श्रीरामकृष्णदेव को देखने लगा, किन्तु उसे

फिर वैसा ही दिखा—वृक्ष, लता, गंगा कुटीर आदि सब कुछ पहले की तरह दिखाई देने पर भी श्रीरामकृष्णदेव को पुनः उसने वैसा ही देखा। तब विस्मित होकर वह सोचने लगा कि क्या स्वयं उसके भीतर ही किसी प्रकार का परिवर्तन उपस्थित होने के कारण उसे ऐसा दिखाई दे रहा है। यह सोचकर ज्यों ही उसने अपनी ओर देखा, तत्काल उसे ऐसा अनुभव हुआ कि वह भी दिव्य देहधारी ज्योतिर्मय देवानुचर है तथा साक्षात् देवता के साथ रहकर चिरकाल उनकी सेवा कर रहा है। उसे यह प्रतीत हुआ कि वह मानो उस देवता के घनीभूत ज्योतिष्मान अंग का अंशविशेष है तथा उनकी सेवा के निमित्त ही भिन्न शरीर धारण कर पृथक् रूप से अवस्थित है। ऐसा देखकर तथा अपने जीवन का इस प्रकार रहस्य हृदयंगम कर उसके चित्त में आनन्द की प्रबल धारा प्रवाहित होने लगी। वह अपने को, समस्त संसार को तथा लोग उसे पागल कहेंगे, इस बात को भी भूलकर अर्ध-बाह्यावेश में उन्मत्त की भाँति चिल्लाता हुआ बारम्बार यह कहने लगा—'ओ रामकृष्ण, ओ रामकृष्ण, हम लोग तो मनुष्य नहीं हैं, फिर हम यहाँ क्यों रहें? चलो, विभिन्न देशों में चलकर हम जीवों का उद्धार करें! तुम भी जो हो, मैं भी वही हूँ।"

श्रीरामकृष्णदेव कहते थे, "उसकी इस तरह की चिल्लाहट सुनकर मैंने कहा, 'अरे चुप रह, चुप रह; क्यों ऐसी बातें कर रहा है, कुछ हुआ होगा सोचकर अभी लोग यहाँ आ जायेंगे—पर वह सुनने ही क्यों लगा! तब तुरन्त उसके समीप पहुँचकर मैंने उसके वक्षःस्थल को स्पर्श कर कहा, 'माँ, इस मूर्ख को जड़ बना दे'।"

हृदय कहता था कि श्रीरामकृष्णदेव के इस प्रकार कहते ही उसका पूर्वोक्त दर्शन तथा आनन्द न जाने कहाँ विलुप्त हो गया तथा जैसा वह पहले था, पुनः वैसा ही हो गया। अपूर्व आनन्द से सहसा विच्युत होने के कारण उसका चित्त विषादमग्न हो उठा तथा वह रोता हुआ श्रीरामकृष्णदेव से कहने लगा, 'मामाजी, तुमने ऐसा क्यों किया, जड़ होने के लिए क्यों कहा, अब कभी मुझे इस प्रकार के दर्शनानन्द का अनुभव न होगा।' यह सुनकर श्रीरामकृष्णदेव बोले, "मैंने क्या तुझे एकदम जड़ हो जाने को कहा है, अब तू शान्त हो

हृदय के चित्त का जड़ बन जाना।

जा– इतना ही मात्र तो कहा है। सामान्य दर्शन प्राप्त कर तेरे शोर मचाने के कारण ही तो मुझे ऐसा कहना पड़ा। मुझे चौबीसों घण्टे कितने ही प्रकार के दर्शन होते हैं, क्या मैं तेरी तरह शोर मचाता हूँ? तेरे लिए अभी इस प्रकार के दर्शन करने का समय नहीं हुआ है, अब तू शान्त रह, समय आने पर तुझे पुनः बहुत कुछ देखने को मिलेगा।''

श्रीरामकृष्णदेव की इन बातों को सुनकर शान्त होने पर भी हृदय को अत्यन्त क्षोभ हुआ। तदनन्तर अहंकार के वशीभूत हो उसने सोचा कि जैसे भी हो उस प्रकार के दर्शन के लिए वह पुनः प्रयास करेगा। वह जप-ध्यान अधिक करने लगा तथा रात में पंचवटी के नीचे जाकर, जहाँ श्रीरामकृष्णदेव पहले बैठकर ध्यान-जप किया करते थे, वहाँ बैठकर श्रीजगदम्बा के ध्यान-चिन्तन का उसने निश्चय किया। ऐसा निश्चय लेकर एक दिन गहरी रात में शय्या त्यागकर वह पंचवटी में पहुँचा तथा ध्यान करने के लिए श्रीरामकृष्णदेव के आसन पर ध्यान करने बैठ गया। कुछ देर बाद श्रीरामकृष्णदेव के मन में पंचवटी जाने की इच्छा हुई और वे उधर चले। वहाँ पहुँचते ही उन्हें हृदय की चिल्लाहट सुनाई दी. वह व्याकुल होकर जोर से उनको पुकार रहा था, 'मामाजी, मैं झुलस गया, मैं झुलस गया!' अति शीघ्र उसके समीप उपस्थित होकर श्रीरामकृष्णदेव ने पूछा, ''क्यों रे, क्या हुआ है?'' यातना से अधीर होकर हृदय कहने लगा, 'मामाजी, यहाँ पर ध्यान करने के लिए बैठते ही किसी ने मानो मुझ पर एक सकोरा आग डाल दी. मेरा सारा शरीर जला जा रहा है।' श्रीरामकृष्णदेव उसके शरीर पर हाथ फेरते हुए बोले, ''जा, अभी ठीक हो जायगा, यह तो बता कि तू ऐसा क्यों करता रहता है? मैंने तुझसे पहले ही कहा था कि मेरी सेवा से ही तेरा सब कुछ हो जावेगा।'' हृदय कहता था कि श्रीरामकृष्णदेव के स्पर्श से वास्तव में तत्काल ही उसका सम्पूर्ण कष्ट दूर हो गया। इस घटना के बाद फिर कभी वह पंचवटी में ध्यान करने नहीं गया, क्योंकि उसके मन में यह विश्वास हो गया था कि श्रीरामकृष्णदेव ने उससे जो बात कही है, उससे अन्यथा करने पर उसका भला नहीं होगा।

हृदय के साधन में विघ्न उपस्थित होना।

श्रीरामकृष्णदेव के कथन पर विश्वास स्थापन कर हृदय को बहुत

आनन्द के साथ पूजन करने के निमित्त चल दिया।

घर पहुँचकर हृदय ने श्रीरामकृष्णदेव के कथनानुसार समस्त कार्यों को सम्पन्न किया तथा षष्ठी के दिन देवी का 'बोधन' (पूजन से पूर्व देवी के जागरण के निमित्त धार्मिक कृत्य) तथा अधिवास आदि करने के पश्चात् स्वयं पूजनकार्य में संलग्न हुआ। सप्तमी के दिन पूजन समाप्त कर रात्रि में आरती करते समय हृदय ने देखा कि श्रीरामकृष्णदेव ज्योतिर्मय शरीर से प्रतिमा के समीप भावाविष्ट होकर खड़े हुए हैं! हृदय कहता था कि इस प्रकार प्रति दिन आरती के समय तथा 'सन्धिपूजन' (अष्टमी तथा नवमी के सन्धिक्षण में होनेवाला विशेष पूजन) के अवसर पर देवीप्रतिमा के समीप श्रीरामकृष्णदेव का दिव्य दर्शन प्राप्त कर उसका चित्त महान् उत्साह से पूर्ण हो उठा। पूजन समाप्त होने के कुछ दिन उपरान्त हृदय दक्षिणेश्वर वापस आया तथा पूजन-सम्बन्धी समस्त वृत्तान्त श्रीरामकृष्णदेव से निवेदन किया। तब श्रीरामकृष्णदेव ने उससे कहा, "आरती तथा 'सन्धिपूजन' के समय तेरा पूजन देखने के निमित्त वास्तव में मेरे प्राण व्याकुल हो उठे थे तथा भावाविष्ट होकर मैंने यह अनुभव किया था कि ज्योतिर्मय शरीर धारणकर ज्योतिर्मय मार्ग से मैं तेरे 'चण्डीमण्डप' में उपस्थित हुआ हूँ।"

दुर्गोत्सव के समय हृदय को श्रीरामकृष्णदेव का दर्शन।

हृदय कहता था कि किसी समय भावाविष्ट होकर श्रीरामकृष्णदेव ने उससे कहा था 'तू तीन वर्ष तक दुर्गापूजन करेगा'—कार्यतः वैसा ही हुआ था, श्रीरामकृष्णदेव की बात न मानकर चौथी बार पूजन के आयोजन के समय इतने अधिक विघ्न उपस्थित हुए थे कि अन्त में विवश होकर उसे पूजन बन्द कर देना पड़ा था। अस्तु, प्रथम वर्ष के पूजन के कुछ दिन बाद हृदय पुनः विवाह कर दक्षिणेश्वर में पूजनकार्य तथा श्रीरामकृष्णदेव की सेवा में पहले की भाँति तत्पर हुआ था।

दुर्गोत्सव सम्बन्धी अन्तिम घटना।

ऊनविंश अध्याय

स्वजनवियोग

श्रीरामकृष्णदेव के अग्रज श्रीयुत रामकुमारजी के पुत्र अक्षय का इससे पूर्व सामान्य रूप से परिचय दिया जा चुका है। पूज्यपाद आचार्य तोतापुरीजी के दक्षिणेश्वर आगमन के कुछ दिन बाद सन् १८६५ ई. के प्रारम्भ में दक्षिणेश्वर में आकर अक्षय ने विष्णुमन्दिर में पूजक का पद ग्रहण किया था। उस समय उसकी आयु सत्रह वर्ष की होगी। यहाँ पर उसके सम्बन्ध में कुछ उल्लेख करना आवश्यक है।

रामकुमारजी के पुत्र अक्षय का विवरण।

जन्म के समय अक्षय की जननी की मृत्यु होने के कारण मातृहीन बालक आत्मीयवर्ग का विशेष स्नेह-पात्र बन गया था। सन् १८५२ ई. में श्रीरामकृष्णदेव के प्रथम कलकत्ता आगमन के समय उसकी आयु केवल तीन-चार वर्ष की थी। अतः पहले दो-तीन वर्ष तक उसे गोद में लेकर लालन-पालन करने तथा स्नेह करने का अवसर प्राप्त हुआ था। किन्तु रामकुमारजी ने अक्षय को कभी गोद में नहीं लिया था। कारण पूछने पर वे कहते थे, 'माया बढ़ाने की क्या आवश्यकता है वह अधिक काल जीवित नहीं रहेगा!' तदनन्तर श्रीरामकृष्णदेव जब संसार तथा अपने को भूलकर साधन में निमग्न हुए थे, तब तक वह सुन्दर शिशु कैशोरावस्था को पार कर यौवन में पदार्पण कर चुका था और अत्यन्त सुन्दर दिखाई देता था। श्रीरामकृष्णदेव तथा उनके अन्यान्य आत्मीयवर्ग से हमने सुना है कि अक्षय वास्तव में अत्यन्त सुन्दर युवक था। वे कहते थे कि उसके शरीर का रंग जैसा उज्ज्वल था, वैसे ही अंग-प्रत्यंगों का गठन भी अत्यन्त सुन्दर तथा सुललित था, वह देखने में साक्षात् शिवमूर्ति के सदृश प्रतीत होता था।

अक्षय का सौन्दर्य।

बाल्यावस्था से ही श्रीरामचन्द्रजी के प्रति अक्षय का विशेष अनुराग था। कुलदेवता श्रीरघुवीर की सेवा में प्रतिदिन वह अधिक समय बिताया करता था। इसलिए दक्षिणेश्वर आकर पूजन-कार्य में संलग्न हो अपने मन के अनुकूल कार्य मिलने से उसे प्रसन्नता हुई थी। श्रीरामकृष्णदेव कहते थे, "श्रीराधागोविन्दजी का पूजन करता हुआ वह ध्यान में इतना तन्मय हो जाता था कि उस समय मन्दिर में अनेक व्यक्तियों का समागम होने पर भी उसे कुछ पता नहीं रहता था—इस प्रकार दो-तीन घण्टे व्यतीत होने के बाद उसे चेत होता था।" हृदय से हमने सुना है कि मन्दिर के नित्य पूजन के पश्चात् पंचवटी के नीचे जाकर अक्षय बहुत देर तक शिवपूजन किया करता था; तदनन्तर अपने हाथ से रसोई बनाकर भोजन करने के उपरान्त श्रीमद्भागवत का पाठ करने में संलग्न हो जाता था। इसके अतिरिक्त नवीन अनुराग की प्रेरणा से उस समय वह न्यास तथा प्राणायाम इतनी अधिक मात्रा में कर बैठता था कि उसका कण्ठ-तालु सूज जाने के कारण कभी-कभी खून भी निकलने लगता था। इस प्रकार की भक्ति तथा ईश्वरानुराग से अक्षय श्रीरामकृष्णदेव का अत्यन्त प्रिय बन चुका था।

श्रीरामचन्द्रजी के प्रति अक्षय की भक्ति तथा उसका साधनानुराग।

इस प्रकार वर्ष के बाद वर्ष बीतने गये तथा क्रमशः बंगला सन् १२७५ (सन् १८६९ ई.) आधे से भी अधिक बीत गया। अक्षय के हृद्गत भाव को जानकर चाचा रामेश्वरजी उसके विवाह के निमित्त कन्या ढूँढ़ने लगे। कामारपुकुर के सन्निकट कूचेकोल नामक गाँव में उपयुक्त कन्या की खोज पाकर रामेश्वरजी जब अक्षय को लेने के लिए दक्षिणेश्वर पँहुचे, तब चैत मास चल रहा था। चैत में यात्रा निषिद्ध है, इस प्रकार की आपत्ति उठने पर भी रामेश्वरजी ने उसे नहीं माना। उन्होंने कहा कि विदेश से अपने घर लौटने के लिए उस निषेध को मानने की कोई आवश्यकता नहीं है। घर पँहुचने के कुछ ही दिन बाद बंगला सन् १२७६ वैशाख में (सन् १८६९ ई.) अक्षय का विवाह हुआ।

अक्षय का विवाह।

विवाह के कुछ महीने पश्चात् ससुराल जाकर अक्षय को कठिन

बीमारी हुई। समाचार पाकर श्री रामेश्वरजी उसे कामारपुकुर लिवा लाए तथा चिकित्सादि के द्वारा आरोग्य कर उन्होंने पुनः उसे दक्षिणेश्वर भेज दिया। वहाँ जाकर उसकी आकृति सुधर गई तथा उसको यह अनुभव होने लगा कि उसके स्वास्थ्य की भी उन्नति हो रही है, उस समय सहसा एक दिन उसे फिर ज्वर हो गया। चिकित्सकों ने कहा कि सामान्य ज्वर है, शीघ्र ही ठीक हो जावेगा।

विवाह के बाद अक्षय की कठिन बीमारी तथा उसका दक्षिणेश्वर वापस आना।

हृदय का कहना था कि यह सुनकर कि अक्षय ससुराल में बीमार हुआ है श्रीरामकृष्णदेव इससे पहले ही कह चुके थे, "हृदु, लक्षण बहुत खराब हैं, मालूम होता है कि राक्षसगणवाली (नक्षत्र के अनुसार जातकभेद) किसी कन्या के साथ उसका विवाह हुआ है, छोकरा मर जायेगा, मुझे ऐसा दिखाई दे रहा है!" अस्तु, तीन-चार दिन बीत जाने पर भी अक्षय का ज्वर उपशम न होते देखकर श्रीरामकृष्णदेव ने हृदय को बुलाकर कहा, "हृदु, डाक्टर लोग निदान नहीं पा रहे हैं, अक्षय को बार-बार ज्वर आ रहा है, विज्ञ चिकित्सक लाकर अच्छी तरह से उसकी चिकित्सा करा, जिससे बाद में पश्चात्ताप न करना पड़े, छोकरा जीवित नहीं रहेगा।"

अक्षय को द्वितीय बार रोग तथा श्रीरामकृष्णदेव को पहले से ही उसकी मृत्यु की बात विदित होना।

हृदय कहता था, "उनको इस प्रकार कहते हुए सुनकर मैंने कहा, छिः छिः मामाजी, तुम्हारे मुँह से ये बातें क्यों निकलीं!" यह सुनकर वे बोले, 'क्या इच्छापूर्वक मैंने कहा है? माँ जो कुछ मुझे अवगत कराती है तथा मेरे द्वारा कहलाना चाहती हैं, इच्छा न रहने पर भी मुझे वैसा ही कहना पड़ता है। क्या मैं यह चाहता हूँ कि अक्षय जीवित न रहे!"

अक्षय जीवित नहीं रहेगा, सुनकर हृदय की आशंका तथा आचरण।

श्रीरामकृष्णदेव के इस कथन को सुनकर हृदय अत्यन्त उद्विग्न हो उठा तथा विज्ञ चिकित्सकों को लाकर अक्षय के आरोग्य के लिए नाना प्रकार का प्रयास करने लगा। किन्तु रोग क्रमशः बढ़ता ही चला गया। लगभग

महीना भर कष्ट पाने के बाद अक्षय का अन्तिम काल अत्यन्त सन्निकट देखकर श्रीरामकृष्णदेव उसकी शय्या के निकट उपस्थित होकर बोले, 'अक्षय, कहो—गंगा नारायण ॐ राम !' एक-दो क्रम से तीसरी बार उस मन्त्र की आवृत्ति करते ही अक्षय के शरीर से प्राणवायु निर्गत हो गई। हृदय से हमने सुना है कि अक्षय की मृत्यु होने पर हृदय जितना ही रोने लगा, भावाविष्ट होकर श्रीरामकृष्णदेव उतना ही हँसने लगे !

अक्षय की मृत्यु तथा श्रीरामकृष्णदेव का आचरण।

प्रियदर्शन पुत्रतुल्य अक्षय की मृत्यु को उच्च भावभूमि से अवलोकन कर श्रीरामकृष्णदेव के इस प्रकार हँसने पर भी, उनके मन में असह्य यातना न हुई हो, यह बात नहीं है। उस घटना के बहुत दिन बाद उन्होंने उसका उल्लेख कर कभी-कभी हमसे यह कहा है कि उस समय भावावेश से मृत्यु का स्वरूप अवस्थान्तर-प्राप्ति के रूप में दिखाई देने पर भी भावभंग होकर साधारण-भूमि में अवरोहण करते समय अक्षय के वियोग में उनको विशेष अभाव प्रतीत हुआ था। * अक्षय का देहान्त मथुरबाबू के मकान में होने के कारण भविष्य में श्रीरामकृष्णदेव के लिए कभी वहाँ रहना सम्भव नहीं हो सका था।

अक्षय की मृत्यु से श्रीरामकृष्णदेव को कष्ट।

अक्षय की मृत्यु के पश्चात् श्रीरामकृष्णदेव के मध्यम अग्रज श्रीयुत रामेश्वर भट्टाचार्यजी ने दक्षिणेश्वर में श्रीराधागोविन्दजी का पुजारीपद ग्रहण किया था। किन्तु उन्हीं को गृहस्थी की भी देखभाल करनी पड़ती थी, इसलिए सब समय वे दक्षिणेश्वर में नहीं रह पाते थे। विश्वासी व्यक्ति पर उस कार्य का भार सौंपकर बीच-बीच में वे कामारपुकुर चले जाया करते थे। सुना जाता है कि श्रीरामचन्द्र चट्टोपाध्याय तथा दीनानाथ नामक एक व्यक्ति उस समय उनके स्थलाभिषिक्त होकर उस कार्य को सम्पन्न करते थे।

श्रीरामकृष्णदेव के भाई रामेश्वरजी का पूजक-पद ग्रहण।

अक्षय के देहावसान के कुछ दिन बाद श्रीरामकृष्णदेव को साथ

* गुरुभाव-पूर्वार्ध, प्रथम अध्याय देखिए।

लेकर श्री मथुरबाबू ने अपनी जमींदारी तथा गुरुगृह की यात्रा की थी। श्रीरामकृष्णदेव के मन से अक्षय के निधन के कष्ट को प्रशमित करने के निमित्त ही सम्भवतः उन्होंने उस समय यह उपाय अवलम्बन किया था, क्योंकि परम भक्त मथुरबाबू जैसे सभी विषयों में साक्षात् देवता-बुद्धि से एक ओर श्रीरामकृष्णदेव के अनुमत होकर चलते थे, दूसरी ओर ठीक उसी प्रकार सांसारिक विषयों में उन्हें अनभिज्ञ बालक जैसे मानकर सब प्रकार से उनकी रक्षा करना अपना कर्तव्य समझते थे। मथुरबाबू की जमींदारी के क्षेत्रों में एक स्थान पर ग्रामवासी स्त्री-पुरुषों की दुर्दशा तथा अर्थाभाव को देखकर श्रीरामकृष्णदेव अत्यन्त दुःखित हुए तथा उनको आमन्त्रित कर मथुरबाबू के द्वारा उन्हें सिर पर अच्छी तरह से लगाने के लिए तेल, एक एक नवीन वस्त्र तथा पेट भरकर भोजन प्रदान कराया था। हृदय के कथनानुसार यह घटना राणाघाट के निकटवर्ती कलाइघाटी नामक स्थान में हुई थी। मथुरबाबू उस समय श्रीरामकृष्णदेव को साथ लेकर नाव पर चूर्णी नदी में भ्रमण कर रहे थे।

मथुरबाबू के साथ श्रीरामकृष्णदेव का राणाघाट गमन तथा दरिद्र-नारायणों की सेवा।

हृदय से हमने सुना है कि सातक्षीरा के निकट सोनाबेड़े गाँव मथुरबाबू का पैत्रिक स्थान था। उस गाँव के समीपवर्ती सभी गाँव उस समय मथुरबाबू की जमींदारी के अन्तर्गत थे। श्रीरामकृष्णदेव को साथ लेकर मथुरबाबू उस समय वहाँ गए थे। वहाँ से मथुरबाबू का गुरुगृह अधिक दूर नहीं था। जमीन जायदाद के बँटवारे को लेकर तब गुरुवंश के लोगों के बीच आपस में विवाद चल रहा था। उस विवाद की मीमांसा के लिए मथुरबाबू को उन लोगों ने आमन्त्रित किया था। वह गाँव तालामागरो के नाम से प्रसिद्ध था। श्रीरामकृष्णदेव तथा हृदय को अपने हाथी पर बैठाकर मथुरबाबू वहाँ ले गए थे तथा स्वयं पालकी पर चढ़ कर गए थे।*

मथुरबाबू के पैत्रिक स्थान तथा गुरुगृह का दर्शन।

* हृदय कहता था कि रास्ता खराब होने के कारण जाते समय श्रीयुत मथुरबाबू श्रीरामकृष्णदेव को पालकी पर चढ़ाकर वहाँ ले गए थे तथा स्वयं

मथुरबाबू के गुरुपुत्रों की श्रद्धापूर्ण परिचर्या में वहाँ कुछ सप्ताह रहकर श्रीरामकृष्णदेव पुनः दक्षिणेश्वर वापस आ गए थे।

मथुरबाबू के पैत्रिक स्थान तथा गुरुस्थान का दर्शन कर लौटने के कुछ दिन बाद श्रीरामकृष्णदेव को लेकर कलकत्ता के कोलुटोला नामक मुहल्ले में एक विशेष घटना हुई थी। इस मुहल्ले के निवासी श्रीयुत कालीनाथ दत्त या धर के घर पर उस समय हरिसभा का अधिवेशन होता था। आमन्त्रित होकर श्रीरामकृष्णदेव वहाँ उपस्थित हुए थे तथा भावावेश में श्रीचैतन्य महाप्रभु के लिए स्थापित आसन पर जा विराजे थे। उस घटना का विस्तृत विवरण हमने अन्यत्र किया है।* उसके कुछ दिन बाद श्रीरामकृष्णदेव की श्रीनवद्वीपधाम दर्शन करने की अभिलाषा होने पर मथुरबाबू उन्हें साथ लेकर कालना, नवद्वीप आदि स्थानों में गए थे। कालना में जाकर भगवानदास बाबाजी नामक एक सिद्धभक्त के साथ श्रीरामकृष्णदेव का किस प्रकार मिलन हुआ था तथा नवद्वीप में उपस्थित होकर उन्हें किस तरह अद्भुत दर्शन प्राप्त हुआ था इसका भी उल्लेख अन्यत्र किया गया है।× सम्भवतः बंगला सन् १२७७ (सन् १८७० ई.) में श्रीरामकृष्णदेव उन पुनीत स्थानों के दर्शन करने गए थे। नवद्वीप के समीप गंगाजी के किनारे की रेतीली जमीन पर से जाते समय श्रीरामकृष्णदेव को जैसा गभीर भावावेश हुआ था, नवद्वीप में उपस्थित होकर वैसा नहीं हुआ था। मथुरबाबू आदि के द्वारा इसका कारण पूछे जाने पर श्रीरामकृष्ण ने कहा कि श्रीचैतन्य-देव का लीलास्थान पुराना नवद्वीप गंगा में डूब गया है; जहाँ उनकी विभिन्न लीलाएँ हुई थीं, वे स्थान उस रेतीली भूमि में विद्यमान थे, इसीलिए उस स्थान पर उन्हें गहरा भावावेश हुआ था।

कोलुटोला की हरिसभा में श्रीरामकृष्णदेव का श्रीचैतन्यदेव के आसन पर विराजमान होना तथा कालना, नवद्वीप आदि का दर्शन।

लगातार चौदह वर्ष तक श्रीरामकृष्णदेव की सेवा में सर्वात्मना नियुक्त

हाथी पर सवार होकर गए थे तथा गाँव में पहुँचने के बाद उन्होंने श्रीरामकृष्ण-देव के कुतूहल निवारणार्थ कभी-कभी उनको हाथी पर बैठाया था।

* गुरुभाव-उत्तरार्ध, तृतीय अध्याय देखिए।

× गुरुभाव-उत्तरार्ध, तृतीय अध्याय देखिए।

रहकर मथुरबाबू का अन्तःकरण उस समय कहाँ तक निष्काम बन चुका था, इसके दृष्टान्तस्वरूप हृदय ने एक घटना का वर्णन किया था। पाठकों के लिए यहाँ पर उसका उल्लेख करना असंगत न होगा।

मथुरबाबू की निष्काम भक्ति।

किसी समय मथुरबाबू के शरीर में किसी विशेष सन्धि-स्थल पर फोड़ा हो जाने से वे शय्याग्रस्त हो गए थे। उस समय श्रीरामकृष्णदेव के दर्शन के निमित्त उनके अत्यन्त आग्रह को देखकर हृदय ने श्रीरामकृष्णदेव से उस विषय को निवेदित किया। सुनकर श्रीरामकृष्णदेव बोले, 'मैं वहाँ जाकर क्या करूँगा, मेरे अन्दर उसके फोड़ा ठीक करने की सामर्थ्य कहाँ है?" श्रीरामकृष्णदेव न जाने से मथुरबाबू बारम्बार उनके समीप आदमी भेजकर कातर प्रार्थना करने लगे। उनकी उस प्रकार की व्याकुलता देखकर श्रीराम-कृष्णदेव को वहाँ जाना पड़ा। श्रीरामकृष्णदेव के उपस्थित होने पर मथुरबाबू के आनन्द की सीमा न रही। वे अत्यन्त कष्ट के साथ उठे तथा तकिया के सहारे बैठकर बोले, "बाबा, मुझे थोड़ा-सा अपना पद-रज प्रदान कीजिए।"

उक्त विषयक दृष्टान्त।

श्रीरामकृष्णदेव ने कहा, "मेरा पद-रज लेकर क्या करोगे, क्या उससे तुम्हारा फोड़ा ठीक हो जावेगा?"

यह बात सुनकर मथुरबाबू बोले, "बाबा, क्या मैं ऐसा हूँ कि अपने फोड़े को ठीक करने के निमित्त आपका पदरज माँग रहा हूँ? उसके लिए तो डाक्टर मौजूद हैं। भवसागर पार होने की आकांक्षा से ही मैं आपके श्रीचरणों की रज की प्रार्थना कर रहा हूँ।"

इस बात को सुनते ही श्रीरामकृष्णदेव भावाविष्ट हो गए। उस समय उनके श्रीचरणों में मस्तक टेककर मथुरबाबू ने अपने को कृतार्थ अनुभव किया—उनके नेत्रों से आनन्दाश्रु प्रवाहित होने लगे!

श्रीरामकृष्णदेव के साथ मथुरबाबू का गहरा प्रेम-सम्बन्ध।

मथुरबाबू उस समय श्रीरामकृष्णदेव के प्रति कितनी भक्ति-श्रद्धा किया करते थे, हमने श्रीरामकृष्णदेव तथा हृदय से उस विषय में बहुत-कुछ सुना है। उस सम्बन्ध में संक्षेप में इतना ही कहा जा सकता है कि श्रीराम-कृष्णदेव के बारे में मथुरबाबू की यह दृढ़ धारणा बन चुकी थी कि वे उनके इहलोक तथा परलोक के एकमात्र आश्रय तथा अवलम्बन-स्वरूप हैं। दूसरी

ओर उनके प्रति श्रीरामकृष्णदेव की कृपा भी असीम थी। स्वतन्त्र-स्वभाव श्रीरामकृष्णदेव कभी-कभी मथुरबाबू के किसी-किसी कार्य से असन्तुष्ट होते हुए भी तत्काल ही उसे भूलकर उनकी समस्त प्रार्थनाओं को स्वीकार कर उनके ऐहिक तथा पारलौकिक कल्याण के निमित्त प्रयास करते थे। श्रीरामकृष्णदेव तथा मथुरबाबू का सम्बन्ध कितना गहरा प्रेमपूर्ण तथा अविच्छेद्य था, निम्नलिखित घटना से इसका पता चलता है—

एक दिन भावाविष्ट होकर श्रीरामकृष्णदेव ने मथुरबाबू से कहा "मथुर, तुम जब तक (जीवित) रहोगे, तब तक मैं यहाँ (दक्षिणेश्वर में) रहूँगा।" यह सुनकर मथुरबाबू भय से सिहर उठे; क्योंकि वे जानते थे कि साक्षात श्रीजगदम्बा ही श्रीरामकृष्णदेव के शरीर का अवलम्बन कर उनकी तथा उनके परिवारवर्ग की रक्षा कर रही हैं—इसलिए श्रीरामकृष्णदेव के उस कथन से उन्होंने समझा कि उनके मृत्यु के बाद श्रीरामकृष्णदेव उनके परिवारवर्ग को त्यागकर चल देंगे। तब तो अत्यन्त दीनता के साथ उन्होंने श्रीरामकृष्णदेव से कहा, "यह क्या बात है बाबा, मेरी पत्नी तथा पुत्र द्वारकानाथ की भी आप पर विशेष भक्ति है।" मथुरबाबू को दुःखी देखकर श्रीरामकृष्णदेव बोले, "अच्छा, जब तक तुम्हारी पत्नी तथा दुआरी (द्वारकानाथ) रहेंगे, तब तक मैं रहूँगा।" और सचमुच हुआ भी यही। श्रीमती जगदम्बादासी तथा द्वारकानाथ के देहावसान के कुछ दिन बाद ही श्रीरामकृष्णदेव ने सदा के लिए दक्षिणेश्वर को त्याग दिया था। सन् १८८१ ई. में श्रीमती जगदम्बादासी का निधन हुआ था।* उसके बाद तीन वर्ष से कुछ अधिक काल तक श्रीरामकृष्णदेव दक्षिणेश्वर में रहे थे।

उक्त विषयक दृष्टान्त।

दूसरे किसी दिन मथुरबाबू ने श्रीरामकृष्णदेव से कहा था, "क्यों बाबा, तुमने जो यह कहा था कि तुम्हारे भक्तवृन्द का आगमन होगा,

* "Jagadamba died on or about 1st Januany 1881, intestate, leaving defendant Trayluksha, then the only son of Mathur, heir surviving." Quoted from Plaintiff's statement in High Court Suit No. 203 of 1889.

अभी तक तो उनमें से कोई भी नहीं आया?" यह सुनकर श्रीरामकृष्णदेव बोले, "पता नहीं बाबू, माँ कब तक उनको लाएंगी—किन्तु वे सब आयेंगे, यह बात स्वयं माँ से ही मुझे विदित हुई है; उन्होंने और जो कुछ मुझको दिखाया है, क्रमशः वह सभी सत्य सिद्ध हुआ है, किन्तु यह बात क्यों सत्य नहीं हुई, यह कौन जान सकता है!" यह कहकर श्रीरामकृष्णदेव खिन्न होकर सोचने लगे कि क्या उनका वह दर्शन भ्रमात्मक रहा? उन्हें दुःखी देखकर मथुरबाबू अत्यन्त व्यथित हुए तथा उन्होंने यह अनुभव किया कि उस विषय को छेड़ना उचित नहीं हुआ है। तदनन्तर बालकस्वभाव श्रीरामकृष्णदेव को सान्त्वना देने के लिए उन्होंने कहा, "बाबा, चाहे वे आएँ या न आएँ, मैं तो आपका सदानुगत भक्त विद्यमान हूँ—तो फिर आपका दर्शन कैसे असत्य हो सकता है?—मैं अकेला ही सौ भक्तों के बराबर हूँ, इसीलिए माँ ने कहा होगा कि अनेक भक्तों का आगमन होगा!" श्रीरामकृष्णदेव बोले, "पता नहीं बाबू, तुम जो कह रहे हो, सम्भवतः वही होगा।" मथुरबाबू उस प्रसंग को और आगे न बढ़ाकर दूसरी बातों की चर्चा करने लगे, फलतः श्रीरामकृष्णदेव भी उस बात को भूल गए।

उक्तविषयक द्वितीय दृष्टान्त।

श्रीरामकृष्णदेव के निरन्तर सत्संग के प्रभाव से मथुरबाबू के हृद्गत भावों में कहाँ तक परिवर्तन हुआ था, इस ग्रन्थ के 'गुरुभाव' नामक खण्ड में हमने अनेक स्थलों पर उल्लेख किया है। शास्त्रों का कथन है कि मुक्त पुरुषों के सेवकवृन्द उनके द्वारा अनुष्ठित शुभ कर्मों के फल को प्राप्त करने के अधिकारी होते हैं। अतः अवतार-पुरुषों के सेवक के लिए विविध दैवी सम्पद् का अधिकारी होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

मथुरबाबू के लिए इस प्रकार निष्काम भक्ति प्राप्त करना आश्चर्य-जनक नहीं था। इस सम्बन्ध में शास्त्रीय अभिमत।

सम्पद्-विपद, सुख-दुःख, मिलन-वियोग, जीवन-मृत्यु-रूप तरंग-व्याप्त काल के अनन्त प्रवाह से क्रमशः बंगला १२७८ साल (सन् १८७१ ई.) का इस धराधाम में उदय हुआ। श्रीरामकृष्णदेव के साथ मथुरबाबू का सम्बन्ध घनिष्ठतर होकर उस समय उसका पन्द्रहवाँ वर्ष प्रारम्भ हुआ।

वैशाख तथा ज्येष्ठ के महीने बीत कर आषाढ़ का आधा भाग बीत गया। उस समय श्रीयुत मथुरबाबू ज्वर से पीड़ित होकर शय्याग्रस्त हुए। क्रमशः वह रोग बढ़कर सात-आठ दिन के अन्दर ही उसने भीषण रूप धारण किया तथा उनकी बोली भी बन्द हो गई। श्रीरामकृष्णदेव पहले से ही यह समझ गए थे कि माँ उनके भक्त को अपनी स्नेहमय गोद में स्थान दे रही हैं—मथुरबाबू के भक्तिव्रत का उद्यापन हो चुका है। इसलिए उनको देखने के निमित्त प्रतिदिन वे हृदय को भेजते थे, पर स्वयं एक दिन भी उन्हें देखने नहीं गए। धीरे-धीरे उनका अन्तिम दिन आकर उपस्थित हुआ। अन्तिम काल सन्निकट देखकर मथुरबाबू को कालीघाट लिवा ले जाया गया। उस दिन श्रीरामकृष्णदेव ने हृदय को भी उन्हें देखने के लिए नहीं भेजा, किन्तु अपराह्न होते ही दो-तीन घण्टे के लिए वे गभीर भाव में निमग्न हो गए तथा दिव्य शरीर धारण कर ज्योतिर्मय मार्ग से भक्त के समीप उपस्थित होकर उन्होंने उसे कृतार्थ किया—अत्यन्त पुण्यार्जितलोक में उन्होंने स्वयं उसको आरूढ़ कराया।

मथुरबाबू का देहावसान।

भावावेश भंग होने पर श्रीरामकृष्णदेव ने हृदय को अपने समीप बुलाया, उस समय पाँच बज चुके थे। उन्होंने कहा, "श्रीजगदम्बा की सखियों ने मथुर को अत्यन्त आदरपूर्वक दिव्य रथ पर उठा लिया—उसकी आत्मा श्रीदेवीलोक में चली गई।" तदनन्तर अधिक रात्रि में कालीमन्दिर के कर्मचारियों ने आकर हृदय को यह समाचार दिया कि सायंकाल पाँच बजे मथुरबाबू का देहान्त हो गया।* इस प्रकार से पुण्यलोक में गमन करने पर भी, भोगवासना का सम्पूर्ण क्षय न होने के कारण परम भक्त मथुरबाबू को पुनः इस धरणीतल पर वापस आना पड़ेगा, श्रीरामकृष्णदेव के मुख से

भावावेश में श्रीरामकृष्णदेव द्वारा उस घटना का दर्शन।

---

* "Mathura Mohan Biswas died in July, 1871, intestate leaving him surviving Jagadamba, sole widow. Bhupal since deceased, a son by his another wife who had pre-deceased him--and Dwarka Nath Biswas since

अन्य किसी समय हमने यह बात सुनी है, तथा अन्यत्र उसका उल्लेख किया है।×

---

deceased, defendant Trayluksha Nath and Thakurdas alias Dhurmadas, three sons by the said Jagadamba."

Quoted from plaintiff's statement in High Court Suit No. 230 of 1889--Shyama Churun Biswas vs. Trayluksha Nath Biswas, Gurudas, Kalidas, Durgadas and Kumudini.

× गुरुभाव-पूर्वार्ध, सप्तम अध्याय देखिए।

विंश अध्याय

षोड़शी-पूजा

मथुरबाबू परलोक सिधारे, किन्तु दक्षिणेश्वर के कालीमन्दिर में मानवों का जीवन-स्रोत यथावत् प्रवाहित होता रहा। दिन बीतते बीतते क्रमशः छः महीने बीत गए और बंगला सन् १२७८ फाल्गुन मास (सन् १८७२ ई.) प्रारम्भ हुआ। उस समय श्रीरामकृष्णदेव के जीवन में एक विशेष घटना हुई। उसको जानने के लिए हमें श्रीरामकृष्णदेव की ससुराल जयरामवाटी की ओर ध्यान देना पड़ेगा।

विवाह के पश्चात् श्रीरामकृष्णदेव के प्रथम दर्शन के समय श्रीमाँ बालिका मात्र थीं।

हम पहले ही यह कह चुके हैं कि सन् १८६७ ई. में श्रीरामकृष्णदेव जब भैरवी ब्राह्मणी तथा हृदय को साथ लेकर अपनी जन्मभूमि कामारपुकुर गए थे, उस समय उनकी आत्मीय महिलाओं ने श्रीरामकृष्णदेव की पत्नी को वहाँ लाने की व्यवस्था की थी। विवाह के पश्चात् तभी श्रीमाताजी को वास्तव में प्रथम पति-दर्शन करने का सौभाग्य हुआ था। कामारपुकुर आदि गाँवों की बालिकाओं के साथ कलकत्ता की बालिकाओं की तुलना करने का जिन्हें अवसर प्राप्त हुआ है, वे जानते हैं कि कलकत्ता आदि स्थानों में रहनेवाली बालिकाओं का शारीरिक तथा मानसिक विकास जैसे बहुत कम आयु में ही होने लगता है, ग्रामीण बालिकाओं का वैसा नहीं होता है। चौदह तथा कभी-कभी पन्द्रह-सोलह वर्ष तक की ग्रामीण कन्या में भी यौवनकालीन अंगलक्षणों का पूर्णतया विकास नहीं होता एवं शरीर की भाँति उनका मानसिक विकास भी उसी प्रकार विलम्ब से होता है। पिंजराबद्ध चिड़ियों की भाँति स्वल्प-विस्तृत स्थान में समय यापन करने को विवश न होकर पवित्र निर्मल ग्राम्य-वायु का सेवन तथा गाँव के अन्दर इच्छानुसार विचरण कर स्वाभाविक रूप से जीवन व्यतीत करने के कारण ही सम्भवतः ऐसा होता है।

चौदह वर्ष की आयु में प्रथम बार पति-दर्शन के समय श्रीमाताजी का स्वभाव बालिका-सदृश था। उस समय उनमें दाम्पत्य-जीवन के गम्भीर उद्देश्य तथा उत्तरदायित्व को समझने की शक्ति का विकास केवल प्रारम्भ भर हुआ था। देह-बुद्धिरहित श्रीरामकृष्णदेव के दिव्यसंग तथा स्नेह-यत्न को प्राप्त कर उस समय पवित्रहृदय बालिका अनिर्वचनीय आनन्द से उल्लसित हो उठी थीं। श्रीरामकृष्णदेव की भक्त-महिलाओं से बहुधा उन्होंने उस उल्लास की बात को इस प्रकार व्यक्त किया है—"तब से मैं सर्वदा यह अनुभव किया करती थी कि मेरे हृदय में मानो आनन्द का पूर्णघट स्थापित हो चुका है, उस शान्त निश्चल दिव्य उल्लास से मेरा हृदय किस प्रकार भरा रहता था, यह बतलाना मेरी सामर्थ्य से बाहर है।"

श्रीरामकृष्णदेव को प्रथम बार देखकर श्रीमाँ का मानसिक भाव।

कुछ महीनों के अनन्तर श्रीरामकृष्णदेव जब कामारपुकुर से कलकत्ता लौटे, तब वह बालिका अनन्त आनन्द-सम्पद् की अधिकारिणी हो चुकी हैं—ऐसा अनुभव करती हुई अपने नैहर वापस आईं। पूर्वोक्त उल्लास की उपलब्धि से उनके व्यवहार आचरणादि सभी में उस समय एक विशेष परिवर्तन उपस्थित हुआ था, यह हम भलीभाँति अनुभव कर सकते हैं। किन्तु साधारण मानवों के लिए वह दृष्टिगोचर हुआ था या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता; क्योंकि उस परिवर्तन से चापल्य त्यागकर उन्होंने शान्तप्रकृति धारण की थी, प्रगल्भा न होकर वे चिन्तनशील बनी थीं, उनकी दृष्टि स्वार्थ में निबद्ध न रहकर वे निस्वार्थ प्रेम की भूमि पर आरूढ़ हुई थीं तथा अपने हृदय से सब प्रकार के अभाव-ज्ञान को दूर हटाकर साधारण लोगों के दुःख-कष्टों में असीम सहानुभूतिसम्पन्न हो क्रमशः वे करुणा की साक्षात् प्रतिमा के रूप में परिणत हुई थीं। मानसिक उल्लास के प्रभाव से उन्हें अपने समस्त शारीरिक कष्ट भी उस समय से कष्ट-जैसे प्रतीत नहीं होते थे तथा आत्मीयवर्ग से स्नेह-यत्न का प्रतिदान न मिलने पर उनको किसी प्रकार का दुःख नहीं होता था। इस प्रकार समस्त विषयों में साधारणतया सन्तुष्ट रहकर बालिका आत्मनिमग्न हो नैहर में समय व्यतीत करने लगीं। किन्तु

उसी स्थिति में श्रीमाँ का जयरामवाटी में अवस्थान।

शरीर से वहाँ अवस्थान करने पर भी उनका मन श्रीरामकृष्णदेव का पदानुसरण कर तभी से दक्षिणेश्वर में रहने लगा था। श्रीरामकृष्णदेव को देखने तथा उनके समीप उपस्थित होने के लिए बीच-बीच में उनकी प्रबल उत्कण्ठा होने पर भी वे अत्यन्त यत्नपूर्वक उसे रोककर धीरज धारण करती रहती थीं तथा अपने मन में यह सोचा करती थीं कि जिन्होंने प्रथम दर्शन के अवसर पर कृपापूर्वक उनसे इतना स्नेह किया है, वे कभी उन्हें भूल नहीं सकते—समय आने पर अवश्य ही वे उनको अपने समीप बुला लेंगे। इस प्रकार उनके दिन बीतने लगे तथा पूर्ण विश्वास के साथ उस शुभ दिन की वे प्रतीक्षा करने लगीं।

इस तरह क्रमशः दीर्घ चार वर्ष बीत गए। बालिका के हृदय में आशा तथा प्रतीक्षा की प्रबल-धाराएँ यथावत् प्रवाहित होने लगीं। उनकी शारीरिक स्थिति मन की भाँति न रही, दिनों दिन उसमें परिवर्तन उपस्थित होकर बंगला सन् १२७८ (सन् १८७२ ई.) के पौष के महीने में वे अठारह वर्ष की युवती हुईं।

उस समय श्रीमाँ की मनोवेदना का कारण तथा उनके दक्षिणेश्वर जाने का संकल्प।

देवता-सदृश पति के प्रथम-दर्शन-जनित आनन्द से उनका जीवन दैनन्दिन सुख-दुःखों से उच्चभूमि पर अवस्थित रहने पर भी इस संसार में विशुद्ध आनन्द का अवकाश ही कहाँ है? ग्रामीण लोग वार्तालाप करते हुए जब उनके पतिदेव को उन्मत्त कहा करते थे तथा "पहनने का वस्त्र तक त्यागकर वह हरि हरि कहता फिरता है"—इस तरह की बातें किया करते थे अथवा समवयस्क महिलाएँ जब 'पागल की पत्नी' कहकर उन्हें करुणा या उपेक्षा की पात्री समझा करती थीं, तब मुँह से कुछ न कहने पर भी उनके हृदय में अत्यन्त कष्टानुभव होता था। उदास होकर तब वे सोचा करती थीं—"मैंने पहले उनको जैसा देखा था, क्या अब वे उस प्रकार नहीं हैं? जैसा कि लोग कह रहे हैं, क्या वास्तव में उनमें वैसा परिवर्तन हुआ है? दैवी विधान से यदि ऐसा ही हुआ है, तब तो मेरे लिए यहाँ और अधिक रहना उचित नहीं है, उनके समीप रहकर उनकी सेवा में नियुक्त रहना ही मेरा कर्तव्य है।" इस प्रकार विचार-विमर्श करने के पश्चात् उन्होंने स्वयं दक्षिणेश्वर जाकर इस सन्देह को दूर करने तथा बाद में जैसा उचित प्रतीत हो

तदनुसार कार्य करने का निश्चय किया।

फाल्गुन की पूर्णिमा को श्रीचैतन्यदेव का आविर्भाव हुआ था। उस दिन पुण्यसलिला जाह्नवी में स्नान करने के निमित्त बंगाल के बहुत दूर-दूर के स्थानों से लोग कलकत्ता जाया करते हैं। गाँव की कुछ आत्मीय महिलाओं के साथ उस वर्ष उस उपलक्ष्य में श्रीमाताजी ने भी कलकत्ता जाने का पहले से ही निश्चय कर लिया था। समय उपस्थित होने पर उन्होंने उस अभिप्राय को व्यक्त किया। उनके पिताजी की अनुमति के बिना उन्हें ले जाना उचित न होगा, यह सोचकर उन महिलाओं ने उनके पिता श्रीयुत रामचन्द्र मुखोपाध्यायजी से उस विषय में पूछा। बुद्धिमान पिता सुनते ही समझ गए कि उनकी पुत्री की उस समय कलकत्ता जाने की अभिलाषा क्यों उत्पन्न हुई है तथा उनको साथ लेकर स्वयं कलकत्ता जाने की वे आवश्यक व्यवस्था करने लगे।

उस संकल्प को कार्य में परिणत करने का उचित अवसर।

रेल की सुविधा से काशी वृन्दावन आदि तीर्थस्थान अब कलकत्ता से अधिक दूर नहीं रह गए हैं, किन्तु श्रीरामकृष्णदेव की जन्मभूमि कामारपुकुर तथा जयरामवाटी रेल से वंचित रहने के कारण उनका दूरत्व ज्यों का त्यों बना हुआ है। * अभी तक स्थिति जब ऐसी बनी हुई है तो उस समय का तो कहना ही क्या है! उस समय विष्णुपुर या तारकेश्वर कहीं भी रेलमार्ग नहीं था एवं वाष्पीय जलयान के द्वारा घाटाल तथा कलकत्ता के बीच यातायात का कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं हुआ था। इसलिए पालकी अथवा पैदल चलने के सिवाय उन ग्रामवासियों के आने-जाने का और कोई साधन नहीं था तथा जमींदार आदि धनी व्यक्तियों को छोड़कर बाकी सभी लोग प्रायः पैदल ही आना-जाना करते थे। अतः पुत्री तथा समस्त साथियों को लेकर

गंगास्नान के निमित्त अपने पिताजी के साथ श्रीमाँ की पैदल यात्रा तथा मार्ग में उनका ज्वराक्रान्त होना।

* आजकल हावड़ा से विष्णुपुर रेलगाड़ी से जाया जा सकता है। हावड़ा से विष्णुपुर १२५ मील दूर है। वहाँ से कामारपुकुर और जयरामवाटी मोटर से जाया जा सकता है। जयरामवाटी से कामारपुकुर तीन मील दूर है। —प्रकाशक

श्रीरामचन्द्रजी पैदल ही उस दूर मार्ग को तय करने लगे। एक के बाद दूसरा धान का खेत एवं बीच-बीच में कमल से परिपूर्ण तालाबों को देखते तथा अश्वत्थ वट आदि वृक्षों की शीतल छाया में विश्राम लेते हुए प्रथम दो तीन दिन तक वे सभी अत्यन्त आनन्द के साथ आगे बढ़ने लगे। किन्तु गन्तव्य स्थान में पहुँचने के समय तक वह आनन्द नहीं रहा। पैदल चलने में अनभ्यस्त पुत्री को मार्ग में ही एक जगह जोर से ज्वर हो आने के कारण श्री रामचन्द्रजी बड़े चिन्तित हुए। उस हालत में आगे चलना असम्भव जानकर वे एक चट्टी में आश्रय लेकर अवस्थान करने लगे।

अस्वस्थ अवस्था में श्रीमाँ के अद्भुत दर्शन का विवरण।

मार्ग में इस तरह अस्वस्थ हो जाने के कारण श्री माताजी के हृदय में जो वेदनानुभव हुआ था, उसका वर्णन करना सम्भव नहीं है। किन्तु एक अद्भुत दर्शन प्राप्त कर उस समय वे आश्वस्त हुई थीं। उस दर्शन की बात को बाद में उन्होंने भक्त-महिलाओं से कभी-कभी निम्नलिखित रूप से व्यक्त किया है—"ज्वर से जब मैं एकदम बेहोश होकर पड़ी हुई थी, तब मैंने देखा कि एक बालिका आकर मेरे समीप बैठ गई—यद्यपि उसका रंग काला था, फिर भी ऐसा सुन्दर रूप मैंने कभी नहीं देखा था! बैठकर वह मेरे शरीर तथा सिर पर हाथ फेरने लगी—इतना कोमल स्निग्ध हाथ कि मेरे शरीर की जलन दूर होने लगी। मैंने पूछा, 'तुम कहाँ से आ रही हो?' उसने उत्तर दिया, 'दक्षिणेश्वर से।' सुनकर मैं आश्चर्यचकित हो गई, मैंने कहा, 'दक्षिणेश्वर से? मैं भी सोचती थी कि मैं दक्षिणेश्वर जाऊँगी, उन्हें (श्रीरामकृष्णदेव को) देखूँगी तथा उनकी सेवा करूँगी। किन्तु मार्ग में बुखार आ जाने के कारण मेरी आकांक्षाएँ पूर्ण न हो सकीं।' वह बोली, 'इसमें निराश होने की क्या बात है? अवश्य ही तुम दक्षिणेश्वर जाओगी, स्वस्थ होने के बाद वहाँ जाकर उनको देखोगी, तुम्हारे लिए ही तो मैंने उन्हें वहाँ रोक रखा है।'' मैंने कहा, "अच्छा? तुम मेरी कौन हो?' तब वह बालिका बोली, 'मैं तुम्हारी बहिन हूँ।' मैंने कहा, 'अच्छा, इसीलिए तुम आयी हो।' इस प्रकार की बातचीत के बाद मुझे नींद आ गई!"

प्रातःकाल उठकर श्री रामचन्द्रजी ने देखा कि पुत्री का ज्वर उतर

गया है। मार्ग में इस तरह निरुपाय हो बैठे रहने की अपेक्षा उनको लेकर धीरे-धीरे आगे चलना ही उन्होंने उचित समझा। रात्रि के पूर्वोक्त दर्शन से उत्साहित होकर श्रीमाताजी ने उनके उस परामर्श को आनन्द के साथ स्वीकार किया। कुछ दूर जाते ही एक पालकी भी मिल गई। उन्हें पुनः ज्वर हो आया, किन्तु पहले दिन की अपेक्षा कम ज्वर होने के कारण उसके प्रकोप से वे एकदम असमर्थ न हुईं। उन्होंने उस सम्बन्ध में किसी से कुछ भी नहीं कहा। क्रमशः मार्ग समाप्त हुआ तथा रात के नौ बजे श्रीमाँ दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्णदेव के समीप उपस्थित हुईं।

ज्वर लेकर ही रात्रि में श्रीमाँ का दक्षिणेश्वर उपस्थित होना तथा श्रीरामकृष्णदेव का आचरण।

श्रीरामकृष्णदेव उनको सहसा इस प्रकार रोगाक्रान्त दशा में उपस्थित देखकर अत्यन्त उद्विग्न हुए। ठण्ड लगने से बुखार बढ़ सकता है, यह सोचकर उन्होंने अपने कमरे में ही पृथक् शय्या पर उनके सोने की व्यवस्था कर दी तथा दुःखित होकर बारम्बार वे कहने लगे, "तुम इतने दिनों के बाद आई? अब क्या मेरे 'सेजो बाबू' (मथुरबाबू) जीवित हैं कि तुम्हारा आदरसत्कार होगा?" औषधि-पथ्यादि की विशेष व्यवस्था से तीन-चार दिन के अन्दर ही श्रीमाताजी स्वस्थ हो उठीं। उन तीन-चार दिन तक उन्हें दिन रात अपने कमरे में रखकर श्रीरामकृष्णदेव ने स्वयं उनकी औषधि-पथ्यादि सभी विषयों की देखभाल की, तदनन्तर नौबतखाने में अपनी जननी के समीप उनके रहने की व्यवस्था कर दी।

श्रीमाँ का सारा संशय दूर हो गया; जो सन्देह दूसरों की बातों से उत्पन्न होकर मेघ की तरह विश्वास-सूर्य को आच्छादित करने का प्रयास कर रहा था, श्रीरामकृष्णदेव के स्नेह-पवन से वह छिन्नभिन्न होकर उस समय न जाने कहाँ विलुप्त हो गया। श्रीमाताजी ने हृदय से यह अनुभव किया कि श्रीरामकृष्णदेव जैसे पहले थे, अब भी वैसे ही हैं—संसारी लोगों ने बिना सोचे-समझे उनके विषय में विभिन्न तरह का प्रचार किया है। देवता देवता की तरह ही विद्यमान हैं तथा विस्मृत होना तो दूर

श्रीरामकृष्णदेव के उक्त प्रकार आचरण से श्रीमाँ की वहाँ सानन्द अवस्थिति।

रहा, उनके प्रति वे पहले की भाँति यथावत् कृपापूर्ण हैं। अतः अपने कर्तव्य का निर्णय करने में उन्हें देर न लगी। उल्लसित हृदय से नौबत-खाने में रहकर वे देवता तथा देव-जननी की सेवा में नियुक्त हुईं। पुत्री के आनन्द से आनन्दित हो कुछ दिन वहाँ रहने के पश्चात् उनके पिताजी प्रसन्नता के साथ अपने गाँव लौट गए।

सन् १८६७ ई. में कामारपुकुर में रहते समय श्रीमाताजी के वहाँ आगमन पर श्रीरामकृष्णदेव के मन में जिस प्रकार की चिन्ताओं का उदय हुआ था, पाठकों से हम उसका उल्लेख कर चुके हैं। ब्रह्मविज्ञान में दृढ़प्रतिष्ठित होने के सम्बन्ध में आचार्य श्रीमत् तोतापुरीजी की बातों की स्मरण कर उस समय वे अपने साधनलब्ध विज्ञान की परीक्षा तथा पत्नी के प्रति कर्तव्यपालन में अग्रसर हुए थे। किन्तु उन दोनों कार्यों को प्रारम्भ करते ही उन्हें उस समय कलकत्ता वापस आना पड़ा था। अतः श्रीमाताजी के दक्षिणेश्वर आने पर उनको अपने समीप पाकर पुनः वे उन दोनों कार्यों में सन्नद्ध हुए।

श्रीरामकृष्णदेव द्वारा अपने ब्रह्मविज्ञान की परीक्षा तथा पत्नी को शिक्षाप्रदान।

यहाँ पर यह प्रश्न हो सकता है कि पत्नी को अपने साथ दक्षिणेश्वर लाकर इससे पूर्व भी तो वे उन कार्यों को कर सकते थे, किन्तु उन्होंने ऐसा क्यों नहीं किया? इसके उत्तर में यह कहना पड़ता है—इसमें सन्देह नहीं कि साधारण मानवों के लिए इस प्रकार का आचरण करना स्वाभाविक था; किन्तु उस श्रेणी के अन्तर्गत न होने के कारण श्रीरामकृष्णदेव ने ऐसा नहीं किया था। ईश्वर पर सम्पूर्ण निर्भरशील होकर अपने जीवन में प्रतिक्षण प्रत्येक कार्य के अनुष्ठान में जो अभ्यस्त हैं, वे स्वयं अपनी इच्छानुसार कभी किसी कार्य में अग्रसर नहीं होते। आत्मकल्याण या दूसरों के कल्याण-साधन के निमित्त वे हमारी तरह परिच्छिन्न, क्षुद्र बुद्धि की सहायता न लेकर श्रीभगवान् की विराट् बुद्धि तथा संकेत की प्रतीक्षा करते रहते हैं। इसलिए स्वेच्छापूर्वक परीक्षा देने के लिए वे सर्वथा विरत रहते हैं, किन्तु विराट् इच्छा के अनुगामी बनकर जीवन यापन करते हुए

इससे पूर्व श्रीरामकृष्णदेव द्वारा ऐसा न करने का कारण।

जब कभी स्वतः ही परीक्षा देने का अवसर उपस्थित होता है, तब वे आनन्दपूर्वक परीक्षा प्रदान करने के लिए तत्पर रहते हैं। श्रीरामकृष्णदेव स्वेच्छापूर्वक अपने ब्रह्मविज्ञान की गहराई की परीक्षा करने में तत्पर नहीं हुए, किन्तु जब उन्होंने देखा कि उनकी पत्नी कामारपुकुर में उनके समीप उपस्थित हुई हैं एवं उनके प्रति अपना कर्तव्यपालन करने के लिए अग्रसर होने पर उन्हें उस विषय में परीक्षा देनी होगी, तभी वे उस कार्य में प्रवृत्त हुए थे। पुनः ईश्वरेच्छा से उसके बाद जब उन्हें कलकत्ता आकर पत्नी से दूर रहना पड़ा, तब स्वतःप्रवृत्त होकर पुनः उस अवसर को लाने का उन्होंने कोई प्रयास नहीं किया। श्रीमाताजी जब तक स्वयं न उपस्थित हुईं, तब तक उन्हें दक्षिणेश्वर लाने की उन्होंने कोई चेष्टा नहीं की। साधारण बुद्धि के सहारे हम श्रीरामकृष्णदेव के आचरण का उपर्युक्त रूप से सामंजस्य कर सकते हैं। उसके अतिरिक्त यह भी कहा जा सकता है कि योगदृष्टि की सहायता से उन्हें यह विदित हो चुका था कि ऐसा करना ही ईश्वर का अभीष्ट था।

श्रीरामकृष्णदेव की शिक्षाप्रदान करने की रीति तथा श्रीमाँ के साथ उनका तत्कालीन आचरण।

अस्तु, यह देखकर कि पत्नी के प्रति कर्तव्यपालन कर परीक्षा प्रदान करने का अवसर उपस्थित हुआ है, श्रीरामकृष्णदेव आनन्द के साथ उसमें अग्रसर हुए तथा जब कभी उन्हें अवकाश मिलने लगा, तभी वे श्रीमाताजी को मानव-जीवन के उद्देश्य तथा कर्तव्य के बारे में शिक्षा देने लगे। ऐसा सुना जाता है कि उसी अवसर पर उन्होंने श्रीमाताजी से कहा था, "चन्दामामा जैसे सब शिशुओं का मामा है, वैसे ही ईश्वर भी सभी के अपने हैं, उनको पुकारने का सभी को अधिकार है। जो कोई उनको पुकारेगा उसी को दर्शन देकर वे कृतार्थ करेंगे, तुम्हारे पुकारने पर तुमको भी उनका दर्शन अवश्य प्राप्त होगा।" केवल उपदेश देकर ही श्रीरामकृष्णदेव की शिक्षा समाप्त नहीं हो जाती थी; अपितु शिष्य को अपने समीप रखकर स्नेह के द्वारा उसे सर्वथा अपनाते हुए वे सर्वप्रथम शिष्य को जो उपदेश देते थे, आगे चलकर उसे वह कहाँ तक कार्य में परिणत कर रहा है, उस ओर भी उनकी तीक्ष्ण दृष्टि रहती थी तथा कभी भ्रमवश उसके द्वारा यदि

विपरीत आचरण हो जाता तो उसे समझाकर उसका संशोधन कर देते थे। श्रीमाताजी के सम्बन्ध में भी उन्होंने उसी रीति का अवलम्बन किया था, यह सहज ही धारणा की जा सकती है। उनके आते ही उन्हें अपने कमरे में स्थान देने तथा आरोग्यलाभ होने के बाद प्रतिदिन रात्रि में अपनी शय्या पर सोने की अनुमति प्रदान करने से यह भली-भाँति हृदयंगम होता है कि प्रथम दिन से ही उन्होंने स्नेह के द्वारा श्रीमाताजी को कितना अपना लिया था। श्रीमाताजी के साथ श्रीराम-कृष्णदेव के तत्कालीन दिव्य-आचरणों की हमने अन्यत्र * चर्चा की है, अतः यहाँ पर उसका पुनरुल्लेख आवश्यक नहीं है। केवल वहाँ जो नहीं कही गई हैं, ऐसी दो-चार घटनाओं का उल्लेख यहाँ वांछित है।

श्रीमाताजी को श्रीराम-कृष्णदेव किस दृष्टि से देखते थे।

श्रीमाताजी ने उस समय एक दिन श्रीरामकृष्णदेव की चरणसेवा करते हुए पूछा था, "तुम मुझे किस दृष्टि से देखते हो?" श्रीरामकृष्णदेव ने उत्तर मे कहा, "जो माँ मन्दिर में विद्यमान हैं, उन्हीं ने इस शरीर को जन्म दिया है तथा इस समय वे नौबतखाने में रह रही हैं और वे ही अभी मेरे पैरों को दबा रही हैं। यथार्थतः साक्षात् आनन्दमयी के रूप में तुम्हें सर्वदा देखता हूँ।"

श्रीरामकृष्णदेव द्वारा अपने मन के संयम की परीक्षा।

और एक दिन श्रीमाँ को अपने समीप निद्रित देखकर श्रीराम-कृष्णदेव अपने मन को सम्बोधन कर इस प्रकार विचार में प्रवृत्त हुए थे— "रे मन, इसी का नाम स्त्री-शरीर है, लोग इसे परम भोग्य वस्तु समझते हैं तथा निरन्तर भोग करने के लिए लालायित रहते हैं; किन्तु इसे ग्रहण करने से देह में ही आबद्ध हो जाना पड़ता है, सच्चिदानन्द ईश्वर की प्राप्ति नहीं होती। रे मन, अपनी भावनाओं को छिपाने का प्रयत्न मत करो; तुम भीतर एक प्रकार तथा बाहर दूसरे प्रकार का भाव मत रखो, पेट में कुछ तथा मुँह में कुछ—इस प्रकार का आचरण न करो, सच बताओ कि तुम उसे ग्रहण करना चाहते हो या ईश्वर को? यदि स्त्री-शरीर चाहते हो, तो वह तुम्हारे पास

* गुरुभाव-पूर्वार्ध, चतुर्थ अध्याय देखिए।

ही पड़ा है, उसे ग्रहण करो।" इस प्रकार विचार कर ज्योंही श्रीरामकृष्णदेव श्रीमाताजी के शरीर को स्पर्श करने उद्यत हुए, तत्काल ही उनका मन कुण्ठित होकर सहसा समाधि में इस तरह विलीन हो गया कि उसके लिए उस रात में पुनः साधारण भावभूमि में अवरोहण करना सम्भव न हो सका। दूसरे दिन भगवन्नाम उच्चारण कर अत्यन्त प्रयास करने के बाद तब कहीं श्रीरामकृष्णदेव की समाधि भंग हुई।

पत्नी के साथ श्रीरामकृष्णदेव के सदृश आचरण और किसी अवतार-पुरुष ने नहीं किया है—उसका फल।

इस तरह पूर्ण यौवनयुक्त श्रीरामकृष्णदेव तथा नवयौवनसम्पन्न श्रीमाताजी के तत्कालीन दिव्य लीलाविलास के सम्बन्ध में हमने श्रीरामकृष्णदेव से जो बातें सुनी हैं, तदनुरूप बातें जगत् के आध्यात्मिक इतिहास में और किसी महापुरुष के बारे में सुनने को नहीं मिलती हैं। फलतः मुग्ध होकर मानवहृदय स्वतः ही इनके देवत्व में विश्वासी हो उठता है तथा अपने हृदय की भक्ति-श्रद्धा इनके श्रीचरणों में अर्पण करने के लिए विवश हो जाता है। उस समय देहज्ञानरहित श्रीरामकृष्णदेव प्रायः सारी रात समाधि में मग्न रहते थे तथा समाधि से व्युत्थित होकर बाह्यभूमि में अवरोहण करने पर भी उनका मन इतनी उच्च अवस्था में रहता था कि क्षण भर के लिए भी उसमें साधारण मानव की तरह देह-बुद्धि जाग्रत नहीं होती थी।

श्रीमाँ की अलौकिकता के सम्बन्ध में श्रीरामकृष्णदेव की उक्ति।

इस प्रकार दिन के बाद दिन तथा मास के बाद मास बीतकर क्रमशः एक वर्ष से भी अधिक काल बीत गया—किन्तु उन महान् अद्भुत श्रीरामकृष्णदेव तथा श्रीमाँ के संयम का बाँध नहीं टूटा! एक क्षण के लिए भूलकर भी प्रिय समझते हुए उन दोनों के हृदयों में दैहिक सम्पर्क की इच्छा जाग्रत नहीं हुई। उस समय की बातों का स्मरण कर श्रीरामकृष्णदेव ने बाद में हमसे कभी कभी कहा है, "वह (श्रीमाताजी) यदि इतनी शुद्ध और पवित्र न होती, और विवेक खोकर उस समय मुझ पर जबरदस्ती करती, तो संयम का बाँध टूटकर मुझमें देह-बुद्धि का उदय होता या नहीं, यह कौन कह सकता है? विवाह के बाद व्याकुल होकर मैंने माँ से (श्रीजगदम्बा से)

प्रार्थना की थी, 'माँ, मेरी पत्नी के मन से कामभाव को एकदम दूर कर दे,—उसके (श्रीमाँ के) साथ एकत्र रहकर उस समय मैंने यह अनुभव किया था कि माँ ने मेरी उस प्रार्थना को सचमुच सुना था।"

परीक्षा में उत्तीर्ण होने के पश्चात् श्रीरामकृष्ण-देव का संकल्प।

एक वर्ष से भी अधिक समय बीत जाने पर जब एक क्षण के लिए भी श्रीरामकृष्णदेव के अन्दर देह-बुद्धि का उदय नहीं हुआ एवं श्रीमाताजी को कभी श्रीजगदम्बा के अंशरूप से तथा कभी सच्चिदानन्दस्वरूप आत्मा या ब्रह्मरूप से देखने के अतिरिक्त और किसी भाव से देखना या अनुभव करना उनके लिए सम्भव न हो सका, तब श्रीरामकृष्णदेव यह समझ गए कि श्रीजगन्माता ने कृपापूर्वक उनको परीक्षा में उत्तीर्ण किया एवं माँ की (श्रीजगदम्बा की) कृपा से उनका मन स्वाभाविक रूप से दिव्य भावभूमि में आरूढ़ होकर सदा अवस्थान कर रहा है। श्रीजगन्माता की कृपा से उस समय हार्दिक रूप से उन्होंने यह अनुभव किया कि उनकी साधना पूर्ण हो चुकी है तथा श्रीजगन्माता के श्रीचरणों में उनका मन इतना तन्मय हो गया है कि माँ की इच्छा के विरुद्ध ज्ञात या अज्ञात रूप से उसमें और किसी भी इच्छा के उदय होने की सम्भावना नहीं है। तदनन्तर श्रीजगदम्बा के निर्देश से उनके हृदय में एक अद्‌भुत इच्छा उदित हुई और बिना किसी संकोच के उस समय उन्होंने उसे कार्यरूप में परिणत किया। श्रीरामकृष्णदेव तथा श्रीमाताजी से उस सम्बन्ध में समय-समय पर हमें जो कुछ विदित हुआ है, उसी को सम्बद्धरूप से अब हम पाठकों को बतलाना चाहते हैं।

श्रीषोडशी पूजन का आयोजन।

बंगला सन् १२८० के ज्येष्ठ का महीना आधे से भी अधिक बीत चुका है। आज फलहारिणी कालिका पूजन की पुण्यतिथि अमावस्या (२५ मई, १८७३ ई.) है। इसलिए दक्षिणेश्वर मन्दिर में आज विशिष्ट पर्व उपस्थित हुआ है। श्रीजगदम्बा के पूजन की इच्छा से श्रीरामकृष्णदेव ने आज विशेष आयोजन किया है। किन्तु वह आयोजन मन्दिर में न होकर उनकी इच्छानुसार गुप्त रूप से उनके कमरे में किया गया है। पूजन के समय देवी को बैठाने के निमित्त मांगल्य-चित्र से भूषित एक पीढ़ा पूजन के आसन के दक्षिण की ओर स्थापित है। सूर्यास्त

हो गया, क्रमशः गहन अन्धकार से अवगुण्ठित होकर अमावस्या की रात्रि प्रारम्भ हुई। श्रीरामकृष्णदेव के भानजे हृदयराम को आज मन्दिर में रात के समय देवी का विशेष पूजन करना है, इसलिए श्रीरामकृष्णदेव के पूजन के आयोजन में यथासाध्य सहायता प्रदान कर वह मन्दिर चला गया तथा श्रीराधागोविन्दजी की रात्रिकालीन सेवा-पूजा समाप्त कर दीनू पुजारी वहाँ आकर श्रीरामकृष्णदेव को उस कार्य में सहायता करने लगा। देवी के गूढ़-पूजन के आयोजन को सम्पूर्ण करने में रात के नौ बज गए। श्रीमाताजी को पूजन के समय उपस्थित रहने के लिए श्रीरामकृष्णदेव ने पहले से ही सन्देशा भेज दिया था, वे भी उस समय वहाँ आकर उपस्थित हुईं। श्रीरामकृष्णदेव पूजन करने बैठे।

पूजन के द्रव्यों का शोधन कर पूर्वकृत्य सम्पन्न किया गया। तब श्रीरामकृष्णदेव ने मांगल्य-चित्रभूषित पीढ़े पर बैठने के लिए श्रीमाँ को संकेत किया। पूजन दर्शन करती हुईं श्रीमाताजी पहले से ही अर्ध बाह्यदशा को प्राप्त कर चुकी थीं। इसलिए वे क्या कर रही हैं, इस बात की सम्यक् उपलब्धि किए बिना ही मन्त्रमुग्ध की तरह उस समय पूर्वाभिमुख बैठे हुए श्रीरामकृष्णदेव के दक्षिण की ओर उत्तर दिशा की तरफ मुँह करके बैठ गईं। सम्मुखस्थित घट के मन्त्र-पुनीत वारि के द्वारा श्रीरामकृष्णदेव ने बारम्बार श्रीमाँ का विधिवत् अभिषेक किया। तदनन्तर उनको मन्त्र श्रवण कराने के पश्चात् उन्होंने उस समय प्रार्थना-मन्त्र का उच्चारण किया—

श्रीमाँ का अभिषेक कर श्रीरामकृष्णदेव द्वारा पूजन।

'हे बाले! हे सर्वशक्ति-अधीश्वरी माते! त्रिपुरासुन्दरी! सिद्धि का द्वार उन्मोचन करो, इनके (श्रीमाँ के) शरीर-मन को पवित्र कर इनके अन्दर आविर्भूत हो सर्वकल्याण साधन करो!"

तदनन्तर श्रीमाँ के अंगों में मंत्रों का विधिवत् न्यास करने के बाद श्रीरामकृष्णदेव ने साक्षात्-देवीबुद्धि से षोड़शोपचार के द्वारा उनका पूजन किया तथा भोग लगाकर अपने हाथों से प्रसादी वस्तुओं का कुछ अंश उनके मुँह में दिया। बाह्यज्ञान तिरोहित होकर श्रीमाँ समाधि में लीन हो

पूजन समाप्त होने पर दोनों की समाधि तथा देवी के चरणों में श्रीरामकृष्णदेव द्वारा जप-पूजनादि समर्पण।

गई ! श्रीरामकृष्णदेव भी अर्धबाह्यदशा में मंत्रोच्चारण करते हुए समाधिस्थ हो गए! समाधि-मग्न पूजक समाधिस्थ देवी के साथ आत्मस्वरूप में पूर्णतया सम्मिलित तथा एकीभूत हो गए।

कितना ही समय बीत गया! रात्रि का द्वितीय प्रहर भी बीत गया। आत्माराम श्रीरामकृष्णदेव के अन्दर तब कुछ-कुछ बाह्य चेतना के लक्षण दिखाई देने लगे। पहले की तरह अर्धबाह्यदशा प्राप्त कर उन्होंने देवी को आत्मनिवेदन किया। तदनन्तर अपने साधन का फल तथा जप की माला इत्यादि सब कुछ देवी के श्रीचरणों में सदा के लिए विसर्जन कर मंत्रोच्चारण करते हुए वे उन्हें प्रणाम करने लगे—'हे सर्वमंगलमांगल्ये! हे सर्वकर्म-निष्पन्नकारिणि! हे शरणदायिनि! त्रिनयने! शिवगेहिनि! गौरी! हे नारायणि! तुम्हें प्रणाम है, मैं तुमको प्रणाम करता हूँ।"

पूजा समाप्त हुई। मूर्तिमती विद्यारूपिणी मानवी के देह को अवलम्बन कर ईश्वर की उपासना करने के पश्चात् श्रीरामकृष्णदेव का साधन परि-समाप्त हुआ—उनके देव-मानवत्व को सभी प्रकार से सम्पूर्णता प्राप्त हुई।

श्रीरामकृष्णदेव की निरन्तर समाधि से श्रीमाँ की नींद में विघ्न होने के कारण उनका अन्यत्र शयन तथा कामारपुकुर प्रत्यावर्तन।

श्रीषोड़शीपूजन के बाद श्रीमाताजी ने प्रायः पाँच महीने तक श्रीराम-कृष्णदेव के समीप अवस्थान किया था। पहले की भाँति उस समय वे श्रीरामकृष्णदेव तथा उनकी जननी की सेवा में नियुक्त रहकर दिन का समय नौबतखाने में बिताकर रात में श्रीरामकृष्णदेव की शय्या में ही शयन करती थीं। दिनरात श्रीरामकृष्णदेव भाव-समाधि में निमग्न रहते थे तथा कभी-कभी निर्विकल्प समाधि में उनका मन सहसा इस प्रकार विलीन हो जाता था कि उनके शरीर पर मृतक के लक्षण प्रकट होने लगते थे। श्रीरामकृष्णदेव को न जाने कब समाधि लग जाय, इस आशंका से श्रीमाँ को रात में नींद नहीं आती थी। बहुत देर तक समाधिस्थ रहने के बाद भी उनकी चेतना नहीं हो रही है यह देखकर भयभीत हो क्या करना चाहिए इसका निश्चय न कर पाने के कारण एक रात को उन्होंने हृदय तथा और लोगों को जगाया था। तदनन्तर हृदय ने आकर बहुत देर तक भगवन्नाम सुनाया। तत्पश्चात् श्रीरामकृष्णदेव का समाधिभंग हुआ। समाधिभंग होने के बाद सारी

श्रीमाँ सारदादेवी

बात सुनकर तथा यह जानकर कि नित्यप्रति रात्रि में श्रीमाँ की निद्रा में विघ्न उपस्थित हो रहा है, उन्होंने नौबतखाने में अपनी मातेश्वरी के समीप श्रीमाताजी के सोने की व्यवस्था कर दी। इस प्रकार एक वर्ष चार महीने तक श्रीरामकृष्णदेव के निकट दक्षिणेश्वर में रहने के उपरान्त सम्भवतः बंगला सन् १२८० के कार्तिक मास (अक्टूबर, १८७३ ई.) में किसी समय श्रीमाँ कामारपुकुर लौटी थीं।

एकत्रिंश अध्याय

साधकभाव-सम्बन्धी अवशिष्ट बातें

षोड़शीपूजन सम्पन्न होने के पश्चात् श्रीरामकृष्णदेव का साधन-यज्ञ पूर्ण हुआ। ईश्वरानुरागरूप जो पवित्र हुताशन उनके हृदय में निरन्तर प्रज्वलित था तथा जिसने उनको सतत द्वादश वर्ष पर्यन्त व्यग्र कर विभिन्न रूप से साधनाओं में प्रवृत्त किया था तथा उसके बाद भी सम्पूर्ण रूप से उन्हें शान्त नहीं होने दिया था, पूर्णाहुति प्राप्त कर इतने दिनों के अनन्तर उसने प्रशान्त रूप धारण किया। इसके अतिरिक्त उसके लिए दूसरा उपाय ही क्या था—श्रीरामकृष्णदेव के समीप उस समय अपनी और ऐसी कौन-सी वस्तु थी, जिसे उन्होंने इससे पूर्व उसमें आहुति न दी हो? धन, मान, नाम, यश इत्यादि जागतिक, समस्त भोगाकांक्षाओं को बहुत पहले से ही उन्होंने उसमें विसर्जित कर दिया था। हृदय, प्राण, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार आदि सभी वस्तुओं को वे क्रमशः उसके कराल मुख में आहुति दे चुके थे। विविध साधनमार्ग में अग्रसर हो नाना प्रकार से श्रीजगन्माता के दर्शन करने की ही एकमात्र लालसा अवशिष्ट थी—उसे भी तब उन्होंने उसमें पूर्णतया अर्पित कर दिया। अतः अब प्रशान्त हुए बिना वह और कर ही क्या सकता था?

षोड़शीपूजन के पश्चात् श्रीरामकृष्णदेव की साधन-इच्छा की निवृत्ति।

श्रीरामकृष्णदेव ने यह अनुभव किया कि श्रीजगदम्बा ने उनकी आन्तरिक व्याकुलता को देखकर सर्वप्रथम उन्हें दर्शन देकर कृतार्थ किया है—तदनन्तर अद्भुत गुणसम्पन्न विभिन्न व्यक्तियों के साथ उनको परिचित कराकर विविध शास्त्रीय मार्गों में अग्रसर कराके उस दर्शन की यथार्थता को हृदयंगम करने का उन्हें अवसर प्रदान किया है—अतः उनके समीप अब और क्या माँगा

समस्त धर्ममत के साधनों को सम्पन्न करने के बाद उनके लिए साधनसम्बन्धी और किसी कर्तव्य का अवशिष्ट न रहना।

जाय ! उन्होंने देखा कि चौसठ तन्त्रों के सभी साधन क्रमशः सम्पन्न हो चुके हैं, वैष्णवतन्त्र अनुसार पंचभावाश्रित जितने साधन भारत में प्रचलित हैं, उनका भी विधिवत् अनुष्ठान हो चुका है, सनातन वैदिक मार्गानुसार संन्यास ग्रहण कर श्रीजगदम्बा के निर्गुण निराकार रूप का भी दर्शन प्राप्त हो चुका है तथा श्रीजगन्माता की अचिन्त्य लीला के प्रभाव से भारत से बाहर अद्भुत इस्लाम मत के साधन में प्रवृत्त होकर भी उसका यथायोग्य फल उन्हें हस्तगत हो चुका है—अतः अब उनके निकट सुनने या देखने को अवशिष्ट और रह ही क्या गया है !

श्रीरामकृष्णदेव को अद्भुत रूप से श्रीईसा-प्रवर्तित धर्म में सिद्धि-प्राप्त होना।

उसके एक वर्ष बाद श्रीरामकृष्णदेव का हृदय पुनः और एक साधन-मार्ग का अवलम्बन कर श्रीजगदम्बा के दर्शन करने के निमित्त उन्मुख हुआ था। उस समय उनका श्रीयुत शम्भुचरण मल्लिक के साथ परिचय हो चुका था तथा उनसे बाईबिल सुनकर श्रीईसा के पवित्र जीवन तथा सम्प्रदाय-प्रवर्तन की बातें उन्हें विदित हुई थीं। उनके हृदय में उस इच्छा का किंचिन्मात्र उदय होते ही श्रीजगदम्बा ने अद्भुत रूप से उसे पूर्ण कर उनको कृतार्थ किया था, तदर्थ उन्हें विशेष कोई प्रयास नहीं करना पड़ा था। घटना इस प्रकार हुई थी—दक्षिणेश्वर कालीमन्दिर के दक्षिण ओर यदुनाथ मल्लिक का बगीचा था; श्रीरामकृष्णदेव कभी-कभी वहाँ टहलने जाते थे। यदुनाथजी तथा उनकी माँ श्रीरामकृष्णदेव के दर्शन प्राप्त करने के समय से ही उनके प्रति विशेष भक्ति-श्रद्धा करने लगे थे, अतः बगीचे में उन लोगों के न होने पर भी श्रीरामकृष्णदेव जब वहाँ टहलने जाते थे, तब कर्मचारी लोग बाबू की बैठक खोलकर कुछ देर वहाँ बैठने तथा विश्राम करने का उनसे अनुरोध किया करते थे। बैठक की दीवाल पर अनेक उत्तम चित्र टँगे हुए थे। माँ की गोद में बैठे हुए श्रीईसा की एक बालमूर्ति भी उन चित्रों में थी। श्रीरामकृष्णदेव कहते थे कि एक दिन उस कमरे में बैठकर तन्मयता के साथ वे उस चित्र को देखते हुए श्रीईसा के अद्भुत जीवनवृत्तान्त का चिन्तन कर रहे थे, उस समय अकस्मात् उन्होंने देखा कि वह चित्र मानो जीवित तथा ज्योतिर्मय हो उठा है एवं उस अद्भुत देव-जननी तथा देव-शिशु के अंगों से ज्योति-

रश्मियाँ उनके हृदय में प्रविष्ट होकर उनके मानसिक भावों को समूल परिवर्तित किए दे रही हैं। जन्मगत हिन्दु-संस्कारसमूह उनके हृदय के एक निभृत कोने में लीन होकर भिन्न संस्कारों का उसमें उदय होते देखकर श्रीरामकृष्णदेव विभिन्न प्रकार से अपने को सम्हालने का प्रयास कर कातर हो श्रीजगदम्बा से प्रार्थना करने लगे, माँ, तू आज मुझे यह क्या कर रही है! किन्तु कुछ भी नहीं हुआ। प्रबल वेग से उत्थित उस संस्कारतरंग ने उनके हृदय-स्थित हिन्दु-संस्कारों को एकदम डुबो दिया। देव-देवियों के प्रति श्रीरामकृष्णदेव का अनुराग, प्रीति आदि तब न जाने कहाँ विलीन हो गए एवं श्रीईसा तथा उनके द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदाय के प्रति उनकी पूर्ण श्रद्धा उत्पन्न हुई तथा उस श्रद्धा ने श्रीरामकृष्णदेव के हृदय पर अपना अधिकार जमा कर उनकी आँखों के सम्मुख विभिन्न दृश्यों को उपस्थित किया। श्रीरामकृष्णदेव देखने लगे कि पादरी लोग प्रार्थना-मन्दिर में श्रीईसा की मूर्ति के समक्ष धूप-दीप जला रहे हैं, तथा आर्त होकर प्रार्थना करते हुए अपने हृदय की व्याकुलता निवेदन कर रहे हैं। तदनन्तर दक्षिणेश्वर मन्दिर में लौटकर श्रीरामकृष्णदेव उन्हीं विषयों के निरवच्छिन्न ध्यान में निमग्न रहे तथा श्रीजगन्माता के मन्दिर में जाकर उनके दर्शन की बात को भी एकदम भूल गए। तीन दिन तक उस भावतरंग का प्रभाव उन पर विद्यमान रहा। तृतीय दिवस के बाद पंचवटी के नीचे टहलते हुए श्रीरामकृष्णदेव ने देखा कि एक अदृष्टपूर्व सुन्दर गौरवर्ण देवमानव स्थिर दृष्टि से उन्हें अवलोकन करते हुए उनकी ओर आगे बढ़े चले आ रहे हैं। देखते ही श्रीरामकृष्णदेव यह समझ गए कि ये विदेशी तथा विजाति-सम्भूत हैं। उन्होंने देखा कि उनके नेत्र विशाल होने के कारण उनका मुखमण्डल अपूर्व शोभान्वित है तथा उनकी नाक यद्यपि थोड़ी चपटी है फिर भी उससे उनके सौन्दर्य का कुछ भी व्यतिक्रम नहीं हुआ है। उस सौम्य मुखमण्डल के अपूर्व देवभाव को देखकर श्रीरामकृष्णदेव मुग्ध हो गए तथा विस्मित होकर सोचने लगे कि—ये कौन हैं? देखते-देखते वह मूर्ति उनके समीप उपस्थित हुई तथा श्रीरामकृष्णदेव के पवित्र हृदय के अन्दर से यह ध्वनित होने लगा, 'ईसामसीह! दुःख-यातनाओं से जीवों का उद्धार करने के निमित्त जिन्होंने अपने हृदय का रुधिरदान तथा मानवों द्वारा घोर अत्याचार सहन किया था, वही ईश्वराभिन्न परमयोगी

तथा महान् प्रेमी ईसामसीह !' तब देवमानव ईसा श्रीरामकृष्णदेव को आलिंगन कर उनके शरीर में लीन हो गए तथा भावाविष्ट हो बाह्यचेतना को खोकर श्रीरामकृष्णदेव का मन कुछ समय के लिए सगुण विराट् ब्रह्म के साथ एकीभूत हो गया। इस तरह श्रीईसा का दर्शन प्राप्त कर उनके अवतारत्व के सम्बन्ध में श्रीरामकृष्णदेव निःसन्दिग्ध हुए थे।

श्रीईसा-सम्बन्धी श्रीरामकृष्णदेव का दर्शन किस तरह सत्य प्रमाणित हुआ था।

उसके बहुत दिन बाद जब हम लोग श्रीरामकृष्णदेव का दर्शन करने जाते थे, उस समय एक दिन श्रीईसा की चर्चा करते हुए उन्होंने हमसे कहा था, "अरे, तुम लोगों ने तो बाईबिल पढ़ा है; बताओ, उसमें ईसा के शारीरिक गठन के सम्बन्ध में क्या लिखा है?—देखने में वे कैसे थे?" हमने कहा, "महाराज, हमें तो उसका कोई उल्लेख बाईबिल में नहीं मिला है; किन्तु उन्होंने यहूदी जाति में जन्म लिया था, अतः वे गौर वर्ण थे और उनकी आँखें बड़ी तथा नाक लम्बी थी!" यह सुनकर श्रीरामकृष्णदेव बोले, "किन्तु मैंने देखा है कि उनकी नाक थोड़ी चपटी है! पता नहीं, मैंने ऐसा क्यों देखा!" उस समय श्रीरामकृष्णदेव की उस बात का हमने कोई जवाब नहीं दिया, पर हमने यह सोचा कि भावाविष्ट होकर उन्होंने जिस मूर्ति का दर्शन किया है, ईसा की वास्तविक मूर्ति उससे कैसे मिल सकती है? यहूदी जाति के पुरुषों की तरह ईसा की नाक भी अवश्य ही लम्बी होनी चाहिए। किन्तु श्रीरामकृष्णदेव के शरीर छोड़ने के कुछ दिन बाद हमें यह विदित हुआ कि ईसा के शारीरिक गठन के सम्बन्ध में तीन प्रकार के विवरण लिपिबद्ध हैं तथा उनमें से एक में उनकी नाक चपटी थी, ऐसा उल्लेख है।

श्रीबुद्धदेव के अवतारत्व तथा उनके धर्ममत के सम्बन्ध में श्रीरामकृष्णदेव।

श्रीरामकृष्णदेव को इस प्रकार पृथ्वी में प्रचलित समस्त प्रधान धर्ममत के अनुसार सिद्ध होते देखकर पाठकों के मन में यह प्रश्न हो सकता है कि श्रीबुद्धदेव के सम्बन्ध में उनकी धारणा किस प्रकार की थी। इसलिए उस विषय में जो कुछ विदित है, उसे यहाँ पर लिपिबद्ध करना उचित प्रतीत हो रहा है। भगवान् बुद्धदेव के सम्बन्ध में हिन्दुओं में जो विश्वास प्रचलित है, श्रीराम-

कृष्णदेव भी उसी प्रकार विश्वास करते थे; अर्थात् बुद्धदेव को ईश्वरावतार मानकर वे सदैव उनकी श्रद्धा तथा पूजा किया करते थे एवं पुरीधाम में अवस्थित श्रीजगन्नाथ-सुभद्रा-बलभद्र त्रिरत्न मूर्तियों में श्रीभगवान् बुद्धावतार का प्रकाश अभी भी विद्यमान है, ऐसा उनका बिश्वास था। श्रीजगन्नाथ के प्रसाद में भेदबुद्धि विलुप्त होकर मानवों की जातिबुद्धिरहित रूपधाम का माहात्म्य सुनकर वहाँ जाने को वे समुत्सुक हुए थे। किन्तु वहाँ जाने से अपने शरीरनाश की सम्भावना है, यह जानकर तथा योगदृष्टि की सहायता से इस बात को समझकर कि श्रीजगदम्बा का दूसरा ही अभिप्राय है, उन्होंने इस संकल्प को त्याग दिया था। * श्रीरामकृष्णदेव का यह सदैव विश्वास था कि गंगावारि साक्षात् ब्रह्मवारि है—इस बात का हम पहले ही उल्लेख कर चुके है। इसी प्रकार का श्रीजगन्नाथदेव का प्रसादी अन्नग्रहण करने से मानव का विषयासक्त हृदय तत्काल ही पवित्र हो जाता है तथा वह आध्यात्मिक भाव को धारण करने योग्य बनता है, इस बात में भी उनका दृढ़ विश्वास था। जब उन्हें विषयी लोगों के साथ कुछ समय व्यतीत करने को विवश होना पड़ता था, तब वे उसके बाद ही किंचित् गंगाजल तथा 'आट्के' महाप्रसाद () लिया करते थे तथा अपने शिष्यवर्ग से भी ऐसा करने को कहते थे। भगवान् बुद्धदेव के प्रति श्रीरामकृष्णदेव के विश्वास के सम्बन्ध में उपर्युक्त बातों के अतिरिक्त और भी एक बात हमें विदित हुई थी। श्रीरामकृष्णदेव के परम अनुगत भक्त महाकवि श्री गिरीशचन्द्र घोष ने श्रीबुद्धावतार के लीलामय जीवन को जब नाटकाकार रूप में प्रकाशित किया था, उस समय उसे श्रवण कर श्रीरामकृष्णदेव ने कहा था—"श्रीबुद्धदेव निश्चय ही ईश्वरावतार थे, उनके प्रवर्तित मत तथा वैदिक ज्ञानमार्ग में कोई भेद नहीं है।" हमारा विश्वास है कि योगदृष्टि की सहायता से इस बात को जानकर ही श्रीरामकृष्णदेव ने ऐसा कहा था।

जैनधर्मप्रवर्तक तीर्थंकरों तथा सिक्ख धर्म के प्रवर्तक गुरु नानक से लगाकर गुरु गोविन्दपर्यंत दस गुरुओं की बहुत-सी बातें श्रीरामकृष्णदेव

* गुरुभाव-उत्तरार्ध, तृतीय अध्याय देखिए।

() श्रीजगन्नाथदेव के प्रसादी अन्न की हँड़िया को 'आट्के' कहा जाता है। अतः 'आट्के' महाप्रसाद का तात्पर्य अन्न महाप्रसाद है।

को साधकजीवन व्यतीत करने के पश्चात् जैन तथा सिक्खों से सुनने को मिली थीं। इससे इन सम्प्रदाय-प्रवर्तकों के प्रति उनकी विशेष भक्ति-श्रद्धा उत्पन्न हुई थी। अन्यान्य देव-देवियों के चित्रों के साथ उनके कमरे में एक ओर महावीर तीर्थंकर की एक पाषाणमूर्ति तथा श्रीईसा का एक चित्र भी था। प्रतिदिन प्रातः तथा सायंकाल उस मूर्ति तथा उन सभी चित्रों के समक्ष श्रीरामकृष्णदेव धूप-धूना देते थे। किन्तु इस प्रकार विशेष श्रद्धाभक्ति प्रदर्शन करने पर भी हमने कभी उन्हें तीर्थंकरों अथवा दस गुरुओं में से किसी को ईश्वरावतार रूप से निर्देश करते हुए नहीं सुना है। सिक्खों के दस गुरुओं के सम्बन्ध में श्रीरामकृष्णदेव कहते थे, "सिक्खों से मैंने सुना है कि वे सभी जनक ऋषि के अवतार हैं, मुक्तिलाभ करने से पूर्व राजर्षि जनक के हृदय में लोक-कल्याणसाधन करने की इच्छा उदित हुई थी और इसी कारण उन्होंने गुरु नानक से लगाकर गुरु गोविन्द तक दस गुरुओं के रूप में दस बार जन्म लेकर सिक्ख जाति में धर्मसंस्थापन कर परब्रह्म के साथ सदा के लिए लीन हो गए थे; सिक्खों की इस बात के असत्य होने का कोई भी कारण नहीं है।"

श्रीरामकृष्णदेव का जैन तथा सिक्ख धर्म में भक्ति-विश्वास।

अस्तु, समस्त साधनों में सिद्ध होने के पश्चात् श्रीरामकृष्णदेव को कुछ असाधारण उपलब्धियाँ हुई थीं। उनमें से कुछ उपलब्धियों का सम्बन्ध उनके निजी जीवन से था तथा कुछ का साधारण आध्यात्मिक जीवन से था। इससे पूर्व उनका कुछ-कुछ विवरण इस ग्रन्थ में दिए जाने पर भी, अब हम उनमें से प्रमुखों का यहाँ पर उल्लेख करेंगे। हमारी ऐसी धारणा है कि साधनाकाल समाप्त होने पर श्रीरामकृष्णदेव जब श्रीजगन्माता के साथ नित्ययुक्त हो 'भावमुख' में अवस्थान कर रहे थे, उस समय उन्हें इन उपलब्धियों का यथार्थ अर्थ हृदयंगम नहीं हुआ था। यद्यपि योगदृष्टि की सहायता से उन्होंने इन उपलब्धियों को प्रत्यक्ष देखा था, फिर भी साधारण मानव-बुद्धि के अनुसार हम इस सम्बन्ध में जहाँ तक समझ सकते हैं वह भी हम पाठकों से कहने का प्रयास करेंगे।

समस्त धर्ममत में सिद्ध होने के पश्चात् श्रीरामकृष्णदेव को जो असाधारण उपलब्धियाँ हुई थीं, उनका विवरण।

प्रथमतः—श्रीरामकृष्णदेव की धारणा हुई थी कि वे ईश्वरावतार तथा 'अधिकारी पुरुष' हैं, उनका साधन-भजन दूसरों के निमित्त हुआ है।

(१) वे ईश्वरावतार हैं।

अपने साथ अन्य साधकों के जीवन की तुलना कर उन्हें साधारण दृष्टि से दोनों में विभिन्नता का अनुभव हुआ था। उन्होंने यह हृदयंगम किया कि साधारण साधक केवल एक ही भाव के सहारे जीवनभर प्रयास करने के फलस्वरूप ईश्वर का दर्शन प्राप्त कर शान्ति का अधिकारी बनता है; किन्तु उनके लिए ऐसा न होकर जब तक वे समस्त मतों के अनुसार साधना नहीं कर पाए थे, तब तक उन्हें किसी प्रकार से भी शान्ति नहीं मिली थी एवं अति अल्प समय में ही उन्होंने प्रत्येक साधन में सिद्धि प्राप्त की थी। कारण के बिना कार्य की उत्पत्ति असम्भव है, इस विषय के कारणानुसन्धानों में प्रवृत्त होकर श्रीरामकृष्णदेव उस समय योगारूढ़ हुए थे तथा उस प्रकार से उन्होंने उसके कारण को अनुभव किया था। उनको यह ज्ञात हुआ था कि शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-स्वभाव सर्वशक्तिमान् ईश्वर के विशेष अवतार होने के कारण उनके लिए यह सम्भव हो सका है तथा आध्यात्मिक राज्य में नवीन आलोक का संचार कर मानव के कल्याणसाधन के निमित्त ही उनके द्वारा अदृष्टपूर्व साधनों का अनुष्ठान हुआ है, उनके व्यक्तिगत जीवन के अभाव को दूर करना उन साधनों का उद्देश्य नहीं था।

द्वितीयतः—उनकी यह धारणा हुई थी कि अन्य जीवों की तरह उनकी मुक्ति नहीं होगी। साधारण युक्ति से भी यह

(२) उनके लिए मुक्ति का कोई प्रश्न नहीं है।

बात अनायास समझी जा सकती है, क्योंकि ईश्वर से जो सर्वदा अभिन्न हैं— उनके अंश-विशेष हैं—वे तो सर्वदा ही नित्य-शुद्ध-मुक्त-स्वभाव हैं, उनमें कोई अभाव या परिच्छिन्नता है ही नहीं—अतः उनके लिए मुक्ति का प्रश्न ही कहाँ रहता है? जीवकल्याणसाधनरूप कर्म जब तक ईश्वर के लिए विद्यमान रहेगा, तब तक युग-युग में अवतीर्ण हो उन्हें उस कार्य को सम्पादन करना पड़ेगा—अतः उनकी मुक्ति कैसे हो सकती है? जैसे कि श्रीरामकृष्णदेव कहा करते थे—"जमींदारी के अन्दर जहाँ भी गड़बड़ी उपस्थित होगी वहीं सरकारी कर्मचारी को दौड़ना पड़ेगा।" योगदृष्टि की सहायता से

उनको न केवल अपने ही बारे में इस प्रकार का निश्चय हुआ था, अपितु वायव्य दिशा की ओर निर्देश करते हुए उन्होंने अनेक बार हमसे यह कहा था कि भविष्य में उन्हें उस दिशा में आना पड़ेगा। हम लोगों में से किसी-किसी* का कहना है कि उन्होंने अपने आने का समय तक निश्चित कर उन लोगों से कहा था,—"दो सौ वर्ष के बाद उस ओर मेरा आगमन होगा, तब अनेक व्यक्ति मुक्त होंगे; उस समय जिन्हें मुक्ति नहीं मिलेगी, उन्हें बहुत दिन तक उसके लिए प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।"

(३) अपने शरीरत्याग का समय ज्ञात होना।

तृतीयतः— योगारूढ़ होकर श्रीरामकृष्णदेव अपने शरीरत्याग के समय को बहुत पहले ही जान गए थे। दक्षिणेश्वर में एक दिन भावाविष्ट होकर उन्होंने श्रीमाताजी से इस प्रकार कहा था—

"जब तुम यह देखोगी कि मैं जिस किसी के हाथों से भोजन कर रहा हूँ तथा कलकत्ते में रात्रि यापन कर रहा हूँ, खाद्य का अग्रभाग दूसरे को पहले खिलाकर तदनन्तर स्वयं अवशिष्टांश ग्रहण कर रहा हूँ, तब समझ लेना कि मेरे शरीरत्याग का समय निकट आ चुका है।" श्रीरामकृष्णदेव का पूर्वोक्त कथन अक्षरशः सत्य सिद्ध हुआ था।

और एक दिन भावावेश में श्रीरामकृष्णदेव ने दक्षिणेश्वर में श्रीमाताजी से कहा था, "अन्तिम समय उपस्थित होने पर खीर के सिवाय मैं और कुछ भी नहीं खाऊँगा"—इसकी सत्यता का उल्लेख अन्यत्र किया गया है। ×

आध्यात्मिक विषय के सम्बन्ध में श्रीरामकृष्णदेव की दूसरे प्रकार की उपलब्धियों को अब हम लिपिबद्ध करना चाहते हैं—

प्रथम—समस्त साधनों में सिद्धिलाभ करने के पश्चात् श्रीरामकृष्णदेव की यह दृढ़ धारणा हुई थी, "सभी धर्म सत्य हैं—जितने मत हैं उतने ही पथ हैं।" यह कहा जा सकता है कि योगबुद्धि तथा साधारण बुद्धि इन दोनों की सहायता से ही श्रीरामकृष्णदेव को यह बात विदित हुई थी; क्योंकि सब प्रकार के धर्ममत

(१) सभी धर्म सत्य हैं। जितने मत हैं उतने ही पथ हैं।

---

* महाकवि श्रीगिरीशचन्द्र घोष इत्यादि।

× गुरुभाव-पूर्वार्ध, द्वितीय अध्याय देखिए।

की साधना में अग्रसर हो उन्होंने उनमें से प्रत्येक के यथार्थ फल को अपने जीवन में प्रत्यक्ष अनुभव किया था। अतः यह स्पष्ट है कि उसे प्रचार कर पृथ्वी के धार्मिक विरोध तथा धर्मग्लानि को दूर करने के निमित्त ही वर्तमान समय में युगावतार श्रीरामकृष्णदेव का आगमन हुआ है; क्योंकि इससे पूर्व साधना के द्वारा अपने जीवन में इस बात को पूर्णतया उपलब्धि कर किसी भी ईश्वरावतार ने जगत् को इस तरह की शिक्षा नहीं दी है। आध्यात्मिक मत की उदारता को लेकर यदि अवतारों का स्थान निर्देश किया जाय, तो इस विषय के प्रचार के लिए निःसन्देह श्रीरामकृष्णदेव का स्थान सबसे ऊँचा है।

(२) मानव को अपनी अवस्थानुसार द्वैत, विशिष्टाद्वैत, अद्वैतमत का अवलम्बन करना होगा।

द्वितीय—प्रत्येक मानव की आध्यात्मिक उन्नति के साथ ही साथ द्वैत, विशिष्टाद्वैत तथा अद्वैत स्वतः आकर उपस्थित होते हैं—इसलिए श्रीरामकृष्णदेव का यह कहना था कि वे परस्पर-विरोधी नहीं हैं, किन्तु मानव-मन की आध्यात्मिक उन्नति तथा अवस्था सापेक्ष हैं। स्वल्प चिन्तन करने पर यह उपलब्धि हो सकती है कि श्रीरामकृष्णदेव द्वारा अनुभूत इस प्रकार का तथ्य अनन्त शास्त्रों को समझने के लिए कितना सहायक है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि वेद, उपनिषद् आदि शास्त्रों में पूर्वोक्त तीनों मतों की बातें ऋषियों द्वारा लिपिबद्ध रहने के कारण अनन्त विरोध उपस्थित होकर शास्त्रोक्त धर्ममार्ग को उसने कितना जटिल बना दिया है। ऋषियों के इन तीन प्रकार के अनुभवों तथा कथनों का सामंजस्य न कर पाने के कारण उसकी भाषा को तोड़-मरोड़ कर प्रत्येक सम्प्रदाय ने उनको एकभावात्मक सिद्ध करने का यथासाध्य प्रयास किया है। टीकाकारों के इस प्रकार के प्रयास के परिणाम-स्वरूप यह स्थिति उत्पन्न हुई है कि शास्त्रविचार के नाम से लोगों के मन में एक भयानक भय का संचार होने लगा है और उस भय से ही शास्त्रों में अविश्वास तथा उसके फलस्वरूप भारत में आध्यात्मिक अवनति हुई है। इसलिए युगावतार श्रीरामकृष्णदेव के लिए इन तीनों मतों की अवस्थानुरूप स्वयं उपलब्धि कर उनके इस प्रकार अद्भुत सामंजस्य की बात को प्रचार करने की आवश्यकता हुई थी। उनकी उस मीमांसा को

सदा स्मरण रखना हम लोगों के लिए शास्त्रों में प्रवेशाधिकार प्राप्त करने का एकमात्र मार्ग है। इस सम्बन्ध में उनकी कुछ उक्तियों को हम यहाँ पर लिपिबद्ध कर रहे हैं—

"अद्वैत भाव को अन्तिम बात जानना, वह वाक्य-मन से अतीत उपलब्धि का विषय है।"

"मन-बुद्धि की सहायता से विशिष्टाद्वैत तक कहा व समझा जा सकता है; तब नित्य जिस प्रकार नित्य है, लीला भी उसी प्रकार नित्य है—चिन्मय नाम, चिन्मय धाम, चिन्मय श्याम!"

"विषयबुद्धिप्रबल साधारण मानवों के लिए द्वैतभाव है, नारद पंचरात्र के उपदेशानुसार उच्च स्वर से नाम-संकीर्तन आदि प्रशस्त एवं श्रेष्ठ हैं।"

(३) कर्मयोग के अवलम्बन से साधारण मानवों की उन्नति।

तृतीय—कर्म के सम्बन्ध में भी श्रीरामकृष्णदेव सीमा निर्देश कर यह कहते थे—"सत्वगुणसम्पन्न व्यक्तियों का स्वभावतः ही कर्मत्याग हो जाता है—प्रयास करने पर भी उनके द्वारा कर्मों का अनुष्ठान और अधिक सम्भव नहीं हो सकता है अथवा ईश्वर उन्हें कर्म नहीं करने देते। जैसे—गर्भवृद्धि के साथ ही साथ गृहस्थ वधू का कर्मत्याग हो जाता है तथा सन्तान होने पर सब प्रकार के गृहकर्मों को त्यागकर शिशु की देखभाल में ही उसे संलग्न रहना पड़ता है। किन्तु अन्य मानवों के लिए ईश्वर पर निर्भरशील होकर धनी व्यक्तियों के दास-दासियों की तरह संसार के समस्त कार्यों को सम्पन्न करने का प्रयास करना उचित है। इस प्रकार कार्य करने का नाम ही "कर्मयोग" है। यथासाध्य ईश्वर का नाम, जप तथा ध्यान एवं उपरोक्त प्रकार से समस्त कार्यों को सम्पादन करना चाहिए, यही एकमात्र मार्ग है।

(४) उदार मत के अनुसार सम्प्रदाय का प्रवर्तन करना होगा।

चतुर्थ—श्रीरामकृष्णदेव को यह उपलब्धि हुई थी कि श्रीजगदम्बा के हाथों का यंत्र बनकर अपने जीवन में प्रकटित उदार मत के विशेषरूप से अधिकारी एक नवीन सम्प्रदाय का उन्हें प्रवर्तन करना होगा। मथुरबाबू के जीवित काल में उन्हें सर्वप्रथम इस बात का अनुभव हुआ था। तब उन्होंने मथुरबाबू से कहा था कि श्रीजगदम्बा ने उनको यह दिखाया कि उनके समीप धर्मलाभ

नहीं हैं, ऐसी उच्च अवस्थाएँ भी मैं तुम्हारे अन्दर देख रहा हूँ—तुम्हारी स्थिति वेद-वेदान्तादि शास्त्रों को अतिक्रम कर बहुत आगे बढ़ चुकी हैं, तुम मनुष्य नहीं हो, जिनसे अवतारों की उत्पत्ति होती है, वही वस्तु तुममें है।" श्रीरामकृष्णदेव के अलौकिक जीवन-वृत्तान्त तथा पूर्वोक्त अपूर्व उपलब्धियों की आलोचना से यह विशेषरूप से हृदयंगम होता है कि उन पण्डिताग्रगण्य साधकों ने व्यर्थ ही उनकी प्रशंसा कर उपरोक्त बातें नहीं कहीं थीं। उन पण्डितों के दक्षिणेश्वर आगमन के समय का निरूपण निम्नलिखित रूप से किया गया है—

उन विद्वानों के आगमन का समय निरूपण।

प्रथम बार दक्षिणेश्वर में रहते समय श्रीमाताजी ने गौरी पण्डित को वहाँ पर देखा था। साथ ही मथुरबाबू के जीवनकाल में गौरी पण्डित के दक्षिणेश्वर आगमन की बात हमने श्रीरामकृष्णदेव से सुनी है। अतः बंगला सन् १२७७ (सन् १८७१ ई.) के किसी समय दक्षिणेश्वर आकर सम्भवतः बंगला सन् १२७९ (सन् १८७३ ई.) तक गौरी पण्डित ने श्रीरामकृष्णदेव के समीप अवस्थान किया था। शास्त्रज्ञान प्राप्त कर अपने जीवन में जो उस ज्ञान को परिणत करने का प्रयास करते थे, ऐसे साधक-विद्वानों को देखने का श्रीरामकृष्णदेव का निरन्तर आग्रह था। भट्टाचार्य श्रीयुत गौरीकान्त तर्कभूषण+ उपरोक्त श्रेणी के अन्तर्गत होने के कारण ही श्रीरामकृष्णदेव को उन्हें देखने की इच्छा हुई थी तथा मथुरबाबू के द्वारा आमन्त्रित कराकर उन्होंने उनको दक्षिणेश्वर बुलाया था। श्रीरामकृष्णदेव की जन्मभूमि के निकट इन्देश नामक गाँव में पण्डितजी का निवासस्थान था। हृदय के भाई रामरतन मथुरबाबू का निमन्त्रण-पत्र लेकर वहाँ गए थे और श्रीयुत गौरीकान्तजी को दक्षिणेश्वर मन्दिर में लाए थे। गौरी पण्डित की साधनजनित अद्भुत शक्ति का, तथा दक्षिणेश्वर आकर श्रीरामकृष्णदेव के दर्शन से उनके मन में क्रमशः प्रबल वैराग्य के उदय होने से उन्होंने जिस प्रकार संसारत्याग किया था, उस विषय का हमने अन्यत्र* उल्लेख किया है।

'रानी रासमणि का जीवनवृत्तान्त' नामक ग्रन्थानुसार श्रीयुत

+ श्रीयुत गौरी पण्डित का पूर्ण नाम।

* गुरुभाव-पूर्वार्ध, प्रथम अध्याय देखिए।

मथुरबाबू ने बंगला सन् १२७० (१८६४ ई.) में 'अन्नमेरु' व्रत का अनुष्ठान किया था। उस अवसर पर पण्डित पद्मलोचन को दक्षिणेश्वर में आमन्त्रित कर दान ग्रहण कराने के निमित्त श्रीयुत मथुरबाबू के आग्रह की बात हमने श्रीरामकृष्णदेव से सुनी है। अतः यह कहा जा सकता है कि सन् १८६४ ई. में वेदान्तवित् भट्टाचार्य श्रीयुत पद्मलोचन तर्कालंकार महोदय का श्रीरामकृष्णदेव के समीप आगमन हुआ था।

श्रीयुत उत्सवानन्द गोस्वामी के पुत्र पण्डित वैष्णवचरण के दक्षिणेश्वर आने का समय सहज ही में निरूपण किया जा सकता है; क्योंकि पण्डित वैष्णवचरण की भैरवी ब्राह्मणी श्री योगेश्वरी तथा बाद में भट्टाचार्य श्रीयुत गौरीकान्त तर्कभूषण के साथ दक्षिणेश्वर मन्दिर में श्रीरामकृष्णदेव की अलौकिकता के सम्बन्ध में जो आलोचना हुई थी, श्रीरामकृष्णदेव से हमने उस विवरण को सुना है। ब्राह्मणी की भाँति उन्होंने भी श्रीरामकृष्णदेव के शरीर तथा मन में वैष्णवशास्त्रोक्त महाभावों के लक्षणों को देखकर स्तम्भित हो ब्राह्मणी से सम्मत होकर श्रीरामकृष्णदेव को श्रीगौरांगदेव का पुनराविर्भाव माना था। श्रीरामकृष्णदेव के उपरोक्त कथनानुसार ऐसा प्रतीत होता है कि सन् १८६५ ई. में श्रीरामकृष्णदेव के मधुरभाव के साधन में सिद्ध होने के पश्चात् श्रीयुत वैष्णवचरण उनके समीप उपस्थित हुए थे तथा सन् १८७३ ई. साल तक बीच-बीच में दक्षिणेश्वर आते जाते रहते थे।

श्रीरामकृष्णदेव की अपने अन्तरंग भक्तों को देखने की इच्छा तथा उन्हें आह्वान।

पूर्वोक्त उपलब्धियों के पश्चात् ईश्वर की प्रेरणा से श्रीरामकृष्णदेव के हृदय में एक नूतन इच्छा प्रबल रूप से उदित हुई थी। योगारूढ़ होकर पूर्वपरिदृष्ट भक्तों को देखने तथा उनके हृदय में अपनी धर्मशक्ति संचार करने के निमित्त वे अत्यन्त उत्सुक हो गए थे। श्रीरामकृष्णदेव कहते थे, "उस उत्सुकता एवं व्यग्रता की कोई सीमा नहीं थी। दिन भर उस व्यग्रभाव को मैं किसी तरह अपने हृदय में धारण किए रहता था। विषयी लोगों का मिथ्या विषय-प्रसंग जब मुझे विषवत् प्रतीत होता था, तब मैं यह सोचने लगता कि उनके आने पर ईश्वरी चर्चा कर मैं अपनी अन्तरात्मा को शान्त करूँगा, कानों की ज्वाला निवृत्त करूँगा, तथा उनसे अपनी आध्यात्मिक उपलब्धियों को कह-

कर हृदय को हल्का करूँगा। इस प्रकार प्रत्येक विषय में उनके आगमन की बात का उद्दीपन होने के कारण किससे क्या कहना है, किसे क्या देना है, सर्वदा इन्हीं विषयों का मैं चिन्तन किया करता था। तथा उक्त विषयों को सोचकर पहले से ही मैं अपने को प्रस्तुत रखता था। किन्तु दिन व्यतीत होकर सायंकाल होने पर मेरे लिए धैर्य धारण करना असम्भव हो जाता था, तब मैं यह सोचा करता था कि आज का दिन भी निकल गया, फिर भी कोई नहीं आया। आरती की शंख-घण्टा ध्वनि से जब मन्दिर गूँजने लगता, तब मैं मानसिक यातना से अस्थिर हो बाबू लोगों की कोठी की छत पर चढ़कर—'तुम सब कहाँ हो, आओ रे, आओ रे—तुम लोगों को देखे बिना मुझसे रहा नहीं जाता'—इस प्रकार उच्च स्वर से मैं चिल्लाया करता था। माता अपनी सन्तान को देखने के निमित्त ऐसी व्याकुलता का अनुभव करती है या नहीं, यह मैं नहीं कह सकता; सखा को अपने सखा के साथ सम्मिलित होने तथा प्रणयीयुगल को आपस में मिलने के लिए इस तरह आचरण करते हुए भी मैंने कभी नहीं सुना है—मेरा प्राण इतना व्याकुल हो उठा था! इसके कुछ ही दिन बाद धीरे-धीरे भक्तवृन्द उपस्थित होने लगे।"

श्रीरामकृष्णदेव के इस प्रकार व्याकुल आह्वान के फलस्वरूप भक्तों के दक्षिणेश्वर आगमन से पूर्व कुछ विशेष घटनाएँ हुई थीं। वर्तमान ग्रन्थ के साथ उनका मुख्य सम्बन्ध न रहने के कारण 'परिशिष्ट' में हमने उनको लिपिबद्ध किया है।

परिशिष्ट

परिशिष्ट

श्रीषोड़शीपूजन के बाद से लगाकर पूर्वपरिदृष्ट अन्तरंग भक्तवृन्द के आगमन-काल के पूर्व तक श्रीरामकृष्णदेव के जीवन की प्रमुख घटनाएँ

हम यह कह चुके हैं कि षोड़शीपूजन के अनन्तर बंगला सन् १२०८ के कार्तिक मास (अक्टूबर, १८७३ ई.) में श्रीमाताजी कामारपुकुर लौट गई थीं। श्रीमाताजी के वहाँ पहुँचने के कुछ ही दिन बाद श्रीरामकृष्णदेव के मध्यम अग्रज श्रीयुत रामेश्वर भट्टाचार्य का टायफाइड से देहान्त हो गया था। श्रीरामकृष्णदेव के पितृवंश के स्त्री-पुरुष आदि प्रत्येक के भीतर ही आध्यात्मिकता का विशेष विकास था। इस विषय में श्रीयुत रामेश्वरजी के सम्बन्ध में हमने जो कुछ सुना है, यहाँ उसका उल्लेख कर रहे हैं।

रामेश्वर का देहावसान।

रामेश्वरजी का स्वभाव अत्यन्त उदार था। उनके दरवाजे पर आकर संन्यासी भिक्षुक आदि जो कोई जिस वस्तु की प्रार्थना करते थे, तत्काल ही उन्हें वे वह प्रदान कर देते थे। उनके आत्मीयवर्ग से हमने सुना है कि इस प्रकार कोई भिक्षुक आकर जब यह कहता था कि उसे एक गंज की आवश्यकता है, कोई कहता था उसके पास लोटा नहीं है, कोई कम्बल की अपेक्षा करता था आदि आदि—तो रामेश्वर तत्काल घर से उन वस्तुओं को निकालकर उन्हें दे देते थे। यदि घर का कोई व्यक्ति किसी प्रकार की आपत्ति करता तो वे शान्तिपूर्वक कहा करते थे, "ले जाने दो, कुछ न कहो; ऐसी वस्तुएँ कितनी ही आती रहेंगी, चिन्ता की क्या बात है?" रामेश्वर की ज्योतिषशास्त्र में भी कुछ व्युत्पत्ति थी।

रामेश्वरजी का उदार स्वभाव।

दक्षिणेश्वर से रामेश्वरजी के अन्तिम बार घर लौटने के समय

श्रीरामकृष्णदेव को यह विदित हो चुका था कि अब भविष्य में उनके लिए वहाँ से लौटना सम्भव नहीं है। "घर जा रहे हो, जाओ, किन्तु पत्नी के पास न सोना; ऐसा करने पर तुम्हारे जीवन की रक्षा होना कठिन है!"—श्रीरामकृष्णदेव को इस प्रकार कहते हुए हम लोगों में से किसी किसी ने* सुना है।

रामेश्वर के देहान्त की सम्भावना को पहले से ही अवगत होकर श्रीरामकृष्णदेव द्वारा उनको सतर्क करना।

रामेश्वर के घर पँहुचने के कुछ दिन पश्चात् यह समाचार आया कि वे अस्वस्थ हैं। इस बात को सुनकर श्रीरामकृष्णदेव ने हृदय से कहा था, "उसने मेरा कहना नहीं माना, उसकी जीवन-रक्षा होना कठिन है!" उस घटना के पाँच-सात दिन बाद यह समाचार मिला कि श्रीयुत रामेश्वर का देहान्त हो गया है। उनकी मृत्यु के समाचार से उनकी वृद्धा जननी के हृदय में गहरी चोट पहुँचेगी, यह सोचकर श्रीरामकृष्ण-देव चिन्तित हुए तथा मन्दिर में जाकर शोक से जननी की रक्षा के निमित्त श्रीजगदम्बा के समीप व्याकुलता के साथ उन्होंने प्रार्थना की थी।

रामेश्वर के देहान्त के समाचार से शोकातुर होकर जननी का जीवन रहना कठिन है, यह सोचकर श्रीरामकृष्ण-देव की प्रार्थना तथा उसका परिणाम।

हमने श्रीरामकृष्णदेव के श्रीमुख से सुना है कि इस प्रकार प्रार्थना करने के बाद जननी को सान्त्वना प्रदान करने के निमित्त मन्दिर से वे नौबत-खाने में पँहुचे तथा सजल नेत्र से उन्होंने उस दुःसम्वाद को सुनाया। श्रीरामकृष्णदेव कहते थे, " मैंने सोचा था कि उसे सुनकर माँ एकदम बेहोश हो जायँगी तथा उनके जीवन की रक्षा करना कठिन होगा, किन्तु उसका परिणाम मुझे एकदम विपरीत देखने को मिला। माँ उस बात को सुनकर किंचित् खेद प्रकट करती हुई बोलीं, 'संसार अनित्य है, सभी की एक दिन मृत्यु अनिवार्य है, अतः शोक करना व्यर्थ है'—यह कहकर मुझे ही वे शान्त करने लगीं। तब मैंने यह अनुभव किया कि तानपूरा की खूँटी को दबाकर जिस प्रकार सुर चढ़ाया जाता है, मानो श्रीजगदम्बा ने माँ के मन को ठीक उसी प्रकार उच्च सुर में बाँध रखा है,

* श्रीमत् स्वामी प्रेमानन्द।

इसलिए उनके हृदय में पार्थिव शोक-दुःखों का स्पर्श नहीं हो रहा है। यह देखकर मैंने बारम्बार श्रीजगन्माता को प्रणाम किया तथा मेरी चिन्ता दूर हुई !"

मृत्यु समीप आ चुकी है जानकर रामेश्वर का आचरण।

पाँच-सात दिन पहले ही रामेश्वर को अपनी मृत्यु की बात विदित हो चुकी थी। आत्मीय जनों से उस बात को कहकर उन्होंने अपनी अन्त्येष्टि क्रिया तथा श्राद्ध आदि की सारी व्यवस्था कर रखी थी। घर के सम्मुख एक आम के वृक्ष को कटते हुए देखकर उन्होंने कहा था, "ठीक है, मेरे लिए काम आवेगा।" मृत्यु के कुछ काल पूर्व तक उन्होंने भगवान् श्रीरामचन्द्र का पवित्र नाम उच्चारण किया था—तदनन्तर कुछ देर संज्ञाशून्य रहने के पश्चात् उनके शरीर से प्राणवायु निर्गत हो गई। मृत्यु से पूर्व रामेश्वरजी ने अपने आत्मीय जनों से यह अनुरोध किया था कि उनके शरीर को श्मशान में न जलाकर, उसके समीपवर्ती रास्ते पर जलाया जाय। कारण पूछे जाने पर उन्होंने कहा था, "कितने ही साधुओं का उस रास्ते से आना-जाना होगा, उनके चरण-रज से मेरी सद्गति होगी।" गहरी रात में रामेश्वर की मृत्यु हुई थी।

मृत्यु के बाद रामेश्वर का अपने मित्र गोपाल के साथ वार्तालाप।

गाँव के गोपाल नामक किसी व्यक्ति के साथ रामेश्वर की बहुत दिनों से विशेष मित्रता थी। गोपाल कहते थे कि जिस दिन जिस समय उनकी मृत्यु हुई, उस दिन उसी समय उनके दरवाजे पर किसी का शब्द सुनाई दिया। पूछने पर उत्तर मिला—'मैं रामेश्वर हूँ, गंगा नहाने जा रहा हूँ, घर पर श्रीरघुवीर हैं, उनकी सेवा में कोई गड़बड़ी न हो—इसका तुम ध्यान रखना!' मित्र की आवाज सुनकर जब गोपाल दरवाजा खोलने आए तो पुनः उन्होंने सुना, 'मेरा शरीर नहीं है, अतः दरवाजा खोलने पर भी तुम मुझे देख नहीं सकोगे।' फिर भी दरवाजा खोलकर जब गोपाल ने कहीं किसी को नहीं देखा तब यह समाचार कहाँ तक सत्य है, जानने के लिए वे रामेश्वर के घर पहुँचे तथा उन्होंने देखा कि सचमुच रामेश्वर का देहान्त हो चुका है।

रामेश्वर के ज्येष्ठ पुत्र श्रीयुत रामलाल चट्टोपाध्यायजी का कहना है कि बंगला सन् १२८० मार्गशीर्ष २७ तारीख (सन् १८७३ ई.) को उनके पिताजी का देहान्त हुआ था, उस समय उनकी आयु लगभग ४८ वर्ष की थी। पिताजी की अस्थिसंचयन कर कलकत्ता के समीपवर्ती वैद्यवाटी नामक स्थान पर आकर उन्होंने उन अस्थिओं को गंगाजी में विसर्जित किया, तद्-नन्तर दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्णदेव के समीप पहुँचने के लिए वहाँ पर नाव से गंगा पार किया था। उस समय बाराकपुर की ओर दृष्टि डालने पर उन्होंने देखा था कि मथुरबाबू की धर्मपत्नी श्रीमती जगदम्बादासी ने वहाँ पर जिस मन्दिर में श्रीअन्नपूर्णा को बाद में प्रतिष्ठित किया था, उसका आधा भाग ही तैयार हो पाया है। बंगला सन् १२८१ चैत्र ३० तारीख को (१२ अप्रैल, १८७५ ई.) उस मन्दिर में देवी की प्रतिष्ठा हुई थी। रामेश्वर के देहान्त के बाद उनके पुत्र रामलाल ने दक्षिणेश्वर में पुजारी का पद ग्रहण किया था।

श्रीरामकृष्णदेव के भतीजे रामलाल का दक्षिणेश्वर आगमन तथा पूजक-पद ग्रहण। चानक के अन्नपूर्णा का मन्दिर।

मथुरबाबू की मृत्यु के पश्चात् कलकत्ता के सिन्दुरियापट्टी निवासी श्रीयुत शम्भुचरण मल्लिक ने श्रीरामकृष्णदेव के साथ परिचय प्राप्त कर लिया था तथा उनके प्रति विशेष रूप से श्रद्धा-भक्ति करने लगे थे। * शम्भुबाबू इससे पूर्व ब्राह्मसमाज द्वारा प्रवर्तित धर्ममत के प्रति विशेष अनुरक्त थे तथा अजस्र दान के लिए कलकत्ता-निवासियों के बीच प्रख्यात हो चुके थे। श्रीराम-कृष्णदेव के प्रति शम्भुबाबू की भक्ति तथा प्रीति दिनोंदिन अत्यन्त गहरी होती जा रही थी तथा कुछ वर्ष तक श्रीरामकृष्णदेव की सेवा का सौभाग्य प्राप्त कर वे धन्य हुए थे। श्रीरामकृष्णदेव तथा श्रीमाताजी को जब

श्रीरामकृष्णदेव के दूसरे रसददार (खाद्यसामग्री आदि की सहायता पहुँचानेवाले) श्रीयुत शम्भु-चरण मल्लिक का विवरण।

* श्रीरामकृष्णदेव के भक्तों में से किसी किसी का कहना है कि उन्होंने श्रीरामकृष्णदेव को कहते हुए सुना है कि मथुरबाबू मृत्यु के बाद पानिहाटी निवासी श्रीयुत मणिमोहन सेन ने उनके आवश्यकीय द्रव्यादि की व्यवस्था का भार ग्रहण किया था। श्रीयुत मणिमोहनजी उस समय श्रीरामकृष्णदेव के प्रति

जिस वस्तु की आवश्यकता होती थी, पता लगने पर शम्भुबाबू परम आनन्दित हो उसकी व्यवस्था कर देते थे। श्रीयुत शम्भुबाबू श्रीरामकृष्ण-देव को 'गुरुजी' कहकर सम्बोधन करते थे। तदर्थ श्रीरामकृष्णदेव कभी-कभी असन्तुष्ट होकर यह कहा करते थे, 'कौन किसका गुरु है? तुम मेरे गुरु हो'—किन्तु उनकी इस बात से निरस्त न होकर उनको जीवन भर वे उसी तरह सम्बोधन करते रहे। उनके इस सम्बोधन के द्वारा यह पता चलता है कि श्रीरामकृष्णदेव के दिव्य-संग से उन्हें आध्यात्मिक मार्ग में विशेष प्रकाश प्राप्त हुआ था तथा उसके प्रभाव से उनका धर्मविश्वास पूर्णतया सफल हुआ था। शम्भुबाबू की सहधर्मिणी श्रीरामकृष्णदेव की साक्षात् देव-बुद्धि से भक्ति किया करती थीं तथा श्रीमाताजी जब दक्षिणेश्वर में रहतीं, तब प्रत्येक "जय मंगलवार" के दिन उन्हें अपने घर ले जाकर षोड़शोपचार से उनके श्रीचरणों का पूजन किया करती थीं।

श्रीमाँ के लिए शम्भुबाबू द्वारा गृह-निर्माण तथा उस कार्य में कप्तान की सहायता। उस गृह में श्रीरामकृष्णदेव का एक रात्रि निवास।

सम्भवतः बंगला सन् १२८१ वैशाख (सन् १८७४ ई.) में श्रीमाताजी का द्वितीय बार दक्षिणेश्वर आगमन हुआ था। पहले की भाँति उस समय वे नौबतखाने में श्रीरामकृष्णदेव की जननी के साथ रहा करती थीं। शम्भुबाबू को जब यह बात विदित हुई, तब उन्होंने नौबत-खाने में स्थान की संकीर्णता के कारण, उनको वहाँ रहने में असुविधा हो रही है, यह अनुमान कर दक्षिणेश्वर-मन्दिर के निकट २५०) देकर कुछ जमीन मौरुसी करा ली तथा वहाँ पर एक अच्छीसी झोपड़ी बनवाने का निश्चय किया। उस समय नैपाल राज्य के कर्मचारी कप्तान विश्वनाथ उपाध्याय महोदय श्रीरामकृष्णदेव के समीप आने-जाने लगे थे तथा उनके प्रति अत्यन्त

विशेष श्रद्धा-सम्पन्न हो गए थे तथा सर्वदा उनके समीप आते-जाते रहते थे। उनके बाद श्रीरामकृष्णदेव की सेवा का भार शम्भुबाबू ने ग्रहण किया था। हमारी यह धारणा है कि स्वयं श्रीरामकृष्णदेव ने जब शम्भुबाबू को अपना दूसरा 'रसददार' कहकर निर्देश किया है, तब मणिबाबू के द्वारा उनकी सेवा का भार ग्रहण किए जाने पर भी, अधिक दिन तक उस कार्य को सम्पन्न करना उनके लिए सम्भव नहीं हो सका था।

श्रद्धाशील हो गए थे। कप्तान विश्वनाथजी ने जब उस बात को सुना, तब वे उसके निर्माण के लिए जितनी लकड़ी की आवश्यकता थी, देने को प्रस्तुत हुए। नैपाल राज्य की साल की लकड़ी का व्यापार-कार्य उनके जिम्मे रहने के कारण फिर वह काम उनके लिए विशेष कठिन नहीं रहा। गृह-निर्माण का कार्य आरम्भ होने पर श्रीविश्वनाथजी ने गंगा के दूसरे तट पर अवस्थित बेलूड़ ग्राम की अपनी लकड़ी की टाल से साल की लकड़ी के तीन लठ्ठे भेज दिए। किन्तु रात में अत्यन्त प्रबल रूप से गंगाजी में ज्वार आने के कारण एक लठ्ठा बह गया। तदर्थ क्षुब्ध होकर हृदयराम ने श्रीमाँ को 'भाग्यहीन' कहा था। अस्तु, लठ्ठे के बह जाने की बात को सुनकर कप्तान ने और एक लठ्ठा भेज दिया। गृह-निर्माण सम्पूर्ण होने पर श्रीमाताजी ने एक वर्ष तक उस गृह में निवास किया था। घरेलू कार्यों में सहायता देने तथा सर्वदा श्रीमाँ के साथ रहने के लिए एक परिचारिका को नियुक्त किया गया था। श्रीमाँ उस घर में रसोई बनाकर प्रतिदिन श्रीरामकृष्णदेव के लिए विविध प्रकार के भोज्य-पदार्थ दक्षिणेश्वर-मन्दिर में ले जाती थीं तथा उनके भोजन के बाद पुनः वहाँ लौट आती थीं। उनके सन्तोष तथा समाधान के लिए दिन में श्रीरामकृष्णदेव भी कभी-कभी वहाँ जाते थे एवं कुछ देर तक वहाँ रहकर दक्षिणेश्वर-मन्दिर लौट आते थे। केवल एक दिन उस नियम का व्यतिक्रम हुआ था। उस दिन अपराह्न में श्रीरामकृष्णदेव के वहाँ आते ही आधी रात तक ऐसी मूसलाधार वर्षा होने लगी थी कि उनके लिए मन्दिर लौटना असम्भव हो गया था। अतः विवश हो उन्हें उस रात को वहाँ रहना पड़ा था, श्रीमाँ ने रसेदार तरकारी (झोल) और भात बना उन्हें वहाँ भोजन कराया था।

एक वर्ष तक वहाँ रहने के पश्चात् श्रीमाँ आँव के रोग से अत्यन्त पीड़ित हुईं। उनके आरोग्य के निमित्त शम्भुबाबू विशेष प्रयत्न करने लगे। उनकी व्यवस्थानुसार डॉक्टर प्रसाद ने उस समय श्रीमाँ की चिकित्सा की थी। कुछ स्वस्थ होकर श्रीमाँ अपने नैहर जयरामवाटी चली गईं। यह घटना सम्भवतः बंगला सन् १२८२ के आश्विन के महीने (सन् १८७६ ई.) की है।

उस गृह में रहते समय श्रीमाँ का कठिन रोग तथा जयरामवाटी गमन।

किन्तु वहाँ जाने के कुछ दिन बाद पुनः उस रोग से बीमार होकर उन्हें पीड़ाग्रस्त होना पड़ा। क्रमशः वह रोग इतना बढ़ गया कि उनकी शरीर-रक्षा के बारे में भी संशय होने लगा। श्रीमाँ के पूज्य पिता श्रीरामचन्द्रजी का तब स्वर्गवास हो चुका था, अतः उनकी जननी तथा भ्रातृवर्ग यथासाध्य उनकी सेवा-शुश्रूषा करने लगे। सुना जाता है कि श्रीरामकृष्णदेव ने उस समय उनके कठिन रोग की बात को सुनकर हृदय से कहा था, "अरे हृदय, वह (श्रीमाँ) केवल क्या आती और जाती ही रहेगी, मनुष्यजन्म का कुछ भी नहीं कर पायेगी!"

रोग का जब किसी भी तरह से उपशम नहीं हुआ, तब श्रीमाँ के मन में देवी के समीप धरना देने की बात उदित हुई। जननी तथा भाइयों को पता लगने से उसमें बाधा पहुँच सकती है, यह सोचकर उन्होंने किसी से कुछ नहीं कहा तथा गाँव के श्रीसिंहवाहिनी के मन्दिर में जाकर प्रायोपवेशन करती हुई वे पड़ी रहीं। कुछ घण्टों तक उस प्रकार रहने के पश्चात् प्रसन्न होकर देवी ने उनके आरोग्य के लिए औषध का निर्देश प्रदान किया था।

श्रीसिंहवाहिनी के पास धरना देना तथा औषध प्राप्त होना।

देवी के आदेशानुसार उस औषधी के सेवन से उनका रोग शान्त हुआ तथा क्रमशः उनका शरीर पहले की भाँति स्वस्थ होने लगा। धरना देकर श्रीमाँ को औषधि प्राप्त होने के समय से इन देवी के विशेष जागृत होने की ख्याति चारों ओर के गाँवों में फैल गई।

लगभग चार वर्ष तक श्रीरामकृष्णदेव तथा श्रीमाँ की इस प्रकार सेवा करने के पश्चात् शम्भुबाबू रोगग्रस्त हो गए। उनकी पीड़ित-अवस्था में एक दिन श्रीरामकृष्णदेव उन्हें देखने गए थे तथा वहाँ से लौटकर उन्होंने कहा था, 'शम्भु के दीए में तेल नहीं है।' श्रीरामकृष्णदेव का कथन सत्य हुआ, बहुमूत्ररोग में विकार पैदा होने के कारण श्रीयुत शम्भुबाबू का देहान्त हो गया। वे अत्यन्त उदार तथा तेजस्वी ईश्वर-भक्त थे। अस्वस्थ अवस्था में भी एक दिन के लिए भी उनकी मानसिक प्रसन्नता नष्ट नहीं हुई थी। मृत्यु के दो-चार दिन पूर्व उन्होंने हर्ष के साथ हृदय से कहा था, "मृत्यु के बारे में मुझे कुछ भी चिन्ता नहीं है, बिस्तर-बोरी

मृत्यु के समय शम्भुबाबू का निर्भीक व्यवहार।

बाँधकर मैं तैयार बैठा हुआ हूँ।" शम्भु-बाबू के साथ परिचय होने के बहुत पहले ही योगारूढ़ होकर श्रीरामकृष्णदेव ने देखा था कि श्रीजगदम्बा ने शम्भुबाबू को ही उनका दूसरा 'रसददार' मनोनीत किया है तथा उनको देखते ही श्रीरामकृष्णदेव ने पहचान लिया था कि यह वही व्यक्ति है।

अस्वस्थ होकर श्रीमाताजी के नैहर जाने के कुछ महीनों बाद श्रीरामकृष्णदेव के जीवन में एक विशेष घटना हुई थी। बंगला सन् १२८२ फाल्गुन १६ (सन् १८७६ ई.) श्रीरामकृष्णदेव की जन्मतिथि के दिन उनकी जननी श्रीमती चन्द्रमणिदेवी का देहावसान हुआ था। उस समय उनकी आयु ८५ वर्ष की थी एवं उसके कुछ दिन पूर्व से ही बुढ़ापे के कारण उनकी इन्द्रियाँ तथा मानसिक शक्तियाँ अधिकांश रूप से विलुप्त हो चुकी थीं। उनकी मृत्यु के सम्बन्ध में हृदय से हमने जैसा सुना है, वैसा ही यहाँ पर लिपिबद्ध कर रहे हैं—

श्रीरामकृष्णदेव की जननी चन्द्रमणि की अन्तिम अवस्था तथा मृत्यु।

उस घटना के चार दिन पहले हृदय छुट्टी लेकर कुछ दिन के लिए घर जा रहा था। यात्रा करने के पूर्व किसी अनिश्चित आशंका से उसका चित्त संशययुक्त हो उठा तथा श्रीरामकृष्णदेव को छोड़कर उसकी जाने की बिलकुल इच्छा नहीं हुई। श्रीरामकृष्णदेव से उस विषय को निवेदन करने पर उन्होंने कहा, "तो फिर तुम मत जाओ।" उसके बाद तीन दिन बिना किसी विघ्न के व्यतीत हो गए।

श्रीरामकृष्णदेव प्रतिदिन कुछ समय के लिए अपनी जननी के समीप जाकर स्वयं अपने हाथों से यथासाध्य उनकी सेवा किया करते थे। हृदय भी ऐसा ही किया करता था तथा 'काली की माँ' नाम की एक टहलनी प्रायः दिन भर उनके निकट रहा करती थी। हृदय पर वे प्रसन्न नहीं थीं। अक्षय की मृत्यु के समय से ही उनके मन में मानो इस प्रकार की धारणा हुई थी कि हृदय ने ही अक्षय को मार डाला है एवं श्रीरामकृष्णदेव तथा उनकी पत्नी को मारने का भी वह प्रयास कर रहा है। इसलिए वे कभी कभी श्रीरामकृष्णदेव को सतर्क करती हुई कहती थीं, "हृदु की बातों को कभी न मानना।" जराग्रस्त होने से और भी अनेक विषयों में उनके

बुद्धिभ्रंश का परिचय मिलता था। उदाहरणार्थ—दक्षिणेश्वर बगीचे के समीप ही आलमबाजार में जूट का कारखाना था। मध्याह्न में वहाँ के कर्मचारियों को कुछ देर के लिए छुट्टी दी जाती थी तथा आधे घण्टे बाद 'सीटी' बजाकर उनको काम पर बुलाया जाता था। उस आवाज को वृद्धा ने ने श्रीवैकुण्ठ की शंखध्वनि मान रखा था तथा जब तक वह आवाज उनके कानों में नहीं पहुँचती थी, तब तक वे भोजन करने नहीं बैठती थीं। उस समय भोजन के निमित्त उनसे अनुरोध करने पर वे कहती थीं, "अभी मैं कैसे खा सकती हूँ ? श्रीलक्ष्मीनारायणजी का अभी भोग नहीं लगा है, वैकुण्ठ में शंख-ध्वनि नहीं हुई है, अतः कैसे भोजन किया जा सकता है ?" कारखाने की जिस दिन छुट्टी रहती थी, उस दिन सीटी न बजने के कारण वृद्धा को भोजन के लिए बैठाना बहुत कठिन हो जाता था; हृदय तथा श्रीरामकृष्णदेव को उस दिन विभिन्न उपाय खोजकर वृद्धा को भोजन करना पड़ता था।

अस्तु, चतुर्थ दिवस उपस्थित हुआ, वृद्धा में अस्वस्थता का कोई लक्षण दिखाई नहीं दिया। सायंकाल के बाद श्रीरामकृष्णदेव उनके समीप उपस्थित हुए तथा अपने बाल्य जीवन के विभिन्न घटनाओं की चर्चा कर उन्होंने वृद्धा को आनन्द प्रदान किया। आधी रात के समय उन्हें सुलाकर श्रीरामकृष्णदेव अपने कमरे में लौट आए।

दूसरे दिन प्रातःकाल हुआ, लगभग आठ बज गए, फिर भी वृद्धा कमरे का दरवाजा खोलकर बाहर न निकलीं। 'काली की माँ' ने नौबतखाने के ऊपर के कमरे के दरवाजे पर बहुत आवाज दी, किन्तु वृद्धा का कोई जवाब न मिला। उसने द्वार पर कान रखकर सुना कि उनके गले से एक प्रकार की विकृत ध्वनि निकल रही है। तब घबड़ाकर उसने श्रीरामकृष्णदेव तथा हृदय से यह बात बतलाई। हृदय ने जाकर किसी तरह दरवाजा खोलकर देखा कि वृद्धा बेहोश पड़ी हुई हैं। तब आयुर्वेदिक दवा लाकर हृदय उनकी जीभ पर उसका लेप करने लगा तथा एक-एक बूँद करके दूध तथा गंगाजल उन्हें पिलाने लगा। इस प्रकार तीन दिन बीतने के बाद उनका अन्तिम समय उपस्थित देखकर उनको 'अन्तर्जलि'* किया गया तथा

* पारलौकिक मंगल के निमित्त मुमुर्षु व्यक्ति के शरीर के निम्न भाग को गंगाजी में निमज्जित करना।

श्रीरामकृष्णदेव ने पुष्प, चन्दन व तुलसी लेकर उनके पादपद्मों में अंजलि प्रदान की। तदनन्तर संन्यासी श्रीरामकृष्णदेव के लिए अनाचरणीय होने के कारण उनके निर्देशानुसार श्रीरामकृष्णदेव के भतीजे रामलाल ने वृद्धा का अन्तिम संस्कार किया। अशौच समाप्त होने के बाद श्रीरामकृष्णदेव के आदेशानुसार वृषोत्सर्ग कर रामलाल ने श्रीरामकृष्णदेव की जननी की श्राद्धक्रिया को विधिवत् सम्पन्न किया।

मातृवियोग होने पर शास्त्रीय विधानानुसार संन्यास ग्रहण की मर्यादा की रक्षा करते हुए श्रीरामकृष्णदेव ने अशौच ग्रहण नहीं किया था।

मातृ-वियोग होने पर तर्पण करने में प्रवृत्त हो श्रीरामकृष्णदेव द्वारा उसे सम्पन्न करना सम्भव न होना। उनकी गलित-कर्मावस्था।

जननी के निमित्त पुत्रोचित किसी भी कार्य का अनुष्ठान नहीं किया गया, यह सोचकर एक दिन वे तर्पण करने को प्रवृत्त हुए थे, किन्तु अंजलि भरकर जल लेते ही उन्हें भावावेश हो गया तथा उनकी उंगलियाँ निष्क्रिय तथा असंलग्न हो जाने के कारण सब जल गिर गया। बारम्बार प्रयास करने पर भी उस समय वे उस कार्य में सफल नहीं हो पाए तथा दुःखित होकर रोते हुए दिवंगत जननी को लक्ष्य कर उन्होंने अपनी असमर्थता को निवेदन किया। तदनन्तर उन्होंने किसी पण्डित के मुख से यह सुना था कि गलित-कर्मावस्था में अथवा आध्यात्मिक उन्नति के फलस्वरूप स्वभावतः कर्म के एकदम समाप्त हो जाने पर ऐसा हुआ करता है; उस समय शास्त्रविहित कर्मों का अनुष्ठान करना सम्भव होने पर भी उस व्यक्ति को किसी प्रकार के दोष का स्पर्श नहीं होता है।

श्रीरामकृष्णदेव के मातृ-वियोग के एक वर्ष पूर्व श्रीजगदम्बा की इच्छा से उनके जीवन में एक विशेष घटना हुई थी। बंगला सन् १२८१

केशवबाबू को देखने के निमित्त श्रीरामकृष्णदेव का गमन।

चैत्र के मध्य भाग में (मार्च, १८७५ ई.) भारतीय ब्राह्मसमाज के नेता श्रीयुत केशवचन्द्र सेन को देखने की इच्छा श्रीरामकृष्णदेव के हृदय में उदित हुई थी। योगारूढ़ श्रीरामकृष्णदेव को उस इच्छा में श्रीजगन्माता के संकेत का अनुभव हुआ था तथा श्रीयुत केशवचन्द्र उस समय कलकत्ता से कुछ मील उत्तर

बेलघरिया नामक स्थान में श्रीयुत जयगोपाल सेन महोदय के बगीचे में सशिष्य साधन-भजन में मग्न हैं, यह समाचार पाकर हृदयराम के साथ श्रीरामकृष्णदेव वहाँ उपस्थित हुए थे। हमने हृदय से सुना है कि कप्तान विश्वनाथ उपाध्याय की गाड़ी में बैठकर दिन के लगभग एक बजे वे वहाँ पहुँचे थे। श्रीरामकृष्णदेव उस दिन लाल किनार की धोती पहने हुए थे तथा उसके सामने का छोर उनके बाएँ कन्धे पर पीठ की ओर लटक रहा था।

गाड़ी से उतरकर हृदय ने देखा कि श्रीयुत केशवचन्द्र अपने अनुचरवर्ग के साथ बगीचे के तालाब के पक्के घाट पर बैठे हुए हैं। हृदय ने आगे बढ़कर उनसे कहा, "मेरे मामाजी को हरिकथा तथा हरिगुणगान श्रवण अत्यन्त प्रिय है तथा उसे श्रवण करते हुए महाभाव से उन्हें समाधि होने लगती है, आपका नाम सुनकर आपके मुख से ईश्वर-गुणानुवाद श्रवण करने के निमित्त वे यहाँ आए हुए हैं, यदि आपकी अनुमति हो, तो मैं उन्हें यहाँ ले आऊँ।" श्रीयुत केशवचन्द्र की सम्मति मिलने पर हृदय ने श्रीरामकृष्णदेव को गाड़ी से उतारा तथा उनको साथ लेकर वह वहाँ उपस्थित हुआ। केशवचन्द्र आदि सभी लोग श्रीरामकृष्णदेव को देखने के लिए अत्यन्त उत्सुक हो उठे, किन्तु उनको देखकर उन्हें यह धारणा हुई कि वे एक साधारण व्यक्ति मात्र हैं।

बेलघरिया के उद्यान में श्री केशवचन्द्र।

केशवचन्द्र के समीप उपस्थित होकर श्रीरामकृष्णदेव बोले, "बाबू, मैंने सुना है कि आपको ईश्वर-दर्शन होता है। वह दर्शन किस प्रकार का रहता है, यह जानने की मेरी इच्छा है, इसलिए मैं आपके पास आया हूँ।" इस तरह सत्संग प्रारम्भ हुआ। श्रीरामकृष्णदेव के इस कथन के उत्तर में श्रीयुत केशवचन्द्र ने क्या कहा था, यह हमें विदित नहीं है; किन्तु हृदय से हमने सुना है कि उसके कुछ देर पश्चात् "के जाने मन काली केमन—षड्दर्शने ना पाय दर्शन" (कौन जानता है कि श्रीकाली कैसी हैं—षड्दर्शन को उनका कोई पता नहीं लगता है)—रामप्रसाद के

केशवचन्द्र के साथ श्रीरामकृष्णदेव का प्रथम वार्तालाप।

इस गीत को गाते हुए श्रीरामकृष्णदेव समाधिस्थ हो गए। उस समय श्रीरामकृष्णदेव के भावावेश को देखकर केशवचन्द्र आदि किसी को भी यह धारणा नहीं हुई थी कि वह उच्च आध्यात्मिक अवस्था है, उन लोगों ने सोचा था कि यह ढोंग अथवा मस्तिष्क का विकार है। अस्तु, श्रीरामकृष्णदेव की बाह्यचेतना लाने के निमित्त हृदय उनके कान में प्रणव का उच्चारण करने लगे और उसे सुनते सुनते उनका मुखमण्डल मधुर हास्य से उज्ज्वल हो उठा। इस तरह अर्ध-बाह्य अवस्था को प्राप्तकर गभीर आध्यात्मिक विषयों को साधारण दृष्टान्तों के सहारे श्रीरामकृष्णदेव इस प्रकार सरल भाषा में समझाने लगे कि सब लोग मुग्ध हो उनके मुख की ओर देखने लगे। क्रमशः स्नान तथा भोजन का समय व्यतीत होकर उपासना का समय आया, किन्तु इसका भी किसी को अनुभव नहीं हुआ। श्रीरामकृष्णदेव ने उन लोगों की ऐसी स्थिति को देखकर उस समय कहा था, "गायों के झुण्ड में और किसी जानवर के आ जाने पर वे जैसे उसे सींग से खदेड़ने को दौड़ती हैं, किन्तु एक गाय के आने पर उसके शरीर को चाटती रहती हैं—आज हम लोगों की भी ठीक वैसी दशा हुई है।" तदनन्तर उन्होंने केशवचन्द्र को सम्बोधित कर कहा था "तुम्हारी पूँछ झड़ गई है।" उनके उस कथन के अर्थ को हृदयंगम न कर पाने के कारण श्रीयुत केशवचन्द्र के अनुचरवर्ग को असन्तुष्ट-जैसे देखकर उन्होंने उस बात के तात्पर्य को समझाकर सबको विमुग्ध कर दिया था। उन्होंने कहा था, "देखो, छोटी अवस्था में मेंढक की जब तक पूँछ रहती है, तब तक वह पानी में ही रहा करता है, जमीन पर नहीं चढ़ पाता; किन्तु पूँछ के झड़ जाने पर वह पानी में भी रह सकता है, तथा जमीन पर भी रह सकता है—इसी प्रकार मनुष्य की जब तक अविद्यारूप पूँछ बनी रहती है, तब तक वह केवल संसार-जल में ही रह सकता है; किन्तु उस पूँछ के गिर जाने पर संसार तथा सच्चिदानन्द इन दोनों में ही वह अपनी इच्छानुसार विचरण कर सकता है। केशव, तुम्हारे मन की भी अब वैसी ही स्थिति है, वह संसार में भी रह सकता है तथा सच्चिदानन्द में भी जा सकता है!" इस प्रकार उस दिन बहुत देर तक विभिन्न प्रकार के वार्तालाप के पश्चात् श्रीरामकृष्णदेव दक्षिणेश्वर लौटे।

श्रीरामकृष्णदेव के दर्शन प्राप्त करने के अनन्तर श्रीयुत केशवचन्द्र

केशवचन्द्र सेन के घर पर कीर्तन में श्रीरामकृष्णदेव समाधिस्थ
(श्रीरामकृष्णदेव हृदय के सहारे से खड़े हैं)

का हृदय उनके प्रति इतना आकृष्ट हुआ था कि तब से श्रीरामकृष्णदेव के पुण्य दर्शन प्राप्तकर कृतार्थ होने के निमित्त प्रायः वे दक्षिणेश्वर-मन्दिर में उपस्थित होते थे तथा कभी-कभी उन्हें कलकत्तास्थित 'कमल कुटीर' नामक अपने भवन में ले जाकर उनके दिव्य संग को प्राप्तकर अपने को धन्य तथा सौभाग्यशाली समझते थे। श्रीरामकृष्णदेव तथा केशवचन्द्र का सम्बन्ध क्रमशः इतना गहरा हो गया था कि दो-चार दिन तक परस्पर भेंट न होने पर दोनों के ही अन्दर अत्यन्त अभाव का अनुभव होता था; उस समय या तो श्रीरामकृष्णदेव कलकत्ता में उनके पास आ जाते थे अथवा श्रीयुत केशवचन्द्र दक्षिणेश्वर आते थे। इसके अतिरिक्त प्रति वर्ष ब्राह्म समाज के उत्सव के समय श्रीरामकृष्णदेव के समीप आकर अथवा श्रीराम-कृष्णदेव को ले जाकर उनके साथ ईश्वरचर्चा में एक दिन व्यतीत करना श्रीयुत केशवचन्द्र की दृष्टि में उस उत्सव का एक अंग बन चुका था। उस समय अनेक बार जहाज में बैठकर कीर्तन करते हुए अपने साथियों को लेकर दक्षिणेश्वर में वे आते थे और फिर श्रीरामकृष्णदेव को जहाज में चढ़ाकर उनके अमृतमय उपदेशों को श्रवण करते हुए प्रायः गंगाजी में विचरण करते थे।

श्रीरामकृष्णदेव तथा केशवचन्द्र का घनिष्ट सम्बन्ध।

दक्षिणेश्वर में आते समय शास्त्रीय प्रथा के अनुसार श्रीयुत केशव-चन्द्र कभी खाली हाथ नहीं आते थे। अपने साथ कुछ फलमूल लाकर श्रीरामकृष्णदेव के सम्मुख रख देते थे तथा अनुगत शिष्य की भाँति उनके चरणों के समीप बैठकर वार्तालाप किया करते थे। एक बार परिहास करते हुए श्रीरामकृष्णदेव ने उनसे कहा था, "केशव, भाषण के द्वारा लोगों को तुम मुग्ध करते रहते हो, मुझे भी कुछ बताओ।" यह सुनकर श्रीयुत केशवचन्द्र ने अत्यन्त विनम्रता के साथ उत्तर दिया था, "मान्यवर, लुहार की दुकान पर मैं सूई बेचना नहीं चाहता हूँ। आप कहते जाइए, मैं सुनता हूँ। आपके श्रीमुख से निकली हुई दो-चार बातें लोगों के समक्ष कहने से वे मुग्ध हो जाते हैं।"

दक्षिणेश्वर में आकर केशवचन्द्र का व्यवहार।

श्रीरामकृष्णदेव ने एक दिन दक्षिणेश्वर में केशवचन्द्र को यह

समझाया था कि ब्रह्म के अस्तित्व को स्वीकार करने पर उसके साथ ही साथ ब्रह्म-शक्ति के अस्तित्व को भी मानना पड़ता है एवं ब्रह्म तथा ब्रह्म-शक्ति सर्वदा अभिन्नरूप से अवस्थित हैं। श्रीयुत केशवचन्द्र ने श्रीरामकृष्णदेव के उस कथन को स्वीकार किया था। तदनन्तर श्रीरामकृष्णदेव ने उनसे यह कहा था कि ब्रह्म तथा ब्रह्म-शक्ति के सम्बन्ध की भाँति भागवत, भक्त तथा भगवान्—ये तीनों अभिन्न या नित्ययुक्त हैं अर्थात् भागवत, भक्त तथा भगवान्—ये तीनों एक या एक ही तीन हैं। केशवचन्द्र ने उनकी इस बात को समझकर उसे भी स्वीकार किया था। इसके बाद श्रीरामकृष्णदेव ने उनसे कहा था, "अब मैं तुम्हें इस बात को समझाना चाहता हूँ कि गुरु, कृष्ण और वैष्णव—ये तीनों एक या एक ही तीन हैं।" यह सुनकर केशवचन्द्र ने पता नहीं क्या सोचकर अत्यन्त विनयपूर्वक यह उत्तर दिया था, "महाराज, आपने पहले जो कुछ कहा है, उससे आगे अभी मेरी बुद्धि दौड़ नहीं पा रही है; अतः इस प्रसंग की चर्चा इस समय रहने दीजिए।" तब श्रीरामकृष्णदेव ने भी यह कहा था, "अच्छी बात है, अभी यहीं तक रहने दिया जाय।" इस तरह पाश्चात्य-भाव में पुष्ट श्रीयुत केशवचन्द्र को श्रीरामकृष्णदेव के दिव्य-संग के प्रभाव से अपने जीवन में विशेष आलोक प्राप्त हुआ था तथा क्रमशः वैदिक धर्म के सार-रहस्य को अनुभव कर वे साधना में निमग्न हुए थे। श्रीरामकृष्णदेव के साथ परिचित होने के पश्चात् उनका धर्ममत दिनोंदिन परिवर्तित होने के कारण यह बात विशेषरूप से हृदयंगम होती है।

श्रीरामकृष्णदेव द्वारा केशवचन्द्र को ब्रह्म तथा ब्रह्म-शक्ति का अभेदत्व एवं भागवत, भक्त तथा भगवान्—ये तीनों एक या एक ही तीन हैं—समझाना।

कोई विशेष आघात हुए बिना मानव का मन संसार से अलग होकर ईश्वर को अपना सर्वस्व मानने में समर्थ नहीं होता। श्रीरामकृष्णदेव से परिचित होने के लगभग तीन वर्ष बाद कूचबिहार के राजा के साथ अपनी पुत्री का विवाह सम्पन्न करके श्रीयुत केशवचन्द्र को इस प्रकार का आघात प्राप्त हुआ। उस विवाह को लेकर भारतीय ब्राह्मसमाज में विशेष आन्दोलन खड़ा हो गया था। उसने ब्राह्मसमाज को दो भागों में विभक्त कर डाला एवं श्रीयुत केशवचन्द्र के विपक्षियों ने उनसे पृथक्

होकर 'साधारण ब्राह्मसमाज' के नाम से और एक नवीन समाज का सृजन किया था। एक साधारण-सी बात को लेकर दोनों पक्ष के इस प्रकार के विरोध को सुनकर दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्णदेव अत्यन्त दुःखित हुए थे। कन्या की विवाहयोग्य आयु के सम्बन्ध में ब्राह्मसमाज के नियम को सुनकर श्रीरामकृष्णदेव ने कहा था, "जन्म, मृत्यु तथा विवाह ईश्वरेच्छाधीन घटनाएँ हैं। इनके सम्बन्ध में कड़े नियम बनाना उचित नहीं है; केशव ने ऐसा क्यों किया!" कूचबिहार के विवाह की चर्चा करते हुए जब कोई श्रीयुत केशवचन्द्र की निन्दा करने लगता, तब वे उससे यह कहते थे, "केशव ने निन्दनीय ऐसा क्या किया है? वह संसारी है, जिससे अपनी सन्तान का कल्याण हो, ऐसा कार्य करना क्या अनुचित है? संसारी व्यक्ति के लिए धर्ममार्ग का अवलम्बन कर ऐसा करने में निन्दा की क्या बात है? उसने धर्मविरोधी कोई भी कार्य नहीं किया है, प्रत्युत् पिता के कर्तव्य का ही पालन किया है।" इस प्रकार संसार-धर्म की दृष्टि से देखते हुए केशवचन्द्र के कार्य को श्रीरामकृष्णदेव सर्वदा निर्दोष प्रतिपन्न करते थे। फिर भी इसमें कोई सन्देह नहीं कि कूचबिहार की विवाहसम्बन्धी घटना से गहरी चोट लगने के कारण श्रीयुत केशवचन्द्र का मन अन्तर्मुख हो दिन-प्रतिदिन आध्यात्मिक उन्नति की ओर अग्रसर हुआ था।

६ मार्च, १८७८ ई. में कूचबिहार का विवाह सम्पन्न होना। उससे आघात प्राप्त कर केशवचन्द्र की आध्यात्मिक स्थिति का गभीर होना। उस विवाह के बारे में श्रीरामकृष्णदेव का अभिमत।

पाश्चात्यभाव में पुष्ट श्रीयुत केशवचन्द्र श्रीरामकृष्णदेव की विशेष प्रीति तथा उनको अनेक बार देखने का सौभाग्य प्राप्त कर भी उन्हें सम्यक् रूप से समझ पाए थे या नहीं, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता; क्योंकि यह देखने में आता है कि एक ओर वे श्रीरामकृष्णदेव को जाग्रत धर्ममूर्ति मानते थे—अपने घर ले जाकर वे जहाँ भोजन, शयन, उपवेशन तथा समाज के कल्याण का चिन्तन करते थे, स्वयं श्रीरामकृष्णदेव को उन स्थानों को दिखाकर आशीर्वाद

केशवचन्द्र पूर्ण रूप से श्रीरामकृष्णदेव के भाव को नहीं समझ पाए थे। श्रीरामकृष्णदेव के साथ उनके दो तरह के आचरण।

प्रदान करने के लिए कहा था, जिससे उन स्थानों में से कहीं भी बैठकर उनका मन ईश्वरचिन्तन तथा संसार-विस्मरण में सफल हो। साथ ही जहाँ बैठकर वे ईश्वरचिन्तन करते थे, श्रीरामकृष्णदेव को वहाँ ले जाकर उनके श्रीचरणों में उन्होंने पुष्पांजलि अर्पण की थी। + दक्षिणेश्वर में उपस्थित हो 'जय विधान की जय' कहकर उन्हें श्रीरामकृष्णदेव को प्रणाम करते हुए भी हममें से अनेक व्यक्तियों ने देखा है।

नवविधान तथा श्रीरामकृष्णदेव का अभिमत।

उसी प्रकार दूसरी ओर यह देखा गया है कि श्रीरामकृष्णदेव के 'समस्त धर्म सत्य हैं—जितने मत हैं उतने ही पथ हैं' इस वाक्य को सम्यक् रूप से ग्रहण करने में असमर्थ होकर अपनी बुद्धि की सहायता से समस्त धर्ममतों के सार अंश का ग्रहण तथा असार अंश का परित्याग कर 'नव विधान' के नाम से एक नवीन मत को स्थापित करने के लिए वे सचेष्ट हुए थे। श्रीरामकृष्णदेव के साथ परिचित होने के कुछ दिन बाद इस मत के आविर्भाव को देखकर यह प्रतीत होता है कि श्रीयुत केशवचन्द्र ने श्रीरामकृष्णदेव की समस्त धर्ममत-सम्बन्धी चरम मीमांसा का इस प्रकार आंशिक रूप में प्रचार किया था।

श्रीरामकृष्णदेव ने ही भारत की राष्ट्रीय समस्या का वास्तविक समाधान किया है।

पाश्चात्य शिक्षा तथा सभ्यता की प्रबल तरंग के द्वारा जिस समय भारतीय प्राचीन ब्रह्मविद्या तथा सामाजिक रीति-रिवाजों का समूल परिवर्तन होने लगा था, उस समय भारत का प्रत्येक मनीषी प्राच्य एवं पाश्चात्य की शिक्षा व धर्म इत्यादि विषयों में सामंजस्य स्थापित करने के लिए सचेष्ट हुआ था। श्रीयुत राममोहन राय, महर्षि देवेन्द्रनाथ, ब्रह्मानन्द केशवचन्द्र आदि मनीषियों ने बंगाल में उस सम्बन्ध में जिस प्रकार आजीवन प्रयास किया है, भारत में अन्यत्र भी उसी प्रकार अनेक महात्माओं के उस प्रकार के प्रयास की बात सुनने में आती है। किन्तु श्रीरामकृष्णदेव के आविर्भाव के पूर्व उनमें से कोई भी उस विषय का

+ श्रीयुत विजयकृष्ण गोस्वामी से हमने यह घटना सुनी है।

सम्पूर्ण समाधान नहीं कर पाया था। श्रीरामकृष्णदेव ने अपने जीवन में भारतीय धर्ममतों का विधिवत् साधन कर तथा प्रत्येक साधना में सफलता प्राप्त कर यह अनुभव किया था कि भारतीय धर्म भारत की अवनति का कारण नहीं है, उसके कारण को अन्यत्र ढूँढ़ना पड़ेगा। उन्होने यह सिद्ध किया कि प्राचीन काल में धर्म पर अवलम्बित रहकर भारतीय समाज, रीति-रिवाज, सभ्यता आदि ने भारत को गौरवान्वित किया था। अब भी धर्म के भीतर वह जाग्रत-शक्ति विद्यमान है तथा उसे सर्वात्मना अंगीकार कर जब हम समस्त विषयों में सचेष्ट होंगे, तभी हमें प्रत्येक कार्य में सफलता प्राप्त हो सकेगी, अन्यथा नहीं। वह धर्म मनुष्य को कितना उदार बना सकता है, सर्वप्रथम अपने जीवनादर्श के द्वारा श्रीरामकृष्णदेव ने उसे अभिव्यक्त किया, तदनन्तर पाश्चात्यभाव में पुष्ट अपने शिष्यवर्ग—विशेषतः स्वामी विवेकानन्द के भीतर उस उदार धर्मशक्ति का संचार कर उन्हे सांसारिक समस्त कार्यों को किस प्रकार धर्म के सहायक रूप से सम्पन्न करना होगा, इस बात की शिक्षा प्रदान कर भारत की पूर्वोक्त जातीय समस्या का उन्होंने अपूर्व समाधान किया है। समस्त धर्ममतों के साधन में सफलता प्राप्त कर श्रीरामकृष्णदेव ने जिस प्रकार एक ओर पृथ्वी के आध्यात्मिक विरोधों को दूर करने का उपाय निर्धारित किया है—उसी प्रकार दूसरी ओर भारतीय समस्त धर्ममतों की साधना में सिद्धिलाभ कर भारत के धार्मिक विरोधों का विनाश करते हुए उन्होंने यह भी निर्देश प्रदान किया है कि किस विषय के अवलम्बन से हमारा राष्ट्रीयत्व सदैव सुप्रतिष्ठित बनी हुई है तथा भविष्य में भी बनी रहेगी।

केशवचन्द्र के देहान्त के बाद श्रीरामकृष्णदेव का आचरण।

अस्तु, श्रीयुत केशवचन्द्र के प्रति श्रीरामकृष्णदेव की प्रीति कितनी गहरी थी, इस बात को सन् १८८४ ई. जनवरी में केशवचन्द्र के देहान्त के बाद श्रीरामकृष्णदेव के व्यवहार द्वारा हम सम्यक् रूप से हृदयंगम कर सकते हैं। श्रीरामकृष्णदेव ने कहा था, "उस समाचार को सुनकर मैं तीन दिन तक शय्या से उठ नहीं पाया था; मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा था कि मानो मेरा एक अंग (पक्षाघात से) विवश हो चुका है।"

केशवचन्द्र के साथ प्रथम परिचय होने के अनन्तर श्रीरामकृष्णदेव के

जीवन की अन्य एक घटना का उल्लेख कर हम वर्तमान अध्याय को समाप्त करेंगे। उस समय श्रीरामकृष्णदेव के मन में श्रीचैतन्यदेव के सर्वजनमनमोहक नगर-संकीर्तन दर्शन करने की आकांक्षा हुई थी। श्रीजगदम्बा ने निम्नलिखित रूप से उसका दर्शन कराकर उन्हें सफलमनोरथ किया था—

संकीर्तन में श्रीरामकृष्णदेव का श्रीगौरांगदेव दर्शन।

अपने कमरे के बाहर खड़े होकर श्रीरामकृष्णदेव ने देखा था कि पंचवटी की तरफ से वह अद्भुत संकीर्तन-तरंग उनकी ओर बढ़कर दक्षिणेश्वर के बगीचे के फाटक तक प्रवाहित होती हुई वृक्षों की आड़ में लीन होती जा रही है; उन्होंने देखा कि नवद्वीपचन्द्र श्रीगौरांगदेव, श्रीनित्यानन्द तथा श्रीअद्वैत प्रभु को साथ लेकर ईश्वर-प्रेम में तन्मय हो उस जनसमूह के बीच में, वे धीरे-धीरे अग्रसर हो रहे हैं तथा उनके चारों ओर के सभी लोग उनके प्रेम में तन्मय होकर कोई संज्ञाहीन और कोई उद्दाम ताण्डव करते हुए अपने हृदय का उल्लास प्रकट कर रहे हैं। इतनी जनता एकत्रित हुई है जिसकी कोई सीमा नहीं। उस अद्भुत संकीर्तन-दल के कुछ व्यक्तियों के मुखमण्डल श्रीरामकृष्णदेव के मानसपटल पर उज्ज्वल रूप से अंकित हो गए थे तथा इस दर्शन के कुछ दिन बाद उनको अपने भक्त के रूप में आते देखकर श्रीरामकृष्णदेव ने उनके सम्बन्ध में यह दृढ़ निश्चय किया था कि वे पूर्वजन्म में श्रीचैतन्यदेव के सहचर थे।

अस्तु, उस दर्शन के कुछ दिन बाद श्रीरामकृष्णदेव कामारपुकुर तथा हृदय अपने घर शिउड़ गाँव चले गए थे। इस स्थान से कुछ दूरी पर फुलुई श्यामबाजार नामक एक स्थान है। वहाँ अनेक वैष्णव रहते थे जो प्रतिदिन कीर्तनादि कर उस स्थान को आनन्दमय कर रखते थे। यह सुनकर श्रीरामकृष्णदेव के मन में वहाँ जाकर कीर्तन श्रवण करने की अभिलाषा हुई। श्याम-बाजार के समीप बेलटे नामक गाँव है। इससे पहले

श्रीरामकृष्णदेव का फुलुई-श्यामबाजार गमन तथा अपूर्व कीर्तनानन्द। उक्त घटना का समय निरूपण।

गाँव के श्रीयुत नटवर गोस्वामी ने श्रीरामकृष्णदेव का दर्शन किया था तथा अपने घर पर पधारने के लिए उन्हें आमंत्रित किया था। उस समय हृदय को साथ लेकर श्रीरामकृष्णदेव उनके घर गए थे तथा सात दिन

तक वहाँ रहकर श्यामबाजार के वैष्णवों के कीर्तनानन्द को देखा था। वहाँ के श्रीयुत ईशानचन्द्र मल्लिक से परिचय होने के बाद उन्होंने श्रीरामकृष्णदेव को अपने घर कीर्तनानन्द में आवाहन किया था। कीर्तन के समय श्रीरामकृष्णदेव का अपूर्व भावावेश देखकर वैष्णवों ने विशेष आकर्षण का अनुभव किया था। क्रमशः यह बात चारों ओर फैल गई। केवल श्यामबाजार गाँव में ही नहीं, अपितु रामजीवनपुर, कृष्णगंज आदि चारों तरफ के दूर-दूर गाँवों में भी यह बात प्रचारित हो चुकी थी। क्रमशः उन गाँवों से कीर्तनों के दल उनके साथ आनन्द प्राप्त करने के निमित्त झुण्ड बाँधकर वहाँ उपस्थित हुए थे। इस तरह श्यामबाजार एक विशाल जनसमुद्र में परिणत हो गया था तथा दिन रात वहाँ कीर्तन होने लगा था। प्रायः सर्वत्र यह चर्चा होने लगी थी कि एक ऐसे भगवद्भक्त का आगमन हुआ है जो भजन करते समय कुछ देर तक मर जाता है और फिर तत्काल ही जीवित हो उठता है। यह सुनकर श्रीरामकृष्णदेव को देखने के निमित्त लोग पेड़ पर तथा घर की छतों पर चढ़ने लगे, एवं आहार-निद्रा तक भूल गए। इस प्रकार तीन दिन तक वहाँ आनन्द की धारा प्रवाहित होती रही एवं श्रीरामकृष्णदेव को देखने तथा उनके चरण-स्पर्श करने के लिए लोग इस प्रकार उन्मत्त हो उठे कि उन्हें स्नान तथा भोजन करने का अवकाश प्राप्त नहीं हुआ। तदनन्तर हृदय जब चुपचाप उन्हें अपने साथ लेकर शिउड़ पहुँचे, तब कहीं वह आनन्दोत्सव समाप्त हुआ। श्यामबाजार गाँव के ईशान चौधरी, नटवर गोस्वामी, ईशान मल्लिक, श्रीनाथ मल्लिक आदि सभी लोग तथा उनके वंशज अभी तक उस घटना का उल्लेख किया करते हैं तथा श्रीरामकृष्णदेव के प्रति विशेष भक्ति-श्रद्धा प्रदर्शन करते हैं। कृष्णगंज के प्रसिद्ध 'खोल वादक' (मृदंग वादक) श्रीयुत रायचरणदास के साथ भी श्रीरामकृष्णदेव का परिचय हुआ था। उनका 'खोल वादन' (मृदंग वादन) सुनते ही श्रीरामकृष्ण-देव को भावावेश हो जाता था। इस घटना के विवरण का कुछ अंश हमने श्रीरामकृष्णदेव से तथा कुछ अंश हृदय से सुना है तथा निम्नलिखित रूप से उसका समय निरूपण किया है—

श्रीरामकृष्णदेव के परम भक्त बरानगर आलमबाजार निवासी श्रीयुत महेन्द्रनाथ पाल कविराज ने, केशवचन्द्र के बाद श्रीरामकृष्णदेव का दर्शन

महत्वपूर्ण घटनाओं की समय-सूची

बंगला सन्	ईसवी सन्	घटना
११८१	१७७५	श्री क्षुदिरामजी का जन्म।
११९७	१७९१	श्रीमती चन्द्रादेवी का जन्म।
१२०५	१७९९	श्रीमती चन्द्रादेवी के साथ श्री क्षुदिरामजी का विवाह —क्षुदिरामजी की आयु २४ वर्ष तथा चन्द्रादेवी की ८ वर्ष।
१२११	१८०५	श्री रामकुमारजी का जन्म। अतः रामकुमारजी श्रीरामकृष्णदेव से ३१ वर्ष बड़े थे।
१२१६	१८१०	श्रीमती कात्यायनी का जन्म।
१२२०	१८१४	श्री क्षुदिरामजी का कामारपुकुर आगमन।
१२२६	१८२०	रामकुमारजी तथा कात्यायनी का विवाह।
१२३०	१८२४	श्री क्षुदिरामजी की श्रीरामेश्वर-यात्रा।
१२३२	१८२६	श्रीरामेश्वरजी का जन्म। अतः ये श्रीरामकृष्णदेव से १० वर्ष बड़े थे।
१२४०	१८३४	कात्यायनी के शरीर में भूतावेश।
१२४१	१८३५	श्री क्षुदिरामजी का श्रीगयाधाम दर्शन। इस समय उनकी आयु ६० वर्ष की थी।
१२४२	१८३६	बंगला फाल्गुन ६ (१७ फरवरी) शुक्लपक्ष बुधवार, श्रीरामकृष्णदेव का ब्राह्म मुहुर्त में जन्म।
१२४५	१८३९	सर्वमंगला का जन्म।
१२४९	१८४३	६८ वर्ष की आयु में श्री क्षुदिरामजी का देहावसान। इस समय श्रीरामकृष्णदेव की आयु ७ वर्ष की थी।
१२५४	१८४८	रामेश्वर तथा सर्वमंगला का विवाह।
१२५५	१८४९	श्री रामकुमारजी के पुत्र अक्षय का जन्म होने पर ३६ वर्ष की आयु में उनकी धर्मपत्नी की मृत्यु। इस समय रामकुमारजी की आयु ४४ वर्ष की थी।

बंगला सन्	ईसवी सन्	घटना
१२५६	१८५०	श्री रामकुमारजी का कलकत्ते के झामापुकुर मुहल्ले में संस्कृत विद्यालय खोलना।
१२५९	१८५२-१८५३	कलकत्ते में श्रीरामकृष्णदेव का आगमन तथा झामापुकुर के संस्कृत विद्यालय में निवास। (उस समय उनकी आयु १६ वर्ष से कुछ महीने अधिक थी।)
१२६०	१८५३	पौष कृष्णा सप्तमी (२२ दिसम्बर) को श्रीमा सारदादेवी का जन्म।
१२६०	१८५३-१८५४	झामापुकुर के संस्कृत विद्यालय में अवस्थान, पाठ-पूजनादि।
१२६१	१८५४-१८५५	,, ,,
१२६२	१८५५-१८५६	ज्येष्ठ १८ (गुरुवार, ३१ मई १८५५) 'स्नानयात्रा' के शुभ अवसर पर दक्षिणेश्वर-मन्दिर की प्रतिष्ठा; श्रीरामकृष्णदेव का कालीमन्दिर में श्रृंगार करने के कार्य पर तथा हृदय की उनकी सहायता के लिए नियुक्त होना; श्रीगोविन्द-विग्रह का खण्डित होना; श्रीरामकृष्णदेव द्वारा श्रीराधागोविन्दजी के पुजारी का पदग्रहण; भाद्रपद १४ (२९ अगस्त) को रानी रासमणि का देवसेवा के निमित्त जमींदारी खरीदना; श्री केनाराम भट्टाचार्य से श्रीरामकृष्णदेव का शक्तिमन्त्र का दीक्षाग्रहण; श्रीरामकृष्णदेव का श्रीकाली पुजारी तथा श्रीरामकुमारजी का श्रीराधागोविन्द पुजारी पदग्रहण।
१२६३	१८५६-१८५७	हृदय का श्रीराधागोविन्द पुजारी पदग्रहण; रामकुमारजी का निधन; श्रीरामकृष्णदेव के पाप-पुरुष का वध होना तथा गात्रदाह; उनका प्रथम बार दिव्योन्माद तथा दर्शन; भूकैलास के राजभवन में नियुक्त एक योग्य वैद्य द्वारा उनकी चिकित्सा।

बंगला सन्	ईसवी सन्	घटना
१२६४	१८५७–१८५८	श्रीरामकृष्णदेव की रागानुगा पूजा को देखकर मथुरबाबू का आश्चर्यचकित होना; श्रीरामकृष्णदेव द्वारा रानी रासमणि का दण्डित होना; हलधारी की पुजारी पद पर नियुक्ति तथा श्रीरामकृष्णदेव को अभिशाप प्रदान।
१२६५	१८५८–१८५९	आश्विन या कार्तिक मास में श्रीरामकृष्णदेव का कामारपुकुर गमन; भूत-प्रेत उतारना।
१२६६	१८५९	वैशाख मास में श्रीरामकृष्णदेव का शुभ विवाह।
१२६७	१८६०–१८६१	श्रीरामकृष्णदेव का द्वितीय बार जयरामवाटी गमन, तदनन्तर कलकत्ता प्रत्यावर्तन, मथुरबाबू को श्रीरामकृष्णदेव का 'शिव काली' रूप में दर्शन; श्रीरामकृष्णदेव का द्वितीय बार दिव्योन्माद तथा गंगाप्रसाद वैद्य की चिकित्सा; १८ फरवरी १८६१ को देवोत्तर के दानपत्र पर रानी रासमणि का हस्ताक्षर करना तथा उसके दूसरे दिन उनका निधन। श्रीरामकृष्णदेव की जननी का 'बूढ़े शंकर' के निकट धरना देना। भैरवी ब्राह्मणी का आगमन तथा श्रीरामकृष्णदेव का तन्त्र-साधन प्रारम्भ।
१२६९	१८६२–१८६३	श्रीरामकृष्णदेव की तन्त्रसाधना का पूर्ण होना।
१२७०	१८६३–१८६४	पण्डित पद्मलोचन से भेंट; मथुरबाबू द्वारा 'अन्नमेरु' व्रत का अनुष्ठान; श्रीरामकृष्णदेव की जननी का गंगातट पर निवास करने के लिए आगमन; जटाधारी का आगमन, श्रीरामकृष्णदेव का वात्सल्य तथा मधुरभाव का साधन।

बंगला सन्	ईसवी सन्	घटना
१२७१	१८६४–१८६५	श्रीमत् तोतापुरीजी का आगमन तथा श्रीरामकृष्णदेव का संन्यासग्रहण। पण्डित वैष्णवचरण का श्रीरामकृष्ण-देव के पास आगमन।
१२७२	१८६५–१८६६	पुजारीपद से हलधारी का अवकाशग्रहण तथा अक्षय का पुजारी पदग्रहण; श्रीमत् तोतापुरीजी का दक्षिणेश्वर से प्रस्थान।
१२७३	१८६६–१८६७	श्रीरामकृष्णदेव का छः महीने तक अद्वैत भूमि में अवस्थान काल का पूर्ण होना; श्रीमती जगदम्बादासी को कठिन व्याधि से आरोग्य करना; तदनन्तर श्रीरामकृष्णदेव की शारीरिक अस्वस्थता तथा इस्लामधर्मसाधना।
१२७४	१८६७–१८६८	ब्राह्मणी तथा हृदय के साथ श्रीरामकृष्णदेव का कामारपुकुर गमन; श्रीमाँ का कामारपुकुर आगमन; मार्गशीर्ष मास (अक्टूबर-नवम्बर में श्रीरामकृष्णदेव का कलकत्ता वापस आना तथा माघ मास (२७ जनवरी १८६८) में तीर्थयात्रा।
१२७५	१८६८–१८६९	ज्येष्ठ मास में श्रीरामकृष्णदेव का तीर्थयात्रा से वापस आना; हृदय की प्रथम पत्नी का देहान्त तथा उनके द्वारा श्रीदुर्गापूजन एवं उनका द्वितीय विवाह।
१२७६	१८६९–१८७०	अक्षय का विवाह तथा देहावसान।
१२७७	१८७०–१८७१	श्रीरामकृष्णदेव का मथुरबाबू के पैत्रिक स्थान तथा उनके गुरुगृह में गमन; कोलुटोला में श्रीचैतन्यदेव का आसनग्रहण, तदनन्तर कालना, नवद्वीप तथा भगवान-दास बाबाजी का दर्शन।

बंगला सन्	ईसवी सन्	घटना
१२७८	१८७१–१८७२	१६ जुलाई, १८७१ ई. (श्रावण १) को मथुरबाबू का निधन; फाल्गुन मास में रात के ९ बजे श्रीमाँ का प्रथम बार दक्षिणेश्वर आगमन ।
१२७९	१८७२–१८७३	श्रीमाँ का दक्षिणेश्वर में निवास ।
१२८०	१८७३–१८७४	ज्येष्ठ मास में श्रीषोड़शीपूजन (२५ मई १८७३ ई.); श्रीमाँ का गौरी पण्डितजी का दर्शन तथा सम्भवतः आश्विन मास (सितम्बर, १८७३ ई.) में कामापुकुर प्रत्यागमन ; मार्गशीर्ष मास (अक्टूबर १८७३ ई.) में रामेश्वरजी का निधन ।
१२८१	१८७४–१८७५	(सम्भवतः १८७४ ई. अप्रैल में) श्रीमाँ का द्वितीय बार दक्षिणेश्वर आगमन; शम्भु मल्लिक के द्वारा गृहनिर्माण; चानक में श्रीअन्नपूर्णाजी के मन्दिर की प्रतिष्ठा; श्रीरामकृष्णदेव की ईसाईधर्मसाधना तथा श्रीकेशवचन्द्र सेन से प्रथम भेंट ।
१२८२	१८७५–१८७६	(सम्भवतः १८७५ नवम्बर में) अस्वस्थ होकर श्रीमाँ का नैहर गमन; श्रीरामकृष्णदेव की जननी का देहावसान ।
१२८३	१८७६–१८७७	श्री केशवचन्द्र सेन के साथ श्रीरामकृष्णदेव का घनिष्ट सम्बन्ध ।
१२८४	१८७७–१८७८	,, ,, (सम्भवतः १८७७ के नवम्बर में) श्रीमाँ का दक्षिणेश्वर आगमन ।
१२८५	१८७८–१८७९	श्रीरामकृष्णदेव के चिह्नित भक्तों के आगमन का प्रारम्भ ।

बंगला सन्	ईसवी सन्	घटना
१२८७	१८८०–१८८१	श्रीमाँ का पुनः दक्षिणेश्वर आगमन और हृदय की कटुक्ति के कारण उसी दिन वापस चले जाना। श्रीमती जगदम्बादासी का निधन।
१२८८	१८८१–१८८२	हृदय की पदच्युति तथा दक्षिणेश्वर से अन्यत्र गमन। सन् १८८१ ई. में स्वामी विवेकानन्दजी का श्रीरामकृष्णदेव के पास आगमन।
१२९०	१८८४	श्री केशवचन्द्र सेन का देहावसान।